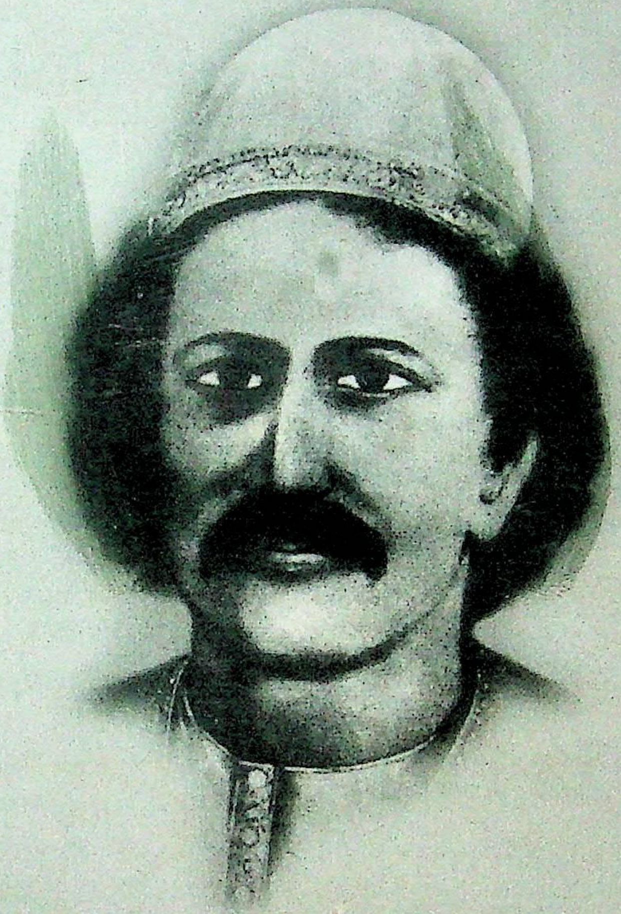

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली

[redacted]

सम्पादक

ओमप्रकाश सिंह

2

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य में आधुनिक काल के प्रवर्तक के रूप में समादृत हैं। इनका जन्म इतिहास विख्यात सेठ अमीचन्द के घराने में हुआ था। भारत में अंगरेजों का साथ देने, पर लूट का माल न पाने के कारण अमीचन्द पागल होकर मरे थे। अमीचन्द के बेटे फतेहचन्द कलकत्ता से आकर काशी में बसे। इनके बेटे हर्षचन्द और हर्षचन्द के बेटे गोपालचन्द हुए। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इन्हीं गोपालचन्द के बेटे थे।

इस अंगरेज भक्त परिवार में भारतेन्दु 'विष बेलि अमी फल लागि रही' की तरह थे। उन्होंने अपना पूरा जीवन साहित्य की श्रीवृद्धि में झोंक दिया। आधुनिक साहित्य की समृद्धि में अद्वितीय योगदान के कारण ही इन्हें 'आधुनिक हिन्दी का जनक' कहा जाता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक तरफ तो अपने नाटकों, निबन्धों, लेखों, कविताओं, यात्रावृत्तान्तों, जीवनियों तथा इतिहास और पुरातत्त्व पर लिखी पुस्तक-पुस्तिकाओं के लिए प्रसिद्ध हैं तो दूसरी तरफ प्रारम्भिक हिन्दी पत्रकारिता के विकास में महत्त्वपूर्ण योग देने वाले पत्रकार-सम्पादक के रूप में स्मरणीय हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की सर्जनात्मक प्रतिभा से ही हिन्दी भाषा, साहित्य और पत्रकारिता को नयी प्रेरणा तथा उचित दिशा-बोध प्राप्त हुआ।

भारतेन्दु साहित्य का अधिकांश भाग अब तक संकलित संगृहीत हो चुका है। यह जरूर है कि ये संकलन अब बाजार में मौजूद नहीं है। ब्रजरत्न दास द्वारा सम्पादित भारतेन्दु ग्रन्थावली अब आसानी से नहीं मिलती। पूरी ग्रन्थावली की योजना बनाकर शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' केवल पहला खंड ही सम्पादित कर सके थे। हेमन्त शर्मा द्वारा सम्पादित 'भारतेन्दु समग्र' बाजार में उपलब्ध है। भारतेन्दु की अनेक रचनाएं, टिप्पणियां, भूमिकाएं, पत्रों आदि का सम्पादन न होने के कारण अब यह सामग्री दुर्लभ हो गयी है। भारतेन्दु की पत्रिकाएं पुस्तकालयों में उपलब्ध नहीं हैं। अब स्थिति यह हो गयी है कि भारतेन्दु की अनेक रचनाएं प्राप्त होने वाली नहीं हैं। भारतेन्दु की सभी रचनाएं इस ग्रन्थावली में हैं, यह मेरा दावा नहीं है। हां, यह दावा जरूर है कि अब दो-एक रचनाएं और कुछ सम्पादकीय टिप्पणियां ही इस ग्रन्थावली से बाहर हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की यह ग्रन्थावली छह खंडों में तैयार की गयी है। इसमें तमाम ऐसी रचनाएं और टिप्पणियां हैं, जो अब तक कहीं भी संकलित नहीं थीं। ग्रन्थावली में भारतेन्दु साहित्य को इस क्रम से रखा गया है कि अनेक आरोपों-प्रत्यारोपों का स्वतः जवाब मिल जाएगा।

143761

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली-2

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली-2

[नाटक (अनूदित), संवाद, श्री रामलीला और चरितावली]

सम्पादक

ओमप्रकाश सिंह

[redacted]

143761

प्रकाशन संस्थान
नयी दिल्ली-110002

प्रकाशक
प्रकाशन संस्थान
4715/21, दयानन्द मार्ग, दरियागंज
नयी दिल्ली-110 002

R
022
सिं-५

मूल्य : 4800.00 रुपये (छह खंड)
प्रथम संस्करण : सन् 2008
ISBN 81-7714-312-3
आवरण : जगमोहन सिंह रावत

शब्द-संयोजन : कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-110032
मुद्रक : बी. के. ऑफसेट, दिल्ली-110032

इस खंड में

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली का यह दूसरा खंड है। इस खंड में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा अनूदित नाटकों को संकलित किया गया है। सर्वविदित तथ्य है कि भारतेन्दु ने संस्कृत, प्राकृत, बांगला, अंगरेजी आदि भाषाओं के चर्चित और महत्त्वपूर्ण नाटकों को हिन्दी में उपलब्ध कराने का महत्त्वपूर्ण प्रयास किया था। हिन्दी में नाटक विधा मजबूत हो, इसके लिए उन्होंने अन्य भाषा की महत्त्वपूर्ण नाट्यकृतियों का न केवल अनुवाद किया बल्कि अन्य साहित्यकारों को भी मौलिक नाटक लेखन या नाटकों के अनुवाद के लिए प्रेरित किया। इसी प्रेरणा का ही परिणाम था कि भारतेन्दु मंडल के हर लेखक ने नाटक विधा में जोर आजमाया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1868 ई. में 'प्रवास' नाटक लिखना प्रारम्भ किया था पर यह नाटक एक-दो पृष्ठ ही लिखा जा सका। इस नाटक की रचना से वे क्यों विरत हो गए, इसकी कोई चर्चा नहीं मिलती। इसी वर्ष उन्होंने यतीन्द्रमोहन ठाकुर के बहुचर्चित नाटक 'विद्यासुन्दर' के आधार पर एक नाटक की रचना की और उसका शीर्षक भी 'विद्यासुन्दर' रखा। विद्यासुन्दर की कथा बंगभाषा में अनेक रूपों में लिखी गई है और लोगों की जबान पर है। 'रत्नावली' श्री हर्ष कविकृत 'रत्नावली' नाटिका का अनुवाद है। 'प्रबोध चन्द्रोदय' के तीसरे अंक का अनुवाद 'पाखंड विडम्बन' है। 'धनंजय विजय' का वैशिष्ट्य यह है कि भारतेन्दु ने इसका अनुवाद छन्दोबद्ध किया है। 'कर्पूर मंजरी' प्राकृत भाषा के नाटक का अनुवाद है। 'दुर्ल्लभ बन्धु' शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'मर्चेन्ट आफ वेनिस' का अनुवाद है। इस नाटक का अनुवाद भारतेन्दु ने मूल नाटक से किया था अथवा बंगला के अनुवाद से हिन्दी अनुवाद किया था, स्पष्ट नहीं हो पाता। इस नाटक को उन्होंने एक और नाम—'वंशपुर का महाजन' भी दिया था। कहा जाता है कि इस नाटक का अनुवाद उन्होंने बाबू बालेश्वरप्रसाद और पं. रामशंकर व्यास की मदद से किया था। ऐसा भी कहा जाता है कि भारतेन्दु इस नाटक का अनुवाद पूरा न कर सके थे। अन्त का कुछ अंश शेष रह गया था जिसे उनकी मृत्यु के बाद पं. रामशंकर व्यास ने पूरा किया। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन'

में इस नाटक का कुछ भाग ही प्रकाशित हुआ था। नाटक के पात्रों का नाम भारतेन्दु ने जिस तरह से बदल दिया था, वह बहुत दिनों तक चर्चा का विषय बना रहा।

इसी खंड में भारतेन्दु के चार 'संवाद' भी दिए गए हैं। दरअसल यह एक ऐसी विधा है जो अपनी प्रकृति में नाटकों की प्रकृति से पूरी तरह मेल खाती है, भले ही आकार में अति लघु हो। ठीक यही बात 'श्रीरामलीला' कविता पर भी लागू होती है।

भारतेन्दु ने अनेक महापुरुषों का जीवन चरित 'चरितावली' शीर्षक से लिखा था। 'चरितावली' लिखने का उनका मूल उद्देश्य था कि महापुरुषों के जीवन और उनकी शिक्षाओं से लोग परिचित हों। ऐसी रचनाओं को भी इसी खंड में रखना ठीक समझा गया। इति!

–ओमप्रकाश सिंह

अनुक्रम

अनूदित नाटक 1
विद्यासुन्दर 3
रत्नावली 41
पाखंड विडम्बन 49
धनंजय विजय 67
मुद्राराक्षस 91
दुर्ल्लभ बन्धु 201
कर्पूर मंजरी 293
संवाद 329
सबै जात गोपाल की 331
वसन्त पूजा 337
ज्ञाति विवेकिनी सभा 341
संडभंडयोः संवादः 347
श्री रामलीला 353
चरितावली 365

अनूदित नाटक

विद्यासुन्दर

(नाटक)

सन 1868 ई.

द्वितीय आवृत्ति का उपक्रम

विद्यासुन्दर की कथा बंग देश में अति प्रसिद्ध है। कहते हैं कि चौर कवि जो संस्कृत में 'चौरपंचाशिका' का कवि है यही सुन्दर है। कोई इस 'चौरपंचाशिका' को वररुचि की बनाई मानते हैं। जो कुछ हो, विद्यावती की आख्यायिका का मूल सूत्र वही 'चौरपंचाशिका' है। प्रसिद्ध कवि भारतचन्द्र राय ने इस उपाख्यान को बंगभाषा में काव्य स्वरूप में निर्माण किया है और उसकी कविता ऐसी उत्तम है कि बंगदेश में आबाल वृद्ध, वनिता सब उसको जानते हैं। महाराज यतीन्द्रमोहन ठाकुर ने उसी काव्य का अवलम्बन करके जो 'विद्यासुन्दर' नाटक बनाया था उसी की छाया लेकर आज पन्द्रह बरस हुए यह हिन्दी भाषा में निर्मित हुआ है। विशुद्ध हिन्दी भाषा के नाटकों के इतिहास में यह चौथा नाटक है। निवाज का 'शकुन्तला' या ब्रजवासीदास का 'प्रबोधचन्द्रोदय' नाटक नहीं, काव्य है इस से हिन्दी भाषा में नाटकों की गणना की जाय तो महाराज रघुराजसिंह का 'आनन्दरघुनन्दन' और मेरे पिता का 'नहुष' नाटक यही दो प्राचीन ग्रन्थ भाषा में वास्तविक नाटककार मिलते हैं, यों नाम को तो देवमायाप्रपंच, समयसार इत्यादि कई भाषा ग्रन्थों के पीछे नाटक शब्द लगा दिया है। इनके पीछे 'शकुन्तला' का अनुवाद राजा लक्ष्मणसिंह ने किया है। यदि पूर्वोक्त दोनों ग्रन्थों को ब्रजभाषामिश्र होने के कारण हिन्दी न मानो तो 'विद्यासुन्दर' नाटक गुणों में अद्वितीय न होने पर भी द्वितीय है। पश्चिमोत्तर देश की मान्य गवर्नमेन्ट ने इसकी एक सौ पुस्तक लेकर इसका मान बढ़ाया है। पूर्व्व आवृत्ति का अत्यन्ताभाव ही इसकी पुनरावृत्ति का कारण है।

यह दूसरी आवृत्ति उसी को समर्पित है जिससे इस ग्रन्थ से त्रिपथगा घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रथम विद्या मानो उसकी द्वितीया सम्पत्ति है, द्वितीय एक देशी कथा भाग और तृतीय हमारा सम्बन्ध है।

हरिश्चन्द्र

काशी चैत्र 1939

विद्यासुन्दर

पहिला दृश्य

पहिला गर्भांक

स्थान–वर्द्धमान नगर का राज भवन[1]

[राजा और मन्त्री का प्रवेश]

राजा : (चिन्ता सहितं) यही तो बड़ा आश्चर्य है कि इतने राजपुत्र आए पर उनमें मनुष्य एक भी नहीं आया। इन सबों का केवल राजवंश में जन्म तो है पर वास्तव में ये पशु हैं। जो मैं ऐसा जानता तो अपनी कन्या को ऐसी कड़ी प्रतिज्ञा न करने देता, पर अब तो उसे मिटा भी नहीं सकता। अब निश्चय हुआ कि हमारी विद्या की विद्या केवल दोषकारिणी हो गई। हा! क्यौं मन्त्री तुम कोई उपाय सोच सकते हो?

मन्त्री : महाराज आप जो आज्ञा करते हैं सो सच है। लक्ष्मी और सरस्वती दोनों एक स्थान पर नहीं रहतीं, इस से ऐसा भाग्यशाली वर मिलना अत्यन्त कठिन है। इन दिनों मैंने सुना है कि कांचीपुर के राजा गुणसिन्धु का पुत्र सुन्दर युवराज, अत्यन्त सुन्दर, अनेक शास्त्रों में शिक्षित और बड़ा कवि है और अनेक पंडितों को शास्त्रार्थ में जीता है।

राजा : क्या गुणसिन्धु राजा को ऐसा गुणवान पुत्र हो और उसका समाचार हम अब तक न जानैं?

मन्त्री : महाराज मैंने निश्चय सुना है वह अपूर्व्व सुन्दर और अद्वितीय पंडित है। इस से मैं अनुमान करता हूं कि जिसने संसार की सब विद्या पाई है वही हमारी राजकुमारी विद्या को भी पावैगा। यद्यपि ईश्वर की इच्छा और होनहार अत्यन्त प्रबल है तथापि हमको निश्चिन्त

---

[1] दूसरी आवृत्ति में यह अंश नहीं है।

होके बैठे रहना उचित नहीं है। इस कहने का अभिप्राय यह है कि आप कांचीपुर में किसी को समाचार लेने के हेतु भेजिए।

राजा : ठीक है। तो विलम्ब क्यौं करते हो। शीघ्र ही वहां किसी को भेजना चाहिए। **(द्वार की ओर देख कर)** कोई है! गंगा भाट को अभी बुला लाओ।

[प्रतिहारी आकर]

प्रतिहारी : जो आज्ञा महाराज।

[जाता है]

राजा : **(खेद पूर्व्वक)** विद्यावती का केवल यह अदृष्ट है कि अब तक कहीं विवाह नहीं ठहरता। देखैं क्या होता है।

मन्त्री : महाराज आज तक कोई कन्या क्वांरी नहीं रही। सीता और द्रौपदी इत्यादि जिन के बड़े कठिन प्रण थे उनका तो विवाह हो ही गया। जब ईश्वर कन्या उत्पन्न करता है तो उसका वर भी उसी के साथ उत्पन्न कर देता है। अतएव आप को सोच करना न चाहिए।

[प्रतिहारी के सहित गंगा भाट का प्रवेश]

गंगा भाट : **वीरसिंह महाराज को, दिन दिन ही जय होय।**
तेज बुद्धि बल नित बढ़ै शत्रु रहै नहिं कोय॥

राजा : कविराज, अब तक तुम ने अनेक देशों में भ्रमण किया और अनेक राजपुत्रों को यहां ले आए परन्तु उनमें सुपात्र एक भी न आया। अब हम सुनते हैं कि कांचीपुर के राजा गुणसिन्धु के पुत्र सुन्दर ने अनेक विद्या उपार्जन की है। इस से हम सोचते हैं कि वही हमारी विद्या के योग्य भी होगा, इस से तुम वहां शीघ्र गमन करो और राजपुत्र को अपने संग ही लेते आओ तो अति उत्तम हो जिसमें विलम्ब न हो, क्यौंकि राजकन्या विवाह योग्य हो चुकी है।

भाट : महाराज, यह कौन बड़ी बात है। मैं अभी जाता हूं।

[जाता है]

राजा : **(मन्त्री से)** गुणसिन्धु राजा को एक पत्र भी देना उचित है। तुम यह सब वृत्तान्त इस रीति से लिख दो कि जिसमें हमारा सब कार्य्य सिद्ध हो जाय और गंगा भाट की यात्रा की सब वस्तु शीघ्र ही सिद्ध कर दो, जिसमें उसे विलम्ब न हो। अब बेला ढल चली, हम भी रनिवास को जाते हैं।

मन्त्री : जो आज्ञा।

[जवनिका गिरती है]

●

दूसरा गर्भांक

स्थान–वर्द्धमान नगर का उद्यान

[सुन्दर आता है]

सुन्दर : **(स्वगत)** वर्द्धमान की शोभा का वर्णन मैंने जैसा सुना था उस से कहीं बढ़कर पाया। आहा, कैसे सुन्दर सुन्दर घर बने हैं, कैसी चौड़ी चौड़ी सुन्दर स्वच्छ सड़कें हैं, वाणिज्य की कैसी वृद्धि हो रही है। दुकानें अनेक स्थान की अनेक प्रकार की सब वस्तुओं से पूर्ण हो रही हैं, सब लोग अपने अपने काम में लगे हुए हैं और बहुतेरे लोग नदी के प्रवाह की भांति इधर उधर दौड़ रहे हैं, स्थान स्थान पर पहरेदार लोग सावधानी से पहरे दे रहे हैं प्रजा लोग सुख से अपना कालक्षेप करते हैं। निश्चय यहां का राजा बड़ा भाग्यवान है। यद्यपि हमारे पिता की राजधानी भी अत्यन्त अपूर्व्व है परन्तु इस स्थान सा तो मुझे पृथ्वी में कोई स्थान ही नहीं दिखाई देता। इसका वर्द्धमान नाम बहुत ठीक है क्योंकि इसमें रूप और धन दोनों की वृद्धि है। **(हंस कर)** परन्तु हमारी अभिलाषा भी वर्द्धमान हो तो हम जानैं **(चारों ओर देख कर)** वाह, यह उद्यान भी कैसा मनोहर है, इसके सब वृक्ष कैसे फले फूले हैं और यह सरोवर कैसे निर्मल जल से भरा हुआ है मानो सब वृक्षों ने अपने अनेक रंग के फूलों की शोभा देखने को इस उद्यान के बीच में एक सुन्दर स्वर से बोल रहे हैं मानो पुकारते हैं कि इस से सुन्दर संसार में और कोई उद्यान नहीं है। आहा, कैसा मनोहर स्थान है। हम इस बकुल के कुंज में थोड़ा विश्राम करैंगे। **(बैठता है)** अहा, शरीर कैसा शीतल हो गया। निश्चय यह पौन **(सांस ले कर)** हमारी प्राणप्यारी त्रिभुवनमोहिनी विद्या का अंग स्पर्श करके आता है, नहीं तो ऐसी मधुर सुगन्ध इसमें न होती। **(कुछ सोच कर)** यह तो सब ठीक है परन्तु जिस काम के हेतु मैं यहां आया हूं उस का तो कुछ सोच ही नहीं किया। यहां मैं किसी को जानता भी नहीं कि उस से कुछ उपाय पूंछू क्योंकि मैं तो यहां छिपकर आया हूं।

[चिन्ता नाट्य करता है]

[एक चौकीदार आता है]

चौकीदार : **(स्वगत)** ई के हौ भाई, कोई परदेसी जान पड़ला। हमहन के कुछ घूस फूस देई की नाहीं। भला देखीं तो सही **(प्रकाश)** कौन है।

सुन्दर : हम एक परदेशी हैं।

चौकीदार : सो क्या हमैं नहीं सूझता पर कहां रहते हो?

सुन्दर : हमारा घर दक्षिण है।

चौकीदार : दक्षिण तो जमराज के घर तक सभी हैं। तुम किस दक्षिण में रहते हौ।

सुन्दर : सो नहीं, हमारा घर इतनी दूर नहीं है।

चौकीदार : तो फिर कहते क्यौं नहीं कि तुम्हारा घर कहां है।

सुन्दर : कांचीपुर।

चौकीदार : काशी, कांची जो सुनते हैं सोई कांची!

सुन्दर : काशी दूसरा नगर है कांची दूसरा। काशी कांची एक ही कैसी।

चौकीदार : तो फिर यहां क्यौं आए हौ?

सुन्दर : यहां विद्या प्राप्ति के अर्थ आए हैं।

चौकीदार : कौन विद्या?

सुन्दर : जो विद्या सब में प्रधान है।

चौकीदार : सब में प्रधान विद्या! सब में प्रधान विद्या तो चोरी है।

सुन्दर : **(मुसक्याकर)** तुम्हारे यहां यही विद्या प्रधान होगी।

चौकीदार : **(सोटा उठा कर पैंतरे से चलता हुआ)** हां रे, यही तो हमारा काम है कि जो इस विद्या के पंडित हों, उन्हें हम वैसा पुरस्कार दें।

सुन्दर : क्या पुरस्कार देता है?

चौकीदार : इस विद्या के पुरस्कार के हेतु एक यन्त्र बना है जिसका नाम काठतुडुमहर और चोरशत्रु है।

सुन्दर : कैसा है?

चौकीदार : दो बड़े बड़े काठ एकत्र करके चोर भाई का पांव उसके भीतर डाल देते हैं। **(सुन्दर का दाहिना पैर बल से खींच कर अपनी दोनों जांघ में रख कर दबाता है)** अब जब तक हमारी पूजा न दोगे तब तक न छूटौगे।

सुन्दर : **(चौकीदार को बल पूर्व्वक लात मारता है और चौकीदार पृथ्वी पर गिरता है)** लो तुम्हारी यही पूजा है।

चौकीदार : **(उठ कर)** हां हां बचा, अभी तुम को दूसरा पुरस्कार नहीं दिया। चार पांच कोड़े तुम्हारी पीठ पर लगैं तब जानो।

सुन्दर : बस अब बहुत भई, मुंह संभाल के बोलो नहीं तो एक मुक्का ऐसा मारूंगा कि पृथ्वी पर लोटने लगौगे और दक्षिण दिशा में यमराज के घर की ओर गमन करौगे। जिसके हेतु तुम इतना उपद्रव करते हो सो मैं जानता हूं, परन्तु धमकी दिखाने से तो मैं एक कौड़ी भी न दूंगा और तुम को भी परदेशियों से झगड़ा करना उचित नहीं है। **(कुछ देता है)** इसे लो और अपने घर चल दो।

चौकीदार : **(आनन्द से लेकर)** नहीं, नहीं, हमने आपको जाना नहीं। निस्सन्देह आप बड़े योग्य पुरुष हैं। हम आशीर्वाद देते हैं कि आप अनेक विद्या लाभ करैं, राजकुमारी विद्या भी आप को मिलै।

[हंसता हुआ जाता है]

सुन्दर : आज बहुत बचे, नहीं तो यह दुष्ट बहुत कुछ दुःख देता। जिस काम को चलो उस में पहिले अनेक प्रकार के विघ्न होते हैं। देखैं अब क्या होता है।

[पेड़ के नीचे बैठ जाता है]

[हीरा मालिन आती है]

हीरा मालिन : **(आश्चर्य से)** अरे यह कौन है। हाय हाय ऐसा सुन्दर रूप तो न कभी आंख़ों देखा न कानो सुना। इस की दोनों हाथ से बलैया लेने को जी चाहता है। लोग सच कहते हैं कि चन्द्रमा को सिंगार न चाहिए। हम को जान पड़ता है कि चन्द्रमा ही पृथ्वी पर उतर के बैठा है। क्या कामदेव इस रूप की बराबरी कर सकता है। ऐसी कौन स्त्री है जो इसको देख के धीरज धरैगी। हम सोचते हैं कि यह कोई परदेशी है क्योंकि इस नगर में ऐसा कोई नहीं है जिस को हीरा मालिन न जानती हो। हाय हाय, इसके मां बाप का कलेजा पत्थर का है कि ऐसे सुकुमार सुन्दर पुरुष को घर से निकलने दिया। निश्चय इस की स्त्री नहीं है, नहीं तो ऐसे पति को कभी न छोड़ती। जो कुछ हो एक बेर इस से पूछना तो अवश्य चाहिए। **(पास जा कर हंसती हुई)** क्यों जी, तुम कौन है। हम को तो कोई परदेशी जान पड़ते हौ।

सुन्दर : **(स्वगत)** अब यह कौन आई। **(प्रकाश)** हमारा घर दक्षिण है और विद्या को खोजते खोजते यहां तक आए हैं।

हीरा मालिन : उतरे कहां हौ?

सुन्दर : अभी कहां उतरे हैं, क्योंकि हम इस नगर में किसी को नहीं जानते। इसी हेतु अब तक उतरने का निश्चय नहीं किया और इसी वृक्ष की ठंडी छाया में विश्राम करते हैं और सोचते हैं कि अब कौन उपाय करैं। तुम कौन हो?

हीरा मालिन : हम राजा के यहां की मालिन हैं, हमारा नाम हीरा है। हमारा घर यहां से बहुत पास है। भैया, हमारा दुःख कुछ मत पूछो। **(पास बैठ जाती है)** हमारे दोनों कुल में कोई नहीं है, यमराज सब को तो ले गए पर न जानै हम को क्यों भूल गए। **(लम्बी सांस लेती है)** पर रानी और राजकुमारी हम पर बड़ी दया रखती हैं और उन्हीं

के पास जाकर हम अपना जी बहलाती हैं। अभी तो आप ने अपने रहने का निश्चय कहीं नहीं किया है। **(रुक कर)** हमैं कहने में लाज लगती है, क्यौंकि हमारे यहां बड़ी-बड़ी अटारी तो है नहीं, केवल एक झोपड़ी है जो आप दुःखिनी जानकर हम से बचना न चाहैं तो चलिये, हम सेवा में सब भांति लगी रहेंगी।

सुन्दर : **(स्वगत)** तो इस में हमारी क्या हानि, जो रहने का ठिकाना होगा तो काम का भी ठिकाना हो रहेगा क्यौंकि यह रात दिन रनिवास में आती जाती है इस से वहां के सब समाचार मिलते रहैंगे और ऐसे कामों में जहां अच्छा बिचवई मिला तहां उस के सिद्ध होने में विलम्ब नहीं होता। **(प्रकाश)** अब इस से बढ़कर हमारा क्या उपकार होगा कि इस परदेश में हम को आप से आप रहने को घर मिलै। तुमने हम पर बड़ी कृपा की। आज से तुम हमारी मौसी और हम तुम्हारे भांजे हुये।

हीरा मालिन : यह हमारे भाग्य की बात है कि आप ऐसे कहते हौ और यों तो आप हमारे बाप के भी अन्नदाता हो। दया करके जो चाहो पुकारो। तो हम आज से तुम को बेटा कहैंगे। **(स्वगत)** हाय हाय, इस का मुख कैसा सूख गया है। **(प्रकाश)** तो अब बेटा, अपने घर चलो, हमारा जो कुछ है सो सब तुम्हारा है।

सुन्दर : हां चलो।

[जवनिका गिरती है]

●

तीसरा गर्भांक

स्थान–हीरा मालिन का घर

[सुन्दर और हीरा मालिन आती है]

सुन्दर : रनिवास का समाचार मैंने सब सुना। तो मौसी, राजा को क्या केवल एक ही कन्या है।

हीरा मालिन : हां, बेटा, केवल एक ही कन्या है पर वह कुछ सामान्य कन्या नहीं है, मानो कोई देवता की कन्या श्राप से पृथ्वी पर जनमी है और राजा रानी दोनों उस को वैसा ही प्यार भी करते हैं। घर में सबसे विशेष उनको वही प्यारी है। यहां तक कि उस को प्राण से भी अधिक समझते हैं।

सुन्दर : भला मौसी, वह राजकन्या कैसी है?

हीरा मालिन : बेटा, उसकी कथा कोई एक मुंह से नहीं कह सकता।

[गाती है]

[राग सोरठ तिताला]

कहो यह कैसे बरनै रूप।
नख सिख सों सब ही बिधि सुन्दर शोभा अतिहि अनुप॥1॥
नैन धरे को कौन सुफल जो नैन न देख्यौं वाहि।
कोटि चन्द हू लाज करत हैं तनिक बिलोकत जाहि॥2॥

घुंघरारे सटकारै कारे बिथुरे सुथरे केस।
एड़ी लौं लांबे अति सोभित नव जलधर के भेस॥3॥
लचकीली कटि अतिहि पातरी चालत झोंका खाय।
अति सुकुमार सकल अंग वाके कवि सो नहिं कहि जाय॥4॥
दिन दिन जोबन बढ़त उमग अति पूरि रहे सब गात।
लाज भरी चितवन चित चोरति जब मुसुकाइ जंभात॥5॥
तरुनाई अंगराई अंग अंग नैन रहत ललचाय।
मनु जग जुवजन जीतन एकहि बिधिना रची बनाय॥6॥

हां बेटा हम उसका क्या वर्णन करैं, क्यौंकि वह शोभा देखते ही बन आती है, कुछ कही नहीं जाती। उसकी प्रतिज्ञा तो तुम ने सुनी ही होगी, अब अधिक क्या कहैं।

सुन्दर : हां मौसी, यह सब बात तो हम जानते हैं पर हम चाहते हैं कि एक बेर राजसभा में जाकर विद्या के विद्या की परीक्षा करैं। जो जीत गये तो सकाम सिद्ध भया और जो हार गये तो कुछ लाज नहीं क्यौंकि हमैं इस नगर में कोई पहिचानता नहीं। भला एक दिन मौसी, हमारे हाथ की गूंथी माला तू वहां ले जा सकती है।

हीरा मालिन : (हंस कर) वाह बेटा, तुम क्या माला बनाना भी जानते हो। तुम लोगों का तो यह काम नहीं है। क्या माला गूंथकर राजकन्या के गले का हार हुआ चाहते हो?

सुन्दर : नहीं मौसी, हम केवल एक प्रकार की माला गूंथना जानते हैं जिसे तुम देख लेना! जो अच्छी बनै तो राजकन्या के पास ले जाना।

हीरा मालिन : (हंस कर) अच्छा, कल तुम माला गूंथना, देखैं, कैसी बनती है। अब रात बहुत गई उठो और कुछ भोजन करके सो रहो।

[जवनिका गिरती है]

●

चौथा गर्भांक

स्थान–विद्या का मन्दिर

[विद्या बैठी हुई है; डाली हाथ में लिये हीरा मालिन आती है]

हीरा मालिन : **(हंस कर)** राजकुमारी कहां हैं? **(सामने देख कर)** अहा, यहां बैठी हैं आज मुझ को इस माला के गूंथने में बड़ी देर लगी, इससे मैं दौड़ी आती हूं। यह माला लीजिए और आज का अपराध क्षमा कीजिए।

विद्या : चल, बहुत बातैं न बना। जो रात भर चैन करैगी तो सबेरे जल्दी कैसे आ सकेगी। तेरा शरीर बूढ़ा हो गया है पर चित्त अभी बारह ही बरस का है। इतना दिन आया अब तब मैंने पूजा नहीं किया। पर तुझे क्या? तू तो अपने रंग में रंगी रही है। मेरी पूजा हो या न हो।

हीरा मालिन : वाह वाह! बाल पके दांत टूटे पर अभी हम बारह ही बरस की बनी हैं। आप धन्य हैं, हमने तो आज बड़े परिश्रम से माला गूंथी कि राजकुमारी उसको देख कर अत्यन्त प्रसन्न होंगी। उसके बदले आप ने हम को गाली दिया। सच्च है, अभागे को कहीं भी सुख नहीं है। अब हमने अपना कान पकड़ा। अबकी बार क्षमा कीजिये ऐसा अपराध फिर कभी न होगा। यह माला लीजिए।

विद्या : **(माला हाथ में लेती है)** आज तो माला बड़ी सुन्दर है! **(पत्ते की पुड़िया में फूल के धनुष बाण देख कर)** क्यौं रे, इसमें यह फूल के धनुष बाण कहां से आए? क्या तू हमसे ठठोली करती है। सच्च बतला, यह माला किसने बनाई है?

हीरा मालिन : मेरे बिना कौन बनावैगा।

विद्या : नहीं नहीं, तू तो नित्य ही बनाती थी पर ऐसी माला तो किसी दिन नहीं बनी। आज निश्चय किसी दूसरे ने बनाई है।

हीरा मालिन : मैं तो एक बेर कह चुकी कि हमारे घर में दस बीस देवर जेठ तो बैठे नहीं हैं कि बना देंगे। **(आकाश देख कर)** अब सांझ होती है हम को आज्ञा दो!

विद्या : वाह वाह! आज तो आप मारे अभिमान के फूली जाती हैं। ऐसा घर पर कौन बैठा है जिस के हेतु इतनी घबड़ाती है। बैठ तुझे मेरी सौगन्द है। बता यह माला किसने बनाई है।

[मालिन का अंचरा पकड़ के खींचती है]

हीरा मालिन : नहीं भाई नहीं, मैं कुछ न कहूंगी। जड़ काट के पल्लव सींचने से क्या होगा। बैठे बैठाये दुःख कौन मोल ले क्यौंकि प्रीत करनी तो सहज है पर निबाहना कठिन है। इस हेतु इस से दूर ही रहना उचित है।

विद्या : वाह वाह! तू बड़ा हठ करती है। एक छोटी सी बात मैंने पूछी सो नहीं बताती। क्या मुझसे भी छिपाने की कोई बात है जो नहीं बतलाती।

हीरा मालिन : मैं तो तुम्हारे लिए प्राण देती हूं और भगवान से नित्य मनाती हूं

कि हमारी राजकुमारी को सुन्दर वर मिलै जिसे देख देख के मैं अपनी आंख ठंडी करूं और आप उसके बदले मुझ पर क्रोध करती हो। इसी के जतन में तो मैं रात दिन लगी रहती हूं।

विद्या : तो खुलकर क्यों नहीं कहती? आधी बात कहती है आधी नहीं कहती व्यर्थ देर करती है।

हीरा मालिन : सुनिये, दक्षिण देश के कांचीपुर के गुणसिन्धु राजा का नाम आपने सुना ही होगा। उसका पुत्र सुन्दर जिसे ले आने के हेतु राजा ने गंगा भाट को भेजा था। यहां आप ही आया है।

विद्या : (घबड़ा कर) कहां कहां? **(फिर कुछ लज्जित हो कर)** नहीं! क्या वह सचमुच यहां आया है।

हीरा मालिन : (हंस कर) मैं उसको बड़े यत्न से लाई हूं क्योंकि मैं सर्व्वदा खोजा करती थी कि मेरी बेटी को दूल्हा चांद का टुकड़ा मिलै तो मैं सुखी होऊं सो मैंने कहीं से खोज कर उसे अपने घर में रक्खा है पर यहां तो वही दशा है जाके हित चोरी करो सोई बनावे चोर।

विद्या : तो फिर वे छिप के क्यों आए हैं?

हीरा मालिन : आप की प्रतिज्ञा तो संसार में सब पर दिदित ही है। सो प्रत्यक्ष वाद करने में जो कोई हारे तो प्रेम भंग होय और परस्पर संकोच लगे इस हेतु छिप के आए हैं।

विद्या : उनका रूप कैसा है?

हीरा मालिन : उनका रूप वर्णन के बाहर है।

[गाती है]

[राग बिहाग]

कहे को चन्द बदन की शोभा।
जाको देखत नगर नारि को सहजहि तें मन लोभा॥
मनु चंदा आकाश छोड़ि के भूमि लखन को आयो।
कैंधौं काम बाम के कारन अपुनो रूप छिपायो॥
भौंह कमान कटाक्ष बान से अलक भ्रमर घुंघुरारे।
देखत ही बेधत है मन मृग नहिं बचि सकत विचारे॥

विद्या : तो भला उनको एक बेर किसी उपाय से देख भी सकती हैं?

हीरा मालिन : वाह वाह, यह तुमने अच्छी कही। पहिले राजा रानी से कहैं वह देख सुन के जांच लें तो पीछे तुम देखना।

विद्या : नहीं, ऐसा न होने पावै, पहिले मैं देख लूं तब और कोई देखै।

हीरा मालिन : मैं कैसे पहिले तुम्हें दिखला दूं, यह राजा का घर है। चारों ओर चौकी पहरा रहता है। यहां मक्खी तो आ ही नहीं सकती, भला वह कैसे आ सकते हैं? जो कोई जान जायगा तो क्या होगा?

विद्या : सो मैं कुछ नहीं जानती जैसे चाहो वैसे एक बेर मुझ को उन का दर्शन करा दो। तू आप चतुर है, कोई न कोई उपाय सोच लेना और जो तू मेरा मनोरथ पूरा करैगी तो मैं भी तेरा मनोरथ पूरा कर दूंगी।

हीरा मालिन : यह तो मैं भी समझती हूं तो मैं सोचती हूं कि किस रीति से उसे ले आऊं, हां एक उपाय यह तो है कि वह इस वृक्ष के नीचे ठहरे और तुम अपनी अटारी पर से देख लो।

विद्या : हां ठीक है, यह उपाय बहुत अच्छा है। पर कब? आज या कल?

हीरा मालिन : कल उन को लाऊंगी **(हंस कर)** एक बात मैं कहे देती हूं कि उन को एक बेर देख के फिर भूल न जाना।

विद्या : भूल जाऊंगी—हाय!

[गाती है]

[ठुमरी]

मेरे तन अति बाढ़ी बिरहपीर अब नहिं सहि जाई हो
अब कोउ उपाय मोहि नहिं लखाय,
दुःख कासों कहौं कछु कहि न जाय,
मन हीं में विरह की अगिनि बरै घूआं न दिखाई हो॥
दईमारी लाज बैरिन सी आज,
कहो आवत मेरे कौन काज,
पिय बिन मेरो जियरा तड़पे कछु नाहिं बसाई हो ॥

[राग विहाग]

चढावत मो पैं काम कमान।
बेधत है जिय मारि मारि कै तानि श्रवन लगि बान॥
पिया बिना निसिदिन डरपावत मोहि अकेली जान।
तुमरे बिन को धीर धरावै पीतम चतुर सुजान॥1॥

हीरा मालिन : **(हंस कर)** वाह वाह, यह अनुराग हम नहीं जानती थी।

[गाती है राग कलिंगड़ा]

अहो तुम सोच करो मति प्यारी।
तुम्हरो प्रीतम तुमहिं मिलैहैं करि अनेक उपचारी॥
अति कुम्हिलाने कमल बदन को प्रफुल्लित करिहौं वारी
चन्दहि जौ चाहे तौ लाऊं यह तो बात कहारी॥

विद्या : तो मैं आज संध्या के बाद छत पर उसकी आश देखूंगी।

[जवनिका गिरती है]

प्रथम अंक समाप्त हुआ

●

दूसरा दृश्य

पहिला गर्भांक

[स्थान–विद्या का महल]

[विद्या बैठी है और चपला पंखा हांकती है और सुलोचना पान का डब्बा लिए खड़ी है]

सुलोचना : (बीड़ा दे कर) राजकुमारी, एक बात पूछूं पर जो बताओ।

विद्या : क्यौं सखी, क्यौं नहीं पूछती? मेरी ऐसी कौन सी बात है जो तुम लोगों से छिपी है?

सुलोचना : और कुछ नहीं मुझे केवल इतना पूछना है कि कई दिन से तुम्हारी ऐसी दशा क्यौं हो रही है? सर्व्वदा अनमनी सी बनी रहती हो, और खान पान सब छूट गया है, और दिन दिन शरीर गिरा पड़ता है। रात दिन मुंह सूखा रहता है। इसका कारण क्या है?

[विद्या मुंह नीचा कर लाज से चुप रह जाती है]

सुलोचना : (बीड़ा दे कर) यह तो मैं पहिले ही जानती थी कि तुम न कहोगी।

विद्या : नहीं सखी, मैं क्यौं न कहूंगी पर तू क्या उसका कारण अब तक नहीं जानती?

सुलोचना : जो जानती तो क्यौं पूछती?

विद्या : हीरा मालिन जो उस दिन माला लाई थी। वह क्या तूने नहीं देखी थी?

सुलोचना : हां देखी तो थी, तो उस से क्या?

विद्या : और उस दिन छत पर से मैं जिसे वृक्ष तले देखने गई थी उसे तूने नहीं देखा था।

सुलोचना : हां सो सब जानती हूं।

विद्या : तो अब नहीं क्या जानती?

सुलोचना : तो फिर उस में इतना सोच विचार क्यौं चाहिये। केवल एक बेर बड़ी रानीजी से कहने से सब काम सिद्ध हो जायगा।

चपला : वाह वाह! क्या इसी बात का इतना सोच विचार था, तो मैं अभी जाती हूं।

[जाना चाहती है]

विद्या : नहीं नहीं, ऐसा काम कभी न करना, नहीं तो सब बात बिगड़ जायगी।

चपला : क्यौं इसमें दोष क्या है?

सुलोचना : और फिर यह न होगा तो होगा क्या?

विद्या : सखी, मेरी प्रतिज्ञा ने सब बात बिगाड़ रक्खी है।

चपला : क्यौं?

विद्या : मां से कह देने से फिर उनके संग विचार करना पड़ैगा, और उसमें जो मैं जीती तो भी अनुचित है, क्यौंकि मैं अपना प्राण धन सब उन से हार चुकी हूं और फिर उन से विवाह भी कैसे होगा? और वह जीते तो इस बात का लोगों को निश्चय कैसे होगा कि गुणसिन्धु राजा के पुत्र यही हैं और निश्चय बिना तो विवाह भी नहीं हो सकता। इस से मेरा जी दुबिधे में पड़ा है और जिस दिन से मैंने उन्हें देखा है उस दिन से अपने आपे में नहीं हूं क्यौंकि उस मनमोहन रूप को देखकर मैं कुल और लाज दोनों छोड़ चुकी हूं और उस विषय में जो जो उमंग उठती हैं वह कहने के बाहर हैं और सखियो! तुम लोग भी तो स्त्री हो; अपने ऐसा जी सब का समझो। हाय, मुझे कोई उपाय नहीं दिखाता।

[गाती है]

[राग सोरठ]

सखी, हम कहा करै कित जायं?
बिनु देखे वह मोहिनि मूरति नैना नाहिं अघाय।।1।।
कछु न सुहात धाम धन गृह सुख मात पिता परिवार।
बसति एक हिय मैं उनकी छवि नैनन वही निहार।।2।।
बैठत उठत सयन सोवत निसि चलत फिरत सब ठौर।
नैनन तें वह रूप रसीलो टरत न इक पल और।।3।।
हमरे तो तन मन धन प्यारे मन बच क्रम चित माहिं।
पै उनके मन की गति सजनी जानि परत कछु नाहिं।।4।।
सुमिरन वही ध्यान उनको ही मुख मैं उनको नाम।
दूजी और नाहिं गति मेरी बिनु पिय और न काम।।5।।
नैना दरसन बिनु नित तलफैं, बोल सुनन कों कान।
बात करन कों मुख तलफैं, गर मिलिबे को ये प्रान।।6।।

सुलोचना : हां इन बातों को तो मैं समझती हूं पर कर क्या सकती हूं क्यौंकि कोई उपाय नहीं दिखता। हम तो तेरे दुःख से दुखी और तेरे सुख से सुखी हैं, जो किसी उपाय से यह सुख होय तो हम सब अपने

शरीर बेचकर भी उसे कर सकती हैं, परन्तु यह ऐसी कठिन बात है कि इसका उपाय ही नहीं है।

चपला : इस में क्या सन्देह, आज दिन राजा के प्रताप से सब देश थर थर कांपता है और द्वारों पर चौकीदार यमदूत की भांति खड़े रहते हैं, तब फिर ऐसी भयानक बात कैसे हो सकती है।

विद्या : **(लम्बी सांस ले कर)** हाय सखी! अब मैं क्या करूंगी! जो शीघ्र ही कोई उपाय न होगा तो प्राण कैसे बचेंगे? यह प्रीत दइमारी बड़ी दुखद होती है।

[गाती है]

[राग बिहाग]

बावरी प्रीति करौ मति कोय।
प्रीति किये कौने सुख पायो मोहिं सुनाओ सोय॥1॥
प्रीति कियो गोपिन माधव सों लोक लाज भय खोय।
उनको छांड़ि गये मथुरा को बैठि रही सब रोय॥2॥
प्रीति पतंग करत दीपक सों सुन्दरता कह जोय।
सो उलटो तेहि दाह करत है पच्छ नसावत दोय॥3॥
जानि बूझि कै प्रीति करी हम कुल मरजादा धोय।
अब तो प्रीतम रंग रंगी मैं होनी होय सो होय॥4॥

हीरा मालिन ने हम को वचन तो दिया है कि किसी भांति उसे एक बेर तुझ से मिला दूंगी पर देखूं अब वह क्या उपाय करती है।

[एक सुरंग का मुंह खुलता है और उस में से सुन्दर निकलता है। सब सखी घबड़ा कर एक दूसरी का मुंह देखती हैं और विद्या लाज से मुंह नीचे कर लेती है]

चपला : अरे! यह कौन है और कहां चला आता है!

सुलोचना : सोई तो मैं घबड़ाती हूं कि यह कौन है और कहां से आता है, अब मैं चोर चोर कहकर पुकारती हूं जिस में सब चौकीदार लोग दौड़कर हम लोगों को बचावें।

विद्या : **(हाथ से पुकारने का निषेध करके धीरे से)** नहीं नहीं, मैं समझती हूं कि यह चोर नहीं है, मेरा चितचोर है। कोई जाकर उससे पूछो।

चपला : भला देखो मेरी छाती कैसी धड़कती है! इस से मैं तो नहीं पूछने की **(सुलोचना से)** सुलोचना, तू जा कर पूछ आ, यह कौन हैं।

सुलोचना : **(सुन्दर से)** तुम कौन हो और बिराने घर में क्यों घुस आये हो। सच बतलाओ क्योंकि हम लोगों का डर से कलेजा कांपता है, इस से कहो कि तुम देवता हो, या दानव हो या मनुष्य हो?

सुन्दर : **(मुसुका कर)** नहीं सखी, डरने का क्या काम है? न मैं देवता हूं न दानव। मैं तो साधारण मनुष्य हूं, और कांचीपुर के महाराज गुणसिन्धु का पुत्र हूं, और मेरा नाम सुन्दर है, भांट के मुख से तुम्हारी राजकन्या के विचार का समाचार सुन के यहां आया हूं परन्तु विचार तो दूर रहा तुम्हारी सभा में अविचार बहुत है।

चपला : **(धीरे से)** सखी यह तो वही है।

सुलोचना : क्यौं? हमारी सभा में अविचार कौन सा है?

सुन्दर : और अविचार किस को कहते हैं? जो कोई परदेशी अतिथि आवै तो न तो उसका आदर होता है और न कोई उसे बैठने को कहता है।

[विद्या संकेत से चपला से बैठाने को कहती है और सुन्दर बैठता है, और विद्या लाज से वस्त्र से अपना सब शरीर ढांक लेती है]

सुन्दर : **(सुलोचना से)** सखी, विद्यावती के गुण की मैं जैसी प्रशंसा सुनी थी उससे भी अधिक आश्चर्य गुण देखने में आये।

सुलोचना : ऐसे आपने कौन आश्चर्य गुण देखे?

सुन्दर : जाल में चन्द्रमा को फंसाना, बिजली को मेघ में छिपाना, और वस्त्र से कमल की सुगन्धि को मिटाना, यह सब बात तुम्हारी राजकन्या कर सकती हैं।

सुलोचना : **(हंस कर)** यह आप कैसी बातें कहते हैं? क्या ये बातें हो सकती हैं।

सुन्दर : जो नहीं हो सकतीं तो तुम्हारी राजकन्या ने अंचल से मुख क्यौं छिपा लिया?

सुलोचना : **(हंस कर)** आप बड़े सुरसिक और पंडित हैं। इस से मैं आप की बात का उत्तर नहीं दे सकती, ''दीपक से रवि के उदय की बात न पूछै कोय''। पर हां जो लज्जा न करती तो हमारी सखी कुछ उत्तर देती।

सुन्दर : **(हंस कर)** तो आज तुम्हारी राजकन्या हम से हार गई।

सुलोचना : क्यौं? हार क्यौं गई?

सुन्दर : और हारनेवाले के माथे क्या सींग होती है? मुझे देखकर लाज के मारे वह कुछ उत्तर नहीं दे सकती। इसी से हार गई।

सुलोचना : **(हंस कर)** आप को सब कहना शोभा देता है।

विद्या : **(सखी से)** सुलोचने, तुझे कुछ उत्तर देने नहीं आता। तू क्यौं नहीं कहती कि हमारी विद्यावती ने विद्या के विचार का प्रण किया था, कुछ चोरी विद्या के विचार का प्रण नहीं किया था। आप सेंध देकर घुस आये और अब बातें बनाते हैं।

R
0 ८२
सिंह-भ

सुन्दर : (हंस के) हां इस देश के [redacted] हमीं चोर बनाये जाते हैं। मैंने क्या अपराध किया था कि उस दिन वृक्ष के नीचे घंटों खड़ा किया गया और तुम्हारी राजकुमारी ने हमारा तन, मन, धन सब लूट लिया। अब कहो—पहिले चोरी का आरम्भ किसने किया? वही बात भई कि 'उलटा चोर कोतवाल को डाटै'।

विद्या : और सुनो! यह चोर नहीं है बड़े साधू हैं। सच है साधू न होते तो सेंध देने की विद्या कहां सीखते! यह कर्म्म साधुओं ही के तो हैं—सखियों! आज तुमने बड़े महात्मा का दर्शन किया। निश्चय तुम्हारे सब पाप कट गये क्यौंकि शंख बजानेवाले साधू तो बहुत देखे थे पर सेंध लगानेवाले आज ही देखने में आये।

सुन्दर : **(हंस कर)** इस में क्या सन्देह है, सखियों! तुम परीक्षा कर लो कि हम में सब साधुओं के लक्षण हैं कि नहीं? देखौ मैं अपने चोर को ढूंढ़ता-ढूंढ़ता यहां तक आया और उसे पाकर उस को पकड़ने और धन फेर लेने के बदले और भी जो कुछ मेरे पास बच गया है, भेंट किया चाहता हूं, परन्तु जो यह लें।

विद्या : **(धीरे से)** दीजिए।

सुन्दर : **(प्रसन्न होकर)** सखियो, तुम साक्षी रहना, मन और प्राण तो इन्होंने चोरी करके ले लिये, एक देह बच गई है इसे मैं अपनी ओर से अर्पण करता हूं **(विद्या से)** प्यारी, मैं यहां केवल इसी हेतु आया था तो तुम ने मुझे अपना कर लिया है, अब इसका निबाह करना।

[हाथ बढ़ाता है]

विद्या : **(लाज से)** यह मैंने कब कहा था?

सुलोचना : **(विद्या से हंस कर)** सखी, अब तेरी ये बातें न चलेंगी आज के विचार मैं तो तू हार गई।

चपला : इस में क्या सन्देह है, यहां न्याय के विचार का क्या काम है। जो रस के विचार में जीतै सो जीता क्यौंकि न्याय का विचार करके स्त्री को जीतना यह भी एक अविचार है।

सुलोचना : **(हंस कर विद्या से)** सखी, अब विलम्ब क्यों करती है क्यौंकि राजपुत्र तुझे अपना शरीर समर्पण करके पाणिग्रहण के हेतु हाथ फैलाये हुए हैं। इस से या तो तुम उसकी बनो या उसे अपना करो, क्यौंकि आज से हम उनमें और तुममें कुछ भेद नहीं समझती और हस्तकमल के संग अपना हृदयकमल भी राजपुत्र के अर्पण करौ क्योंकि अच्छे काम में विलम्ब न करना चाहिए।

सुन्दर : **(प्रसन्नता से विद्या का हाथ अपने हाथ में लेकर)** अहाहा, ऐसा भी कोई दिन होगा!

सुलोचना : अब होने में विलम्ब क्या है? परन्तु मैं यह विनती करती हूं कि हमारी राजकुमारी अत्यन्त सीधी और सच्ची हैं, क्योंकि इसने पहिले ही जान पहिचान में आप का विश्वास करके अपना तन, मन, धन आप को अर्पण किया, परन्तु आप सुरसिक और पंडित हैं इस से इस धन की रक्षा का कोई उपाय कीजियेगा **(फूल की माला से दोनों का हाथ बांधती है)** हम भगवान् से प्रार्थना करती हैं कि तुम दोनों सर्व्वदा इसी फूल की माला की भांति आपुस में प्रेम के डोरे में बंधे रहो।

सुन्दर : सखी, हम भी हृदय से एवमस्तु कहते हैं।

चपला : राजनन्दिनी तो इस समय कुछ कहने ही की नहीं, पर मैं उसकी ओर से कहती हूं कि ऐसा ही हो।

सुलोचना : ऐसी नई बहू की प्रतिनिधि कौन नहीं होना चाहती?

चपला : चल, तुझे तो ऐसी ही बातें सूझती है।

सुलोचना : अब नये दुलहे-दुलहिन को दूर दूर बैठना उचित नहीं है, इस से कृपा करके दोनों एक पास बैठो जिसे देखकर हमारी आंखैं सुखी हों।

सुन्दर : **(हंस कर के)** ठीक है।

[विद्या के पास बैठता है और विद्या कटाक्ष से देखती है]

सुलोचना : **(हंस कर)** सखी, सब बातें हो चुकीं तो अब गान्धर्व विवाह की कुछ रीतैं बची क्यौं जाती हैं? और हमारी आज्ञापालन करने में तुझे क्या लज्जा है। अब तुम दोनों माला का अदला बदला करो जिसे देखकर हम सुखी हों।

[सुन्दर के यत्न से दोनों परस्पर माला बदलते हैं और सखी लोग आनन्द ले ताली बजाती हैं]

विद्या : **(मन ही मन)** विधाता, क्या सचमुच आज ऐसा दिन हुआ है, कि मैं सपना देखती हूं? नहीं, यह सपना है।

चपला : हमारे नेत्र आज सुफल हुये।

सुलोचना : **(आनन्द से गाती है)।**

आजु अति मोहि अनंद भयो।
बहुत दिवस की इच्छा पूरी सब दुःख दूर गयो॥
यह सोहाग की राति रसीली सब मिलि मंगल गाओ।
जनम लिये को आज मिल्यौ फल अंखियां निरखि सिराओ॥
दिन दिन प्रेम बढ़ो दोउन को सब अति ही सुख पावैं।
चिरजीवो दुलहा अरु दुलहिन दोउ कर जोरि मनावैं॥

सुन्दर : अहाहा! कैसा मधुर गीत है, सखी, जो तुझे कष्ट न हो तो एक गीत और गा।

सुलोचना : वाह, ऐसे आनन्द के समय में मैं और गीत न गाऊं, उस में नये जमाई की पहिली आज्ञा न माननी तो सर्व्वथा अनुचित है।

चपला : सखी, हमारी राजनन्दिनी ने उस दिन जो गीत बनाई थी सो क्यौं नहीं गाती? क्यौंकि नये व उस गीत से निश्चय बड़े प्रसन्न होंगे।

[विद्या आंखों से निषेध करती है]

सुलोचना : हां सखी, बहुत ठीक कहा। **(विद्या से)** क्यौं सखी, इस में दोष क्या है? तू क्यौं निषेध करती है? अब तो मैं निश्चय वही गीत गाऊंगी।

[चपला ताल देती है और सुलोचना गाती है]

[राग देस]

जहां पिय तहीं सबै सुख साज।
बिनु पिय जीवन व्यर्थ सखी री यद्यपि सबै समाज॥
जो अपुनो पीतम संग नाहीं सुरपुर कौने काज।
निरजन बनहू मैं पीतम के संग सुरपुर को राज॥

सुन्दर : वाह वाह, बहुत अच्छा गीत गाया, जैसे मेरे कान में अमृत की धारा की वर्षा हुई। सखी, सुरपुर सुख आज मुझे यथार्थ अनुभव होता है।

सुलोचना : **(हंस कर)** क्या मेरे गाने से! जो हो अब रात बहुत गई और नई बहू के मिलाप में पहिले ही दिन बहुत विलम्ब करना योग्य नहीं।

सुन्दर : हां सखी, अब जाता हूं **(अंगूठी उतारकर दोनों सखियों को देता है)** यह हमारे सन्तोष का चिह्न सर्व्वदा अपने पास रखना।

सुलोचना : **(लेती है)** यद्यपि यह अंगूठी सहज ही बहुमूल्य है परन्तु आप के सन्तोष का चिह्न होने से और भी अमूल्य हो गई और इसे हम सर्व्वदा बड़े प्यार से अपने पास रखैंगी।

चन्द्रावली : आप की प्रसादी फूल भी हमें रत्न के समान है।

सुलोचना : तो अब उठिए।

सुन्दर : तुम आगे चलो, हम लोग भी आते हैं।

सुलोचना : **(उठ कर)** इधर से आइये।

[सुलोचना और चपला आगे आगे, उनके पीछे विद्या का हाथ पकड़े हुए सुन्दर चलता है और जवनिका गिरती है]

●

दूसरा गर्भांक

स्थान–विद्या का मन्दिर

[विद्या और मालिन बैठी हैं]

विद्या : कहो, उन के लाने का क्या किया? लम्बी चौड़ी बातें ही बनाने आती है कि कछु करना भी आता है?

मालिन : भला इस में मेरा क्या दोष है? मैंने तो पहिले ही कहा था कि यह काम छिपाकर न होगा, जब मैंने कहा कि मैं रानी से कहूं तौ भी तुमने मना किया और उलटा दोष भी मुझी को देती हो, उस दिन तुमने कहा कि उनसे कहो वे कोई उपाय आप सोच लेंगे। उसका उनने यह उत्तर दिया कि 'मौसी मैं परदेशी हूं इस नगर की सब बातें नहीं जानता और राजा के घर में चोरी से घुसकर बच जाना भी साधारण कर्म्म नहीं है। जब तुम्हीं कोई उपाय नहीं सोच सकती तो मैं क्या सोचूंगा और मुझे मनुष्यों का कुछ भरोसा नहीं है, इससे में अब दैवकर्म्म करूंगा, सो तू घर में एक अग्नि का कुंड बना दे और रात भर मेरा पहरा दिया कर'। वे तो यौं कहते हैं पर देखूं उनका देवता कब सिद्ध होता है–भला वह तो चाहे जब हो एक नई बात और सुनने में आई है जिस से जी में तो रुलाई आती है और ऊपर हंसी आती है?

विद्या : क्या कोई और भी बात सुनने में आई है?

हीरा मालिन : हां, मैंने सुना है कि राजसभा में कोई संन्यासी आया है।

विद्या : तो फिर क्या?

हीरा मालिन : मैं सुनती हूं कि वह विचार में सब सभा को तो जीत चुका है और अब कहता है मैं राजकुमारी से शास्त्रार्थ करूंगा।

विद्या : ऐसा कभी हो सकता है कि में संन्यासी से विचार करूं।

हीरा मालिन : क्यौं नहीं, क्या प्रण करने के समय तुमने यह प्रतिज्ञा थोड़ी ही की थी कि संन्यासी को छोड़कर मैं प्रण करती हूं, अब तो जैसा राजकुंवर वैसा ही संन्यासी।

विद्या : तो मैं तो उस से विचार नहीं करने की।

हीरा मालिन : अब नहीं करने से क्या होता है विचार तो करना ही होगा। और फिर इस में दोष क्या है, जैसा तुम्हारा दिव्य राजा के कुल में जन्म है वैसा ही दिव्य संन्यासी वर मिल जायगा। मैंने तो चन्द्रमा का टुकड़ा वर खोज दिया था पर तू कहती है कि रानी से उसका समाचार ही मत कहो, तो अब मैं कौन उपाय करूं–अच्छा है जैसी तुम्हारी

चोटी है कुछ उससे भी लम्बी उस की डाढ़ी है, सिर पर बड़ा भारी जटा है और सब अंग में भभूत लगाये है, ऐसे जोगी नित्य नित्य नहीं आते—अहाहा, कैसा अद्‌भुत रूप है!

[गाती है]

[राग देस]

अरे यह जोगी सब मन मानै।
लम्बी जटा रंगीले नैना जन्त्र मन्त्र सब जानै॥
कामदेव मनु काम छोड़ि के जोगी स्वै बौरानै।
या जोगिया की मैं बलिहारी जग जोगिन कियो जानै॥

ऐसा रसिक जोगी वर मिलता है अब और क्या चाहिए?

विद्या : चल तू भी चूल्हे में जा और जोगी भी।

हीरा मालिन : ऐसा कभी न कहना, मैं भले चूल्हे में जाऊं पर संन्यासी बिचारा क्यौं चूल्हे में जायगा? भला यह तो हुआ पर अब मैं यह पूछती हूं कि एक भले मानस के लड़के को मैंने आस देकर घर में बैठा रक्खा है, उस की क्या दशा होगी और मैं उस से क्या उत्तर दूंगी क्यौंकि तुम तो महादेवजी की सेवा में जाओगी पर वह बिचारा क्या करैगा—और क्या होगा। तुम संन्यासी का लेकर आनन्द करना और वह बिचारा आप संन्यासी हो कर हाथ में डंड कमंडल लेकर तुम्हारे नाम भीख मांग खायगा।

विद्या : चल लुच्ची! ऐसी दशा शत्रु की होय! मैं तो उसे उसी दिन वर चुकी जिस दिन उस का आगमन सुना और उसी दिन उसे तन, मन, धन दे चुकी जिस दिन उस का दर्शन किया, इस से अब प्राण कहां रहा? और विचार का क्या काम है?

हीरा मालिन : पर मन के लड्डू खाने से तो काम नहीं चलैगा क्यौंकि मन से हमने इन्द्र का राज कर लिया, इस से क्या होता है? सपने की सम्पति किस काम की कि जब आंख खुली तो फिर वही टूटी खाट राजा यह बात कैसे जानैंगे और रानी इस बात को क्या समझती हैं कि मेरी कन्या का गान्धर्व विवाह हो चुका है और जब संन्यासी से ब्याह देंगे तब तुम क्या करोगी और वह तब कहां जायगा?

विद्या : हां तुम तो इस बात से बड़ी प्रसन्न हो। तुम्हारी क्या बात है। मैंने कई बार कहा कि उस को एक बार मुझ से और मिला दे पर तू उसे कब छोड़ती है। अरी पापिन, जमाई को तो छोड़ देती पर तो भी तू धन्य है कि इतनी बूढ़ी हुई और अभीं मद नहीं उतरा। जब बुढ़ापे में यह दशा है तो चढ़ते जोबन में न जानै क्या रही होगी।

हीरा मालिन : सच है उलटा उराहना तो मुझे मिलैं ही गा क्यौंकि अब तो सब दोष मुझे लगेगा। तुम को सब बात में हंसी सूझती है पर मुझे ऐसा दुःख होता है कि उसका वर्णन नहीं होता।

जो विधि चन्दहिं राहु बनायो।
सोइ तुम कहं संन्यासी लायो॥

इस दुःख से प्राण त्याग करना अच्छा है—मेरी तो छाती फटी जाती, यह मैंने जो सुना सो कहा। अब तुम जानो तुम्हारा काम जानै, मैंने जो सुना सो कहा।

विद्या : नहीं नहीं, मैं तो तेरे भरोसे हूं जो तू करैगी सो होगा, भला उन से भी एक बेर यह समाचार कह दे।

[चपला आती है]

चपला : राजकुमारी, पूजा का समय हुआ।

विद्या : चलो सखी। मैं अभी आई

[चपला जाती है]

हीरा मालिन : तो मैं आज जाकर उससे यह वृत्तान्त कहती हूं, इस पर वह जो कहैगा सो मैं कल तुम से फिर कहूंगी।

विद्या : ठीक है, कल अवश्य इसका कुछ उपाय करैंगे!

[जवनिका गिरती है]

◆

तीसरा गर्भांक

स्थान–विद्या का मन्दिर

[विद्या अकेली बैठी है और सुन्दर आता है]

विद्या : आज मेरे बड़े बड़े भाग्य हैं कि आप सांझ ही आये।

सुन्दर : **(पास बैठ कर)** प्यारी, मुझे जब तेरे मुखचन्द्र का दर्शन हो तभी सांझ है।

विद्या : परन्तु प्राणनाथ, ये दिन सर्व्वदा न रहैंगे, चार दिन की चांदनी है।

सुन्दर : हां यह तो मैं भी कहता हूं।

विद्या : क्यौं?

सुन्दर : क्यौंकि जब मैं 'बैठिये' तो कभी नहीं सुनता और 'जाइये' प्रायः सुनता हूं तो अवश्य ऐसा होगा।

विद्या : वाह वाह! अब तो आप बहुत ही हंसी करना सीखे हैं— कहिये कै उपवास में यह विद्या आई है **(पान का डब्बा देती है)** लीजिए, इसे छू के शुद्ध कर दीजिए।

सुन्दर : पहिले आप तो मुझे पवित्र कीजिये पीछे मैं जब आप शुद्ध हो जाऊंगा तब इसे भी पवित्र कर सकूंगा।

विद्या : भला यह बात तो हुई। आज सवेरे मालिन आई थी उसका समाचार आप जानते हैं?

सुन्दर : हां सो तो वह नित्य सबेरे आती है। आज विशेष क्या हुआ? क्या उस को किसी ने एक-दो धौल लगाई?

विद्या : भला, मेरे सामने ऐसा कभी हो सकता है और फिर वह ऐसी डरपोकनी है कि जो उस को कोई मारता तो वह तुरन्त रानी से जाकर सब समाचार कह देती! तौ भी तो बुरा होता।

सुन्दर : तो उससे बहुत चौकस रहना चाहिए

विद्या : नहीं, इसका कुछ भय नहीं है पर एक दूसरी बात जो मैंने सुनी है उस का बहुत भय है।

सुन्दर : क्या कोई दूसरा उपद्रव हुआ?

विद्या : एक बड़े पंडित संन्यासी आये हैं, वह मुझसे विचार किया चाहते हैं।

सुन्दर : **(विषाद से)** अरे यह बड़ा उपद्रव हुआ, मैं उस संन्यासी को जानता हूं क्यौंकि जब मैं वर्द्धमान को आता था तो वह मुझे मार्ग में मिला था। वह निश्चय बड़ा पंडित है। इससे उसको विचार में जीतना कठिन है।

विद्या : तब क्या होगा?

सुन्दर : होगा क्या? 'चोर का धन बटपार लूटै'।

विद्या : भगवान ऐसा न हो कि मुझे उससे विचार करना हो।

सुन्दर : जी महाराज विचार करने की आज्ञा देंगे तो करना ही होगा।

विद्या : हां यह तो ठीक है, हाय हाय, मैं बड़े दुविधे में पड़ रही हूं कि क्या करूंगी।

सुन्दर : तुम्हैं किस बात का सोच है, पुराना कपड़ा उतारा नया पहिना। सोच तो मुझे है।

विद्या : **(उदास हो कर)** चलो सब समय हंसी नहीं अच्छी होती। "पुराना उतारा नया पहिना" यह तो पुरुषों का काम है, स्त्री बिचारी तो एक बेर जिस की हुई जन्म भर उसी की हो रहती है।

सुन्दर : **(हंस कर)** ऐसा मत कहो क्यौंकि स्त्रियों के चरित्र अत्यन्त विलक्षण होते है।

विद्या : मैं तो नये पुरुषों का मुख भी नहीं देखने पाती। मैं नई पुरानी क्या जानूं? आप ही नित्य नई-नई स्त्री को देखते हैं, आप जानैं।

सुन्दर : तो क्या हुआ? इतने दिन तक राजसुख भोग किया। अब जोगिन

का सुख भोग करना।

विद्या : यह बात कैसे हो सकती है कि जिस के वियोग में एक पलक प्रलय-सा जान पड़ता है उस को छोड़कर मैं जोगिन हूंगी? हां! मैं संन्यासिनी हूंगी—हे भगवान! तूने कर्म्म में क्या लिखा है?

[अत्यन्त शोच करती है और लम्बी सांसै लेती है]

सुन्दर : (**हंसकर**) और जो वह संन्यासी हमी होयं।

विद्या : यह बात कैसी?

सुन्दर : नहीं, मैंने एक बात कही जो वह संन्यासी हमीं होएं।

विद्या : तो फिर तुम्हारे लिए तो मैं जोगिन आप ही हो रही हूं इस में क्या कहना है, जो यह बात सच्च होय तो शीघ्र ही कहो, तुम्हें मेरी सौगन्द है—जब से मैंने उसका समाचार सुना है तब से मुझे रात को नींद नहीं आती।

सुन्दर : (**हंस कर**) जो तुम्हें दुःख होता है तो मैं कहता हूं पर किसी से कहना मत, अपनी सखियों से भी न कहना। देखो मैं राजसभा देखने को संन्यासी बन के गया था और मैंने बिचारा कि यहां विचार की चरचा निकालैं—देखैं क्या फल होता है।

विद्या : हाय हाय, अब मेरे प्राण में प्राण आए—अरे, तू बड़ा बहुरूपिया है और तुझे बड़े बड़े नखरे आते हैं। पुरुष में तो यह दशा है जो स्त्री होता तो न जानैं क्या करता? चल, तू बड़ा छलिया है—हाय हाय, मुझे कैसा धोखा दिया, भला तूने यह विद्या कहां सीखी (**कुछ ठहर कर**) हां तब, तब क्या हुआ?

सुन्दर : तब क्या हुआ! सो तो तुम जानती होगी पर राजा ने कुछ निश्चय नहीं किया?

विद्या : यहा बड़ा आनन्द हुआ। मानो आज मेरे छाती पर से बोझ उतर गया। मुझे आज रात को नींद सुख से आवैगी। कल मैंने मालिन से हंसी में यह बात उड़ा तो दी थी पर भीतर मेरा जी ही जानता था और मैंने आप से भी कई बेर कहना चाहा पर सोचती थी कि कैसे कहूं।

[सुलोचना आती है]

सुलोचना : राजकुमारी, रात बहुत हो गई जो बहुत जागेंगी तो कल दिन को जी आलस में रहैगा।

विद्या : नहीं सखी, अब जाती हूं (**सुलोचना जाती है और विद्या, सुन्दर भी उठ कर चलते हैं**) पर एक बेर मुझे भी उस रूप का दर्शन करा देना क्योंकि मुझे भी तो जोगिन बनना है।

सुन्दर : प्यारी, उस प्रेम के जोगी की जोगिन होना तुम्हीं को शोभा देता है।

विद्या : नाथ, तुम जो कहो सो सब उचित है।

(जवनिका गिरती है)

[दूसरा अंक समाप्त हुआ]

●

तीसरा दृश्य

पहिला गर्भांक

स्थान–राजमार्ग

[विमला और चपला आती हैं]

विमला : वाह रे वाह रे, कैसी दौड़ी चली आती है। देखकर भी बहाली दिये जाती है।

चपला : **(देख कर)** नहीं बहिन नहीं, मैंने तुम्हें नहीं देखा, क्षमा करना।

विमला : भला, मैंने क्षमा तो किया पर अपनी कुशल कहो?

चपला : कुशल मैं क्या कहूं उस दिन के तो समाचार तूने सुने ही होंगे।

विमला : कौन समाचार, राजकन्या के? बड़े घर की बात?

चपला : अरे, चुप चुप, भाई, धीरे धीरे, जो कोई सुन ले तो कहै कि यह सब ऐसे ही रनवास की बातैं कहती फिरती होंगी।

विमला : हां तो फिर रानी ने सब बात जान कर क्या कहा?

चपला : कहैंगी क्या अपना सिर? राजकुमारी को बुलाकर बड़ी ताड़ना किया और हम लोगों पर जो क्रोध किया, उसका तो कुछ पार ही नहीं है और राजा से जाकर सब कह दिया। राजा ने और भी दस बीस बातैं सुनाई, क्रोध से लाल होकर कोतवाल को आज्ञा दी कि नंगे शस्त्र लेकर रात भर राजकुमारी के महल के चारों ओर घूमा करो और किसी प्रकार से उस चोर को पकड़ो।

विमला : **(घबड़ा कर)** तब क्या हुआ?

चपला : उसी समय से कोतवाल ने हम लोगों के महल में बड़ा उपद्रव मचा रक्खा है और कहां तक कहैं, कई चौकीदार स्त्री बन बन के विद्या के सोने के महल में रात भर बैठे रहे, पर जिसके हेतु इतना उपद्रव हुआ वह अभी यह समाचार नहीं जानता और फिर उस की क्या दशा होगी, इस सोच से विद्यावती रात भर रोती रही। यद्यपि हम लोगों ने बहुत समझाया परन्तु उस को धीरज कहां, इसी विपत में सब रात कटी।

विमला : फिर सबेरे क्या हुआ सो कहो।

चपला : फिर क्या हुआ, सो तो में ठीक ठीक नहीं जानती पर कोतवाल सबेरे उठ के चले गए और विद्या ने मुझ से कहा कि तू सोध ले कि अब क्या होता है।

विमला : सो तूने कुछ सोध पाई?

चपला : अब तक तो कुछ सोध नहीं मिली, लोगों के मुंह से ऐसा सुनती हूं कि चोर पकड़ा गया और एक आपत्ति यह भी न है कि मैं तो किसी से पूछ भी नहीं सकती, परन्तु कोतवाल इत्यादिक बड़े प्रसन्न हैं। इस से जाना जाता है कि चोर पकड़ा गया, मैंने पहिले ही कहा था कि इस काम को छिप के करना अच्छी बात नहीं। **(नेपथ्य में कोलाहल होता है)** अरे यह क्या है? यह तो कोतवाल का शब्द जान पड़ता है; और मानो सब इसी ओर आते हैं तो अब हम लोग किनारे खड़ी हो जाय जिस से सब हम को न देखें।

[दोनों एक ओर खड़ी हो जाती हैं]

[नेपथ्य में फिर कोलाहल होता है और कोई गाता है। हाथ बंधे हुए सुन्दर और मालिन को लेकर चौकीदार आते हैं]

पहला चौकीदारः चल रे चल।

दूसरा चौकीदारः आज इसका पांव फूल गया है, जिस दिन सुरंग खोद कर राजकुमारी के महल में गया था उस दिन पैरं नहीं फूले थे, आज आप ''गजगति'' से चलते हैं।

सुन्दर : क्यौं व्यर्थ बकता है, राजा के पास तो सब चलते ही हैं, वह जो समझैगा सो उचित दंड देगा, फिर तुम को अपनी तीन छटांक पकाये बिना क्या डूबी जाती है।

पहला चौकीदारः अहा, मानो हमारे राजपुत्र आए हैं, देखो सब लोग मुंह सम्हाल के बोलो, कहीं अप्रसन्न न हो जायं और उन की अक्षत चन्दन से पूजा करो। लुच्चा, जिस दिन सेन लगाया था उस दिन आदर कहां गया था, आज आप बड़े पद्धति बने हैं, चल चुपचाप आगे चला चल नहीं तो...।

दूसरा चौकीदारः सुनो भाई, बहुत शब्द मत करो, कोतवाल ने कह दिया है कि चुपचाप जाना, हम पीछे पीछे आते हैं और सब लोग संग ही महाराज के यहां जायंगे। इस से जब तक वह न आवें तब तक यहां चुपचाप खड़े रहो।

तीसरा चौकीदारः अच्छा, आइये चोर जी यहां ठहरिये। राजकन्या के महल में जाने का समय गया अब कारागार में चलने का समय आया।

[सब बैठते हैं]

दूसरा चौकीदारः देखो भाई भला यह तो परदेसी है पर इस रांड मालिन को क्या सूझी कि इस ने ऐसा साहस किया!

पहला चौकीदारः अरे यह छिनाल बड़ी छत्तीसी है, इस को तुम ने समझा है क्या! ऐसा मन होता है कि इस रांड़ की जीभ पकड़ के खींच लें।

[हीरा के पास जाता है]

हीरा मालिन : दोहाई महाराज की, दोहाई महाराज की! हे धर्म्मदेवता तुम साक्षी रहना, देखो यह सब मुझे अकेली पाकर मेरा धर्म्म लिया चाहते हैं, दोहाई राजा की।

पहला चौकीदारः वाह वाह, चुप रह।

[धूमकेतु कोतवाल आता है]

धूमकेतु : क्यौं रे तुम लोगों ने क्या शब्द कर रक्खा है?

हीरा मालिन : दोहाई कोतवाल की, यह सब जो चाहते हैं सो गाली देते हैं, हाय इस राज्य में स्त्रियों का ऐसा अपमान! महाराज धूमकेतु आप तो पंड़ित हैं, आप इसका विचार क्यौं नहीं करते?

पहला चौकीदारः महाराज! यही रांड सब कुकर्म्म की जड़ है और तिस पर ऐसी ऐसी बातें बनाती हैं।

हीरा मालिन : एक मैं ही दुष्कर्म्म करती हूं और तुम सब साधु हो, देखो कोतवाल, हम तो कुछ नहीं करतीं और तुम सब हमारी प्रतिष्ठा बिगाड़ते हौ।

धूमकेतु : **(हंस कर)** हां हां! मैं तेरी सब प्रतिष्ठा समझता हूं, पर यहां इस से क्या? सब लोग महाराज के पास चलैं; जो वह चाहैंगे सो करैंगे।

हीरा मालिन : अरे कोतवाल बाबा, इस बुढ़िया को क्यौं पकड़े लिये जाते हौ, बुढ़िया के मारने से क्या लाभ होगा, मुझे अपने बाप की सौगन्द जो मैं कुछ जानती हूं, भगवान् साक्षी है कि मैं किसी पाप में रही हूं।

सुन्दर : मौसी, इतनी शीघ्रता क्यौं करती है? सब लोग महाराज के पास चलते हैं। जो महाराज उचित समझैंगे सो करैंगे?

हीरा मालिन : **(क्रोध से)** अरे दुष्ट, तेरी मौसी कौन है? इसी के पीछे तो हमारा सब कुछ नाश हुआ, सब तेरा होमकुंड क्या हुआ और तेरे इष्ट देवता कहां गए, अरे, तू बड़ा जालिया है और तूने मुझे बड़ा धोखा दिया है। अब मैं आज पीछे अपने घर में किसी परदेसी को न उतारूंगी।

धूमकेतु : अब भले ही न उतारना, पर इस उतारने का फल तो भुगतना ही पड़ैगा।

हीरा मालिन : **(रोती है)** हाय, मैं हाथ जोड़ के कहती हूं कि मैं इस विषय में कुछ

नहीं जानती, दोहाई भगवान् की मैं कुछ नहीं जानती। **(कोतवाल से)** अरे बेटा! तुम्हारे मां बाप मुझे बड़े प्यार से रखते थे, सो तुम अपने मां बाप के पुण्य पर मुझे छोड़ दो और इस ने जैसा कर्म्म किया है वैसा दंड दो। दोहाई कोतवाल की, मैं बिना अपराध मारी जाती हूं।

धूमकेतु : इस से क्या होता है? अब तुम दोनों को महाराज के पास ले चलते हैं और उन की आज्ञा से एक संग ही बन्दीगृह में छोड़ देंगे।

[सुन्दर का हाथ पकड़ कर कोतवाल जाता है और हीरा को खींच कर चौकीदार लोग ले जाते हैं]

विमला : अब सचमुच चोर पकड़ गया।

चपला : जो आंख से देखती है उसका पूछना क्या?

विमला : पर भाई, ऐसा रूप तो न आंखों देखा और न कानों सुना, यह तो राजकन्या के योग्य ही है। इस में उसने अनुचित क्या किया, क्यौंकि जैसी सुन्दर वह है वैसा ही यह भी है, "उत्तम को उत्तम मिलै मिलै नीच को नीच"।

चपला : पर उस निर्दयी विधाता से तो सही नहीं गई।

विमला : सोई तो, अहा जैसे चन्द्रमा को राहु ग्रसे! हा, विधाता बड़ा कपटी है।

चपला : सखी, अब और कुछ मत कह क्यौंकि इस कथा के सुनने से मेरी छाती फटी जाती है और राजकन्या का दुःख स्मरण करके मुझ से यहां खड़ा नहीं रहा जाता। देखें और क्या क्या होता है?

विमला : तो फिर कब मिलैगी?

चपला : जो जीती रहूंगी तो शीघ्र ही मिलूंगी।

[दोनों जाती हैं]

(जवनिका गिरती है।)

●

दूसरा गर्भांक

स्थान–विद्या का मन्दिर

[विद्या सोच में बैठी है; चपला और सुलोचना आती हैं]

चपला : (धीरे से) सखी, मुझ से तो यह दुःख की कथा न कही जायगी। तू ही आगे चलकर कह।

सुलोचना : तो तुम मत कहना पर संग चलने में क्या दोष है? जो विपत्ति आती है सो भोगनी ही पड़ती है।

चपला : चल।

[दोनों विद्या के पास आती हैं]

विद्या : **(घबड़ा कर)** कहो सखी, कहो, क्या समाचार लाई हो?

सुलोचना : सखी, क्या कहूं कुछ कहा नहीं जाता। मेरे मुख से ऐसे दुख की बात नहीं निकलती। हाय, हम इसी दुःख देखने को जीती हैं, सखी जिस प्रीतम के सुख से तू सुखी रहती थी वह आज पकड़ा गया, हाय, उसके दोनों कोमल हाथों को निरदई कोतवाल ने बांध रक्खा है, हाय उस की यह दशा देखकर मेरी छाती क्यों नहीं फट गई।

विद्या : **(घबड़ा कर)** अरे सच ही ऐसा हुआ हाय फिर क्या हुआ होगा **(माथे पर हाथ मारकर)** हा विधाता, तेरे मन में यही थी–**(मूर्छा खाती है और फिर उठ कर)** हाय! प्राणनाथ बन्धन में पड़े हैं और मैं जीती हूं, हाय।

धिक है वह देह औ गेह सखी
जिहि के बस नेह को टूटनो है।
उन प्रान पियारे बिना यह जीवहि
राखि कहा सुख लूटनो है॥
हरिचन्द जु बात ठनी जिय मैं
नित की कलकानि तू छूटनो है।
तजि और उपाय अनेक सखी
अब तो हमको विष घूटनो है॥

सखी, अब मैं किसके हेतु जीऊंगी? आओ, हम तुम मिल लें क्योंकि यह पिछला मिलना है, फिर मैं कहां और तुम कहां! सखी जो प्रान प्यारे जीते बचे तो उनसे मेरा सन्देश कह देना कि मैंने तुम्हारी प्रीति का निबाह किया कि अपना प्रान दिया पर मुझे इतना सोच रह गया कि हाय, मेरे प्रान प्रीतम बांधे गये–पर मेरी इस बात का निबाह करना कि मेरे दुःख से तुम दुखी न होना हाय! मेरी छाती वज्र की है कि अब भी नहीं फटती।

[रोती है और मूर्छा खा कर गिरती है]

सुलोचना : **(उठा कर)** सखी, इतनी उदास न हो और रो रोकर प्रान न दे यद्यपि जो तू कहती है सो सब सत्य है पर जब ईश्वर ही फिर जाय तो मेरा तेरा क्या वश है? हाय बादल से कोई बिजली भी नहीं गिरती कि हम को यह दुःख न देखना पड़े, सखी धीरज धर, सखी धीरज धर।

विद्या : **(रो कर)** सखी, मन नहीं मानता। हाय बिसासी विधाता ने क्या दिखा कर क्या दिखाया! हाय अब मैं क्या करूंगी और कैसे दिन काटूंगी।

'मेलि गरे मृदु बेलि सी बांहिन कौन सी चाहन छाहन डोलिहौं।
कोसो सुहास बिलास मुबारक ही के हुलासन सों हंसि बोलिहौं॥
श्रौनन प्याइहौं कौन सुधारस कासों विथा की कथा गढ़ी छोलिहौं।
प्यारे बिना हौं कहा लखिहौं सखियां दुखिया अखियां जब खोलिहौं॥

सखी, केवल दुःख भोगने को जन्मी हूं क्यौंकि आज तक एक भी सुख नहीं मिला, क्या विधाता की सब उलटी रीति है कि जिस वस्तु से मुझे सुख है उसी को हरण करता है, हाय, मैंने जाना था कि मुझे मन माना प्रीतम मिला, अब मैं कभी दुःखी न हूंगी सो आशा आज पूरी हो गई, हाय अब मुझे जन्म भर दुःख भोगना पड़ा।

सुलोचना : सखी, यह सब कर्म्म के भोग हैं, नहीं तो तुम राजा की कन्या है तुम्हारे तो दुःख पास न आना चाहिये पर क्या करैं–सखी तू तो आप बड़ी पंडित है, मैं तुझे क्या समझाऊंगी पर फिर भी कहती हूं कि धीरज धर।

विद्या : सखी, मैं यद्यपि समझती हूं पर मेरा जी धीरज नहीं धरता कर्म्म के भोग न होते तो यह दिन क्यौं देखना पड़ता हाय जो पिता माता प्राण देकर सन्तान की रक्षा करते हैं उन्हीं पिता माता ने मुझे जनम भर रंड़रापे का दुख दिया

[रोती है]

चपला : सखी, अब इन बातैं से और भी दुःख बढ़ेगा इस से चित्त से यह बातैं उतार दे और किसी भांति धीरज से जी को समझा।

विद्या : सखी मैं तो समझती हूं पर मन नहीं समझता हाय और जिसका सर्व्वस नास हो जाय वह कैसे समझै और कैसे धीरज धरै हाय! हाय! प्राण बड़े अधम हैं कि अब भी नहीं निकलते

[लम्बी सांस लेती है और रोती है]

सुलोचना : पर एक बात यह भी तो है कि अभी राजा ने न जानैं क्या आज्ञा दी बिना कुछ भए इतना दुःख उचित नहीं, न जानैं राजा छोड़ दें।

विद्या : राजसभा में क्या होगा केवल हमारे शोकानल में पूर्णाहुति दी जायगी और क्या होगा–हाय–प्राणनाथ इस अभागिनी के हेतु तुम्हें बड़े बड़े दुःख भोगने पड़े।

सुलोचना : जो तू कहै तो मैं छत पर से देखूं कि सभा में क्या होता है।

विद्या : जो तेरे जी में आवै और जिस से मेरा भला हो सो कर।

सुलोचना : चपला चल हम देखैं तो क्या होता है।

चपला : चल।

[दोनों जाती हैं]

विद्या : अब मैं यहां बैठी बैठी क्या करूंगी और मन को कैसे समझाऊंगी। हे भगवान मेरे अपराधों को क्षमा कर—मैं बड़ी दीन हूं मैंने क्या ऐसा अपराध किया है कि तू मूझे दुःख दे रहा है। नहीं भगवान का क्या दोष है। सब दोष मेरे भाग्य का है। **(हाथ जोड़ कर)** हे दीनानाथ, हे दीनबन्धु, हे नारायण, मुझ अबला पर दया करो और जो मैं पतिव्रता हूं जो मैंने सदा निश्छल चित्त से तुम्हारी आराधना की हो तो मुझे इस दुःख से पार करो।

[नेपथ्य में]

अरे राजकाज के लोगों ने बड़ा बुरा किया कि बिना पहिचानै कांचीपुरी के महाराज गुणसिन्धु के पुत्र राजकुमार सुन्दर को कारागार में भेज दिया, क्या किसी ने उसे नहीं पहिचाना? मैं अभी जाकर महाराज से कहता हूं कि यह तो वही है जिस के बुलाने के हेतु आपने मुझे कांचीपुर भेजा था।

विद्या : **(हर्ष से)** अरे यह कौन अमृत की धार बरसाता है अहा भगवान ने फिर दिन फेरे क्या? अब मैं भी छत पर चल कर देखूं कि सभा में क्या होता है।

(जवनिका गिरती है)

●

तीसरा गर्भांक

स्थान—राजभवन

[राजा सिंहासन पर बैठा है, मन्त्री पास है और कुछ दूर पर गंगा भाट खड़ा है।]

राजा : मन्त्री, गंगा भाट ने जो कहा सो तुमने सुना?

मन्त्री : महाराज, सब सुना।

राजा : तब फिर उनको चोर जान कर कारागार में भेज देना बुरा हुआ?

मन्त्री : महाराज, पहिले यह कौन जानता था कि यह राजा गुणसिन्धु का पुत्र है। केवल चोर समझकर दंड दिया गया।

राजा : पर जब से मैंने उसे देखा तभी से मुझ को सन्देह था कि आकार से यह कोई बड़ा तेजस्वी जान पड़ता है, और मैं सच कहता हूं कि उस की मधुर मूर्ति और तरुण अवस्था देखकर मुझे बड़ा मोह लगता था। जो कुछ हो, अब तो विलम्ब मत कर और शीघ्र ही आप जाकर उसे ले आ, क्योंकि कोतवाल अभी कारागार तक न पहुंचा होगा।

मन्त्री : जो आज्ञा महाराज, मैं अभी जाता हूं।

[जाना चाहता है]

राजा : पर केवल सुन्दर को लाना और कोतवाल इत्यादिक को मत लाना।

मन्त्री : जो आज्ञा।

[जाता है]

राजा : क्यौं कविराज, तुम उसे अच्छी भांति पहिचानते हौ कि नहीं?

गंगा : महाराज, मैं भलीभांति पहिचानता हूं और पृथ्वीनाथ, बिना जाने मैं कोई बात निवेदन भी तो नहीं कर सकता।

राजा : तो गुणसिन्धु राजा का पुत्र वही है?

गंगा : महाराज, इसमें कोई सन्देह नहीं।

राजा : तुम जो न कहते तो बड़ा अनर्थ होता। यह भी हमारे भाग्य की बात है कि ईश्वर ने धर्म्म बचा लिया। पर मन्त्री के आने में इतना विलम्ब क्यौं हुआ? इस से तुम जाकर देखो तो सही।

गंगा : जो आज्ञा।

[जाता है]

राजा : **(आप ही आप)** इतना विलम्ब क्यौं लगा? **(शरीर हिलाकर)** विद्यावती के संग जो उसका गान्धर्व विवाह हुआ वह अच्छा ही हुआ क्यौंकि नीच कुल से विवाह करने से तो मरना अच्छा होता हैं, परन्तु हमारी विद्यावती ने कुछ अयोग्य नहीं किया। यह एक भाग्य की बात है, नहीं तो अपने हाथ से कन्या को जन्मभर का दुःख दे चुका था, अहा, भगवान, ने बहुत बचाया। **(द्वार की ओर देख कर)** मन्त्री अब तक नहीं आया **(नेपथ्य में पैर का शब्द सुन कर)** जान पड़ता है कि सब आते हैं।

[गंगा भाट आता है]

गंगा : महाराज, कांचीराजपुत्र को मन्त्री आदर पूर्व्वक ले आते हैं।

[मन्त्री और सुन्दर आते हैं]

राजा : **(सुन्दर का मुख चूमकर)** यहां आओ पुत्र यहां। **(हाथ पकड़ कर अपने सिंहासन पर बैठाता है)** बेटा, मैंने तुझ को आज अनेक दुःख दिए, इस दोष को मैं स्वीकार करता हूं और यह मांगता हूं कि तुम आज से इन बातों को भूल जाओ।

सुन्दर : **(हाथ जोड़ कर)** महाराज, आप का क्या दोष है? यह तो आपने मुझे उचित दंड दिया था। यह केवल मेरे यौवन का दोष था कि मैंने आप के यहां अनेक अपराध किये, सो मैं हाथ जोड़ कर मांगता हूं कि आप मुझे क्षमा करें।

राजा : (मन्त्री से) मन्त्री रनिवास में से विद्यावती को शीघ्र ले आओ।

मन्त्री : जो आज्ञा।

[जाता है]

राजा : बेटा, मैंने तुम को जितना दुःख दिया है उस के बदले तो मैं तुम्हारा कुछ भी सन्तोष नहीं कर सकता, पर मैं इतना कहता हूं कि तुम ने विद्यावती से जो गान्धर्व विवाह किया है उस में मैं प्रसन्नतापूर्वक सम्मति प्रगट करता हूं जिस से अवश्य तुम को बड़ा संतोष होगा।

सुन्दर : **(हाथ जोड़ कर)** महाराज, आप की कृपा ही से मुझ को बड़ा संतोष हुआ।

[मन्त्री आता है]

राजा : मन्त्री क्या विद्यावती आई?

मन्त्री : महाराज अभी आती हैं।

राजा : (सुन्दर से) बेटा, तुमने पकड़े जाने के समय अपना नाम क्यौं नहीं बतलाया, नहीं तो इतना उपद्रव क्यौं होता?

सुन्दर : महाराज, जो मैं नाम बतलाता तो भी मेरी बात कौन सुनता और सभासद जानते कि यह प्राण बचाने को झूठी बातैं बनाता है और फिर क्षत्री के निष्कलंक कुल में उत्पन्न होकर ऐसे बुरे कर्म्म में अपना नाम प्रगट करने से प्राणत्याग करना उत्तम है।

[सुलोचना और चपला के संग विद्या नीची आंख किये हुए आती है]

विद्या : **(धीरे से)** सखी, मैं पिता को मुंह कैसे दिखाऊंगी।

सुलोचना : **(धीरे से)** जब पिता ने बुला भेजा है तो कौन सी लज्जा है।

राजा : आ मेरी प्यारी बेटी, इधर आ, आज तक मैंने तुझे अनेक दुःख दिये थे पर वे सब दुःख आज सम्पूर्ण हो गये **(उठा कर विद्या का हाथ पकड़ कर)** प्यारे, यह लो वीरसिंह का सर्वस्व धन मैं तुम्हें आज समर्पण करता हूं।

[विद्या का हाथ सुन्दर के हाथ में देता है और नेपथ्य में बाजा बजता है और आनन्द के शब्द से रंगभूमि भर जाती है]

यह बात तो कहना सर्व्वथा अनुचित है कि इस कन्या पर प्रीति रखना क्यौंकि जो परस्पर अत्यन्त नेह न होता तो दुःख क्यौं सहते परन्तु ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूं कि आज से फिर तुम्हे कोई दुःख ने हो और सर्व्वदा अखंड सुख करौ और सीघ्र ही एक बालक हो जिस के देखने से हमारा हृदय और आंखैं शीतल हों।

[दोनों दंडवत् करते हैं]

सुन्दर : महाराज, आप की दया से मेरे सब दुख दूर हुये पर यह शंका है कि मैं आप की प्रसन्नता के हेतु कोई योग्य सेवा नहीं कर सका।

गंगा : **आज आनन्द भयो अति ही विपदा सब की दुरि दूरि नसाई।**
मोद बढ़्यो परजागन को दुःख को कहुंनाम न नेकु लखाई॥
मंगल छाइ रह्यो चहुं ओर असीसत हैं सब लोग लुगाई।
जोरी जियो दुलहा दुलही की बधाई बधाई बधाई बधाई॥

सुन्दर : महाराज, आप ने मुझे यद्यपि सब सुख दिया तथापि एक प्रार्थना और है।

राजा : कहो ऐसी कौन वस्तु है जो तुम को अदेय है।

सुन्दर : **(हाथ जोड़ कर)** महाराज ने यद्यपि मालिन को प्राण दान दिया है परन्तु देश से निकाल देने की आज्ञा है सो अब उसके सब अपराध क्षमा किये जायं।

राजा : **(हंस कर)** जो तुम कहते हो सोई होगा। **(मन्त्री से)** मन्त्री, मालिन के सब अपराध क्षमा हुये। इस से अब उसे कोई दंड न दिया जाय।

मन्त्री : जो आज्ञा।

राजा : **(मन्त्री से)** मन्त्री अब तुम शीघ्र ही ब्याह के सब मंगल साज साजो जिस में नगर में कहीं सोच का नाम न रहे क्योंकि पुरवासियों को दुलहा दुलहिन के देखने की बड़ी अभिलाषा है और मैं वर वधू को लेकर रनिवास में जाता हूं।

मन्त्री : महाराज, हम लोगों का जीवन आज सुफल हुआ।

[मन्त्री और भाट एक ओर से जाते है और राजा और विद्या सुन्दर दूसरी ओर से और उन के पीछे सखी जाती हैं]

(जवनिका गिरती है)

[नेपथ्य में मंगल का बाजा बजता है।]

॥इति॥

[चौर कवि कृत 'चौरपंचाशिका' को भारतचन्द्रराय ने कविता में प्रस्तुत किया था। भारतचन्द्र राय के काव्य के आधार पर यतीन्द्रमोहन ठाकुर ने बंगभाषा में 'विद्यासुन्दर' नाटक बनाया था। भारतेन्दु ने इसी नाटक का अनुवाद किया है। संपा.]

रत्नावली

(नाटिका)

सन 1868 ई.

भूमिका

हिन्दी भाषा में जो सब भांति की पुस्तकें बनने के योग्य हैं, अभी वे बहुत कम बनी हैं, विशेष करके नाटक तो (कुंवर लक्ष्मणसिंह के शकुन्तला के सिवाय) कोई भी ऐसे नहीं बने हैं जिन को पढ़ के कुछ चित्त को आनन्द और इस भाषा का बल प्रकट हो। इस वास्ते मेरी ऐसी इच्छा है कि दो चार नाटकों का तर्जुमा हिन्दी में हो जाय तो मेरा मनोरथ सिद्ध हो।

शकुन्तला के सिवाय और सब नाटकों में 'रत्नावली' नाटिका बहुत अच्छी और पढ़नेवालों को आनन्द देनेवाली है इस हेतु से मैंने पहिले इसी नाटिका का तर्जुमा किया है और जो ईश्वरेच्छा अनुकूल है और आप गुणगाहकों की अनुग्रह दृष्टि है तो धीरे धीरे कुछ नाटकों को तर्जुमा होकर प्रकाशित होता जायगा।

इस नाटिका में मूल संस्कृत में जहां छन्द थे वहां मैंने भी छन्द किए हैं। छन्दों से इसके छन्दों को मिला के पढ़िए तो इस का परिश्रम प्रकट होगा।

मुझे इस के उल्था करने में श्री पंडित शीतलाप्रसादजी से बहुत सहायता मिली है।

और निश्चय है कि इस का उल्था अगर कोई अच्छी हिन्दी जानने वाला करता तो रचना अति उत्तम होती, इस से मुझे आप लोगों से आशा है कि इस के भूल चूक को सुधारैंगे और मुझे अपने एक दास की नाईं सदा स्मरण करैंगे।

बनारस। **हरिश्चन्द्र**
मि. वैशाख 2 संवत 1925।

श्रीकृष्णाय नमः श्रीराधिकायै नमः

रत्नावली

रंगभूमि में नांदी [मङ्गलाचरण] पढ़ता है।

नांदी

पादाग्रस्थितया मुहुः स्तनभरेणानीतया नम्रतां।
शम्भोः सस्पृहलोचनत्रयपथं यान्त्या तदाराधने॥
ह्रीमत्या शिरसीहितः सपुलकस्वेदोद्गमोत्कम्पया।
विश्लिष्यन् कुसुमाञ्जलिर्गिरिजया क्षिप्तोऽन्तरे पातु वः॥

पार्वती शिवजी के पूजन के समय उन के मस्तक पर पुष्पांजलि चढ़ाने के लिए कई बार चरण के अंगूठों के बल से ऊंची हुई और स्तनों के भार से फिर नीची हो गई। परन्तु जब शिवजी इन की ओर तीनों नेत्रों से बड़े अभिलाष से देखने लगे तो इन को बड़ी लज्जा हुई और रोम खड़े हो गए और अंग में पसीना और कम्प होने लगा और हाथ न सम्हल सका तो इन्होंने उस पुष्पांजलि को बीच ही में छोड़ दिया। ऐसी पुष्पान्जलि तुम्हारी रक्षा करें।

औत्सुक्येन कृतत्वरा सह भुवा व्यावर्त्तमान ह्रिया।
तैस्तैर्बन्धुबधूजनस्य बचनैर्नीताऽभिमुख्यं पुनः॥
दृष्टावऽग्रे वरमात्तसाध्वसरसा गौरी नवे सङ्गमे।
संरोहत्पुलका हरेण हसता शिवायास्तु वः॥

पार्वती प्रथम समागम के समय पहिले तो उत्कंठित होकर जल्दी से चलीं परन्तु जब थोड़ी दूर गईं तो स्वभाव ही से लजाकर फिर पीछे हटीं। जब बन्धुजनों की स्त्रियों ने अनेक प्रकार से समझाया तो फिर सन्मुख हुई और जब पति को आगे देखा तो इन को अति भय हुआ और इनके अंग में रोमांच हो आया तब शिवजी ने हंस कर कंठ से लगा लिया। ऐसी पार्वती तुम्हारा कल्याण करें।

क्रोधेद्वैर्दृष्टिपातैस्त्रिभिरूपशमिता वह्न्योऽमित्रयोऽपि।
त्रासार्त्ता ऋत्विजोऽधश्चपलगणहृतोष्णीषपट्टाः पतन्ति॥
दक्षः स्तौत्यस्य पत्नी विलपति करुणं विद्रुतं चापि देवैः।
शंसन्नित्यात्तहासोमखमथनविधौ पातुदेव्यैर्शिवो वः॥

प्रज्वलित हमारी तीनों दृष्टियों के पड़ने से ये तीनों अग्नि बुझ गईं। हमारे चंचल गुणों ने ऋत्विकों के माथे की पाग छीन ली हैं और वे मारे डर के मुंह के बल गिरे पड़ते हैं। दक्ष स्तुति करता है; इस की स्त्री करुणा करके रोती हैं देवता सब भाग गए, शिवजी दक्ष के यज्ञ के विध्वंस के समय यह कहते हुए तुम्हारी रक्षा करें।

[नांदी के पीछे सूत्रधार आता है]

सूत्रधार : बस बहुत बढ़ाने का कुछ काम नहीं। आज इस वसन्तोत्सव में महाराज श्रीहर्षदेव के चरण कमल के आश्रित राजा लोग, जो बहुत देशों से आकर इकट्ठे हुए हैं, उन लोगों ने हम को बड़े आदर से बुलाकर कहा है कि हमारे स्वामी श्रीहर्षदेव ने जो बहुत अपूर्व 'रत्नावली' नाटिका बनाई है उस का वृत्तान्त हम लोगों ने बहुत लोगों के मुंह से सुना है पर अब तक उस की लीला नहीं देखी। इस वास्ते सब लोगों के चित्त को आनन्द देनेवाले उन के बहुत मान से और हम लोगों पर अनुग्रह की दृष्टि से उस नाटिका की लीला कीजिये **(घूम कर और चारों तरफ देख कर)** अब इस समय नेपथ्य रचना कर लूं तो फिर जो करना हो सो करूं **(सब लोगों की तरफ देख कर)** अरे, मुझे विश्वास होता है कि सब सभासदों का मन इसी ओर लगा है। क्यौं न होय—

श्री हर्ष सो अति निपुन कवि यह सभा जन गुन को धरैं?
जग बत्सराज चरित्र मनहर हम ललित लीला करैं॥
इन सबन सौं जहं होय एकहु मिलहिं मन वांछित घने।
यह उदय मेरे भाग्य को जहं सकल गुन गन हैं बने॥

तब तक घर से सुघर घरनी को बुलाकर कुछ गाना आरम्भ करैं। **(घूम कर और नेपथ्य की ओर देख कर)** यही मेरा घर है, इस के भीतर चलैं! **(कुछ आगे बढ़ कर)** प्यारी, इधर आइयो।

[नटी आती है]

नटी : प्राणनाथ! मैं आई हूं। कहिये आज कौन सी लीला करनी है।

सूत्रधार : प्यारी! इन राजा लोगों को रत्नावली देखने की बड़ी इच्छा है, सो तुम जाकर नेपथ्य के सब साजों को सम्हालो।

नटी : **(चिन्ता से लम्बी सांस लेकर)** प्राणनाथ! आप इस बेला निश्चिन्त

हौं, आप क्यौं न नाचौगे? मुझ अभागिन की तो एक ही कन्या है, उसे भी आप ने दूसरे देश में देने कहा है। ऐसे दूर रहनेवाले वर से उस का ब्याह कैसे होगा, इस सोच में मुझे तो अपने देह की भी सुधि नहीं है। नाचना कैसा।

सूत्रधार : प्यारी! वर दूर देश में है, इस बात की कुछ चिन्ता न करो, क्योंकि–

जौ विधना अनुकूल तौ दीपन सों सब लाय।
सागर मधि दिग अन्त सों तुरतहि देत मिलाय॥

[नेपथ्य में]

[वाह रे नट के छोकड़े वाह ''जौ बिधना'' यह फिर से पढ़ता है]

सूत्रधार : **[सुन कर नेपथ्य की ओर देख कर]** प्यारी, अब क्यौं विलम्ब करती हौ? यह मेरा छोटा भाई यौगन्धरायण बन के आया है। आओ हम लोग भी चलकर अपना अपना भेष धारण करैं।

[यह कह के दोनों चले जाते हैं]

[इति प्रस्तावना]

[बहुत प्रसन्न भेष से यौगन्धरायण आता है]

यौगन्धरायण : यह सच है, इसमें कुछ सन्देह नहीं। (**'जौ विधना अनुकूल' इत्यादि फिर से पढ़ता है**) जो ऐसा न होता तो ये अनहोनी बातैं कैसे होतीं कि हमने सिद्ध की बात का विश्वास करके सिंहल दीप के राजा की कन्या अपने स्वामी के लिए मागी और जब उस ने भेजी तो जहाज टूट जाने से वह डूबने लगी और एक तख्ते पर, जो उस को मिल गया था, बहती फिरी और संयोग से उसी समय कौशाम्बी के एक महाजन ने, जो सिंहल दीप से फिरा आता था, उसे बहते देखा और उस के गले की रत्नमाला से इसने जाना कि कोई बड़े घर की बेटी है, इस से वह उस को यहां लाया। (**प्रसन्न होकर**) सब भांति हमारे स्वामी की बढ़ती ही होती जाती है (**विचार करके**) और हमने भी उस कन्या को बड़े गौरव से रानी को सौंपा है, यह बात अच्छी हुई। अब सुनने में आया है कि महाराज के व्याभ्रव्य कंचुकी और सिंहलेश्वर का बसुभूति मन्त्री, जो राजकन्या के साथ चले थे, वे दोनों किसी उपाय से बचकर समुद्र के किनारे लगे और वहां सैनापति रूमण्वान से, जो कौशला नगरी जीतने गया था, मिल के यहां आ पहुंचे। इन बातैं से यद्यपि हमारे स्वामी का सब काम सिद्ध ही होता है तौ भी हमारे जी को धीरज नहीं होता। हा! सेवक का धर्म्म बड़ा कठिन है।

जद्यपि स्वामिहि के हित कारन मैंने सबै यह काज कियो है।
देखहु तौ यह भाग की बात सु दैव ने आइ सहाय दियो है॥

सिद्धहु होइगो संसय नाहीं सदा निहचै मन मांह लियो है।
तौहू कियो अपने चित सों यह सोचि डरै सब काल हियो है॥

[नेपथ्य में कुलाहल होता है]

(कान लगाकर) अरे यह नगरनिवासियों के चाचर की धुन सुन पड़ती है। मृदंग भी कैसा मधुर बज रहा है और उसी के साथ कैसी मीठी मीठी तानैं सुनाई देती हैं। ऐसा अनुमान होता है कि इस वसन्तोत्सव में नगरवासियों का कौतुक देखने को महाराज अटारी की ओर जाते हैं।

[ऊपर देख कर]

आहा! महाराज तो अटारी पर आ गए। देखो–

याके राज बीच कहूं विग्रह नहीं हैं
अरु विग्रहरहित कामदेवहू सुहायो है।
यह रतिमान और वह रतिपति यह
प्रजा चित्त बसे वह जगचित्त छायो है॥
याको है वसन्तक परमसखा वाहू को
वसन्त रितु मित्र यह जग बीच गायो है।
आपुनो महोत्सव विलोकिबें को अनुरागी,
कामदेव मानो वत्सराज बनि आयो है॥[1]

तो घर जाकर अब जो करना है उसकी चिन्ता करूं।

[चला जाता]

[इति विष्कम्भक। परदा गिरा]

[हर्ष की 'रत्नावली' नाटिका का अधूरा अनुवाद]

---

[1] अथवा यह पाठान्तर

दोहा : रति धर जन चित्त बसत बिन विग्रह मित्र वसन्त।
आयो उत्सव लखन बनि वत्सराज रितु कन्त॥

पाखंड विडम्बन

सन 1872 ई.

पाखंड विडम्बन

अर्थात्
प्रबोध चन्द्रोदय नाटक
का
तीसरा अंक
श्रीमन्महाकवि कृष्ण मिश्र
का बनाया
तथा
श्रीहरिश्चन्द्रजी
ने
हिन्दी भाषा में हास्य रसिकों के आनन्दार्थ
अनुवाद किया।

Benaras:
Printed at the Benaras Printing Press
By Chhannu Lal
संवत 1929

समर्पण

मेरे प्यारे!

भला, इससे पाखंड का विडम्बन क्या होना है? यहां तो तुम्हारे सिवा सभी पाखंड हैं, क्या हिन्दू क्या जैन? क्योंकि मैं पूछता हूं कि बिना तुम को पाये मन की प्रवृत्ति ही क्यों है, तुम्हें छोड़कर मेरे जान सभी झूठे हैं, चाहे ईश्वर हो चाहे ब्रह्म, चाहे वेद हो चाहे इंजील, तो इससे यह शंका न करना कि मैंने किसी मत की निन्दा के हेतु यह उल्था किया है क्योंकि सब तुम्हारा है। इस नाते से तो सभी अच्छा है और तुम से किसी से सम्बन्ध नहीं, इस नाते सभी बुरे हैं। इन बातों को जाने दो।

क्यौंजी, ऐसे निष्ठुर क्यों हो गए हो? क्या तुम वह नहीं हो? इतने दिन पीछे मिलना उस पर भी आंखैं निगोड़ी प्यासी ही रहैं; मुंह न छिपाओ, देखौ, यह कैसा सुन्दर नाटक का तमाशा तुम को दिखाता हूं क्यौंकि जब तुम अपने नेत्रों को स्थिर करके यह तमाशा देखने लगोगे तौ मैं इतना ही अवसर पाकर तुम्हारी भोली छवि चुपचाप देख लूंगा।

तुम्हारा

फाल्गुन सुदी 14 संवत 1929 **हरिश्चन्द्र**

पाखंड विडम्बन

[शान्ति और करुणा आती हैं]

शान्ति : (सोच से) मेरी प्यारी मां, कहां है? जल्दी मुझे अपना मुखड़ा दिखा। हां!

जो बन मैं सरितान के तीर, जहां बहै सीतल पौन सुहाई।
देवन के घर मैं, ऋषि के घर मैं, जिन आपनी आयु बिताई॥
सज्जन के चित्त में जो रही, हिय मैं, जिन पुन्य की बेलि बढ़ाई।
सो परी जाय परखंडिन के कर, गाय ज्यौं बांधि कै राखै कसाई॥

अब मैं जी के क्या करूंगी? क्यौंकि—

मम देखे बिन न्हाय नहीं, नहीं पिवै, नहिं खाय।
मो बिन प्रान न राखिहै, प्यारी श्रद्धा माय॥

हा! तो अब श्रद्धा माता के बिना जीना तो दुःख ही भोग करना है। सखी, करुणा, तू मेरा सोच मत करियो, मैं शीघ्र ही आग में जल के अपनी मां के पास पहुंचूंगी।

[रोती है]

करुणा : (सोच से) सखी, यह क्या करती है? तेरा यह दुःख मुझ से सहा नहीं जाता। तू ऐसी बातें कहकर मुझे क्यौं अधमरी किए देती है। सखी, धीरज धर और प्राण मत दे! तब तक मैं उस को तीरथों में, गंगाजी के किनारों पर, सूने वनों में, मुनि लोगों की कुटियों में और देवता के मन्दिरों में ढूंढती हूं। ऐसा न हो कि वह महाराज महामोह के डर से कहीं छिप रही हो।

शान्ति : सखी, अकारथ क्यौं खोज करती है? क्यौंकि—

कूल मैं छाइ रहे हैं सिवार,
घिरे हैं बिखानस के समुदाई।
त्यौं घर ब्राह्मण के चरु सों,
कुश सों समिधान सों राखे छिपाई॥

चारहु आश्रम के इमि मूढ़न,
कामना की बहु बेलि बढ़ाई।
बातहूं नाहि कहूं सुनिये कित,
श्रद्धा गई कछु जान न जाई॥

करुणा : सखी, ऐसा कभी नहीं हो सकता, क्यौंकि वह तो सतोगुनी श्रद्धा है, उस की ऐसी दुर्गति तो सपने में भी नहीं हो सकती।

शान्ति : सखी, जब दैव फिर जाता है तौ क्या क्या नहीं होता? देख–

श्री रघुनाथ की प्रान प्रिया, मिथिलेस लली दससीस चही है।
वेद चुराय कै दानव के गन, भागे पताल न जाय कहीं है॥
वाम मदालसा जो सुरलोक की, सो छलिकै खल दैत लही है।
जो विधि बाम भयो सजनी तब, जो जो करै सो अचर्ज नहीं है॥

तौ चल अब पाखंड ही के घर में चलकर खोज करैं।

करुणा : ठीक है, चल।

[दोनों घूमती हैं]

करुणा : **(डर से)** सखी, मुझे जल्दी बचा।

शान्ति : हैं! क्या कोई राच्छस है?

करुणा : देख, इधर देख! यह शरीर में कीचड़ लगाकर अपने को मैला-कुचैला बनाये, नोचे खसोटे बाल, नंगा, धिड़ंगा, खोंड़े मैले दांत, भोंड़ी भयावनी सूरत राक्षस की मूरत, हाथ में झाड़ू सा एक मोरछल लिये इधरी चला आता है।

शान्ति : सखी, यह राक्षस नहीं है क्यौंकि ऐसा वलवान नहीं जान पड़ता।

करुणा : तो सखी, फिर यह कौन है?

शान्ति : सखी, हो ना हो वह पिशाच है।

करुणा : सखी, दिन में पिशाच की गम कहां?

शान्ति : तो कोई नरक से तुरत का ढकेला पापी होगा। **(पास से देख कर और जान कर)** अरे जाना! यह तो महाराज महामोह का भेजा दिगम्बर सिद्धान्त है, तौ इस से दूर ही रहना चाहिए।

[मुंह फेरती है]

करुणा : सखी, एक दो घड़ी, यहीं ठहर तौ श्रद्धा को खोजैं।

[दोनों किनारे खड़ी हो जाती हैं, ऊपर कहे हुये। भेष से दिगम्वर सिद्धान्त आता है]

दिगम्वर : **नमो अर्हन्त, नमो अर्हन्त॥**
नवद्वारांरोदेह धरतिसमां आतम दीप।
जिन वर रो सिद्धान्त यह देसी मोच्छ समीप॥

[आकाश की ओर देख कर]

अरे सुणौरे सरावगियो सुणौ अरे, रे रे श्रावक सुनौ!
यामल रूपी देह मांकसी जलारी सुद्धि।
आतम विमल स्वभाव छै यह रिषिआंरी बुद्धि॥

(ऊपर कान लगा कर)

क्या कहूयो कौण रिसिआंरी? अरे सुण
जौ न करौ परनाम दै मिष्ट भोग सतकार।
तौ बैरहु तिन सों न कर जदपि रमत रिषि दार॥
सरधे इठे इठे

[वैसा ही भेष बनाये श्रद्धा आती है]

श्रद्धा : हुक्म महाराज।

[शान्ति मूर्च्छा खाके गिरती है]

दिगम्बर : अरे सरावकांरा कुल एक्क छिण मत छोडिया॥

श्रद्धा : जो हुक्म महाराज!

[जाती है]

करुणा : सखी, धीरज धर, धीरज धर, तू इतना क्यों डरती है, क्योंकि मैंने अहिंसा से सुना है कि पाखंडियों की भी तमोगुण की बेटी श्रद्धा है। इस से यह तो तमोगुणी श्रद्धा है।

शान्ति : (उठ कर और अपने को सम्हाल कर) सखी, ठीक है।
दुराचार मैं अति लपटाई।
वेष कुरूप न देख्यौ जाई॥
सब बिधि हीन अहै गुनमाहीं।
माता की सरि कोउ बिधि नाहीं॥
तो अब हम लोग बौद्धों के घर में उसे खोजैं।

[शान्ति और करुणा घूमती हैं। हाथ में पोथी लिये भिक्षुक बुद्धागम आता है]

भिक्षु : (चिन्ता करके) अले अले उपाछको छुनो छुनो।
छन छन मैं बिगरत बनत जग ता भावहि मानि।
छोड़ि बासना सकल भे मुक्त तत्व हम जानि॥

(फिर कर बड़े चाव से)

अले अले अहाहा! अले छाबाछ, छाबाछ, इछ धलम्म में दोनों लोक का छुख है।

लहने को मिला घल छुन्दलछा अलु,
भोजन को मिली छुंदल नाली।

लद्दू अनेअन भोजन को मिये,
छैन के एत ऐ छेज छुखाली॥
के छलधा जुअती छब अंगन,
लाओत तेअ फुएअ छुवाली।
दै गल मैं वइयां छुख छो इमि,
वीअत है नित लात उजाली॥

करूणा : सखी, यह ताड़-सा लम्बा, बड़ा गेरुआ काछे, सिर मुंड़ा कौन है जो इधरी की ओर चला आता है?

शान्ति : सखी, यह बुद्धागम है।

भिक्षु बुद्धागम : **(ऊंचे सुर से)** अले अले उपाछकओ, अले अले भिच्छुओ, अले छुनो, भगवान छौगत का वचन छुनो—

[पुस्तक पढ़ता है]

अले भिच्छुओ, हम दिव्य चच्छु छे छब लोगों की दुलगइत छुलगइ छब देखते है अले छव छंछार छनिक है आम्मा थायी नहीं हैं, अल्ले इच्छे जोऊ के दाछ भिच्छुओछे जिय की लाअ अच्छी नईं, अले बछ बछ इन की लाअ छे **(नेपथ्य की ओर देख कर)** छलधे इधल, आना इधल।

[श्रद्धा भिछुकी बनी आती है]

श्रद्धा : आज्ञा महाराज!

भिक्षु बुद्धागम : अले उपाछको ओ भिच्छुओ छे छव्वदालपती लहु।

श्रद्धा : जो आज्ञा, महाराज।

[जाती है]

शान्ति : सखी, यह भी तामसी श्रद्धा होगी।

करुणा : सखी, ऐसा ही है।

दिगम्बर : **[भिक्षुक को देख कर बड़े ऊंचे शब्द से]** अरे अरे भिच्छुक, इठे आ, इठे आ, म्हां तोसूं कछू पूछागा।

भिक्षु बुद्धागम : **[क्रोध से]** हट पाप पिछाचकी, मूलत का वकता है।

दिगम्बर : अरे क्रोध क्यूं करै है रे। हों शस्त्ररो बिचार पूछवालो छूं।

भिक्षु बुद्धागम : अले छपनक तू छाछतल वो जानता ऐ, अच्छा देखते ऐ। **(बैठ कर)** पूछ, का पूछता ऐ।

दिगम्बर : अरे कह छन विनास वाला मतवारौ तेरो कसो ब्रत छै।

भिक्षु बुद्धागम : **[हिन्दी]** सुन छनछन में ज्ञान का नाश और उदय होता है। इस से जब कोई विज्ञान क्षन में प्रान त्याग करता है तो उस को मोक्ष होता है।

दिगम्बर : अरे मूरख, अरे जो कोई मन्वन्तर माकोई रो मोछ होवा वालो छे वा भयो तौ वह तेरो उपकार कैसे करैगो और पूछूं के यह धरम रो उपदेश कोण ने कियो छै।

भिक्षु बुद्धागम : अले छलवग्ग बुध भगोआन ने उपदेछ किआ है।

दिगम्बर : अरे बुद्धू सरवज्ञ छे यह थैने कहां सूंकाढारे।

भिक्षु : अले उन के छाछतवे छेछिद्ध है।

दिगम्बर : अरे थोरी बुद्धि के, अरे जो वाही के कहेसु सर्व्वज्ञता होती होय तो हूं भी कहूं छूं के हूं सर्व्वज्ञ छूं और हूं भले जानू छूं जो हूं सर्व्वज्ञांरो सर्व्वज्ञ छूं और थैं और थारे वाप दादे सात पुरषा म्हारे दास हैं।

भिक्षु बुद्धागम : अले पाप पिछाच, अले मैला कुचैला अले हम तेले दाछ ऐ ले॥

दिगम्बर : अरे दासियों के दास! यह तो मैंने एक दृष्टान्त दियो। और अब तेरे हित की कहूं सुन। बुद्ध को धरम छोड़ि और अर्हन्त को धरम लै।

भिक्षु बुद्धागम : अले पापी, आप नाछ हो कल दूछलों को वी नाछ कलता है।

[हिन्दी]

छोड़ि सवै घरवार कौ करि निंदित के कर्म्म।
भयो पिशाच समान तू लो जैनिन के धर्म्म॥

औल बी जैन धलम्म को छलवग्गता तैने कैछै जानी।

दिगम्बर : अरे ग्रहनक्षत्र, चन्द्र, सूर्य्य ग्रहण के ज्ञान के संवाद का देख वाही सूं भगवान अरहंत री सर्व्वज्ञता प्रगट थायेछै॥

भिक्षु बुद्धागम : (हंस कर) अले जोतिछ छाछतल तो अनादि है, न जानै किछ ने तुम लोगों को धोखा दे कल इछ धलम्म मैं लखा छै!

[हिन्दी]

है जितनो बड़ो देह को पिंडक जीवहू तैसई रूपहि धारिहै।
तासों न जानिहै और कछू निज देह ही की सब बात सम्हारिहै॥
जाकी नहीं गति दूसरे लोक मैं, सो किमि बात कहूं को बिचारिहै।
कुम्भ के भीतर दीप ढंक्यौं सो न बाहर क्यौं हूं प्रकाश पसारिहै॥

इछछे दोनों लोक–विलुद्ध जैनमत छे, छुगत भगवान ही का मत अच्छा है इछ में छन्देह कुछ नइ है।

शान्ति : सखी, चल उधर चलैं।

करुणा : चल, सखी।

[दोनों घूमती हैं]

शान्ति : सखी, देख यह सामने सोम सिद्धान्त जाता है तो चल इस के पीछे चलैं।

[कापालिक का रूप धारण किए सोम सिद्धान्त आता है।]

कापालिक : (घूम कर)

हाड़ को कंठ मैं चारू माला धरे।
मर्घटी खोपड़ी मैं अहौर करे॥
देखते जोग की दृष्ट मंझार से।
एक श्री सम्भु से भिन्न संसार से॥

दिगम्बर : अरे यह पुरुष कापालिक व्रत धारे है तौ यासूं होहूं कछु पूछूं। (पास जाकर)

वोल रे वोल कापालिक तू अरे!
हाड़ और मूड़ को कंठ माला धरे॥
कौन सो धर्म्म रे कौन सो धर्म्म है।
मोक्ष जामैं मिलै सो कसो कर्म्म है॥

कापालिक : अरे छपनक सुन जो हम लोगों का धर्म्म है।

नित सीस के काटे लहू सों भरे
चरबी लगे मांस को होम करैं।
पुनि खोपड़ी ब्राह्मण जात की
लाइ कै पारन कै हित मद्य भरैं॥
अरु काटि कै कंठ कठोर तुरन्त के
रक्तन कुम्भ भराइ धरैं।
मम देवता भैरव नाथ जू हैं
जिन्हैं पूजत लोग अनेक तरैं॥

भिक्षु बुद्धागम : (दोनों कान मूंद कर) बुद्ध बुद्ध अले बला कथिन धलम्म है।

दिगम्बर : (कान मूंद कर) अर्हन्त अर्हन्त अरे कोऊ बड़े पापी ठगिया ने या विचार कूं ठगालियो छै।

कापालिक : (क्रोध से) क्यौं रे पाप, पाखंडियों से नीच, मुंड़ मुड़े, नोचे खसोटे, अरे चौदहो भुवन के स्वामी, स्थिति उत्पत्ति प्रलय पालन करनेवाले, वेदान्त वेद्य भगवान भवानीनाथ का मत ठगों का है? क्यौं रे? अरे सुन इस मत की महिमा–

हरिहर आदिक देव गगन को बांधि मंगाऊं।
नभ पथ मैं नक्षत्रन की गति रोकि थिराऊं॥
परवत नदी समुद्र नर सह यह धरती।
इक प्याले में घोरि पिऊं यह सुनि मम करनी॥

दिगम्बर : अरे कपालिया, सोई तौ कहूं छूं कै काहू इन्द्रजाल वाले ने तोकूं इन्द्र जाल दिखाइ कै भरमाइ दियौ छै।

कापालिक : अरे पापी, फिर भी भगवान पर इन्द्रजाल वाले का आक्षेप करता है? तौ अब इस का घमंड दूर करना चाहिए। **(खड्ग खींच कर)** तो अब मैं–

अहो खींच कै खड्ग की तीक्ष्ण धारैं।
गरौ काटि कै दुष्ट को मारि डारैं॥
लग्यौं फेन ताजो लहू यासु लेहौं।
अवै हौं भवानी भवै तृप्ति दैहौं॥

[खड्ग लेकर दौड़ता है]

दिगम्वर : (डर से) महाभाग 'अहिंसा परमो धर्म्मः।'

[भिक्षुक की गोद में छिपता है]

भिक्षुक : (कापलिक को निवारण करके) महालाज महालाज, हंछी की बकवाद में इछ तपच्छी को बध उचित नहीं है।

[कापालिक खड्ग मियान में रखता है]

दिगम्वर : (फिर उठ कर) जो महाराज रों क्रोध शान्त भयो होय तो हौं कछू पूछिबे की इच्छा करूं छूं॥

कापालिक : पूछ क्या पूछता है!

दिगम्वर : आप को धरम्म तौ सुन्यौं पर मोक्ष को सुख कशो होय छै?

कापालिक : सुन।

है न कछू बिन भोग के या जग कौन जो दूसरो सुक्ख बातावै।
मानि कै वेद न ज्ञानहि छांड़ि कै ह्वै पथरा निज मुक्ति बनावै॥
पारबती सम प्यारिन सों बिहरैं रति मैं मुख सों सुख लावै।
ह्वै शिव नाचै अनन्द भरो जग में सुख सो जिन काल बितावै॥

भिक्षुक : महालाज, बैलागिओ को तो ऐछी मुत्ति न अच्छी लगेगी।

दिगम्वर : अरे खप्परवारे, जो तू रीसै न तौ हौं यह पूछूं जो शरीर और प्रेम दोऊ होते हू मुक्ति तौ वेद में नहीं।

कापालिक : (आप ही आप) अरे, इनके चित्त में तनिक भी श्रद्धा नहीं है। अच्छा देखो (प्रकाश) श्रद्धे, इधर तो आना।

[कपालिनी बनी हुई श्रद्धा आती है]

करुणा : सखी, देख यह रजोगुण की बेटी श्रद्धा है।

दृगजुग अलसाने कंज से नील सोहैं।
जुवजन गलमाला अस्थि की देखि मोहैं॥
कुच अरु उरु भारैं चाल धीरी लई है।
मुख छवि यह देखौ चन्द की सी भई है॥

श्रद्धा : (घूम कर) रावलजी, मैं आई। कहिये क्या आज्ञा है।

कापालिक : प्यारी, पकड़ तौ इस भिक्षुक को।

[श्रद्धा भिक्षुक को लपट जाती है]

भिक्षुक : **(लपट कर और रोमांच दिखा कर)** वाहले, कपालिनी का लपतने का छुख।

[हिन्दी में]

वार अनेकन रंडन को हम लै निज कंठ लगायो।
चूमि मुखै गल मैं भुज डालि सदा निज जन्म बितायो॥
औरहु भोग अनेक किए कुच वारिन को लपटायो।
जो सुख मोहिं कपालिनि दीनन सो कबहूं हम पायो॥

अले कपालिक चलित्त वाला पवित्तल ऐ, अहाहा अले छोम छिद्धान्त इच्छा कलने के जोग ऐ, अले यह बला अचलज धलम ऐ। महालाज, हमने आजछें बुद्ध का मत छोआ औल कौल धलम्म लिया, आप हमाले आचालज हो; हम आप के छिछ भये, छो अब हम को पलमेछुली दिच्छा दीजिये।

दिगम्बर : अरे भिक्षुक, तू अबी कपालिनी के संग सूं दूषित होय गयो सो दूर हट।

भिक्षुक : अले दिगंबल, तू अबी कपालिनी का छुख का जानै।

कापालिक : प्यारी, पकड़ इसको भी।

[श्रद्धा दिगम्बर को लपटती है]

दिगम्बर : **(रोमांचित होकर)** अहाहा! वाह रे! कपालिनी गल लगवारो सुख, अरी सुन्दरी, एक बार फेर गरे सूं लपटिजा **(स्वगत)** अरे ऐसी, समय नांगो रहिबो उचित नहीं, तासू लंगोटी लगाय लेऊं तो ठीक परै **(लंगोटी कस कर)** अहाहा! **(गाता है)**

अरे सुण पीणपयोधर बारी।
थारे इन नेणां री सोभा मृगन लजावनहारी॥
री कपालिनी जौं तू म्हासूं रमण करै मिलि प्यारी।
तौ सरावगिणि और जतिणरो काम कछू न यहां री॥

अरे कपालिक रो दरसनही मोच्छ को सुख छै अरे आचारज, हूं थारो सेवक छूं, हम कूं भैरवी दिच्छा ध्यान सूं दै।

कापालिक : अच्छा बैठो।

[दोनों बैठते हैं। कापालिक हाथ में बोतल लेकर ध्यान करता है]

श्रद्धा : रावलजी, बोतल मद से भर गया।

[कापालिक देख कर और कुछ पीकर शेष भिक्षुक को देता है]

यह पवित्र भवभयहरण, अमृत पियो इक साथ।
करम पास यासों कटत, भाखत भैरवनाथ॥

[दोनों कुछ संकोच करते हैं]

दिगम्बर : अरे। म्हारे अर्हन्तानुशासन में मद पीवारी आज्ञा तौ कोई नहीं।

भिक्षुक : अले कपालिक की जूथी मदिला कैछे पियैंगे?

कापालिक : क्या सोचते हो? श्रद्धे, इन दोनों का पशुत्व अब भी नहीं गया। ये हमारे पीने से मदिरा को जूठी समझते हैं, इस से तू अपने अधर के रस से इस को पवित्र करके इन दोनों को दे, क्योंकि कथा वाले भी कहते हैं 'स्त्रीमुखं तु सदा शुचि।'

श्रद्धा : महाराज की जो आज्ञा। **(आप पीकर बोतल भिक्षुक को देती है)**

भिक्षुक : महापछाद है **(बोतल लेकर पीता है) अहा कैछी छुंदल दुधिया ऐ।**

बहुबार बार बधून के संग पान हम मद को कर्यौ।
जो अधर मधु के संग मौलसिरी सुगंधन सो भर्यौ॥
यह तौ सुवासित आप जोगिन बदन संगम जानही।
जेहि जानि दुरलभ देवगन लै अमृत बहु सुख मानही॥

दिगम्बर : अरे भिक्षुक, सब आप ही आप मत पी जा। कपालिनी री जूठी मीठी मदिरा थोड़ी म्हारे कूं बी तो छोड़।

[भिक्षुक दिगम्बर को बोतल देता है]

दिगम्बर : (पीकर) अहाहा, वाह रे या मदिरा की मिठास। वाह रे स्वाद वाह रे सुगंध, वाह रे मादकता! अरे मैं तौ अर्हन्त के मत में रह्यौ, सौं ऐसी मदिरा बिना बहुत ही ठग्यौ गयो रे। अरे भिक्षुक मेरो तौ माथो घूमै छे तासो हूं तौ सोऊंगो॥

भिक्षुक : बहुत थीक ऐ।

[दोनों लेटते हैं]

कापालिक : प्यारी, यह आज बिना मोल के दो दास मिले हैं तौ उठ इस आनन्द में हमलोग नृत्य करैं।

[दोनों नाचते हैं]

दिगम्बर : अरे भिक्षुक, यह कपालिक, अरे हौं भूल्यो, आचारज कपालिनी के संग नाच रह्यौ छै तौ हम दोऊ क्यों न नाचैं।

भिक्षुक : थीक ऐ।

(दोनों नाचते हैं)

[दिगम्बर ''अरे सुण पीणपयोधरवारी...'' यह गाता है और गिरता गिरता नृत्य करता है]

भिक्षुक : आचालज! इछ मत में यह अचलज है कि बिना पलिछलम ही छब छिद्धि मिलती है।

कापालिक : अरे तूने इस में आश्चर्य क्या समझा?
जाहि विलोकौं बनै सोई सिद्ध धरुं निज चित्त जो सोई करौं।
अरु कामकलान की बातैं अनेक पढ़ाइ सिखाइ के कष्ट हरौं॥
पुनि मोहन मारन कर्षन थंभन आदि अनेकन सिद्धि भरौं।
वह कौन-सी कामना जौ न मिलै जिय यामैं कछू न सन्देह धरौं॥

दिगम्बर : अरे कापालिक, **(कुछ ठहर कर)** नहीं आचरज वा आचार्ज रावलजी श्री अचारजजी महाराज।

भिक्षुक : अले इछ विचाले तपछली ने कबी मद पान तो कियाई नई था, इच्छे बावला ओ गया ऐ। महालाज, आप इछका मद उताल दीजिये।

कापालिक : ठीक है।

(अपने जूठे पान की सीठी देता है)

दिगम्बर : **(खाकर और स्वस्थ होकर)** आचार्य्य, हों यह पूछूं के जैसी या मदिरा में आहरण सिद्धि छे वैसी स्त्री पुरुष के आहरण मैं छे के नहीं।

कापालिक : अरे, यह क्या पूछता है, देख।
सुर मुनि विद्याधर की नारी।
यक्ष रक्ष किन्नर की प्यारी॥
स्वर्ग भूमि पाताल छिपाई।
भोगैं सब विद्या बल लाई॥

दिगम्बर : **(कुछ उंगलियों पर गिनकर)** सुणौ सुणौ अरे हमने गनित सूं जान्यौ के हम सब महामोह के किंकर हैं।

दोनों. : **(स्मरण आना नाट्य करके)** ठीक है आपने बहुत ठीक समझा है।

दिगम्बर : तो अब राजा को कछु काम करौ।

कापालिक : वह क्या?

दिगम्बर : धर्म्म री बेटी श्रद्धा कूं पकड़ कै महाराजरे पास लै चलो।

कापालिक : बोल यह दासी की पुत्री कहां है, अभी उस को विद्या के बल से खींच मंगाता हूं।

[दिगम्बर खड़ी लेकर गणित करता है]

शान्ति : सखी, देख यह सब माता की बात करते हैं। इस से कान लगाकर सुनना चाहिए।

करुणा : सखी ठीक है।

[दोनों सुनती हैं]

दिगम्बर : **(विचार कर)**
नहीं जल थल पाताल मैं, गिरवर हूं मैं नाहिं।
कृष्ण भक्ति के संग वह, बसत साधु चित माहिं॥

करुणा : सखी, बधाई है! सुन तेरी मां श्रद्धा श्रीकृष्ण की भक्ति महारानी के संग है।

[शान्तिः हर्ष नाट्य करती है]

कापालिक : और कामदेव के डर से भागकर धर्म्म कहां छिपा है?

[दिगम्वर : गिरकर "नहिं जल थल..." फिर से पढ़ता है]

कापालिक : **(सोच से)** हा महाराज के वुरे दिन आए।

हरिभक्ति सवै कछु सिद्ध करे।
सरधा सतकन्या का दोस हरै॥
पुनि धर्म्म हूं सो कर छूटि गयो।
सवही विधि हाय अनर्थ भयो॥

जो होय प्राण रहै तक तो स्वामी का काम साधना ही है, तौ अब हम महाभैरवी विद्या का प्रयोग करकं धर्म्म और श्रद्धा को खींचते हैं।

[चारों जाते हैं]

शान्ति : सखी, चल हम लोग भी इन पापियों का मनोरथ देवी विष्णु भक्ति से कहैं।

[दोनों जाती हैं]

(जवनिका गिरती है)

इति श्रीप्रबोधचन्द्रोदय नाटक में पाखंड विडंवन नाम यह तीसरा खेल समाप्त हुआ।

[कवि कृष्ण के 'प्रवोधचन्द्रोदय' नाटक के तीसरे अंक का अनुवाद]

धनंजय विजय

(व्यायोग)

सन 1874 ई.

धनंजय विजय

(व्यायोग)

श्री नारायण उपाध्याय के पुत्र
श्री कवि कांचन
का बनाया

हिन्दी भाषा के रसिकों के आनन्दार्थ
श्री हरिश्चन्द्र
ने मूल गद्य के स्थान में गद्य और छन्द के स्थान में छन्द में
अनुवाद किया

बनारस
मेडिकल हाल के छापेखाने में छापी गई।

सन 1874 ई.

प्यारे!

निश्चय इस ग्रन्थ से तो तुम बड़े प्रसन्न होगे क्योंकि अच्छे लोग अपनी कीर्ति से बढ़कर अपने जन की कीर्ति से संतुष्ट होते हैं तो इस हेतु इस होली के आरम्भ के त्यौहार माघी पूर्णिमा में हे धनंजय और निधनंजय के मित्र। यह धनंजय विजय तुम्हें समर्पित है स्वीकार करो।

तुम्हारा
हरिश्चन्द्र

विदित हो कि यह जिस पुस्तक से अनुवाद किया गया है वह संवत 1527 की लिखी है और इसी से बहुत प्रामाणिक है, इस से इस के सब पाठ उसी के अनुसार रक्खे हैं।

धनंजय विजय

व्यायोग

(नांदी आशीर्वाद पढ़ता है)

हरेर्लीली वराहस्य द्रंष्ट्रादण्डः स पातु वः।
हेमाद्रिकलशा यत्र धात्री छत्रक्षियं दधौ॥

सूत्रधार आता है–

सूत्रधार : चारों ओर देख कर वाह वाह प्रातःकाल की कैसी शोभा है।

(भैरव)

भोर भयो लखि काम मातु श्रीरुकमिनी महलन जागी।
विकसे कमल उदय भयो रवि को चकई अति अनुरागी॥
हंस हंसीनी पंख हिलावत सोइ पटह सुखदाई।
आंगन धाइ धाइ कै भंवरी गावत केलि बधाई॥

(आगे देख कर) अहा शरद ऋतु कैसी सुहावनी है।

(भैरव) (वा ठुमरी)

सबको सुखदाई अति मन भाई शरद सुहाई आई है।
कूजत हंस कोकिला फूले कमल सरनि सुखदाई है॥
सूखे पंक हरे भए तरुवर दुरे मेघ मग भूले।
अमल इंदु तारे भए सरिता कूल कास-तरु फूले॥
निर्मल जल भयो दिसा स्वछ भई सो लखि अति अनुरागे।
जानि परत हरि शरद विलोकत रतिश्रम आलस जागे॥

(नेपथ्य की ओर देख कर) यह चिट्ठी लिए कौन आता है।

[एक मनुष्य चिट्ठी लाकर देता है]

[सूत्रधार खोलकर पढ़ता है]

परम प्रसिद्ध श्री महाराज जयदेव जी

दान देन मैं समर मैं जिन न लही कहुं हारि।
केवल जग में विमुख किय जाहि पराई नारि॥
जाके जिय में तूल सो तुच्छ दोय निरधार।
खीझे अरि को प्रबल दल रीझे कनक पहार॥

[वह प्रसन्न होकर रंगमंडन नामक नट को आज्ञा करते हैं।]

अलसाने कछु सुरत श्रम अरुन अधखुले नैन।
जगजीवन जागे लखहु नैन रमा चित चैन॥
शरद देखि जब जग भयो चहुंदिसि महा उछाह।
तौ हमहूं को चाहिए, मंगल करन सचाह॥

इस्से तुम वीर रस का कोई अद्भुत रूपक खेल कर मेरे गदाधर इत्यादि साथियों को प्रसन्न करो।

ऐसा कौन सा रूपक है (स्मर्ण करके) अरे जाना।

कवि मुनि के सब शिशुन को धारि धाय सी प्रीति।
सिखवत आप सरस्वती नित बहु बिधि की नीति॥
ताही कुल में प्रगट भे नारायन गुनधाम।
लस्यो जीति बहु वादिगन जिन बादीश्वर नाम॥
अभय दियो जिन जग को धारि जोग संन्यास।
पै भय इक रबि कों रही मंडल भेदन त्रास॥
तिनके सुत सब गुन भरे कविवर कांचन नाम।
जाकी रसना मनु सकल विद्यागन की धाम॥

तो उस कवि का बनाया धनंजय विजय खेलैं।

(नेपथ्य की ओर देखकर) यहां कोई है।

[पारिपार्श्वक आता है]

पारिपार्श्वक : कौन नियोग है कहिए।

सूत्रधार : धनंजय विजय के खेलने में कुशल नटवर्ग को बुलाओ।

पारिपार्श्वक : जो आज्ञा। (जाता है)

सूत्रधार : [पश्चिम की ओर देख कर]

सत्य प्रतिज्ञा करन कों छिप्यौ निशा अज्ञात।
तेजपुंज अरजुन सोई रवि सो कढत लखात॥

[विराट के अमात्य के साथ अरजुन आता है]

अरजुन : (उत्साह से) दैव अनुकूल जान पड़ता है क्यौंकि–

जो लताहि खोजत रहै मिलै सु पगतल आइ।
बिना परिश्रम तिमि मिल्यौ तिमि कुरुपति आपुहि धाइ॥

सूत्रधार : (हर्ष से देख कर) अरे यह शामलक तो अरजुन का भेस लेकर आ पहुंचा तो अब मैं और पात्रों को भी चलकर बनाऊं।

[जाता है]

॥इति प्रस्तावना॥

अरजुन : (हर्ष से)

गोरक्षन रिपु-मान-बध नृप विराट को हेत।
समर हेत इक बहुत सब भाग मिल्यौ या खेत॥
और भी
वहै मनोरथ फल सुफल वहै महोत्सव हेत।
जो मानी निज रिपुन सों अपुना बदलो लेत॥

अमात्य : देव यह आप के योग्य संग्राम-भूमि नहीं है–

जिन निवात कवचन बध्यौ कालकेय दिय दाहि।
शिव तोख्यौ रनभूमि जिन ये कौरव कह ताहि॥

अरजुन : वाह सुयोधन वाह! क्यौं न होय।

लह्यौ बाहुबल जीति कै जो तुव पुरुखन राज।
सो तुम जूआ खेलि कै जीत्यौ सहित समाज॥
अब भीलन की भांति इमि छिपि कै चोरत गाय।
कुल गुरु ससि तुव नीचपन लखि कै रह्यौ लजाय॥

अमात्य : देव!

जदपि चरित कुरुनाथ के ससि सिर देत झुकाय।
तऊ रावरो विमल जस राखत ताहि उचाय॥

अरजुन : (कुछ सोच कर) कुमार नगर के पास धरे हुए शस्त्रों को लेने रथ पर बैठ कर गया है सो अब तक क्यौं नहीं आया?

[उत्तरकुमार आता है]

कुमार : देव आप की आज्ञानुसार सब कुछ प्रस्तुत है, अब आप रथ पर विराजिए।

अरजुन : (शस्त्र बांधकर रथ पर चढ़ना नाट्य करता है)

अमात्य : (विस्मय से अरजुन को देख कर)

रनभूषन भूषित सुतन गत दूषन सब गात।
सरद सूर सम घन रहित सूर प्रचंड लखात।।

(नायक से)

दच्छिन खुरमहि मरदि हय गरजहिं मेघ समान।
उडि रथ धुज आगे बढ़हिं तुव बस विजय निसान।।

अरजुन : अमात्य! अब हम गऊ छुड़ाने जाते हैं। आप नगर में जाकर गो हरण से व्याकुल नगर वासियों को धीरज दीजिए।

अमात्य : महाराज जो आज्ञा (जाता है)।

अरजुन : (कुमार से) देखो गऊ दूर न निकल जाने पावैं घोड़ों को कस के हांको।

कुमार : (रथ हांकना नाट्य करता है)

अरजुन : (रथ का वेग देख कर)

लीकहु नहिं लखिपरत चक्र की ऐसे धावत।
दूर रहत तरु वृंद छनक मैं आगे आवत।।
जदपि वायु बल पाइ धूरि आगे गति पावत।
पै हय निज खुर वेग पीछहीं मारि गिरावत।।
खुर मरदित महि चूमहिं मनहु धाइ चलहिं जब बेग गति।
मनु होड़ जीत हित चरन सों आगेहि मुख बढ़िजात अति।।

(नेपथ्य की ओर देख कर) अरे अरे अहीरो सोच मत करो क्योंकि

जबलौं बछरा करुना करि महि तृन नहिं खै है।
जबलौं जननी बाट देखि कै नहिं डकरैहैं।।
जबलौं पय पीअन हित वे नहिं व्याकुल ह्वै हैं।
ताके पहिलेहि गाय जीति कै हम ले ऐहैं।।

(नेपथ्य में) बड़ी कृपा है।

कुमार : महाराज! अब ले लिया है कौरवों की सेना को क्योंकि

हय खुररज सों नभ छयो वह आगे दरसात।
मनू प्राचीन कपोलगत सान्द्र सुरुचि सरसात॥
कविवर मद धारा तिया रमत रसिक जो पौन।
सोई केलिमद गंधलै करत इतैही गौन॥

अरजुन : वह देखो कोरवौं की सेना दिखा रही है।

चपल चंवर चहुंओर चललिं सित छत्र फिराहीं।
उड़हिं गीधगन गगन जबै भालै चमकाहीं॥
घोर संख के शब्द भरत बन मृगन डरावति।
यह देखौ कुरुसैन सामने धावति आवति॥

[बांह की ओर देख कर उत्साह से]

बनबन धावत सदा धूर धूसर जो सोहीं।
पंचाली गल मिलत हेतु अबलौं ललचौंही॥
जो जुवती जन बाहु बलय मिलि नाहिं लजांही।
रिपुगन! ठाढ़े रहौ सोई मम भुज फरकांही॥

(नेपथ्य में)

फेरत धनु टंकारि दरप शिव सम दरसावत।
साहस को मनु रूप काल सम दुसह लखावत॥
जय लक्ष्मी सम वीर धनुष धरि रोस बढ़ावत।
को यह जो कुरुपतिहि गिनत नहिं इतहीं आवत॥

[दोनों कान लगा कर सुनते हैं]

कुमार : महाराज यह किस के बड़े गम्भीर वचन हैं?
अरजुन : हमारे प्रथम गुरु कृपाचार्य्य के।

(फिर नेपथ्य में)

शिव तोषन खांडव दहन सोई पांडव नाथ।
धनु खींचत घट्टा पड़े दूजे काके हाथ॥
छूटि गए सब शस्त्र तबौं धीरज उर धारे।
बाहु मात्र अवशेष दुगुन हिय क्रोध पसारे॥
जाहि देखि निज कपट भूलि स्वै प्रगट पुरारी।
साहस पैं बहु रीझि रहे आपुन पौहारी॥

अरे यह निश्चय अरजुन ही है, क्योंकि—

सागर परम गंभीर नघ्यौ गोपद सम छिन मैं।
सीता विरह मिटावन की अद्भुत मति जिन मैं॥
जारी जिन तृन फूस हूस सी लंका सारी।
रावन गरब मिटाइ हने निसिचर बल भारी॥
श्रीराम प्रान सम, बीर वर, भक्तराज सुग्रीव प्रिय।
सोइ वायु तनय धुज बैंठि कै गरजि डरावत शत्रु हिय॥

(दोनों सुनते हैं)

कुमार : आयुष्मान

भरी वीर रस सों कहत चतुर गूढ़ अति बात।
पक्षपात सुत सो करत को यह तुम पैं तात॥

अरजुन : कुमार! यह तो ठीक ही है, पुत्र सा पक्षपात करता है यह क्या कहते हौ! मैं आचार्य्य का तो पुत्र ही हूं।

(नेपथ्य में)

करन! गहौ धनु वेग, जाहु कृप! आगें धाई।
द्रोन! अस्त्र भृगुनाथ लहे सब रहो चढ़ाई॥
अश्वत्थामा! काज सबै कुरुपति को साधहु।
दुरमुख! दुस्सासन! विकर्ण! निज व्यूहन वांधहु॥
गंगा-सुत शांतनु-तनय वर भीष्म क्रोध सो धनु गहत।
लखि शिव शिक्षित रिपु सामुहें तानि बान छांड़ो चहत॥

अरजुन : (आनंद से) अहा! यह कुरुराज अपनी सैन्य को बढ़ावा दे रहा है।

कुमार : देव! मैं कौरव योधाओं का स्वरूप और बल जानना चाहता हूं।

अरजुन : देखो इस के ध्वजा के सर्प के चिह्न ही से इस की टेढ़ाई प्रगट होती है।

चंद्र वंश को प्रथम कलह अंकुर एहि मानौ।
जाके चित सौजन्य भाव नहिं नेकु लखानौ॥
विष जल अगिन अनेक भांति हमको दुख दीनो।
सो यह आवत ढीठ लखौ कुरुपति मति हीनो॥

कुमार : और यह उस के दाहिनी ओर कौन है।

अरजुन : (आश्चर्य्य से)

जिन हिडंब अरि रिसि भरे लखत लाज भय खोय।
कृष्णापट खींच्यौ निलज यह दुस्साहन सोय॥

कुमार : अब इस से बढ़ कर और क्या साहस होगा।

अरजुन : इधर देखो (हाथ जोड़ कर प्रणाम करके)

कंचन वेदी बैठि बड़ोपन प्रगट दिखावत।
सूरज को प्रतिबिम्ब जाहि मिलि जाल तनावत॥
अस्त्र उपनिषद भेद जानि भय दूर भजावत।
कौरव कुल गुरु पूज्य द्रोन आचारज आवत॥

कुमार : यह तो वड़े महानुभाव से जान पड़ते हैं।

अरजुन : इधर देखो।

सिर पैं वांकी जटा जूट मंडित छबि धारी।
अस्त्र रूप मनु आप दूसरो दुसह पुरारी॥
शत्रुन को नित अजय मित्र को पूरन-कामा।
गुरु सुत मेरो मित्र लखौ यह अश्वत्थामा॥

कुमार : हां और बताइए।

अरजुन : धनुर्वेद को सार जिन घट भरि पूरि प्रताप।
कनक कलशधरि धुज धर्‍यौ सो कृप कुरु गुरु आप॥

कुमार : और यह कुरुराज के सामने लड़ाई के हेतु फेंट कसे कौन खड़ा है।

अरजुन : (क्रोध से)

सब कुरुगन को अनय बीज अनुचित अभिमानी।
भृगुपति छलि लहि अस्त्र वृथा गरजत अघखानी॥
सूत सुअन बिनु बात दरप अपनो प्रगटावत।
इन्द्रशक्ति लहि गर्व भरो रन कों इत आवत॥

कुमार : (हंस कर) इनका सब प्रभाव घोष यात्रा में प्रगट हो चुका है (दूसरी ओर दिखाकर) यह किस का ध्वज है।

अरजुन : (प्रणाम करके)

परतिय जिन कबहूं न लखी निज व्रतहि दृढ़ाई।
श्वेत केस मिस सो कीरति मनु तन लपटाई॥

परशुराम को तोष भयो जा सर के त्यागे।
तौन पितामह भीष्म लखौ यह आवत आगे॥

सूत! घोड़ों को बढ़ाओ।

[नेपथ्य में]

समर विकोलन कों जुरे चढ़ि बिमान सुर धाइ।
निज बल बाहु विचित्रता अरजुन देहु दिखाइ॥

[इन्द्र, विद्याधर और प्रतिहारी आते हैं]

इन्द्र : (आश्चर्य्य से)

बातहु सों झगरै बली तो निबलन भय होय।
तौ यह दारुन युद्ध लखि क्यौं न डरैं जिय खोय॥
एक रथी इक ओर उत बली रथी समुदाय।
तौहू सुत तू धन्य अरि इकलो देत भजाय॥

कुमार : आगे देख कर देव कौरवराज यह चले आते हैं।

अरजुन : तो सब मनोरथ पूरे हुए।

(रथ पर बैठा दुर्योधन आता है)

दुर्योधन : (अरजुन को देख कर क्रोध से)

बहु दुख सहि बनवास करि जीवन सों अकुलाय।
मरन हेतु आयो इतै इकलो गरब बढ़ाय॥

अरजुन : (हंस कर)

काल केय वधिकै निवातकवचन कहं मार्यो।
इकले खांडव दाहि उमापति युद्ध प्रचार्यौ॥
इकले ही बल कृष्ण लखत भगिनी हरि छीनी।
अरजुन की रन नांहि नई इकली गति लीनी॥

दुर्योधन : अब हंसने का समय नहीं है क्योंकि अंधाधुंध घोर संग्राम का समय है।

अरजुन : (हंस कर)

दूर रहौ कुरुनाथ नाहि यह छल जूआ इत।
पापी गन मिलि द्रौपदि को दासी कीनी जित॥
यह रण जूआ जहां बान पासे हम डारैं।
रिपु-गन सिर की गोंट जीति अपुने वल मारैं॥

दुर्योधन : (क्रोध से)

चूड़ी पहिरन सों गयो तेरो सर अभ्यास।
नर्त्तन साला जाव किन इत पौरुष परकास॥

कुमार : (मुंह चिढ़ाकर) आर्य्य यह आप ठीक कहते हैं कि इनका बहुत दिन से धनुष चलाने का अभ्यास छूट गया है।

जब बन मैं गंधर्व गनन तुमकों कसि बांध्यौ।
तव करि अग्रज नेह गरजि जिन तहं सर साध्यौ॥
लीन्हौ तुम्है छुड़ाइ जीति सुर गन छिन मांही।
तव तुम सर अभ्यास लख्यौं बिहबल स्वै नांही॥

विद्याधर : देव यह बालक बड़ा ढीठ है।
इन्द्र : क्यौं न हो राजा का लड़का है।
दुर्योधन : सूत! ब्राह्मणों की भांति इस कोरी बकवाद से फल क्या है। यह पृथ्वी ऊंची नीची है इस से तुम अब समान पृथ्वी पर रथ ले चलो।
अरजुन : जो कुरुराज की इच्छा (दोनों जाते हैं)
विद्याधर : (अरजुन का रथ देख कर) देव!

तुव सुत रथ हय खुर बढ़ी समर धूरि नभ जौन।
अरि अरनी मन्थन अगिनि धूम लेखसी तौन॥

इन्द्र : क्यौं न हो तुम महा कवि हौ।
विद्याधर : देव! देखिए अरजुन के पास पहुंचते ही कौरवों में कैसा कोलाहल पड़ गया देखिए।

हाय हिन हिनात अनेक गज सर खाइ घोर चिकारहीं।
बहु बजहिं बाजे मार धरु धुनि दपटि बीर उचारहीं॥
टंकार धनुकी होत घंटा बजहि सर संचारहीं।
सुनि सबद रन को बरन पति सुरबधू तन सिंगारहीं॥

प्रतिहारी : देव! केवल कोलाहल ही नहीं हुआ वरन् आप के पुत्र के उधर जाते

ही सब लोग लड़ने को भी एक संग उठ दौड़े देव! देखिए अरजुन ने कान तक खींच खींच कर जो बान चलाए हैं उस्से कौरव सेना में किसी के अंग भंग हो गए हैं किसी को धनुष दो टुकड़े हो गए हैं किसी कि सिर कट गए हैं, किसी की आंखैं फूट गई हैं, किसी की भुजा टूट गई है किसी की छाती घायल हो रही है।

इन्द्र : (हर्ष से) वाह बेटा अब ले लिया है।

विद्याधर : अब देखिए देखिए।

गज जूथ सोई घन घंटा मद धार धारा सरतजे।
तरवार चमकनि बीजु की दमकनि गरज बाजन बजे॥
गोली चलैं जुगनू सोई बक-वृन्द ध्वज बहु सोहई।
कातर बियोगिन दुखद रन की भूमि पावस नभ भई॥
तुव सुत सर सहि मद गलित, दन्त केतकी खोय।
धावत गज जिन के लखे हथिनी को भ्रम होय॥

इन्द्र : (सन्तोष से)

हर सिच्छित सर रीति जिन कालकेय दियदाहि।
जो जदुनाथ सनाथ कह कौरव जीतन ताहि।

प्रतिहारी : महाराज देखैं।

कटे कुंड सुंडन के रुंड मैं लगाय तुंड झुंड मुंड पान करैं लेहू भूत चेटी हैं।
घोड़न चबाइ चरबीन सों अघाय मेटी, भूख सब मरे मुरदान मैं समेटी हैं॥
लाल अंग कीने सीस हाथन में लीने अस्थि, भूखन नवीने आंत जिनपै लपेटी हैं।
हरख बढ़ाय आंगुरीन को नचाय पियैं, सोनित पियासी सी पिसाचन की बेटी हैं॥

विद्याधर : देव देखिए।

हिंलन धुजा सिर ससि चमक मिलि कै व्यूह लखात।
तुव सुत सर लगि घूमि जब गरज गन मंडल खात॥

इन्द्र : (आनन्द से देखता है)

प्रतिहारी : देव देखिए देखिए आप के पुत्र के धनुष से छूटे हुए बानों से मनुष्य और हाथियों के अंग कटने से जो लहू की धारा निकलती है उसे पी पी कर यह जोगिनिये आप के पुत्र ही की जीत मनाती हैं।

इन्द्र : तो जय ही है क्यौंकि इनकी असीस सच्ची है।

विद्याधर : (देख कर) देव अब तो बड़ा ही घोर युद्ध हो रहा है देखिए।

विरचि नली गज सुंड की काटि काटि भट सीस।
रूधिर पान करि जोगिनी विजयहि देहिं असीस।।
टूटि गई दोउ भौंह स्वेद सों तिलक मिटाए।
नयन पसारे लाल क्रोध सों ओठ चबाए।।
कटे कुंडलन मुकुट बिना श्रीहत दरसाए।
वायु वेग बस केस मूछ दाढ़ी फहराए।।
तुव तनय बान लगि बैरि सिर एहि विधि सों नभ में फिरत।
तिन संग काक अरु कंक वहु रंक भए धावत गिरत।।

(बड़े आश्चर्य्य से इधर उधर देख कर) देव देखिए।

सीस कटे भट सोहहीं नैन जुगल बल लाल।
वरहिं तिनहिं नाचहिं हंसहिं गावहिं नभ सुर बाल।।

इन्द्र : (हर्ष से) मैं क्या क्या देखूं मेरा जी तो बावला हो रहा है।

इत लाखन कुरु संग लरत इकलो कुंती नंद।
उत वीरन को वरन कों लरहिं अप्सरा बूंद ।।

विद्याधर : ठीक है (दूसरी ओर देख कर) देव इधर देखिए।

लपटि दपटि चहुं दिसन बाग बन जीव जरावत।
ज्वाला माला लोल लहर धुज से फहरावत।।
परम भयानक प्रगट प्रलय सम समय लखावत।
गंगा सुत कृत अगिन अस्त्र उमग्यो ही आवत।।

प्रतिहारी : देव! मुझें तो इस कड़ी आंच से डर लगती है।

विद्याधर : भद्र! व्यर्थ क्यों डरता है भला अरजुन के आगे यह क्या है? देख।

अरजुन ने यह बरुन अस्त्र जो वेगि चलायो।
तासों नभ मैं घोर घटा को मंडल छायो।।
उमडि उमडि करि गरज बीजुरी चमक डरायो।
मुसलधार जल बरसि छिनक मैं ताप बुझायो।।

इन्द्र : बालक बड़ा ही प्रतापी है।

प्रतिहारी : देव! राधेय ने यह भुजंगास्त्र छोड़ा है देखिए अपने मुखों से आग

सा विष उगलते हुए अपने सिर की मणियों से चमकते हुए इन्द्रधनुष से पृथ्वी को व्याकुल करते हुए देखने हुए देखने ही से वृक्षों को जलाते हुए ये कैसे-कैसे डरावने सांप निकले चले जाते हैं।

विद्याधर : (देख कर)

दुष्ट मनोरथ सरिस लसै लांबे दुखदाई।
टेढ़े जिमि खल चित्त भयानक रहत सदाई॥
बमत वदन विष निन्दक सो मुख कारिख लाए।
अहिगन नभ मैं लखहु धाइ कै चहुं दिस छाए॥

इन्द्र : क्या खांडव वन का बैर लेने आते हैं?

विद्याधर : आप शोच क्यों करते हैं देखिए अरजुन ने गरुड़ास्त्र छोड़ा है।

निज कुल गुरु तुव पुत्र सारथिहि तोष बढ़ावत।
झपटि दपटि गहि अहिन टूक करि नास मिलावत॥
बादर से उड़ि चींखि चींखि दोउ पंख हिलावत।
गरुड़न को गन गगन छयो अहि हियो डरावत॥

इन्द्र : (हर्ष से) हां तब।

प्रतिहारी : देखिए यह दुर्योधन के वाक्य से पीड़ित होकर द्रोणाचार्य्य ने आप के पुत्र पर वरुणास्त्र छोड़ा है।

विद्याधर : (देख कर) वैनायक अस्त्र चल चुका है, देखिए।

रंगे गंड सिन्दूर सो घहरत घंटा घोर।
निज मद सों सींचत धरनि गरजि चिकारहिं जोर॥
सूंड फिरावत सीकरन धावत भरे उमंग।
धावत आवत घन सरिस मरदत मनुज मतंग॥

इन्द्र : तब तब।

विद्याधर : तब अरजुन ने नरसिंहास्त्र छोड़ा है देखिए।

गरजि गरजि जिन छिन मैं गर्भिनि गर्भ गिरायो।
काल सरिस मुख खोलि दांत बाहर प्रगटायो॥
मारि थपेड़न गंड सुंड को मांस चबायो।
उदर फारि चिक्कारि रुधिर पौसरा चलायो॥
करि नैन अगिनि सम मोछ फहराइ पोंछ टेढ़ी करत।
गल केसर लहरावत चल्यौ क्रोधि सिंहदल दल दलत॥

इन्द्र : तो अब जय होने में थोड़ी ही देर है।
विद्याधर : देव! कहिए कि कुछ भी देर नहीं है।

गंगा सुत के बधि तुरग द्रोनसूत हति खेत।
करन रथहि करि खंड बहु कृप कहं कियो अचेत॥
और भजाई सैन सब द्रोन सुवन धनु काट।
तुव सुत जोहत अब खड़ो दुरजोधन की बाट॥

प्रतिहारी : दुर्योधन का तो बुरा हुआ।
विद्याधर : नहीं।

व्याकुल तुव सुत बान सों विमुख भयो रनकाज।
मुकुट गिरन सों क्रोध करि फिर्‌यौ फेर कुरुराज॥

(नेपथ्य में)

सुन सुन कर्ण के मित्र।
सभा मांहि लखि द्रोपदिहि क्रोध अतिहि जिय लेत।
अग्रज परतिज्ञा करी तुव उरु तोड़न हेत॥
ताही सों तोहि नहिं बध्यौ न तरु अवे कुरु ईस।
जा सर सों तोर्‌यौ मुकुट तासों हरतो सीस॥

प्रतिहारी : देव अपने पुत्र का वचन सुना।
इन्द्र : (विस्मय से)।

दैव भए अनुकूल तें सब ही करत सहाय।
भीम प्रतिज्ञा सों बच्यौ अनायास कुरुराय॥

विद्याधर : देव! दुर्योधन के मुकुट गिरने से सब कौरवों ने क्रोधित होकर अरजुन को चारों ओर से घेर लिया है।
इन्द्र : तो अब क्या होगा।
विद्याधर : देव अब आप के पुत्र ने प्रस्वापनास्त्र चलाया है।

नाक बोलावत धनु किए तकिया मूंदे नैन।
सब अचेत सोए भई मुरदा सी कुरु सैन॥

इन्द्र : युद्ध से थके वीरों को सोना योग्य ही है। हां फिर।
विद्याधर : एक पितामह छोड़ि कै सबको नांगो कीन।
बांधि अंधेरी आंख मैं मूड़ि तिलक सिर दीन॥

अब जागे भागे लखौ रह्यौ ने कोउ खेत।
गोंधन लै तुव सुत अवै ग्वालन देखौ देत।।
शत्रु जीति निज मित्र को काज साधि सानंद।
पुरजन सों पूजित लखो पुर प्रविसत तुवनंद।।

इन्द्र : जो देखना था वह देखा।

[रथ पर बैठे अरजुन और कुमार आते हैं]

अरजुन : (कुमार से) कुमार।

जो मो कहं आनंद भयो करि कौरव बिनु सेस।
तुव तन को बिनु घाव लखि तासों मोद विसेस।।

कुमार : जब आप सा रक्षक हो तो यह कौन बड़ी बात है।

इन्द्र : (आनन्द से) जो देखना था वह देख चुके।

[विद्याधर और प्रतिहारी समेत जाता है]

अरजुन : (सन्तोष से) कुमार।

करी बसन बिनु द्रोपदी इन सब सभा बुलाय।
सो हम इनको वस्त्र हरि बदलो लीन्ह चुकाय।।

कुमार : आप ने सब बहुत ठीक ही किया क्योंकि

वरु रन मैं मरनो भलौ पाछे सब सुख सीव।
निज अरि सौं अपमान हिय खटकत जब लौं जीव।।

अरजुन : (आगे देख कर) अरे अपने भाइयों और राजा विराट समेत आर्य्य धर्म्मराज इधर ही आते हैं।

[तीनों भाई समेत धर्म्मराज और विराट आते हैं]

धर्म्मराज : मत्स्यराज! देखिए–

धूर धूसरित अलक सब मुख श्रमकन झलकात।
असम समर करि थकित पै जय सोभा प्रगटात।।

विराट : सत्य है।

द्विज सोहत विद्या पढ़े छत्री रन जय पाय।
लक्ष्मी सोहत दान सों तिमि कुल बधू लजाय।।

अरजुन : (घबड़ा कर) अरे क्या भैया आ गए (रथ से उतर कर दंडवत् करता है)।

सब : (आनंद से एक ही साथ) कल्यान हो–जीते रहो।

धर्म्मराज : इकले सिव षट रिपु दह्यौ निसचर मारे राम।
तुम इकले जीत्यौ कुरुन नहिं अब चौथौ नाम।।

अरजुन : (सिर झुका कर हाथ जोड़ कर) यह केवल आप की कृपा है।
विराट : (नेपथ्य की ओर हाथ से दिखाकर) राजपुत्र देखो।

मिलि बछरन सों धेनु सव श्रवहिं दूध की धार।
तुव उज्जल कीरति मनहुं फैलत नगर मंझार॥
और

खींच्यौ कृष्णा केस जो सभा मांहि कुरुराज।
सो तुस मुकुट गिराइ कै बदलो लीन्हों आज॥

भीम : (सुन कर क्रोध से) राजन् अभी बदला नहीं चुका क्योंकि।

तोरि गदा सों हृदय दुस्सासन केरो।
तासों ताजो सद्य रुधिर करि पान घनेरो॥
ताहीं करसों कृष्णा की बेनी बंधवाई।
भीमसैन ही सो वदलो लैहै चुकवाई॥

धर्म्मराज : बेटा तुम्हारे आगे यह क्या बड़ी बात है।

सौगन्धिक तोस्यौ छनक कियो हिडम्बहि घात।
हत्यौ बकासुर जिन सहज तेहि केती यह बात॥

भीम : (विनय से) महाराज सुनिए अब हम क्षमा नहीं कर सकते।
धर्म्मराज : बेटा क्षमा के दिन गए युद्ध के दिन आए अब इतना मत घबड़ाओ।
विराट : (युधिष्ठिर से)।

तुव सरूप जाने बिना लियो अनेकन काज।
जोग अजोग अनेक विध सों छमिये महाराज॥

अरजुन : राजन् यह उपकार ही हुआ अपकार कभी नहीं हुआ। क्योंकि।

जो अजोग करते न हम सेवा स्वै तुम दास।
तौ कोऊ विधि छिपतौ न यह मम अज्ञात निवास॥

विराट : (अरजुन से) राज पुत्र।

सात चरनहू संग चले मित्र भए हम दोय।
तासों मांगत उत्तरा पुत्र बधू तुव होय॥

अरजुन : आप की जो इच्छा क्योंकि।

आपु आवती लच्छमी को मूरख नहि लेत।
सोऊ बिन मांगे मिलै तो केवल हरि हेत॥

विराट : और भी मैं आप का कुछ प्रिय कर सकता हूं।

अरजुन : अब इस्से बढ़कर क्या होगा।

शत्रु सुजोधन सो लही करन सहित रन जीत।
गाय फेरि लाए सबै पायो तुमसो मीत॥
लही बधू सुत हित भयो सुख अज्ञात निवास।
तौ अब का नहिं हम लख्यौ जाकी राखैं आस॥

तौ भी यह भरत वाक्य सत्य हो

राज वर्ग मद छोडि निपुन विद्या मैं होई।
श्री हरिपद मैं भक्ति करैं छल विनु सब कोई॥
पंडित गन पर कृति लखि कै मति दोष लगावैं।
छुटै राज कर मेघ समैं पै जल बरसावैं॥
कजरी ठुमरिन सों मोरि मुख सत कविता सब कोउ कहै।
यह कवि वानी बुध बदन मैं रवि ससि लौं प्रगटित रहै॥[1]

और भी

सौजन्यामृतसिन्धः परहितप्राब्धवीरव्रता।
वाचालाः परवर्णने निजगुणालापे च मौनव्रताः॥
आपत्स्वप्यविलुप्तधैर्य्यनिचयास्सम्पत्स्वनुत्सेकिनो।
भाभूवन् खलवक्त्रनिर्गतविषम्लाननास्सज्जनाः॥[2]

विराट : तथास्तु।

(सब जाते हैं)

[कविकांचन कृत संस्कृत नाटक 'धनंजय विजय' का अनुवाद]

---

[1] इन पंक्तियों को श्रीव्रजरत्न दास ने निम्नलिखित रूप में रखा है–
राज वर्ग पद छोड़ि निपुन विद्या मैं होई।
आलस मूरखतादितजै भारत सब कोई॥
पंडित गन पर कृति लाखे के मत दोष लगावैं।
छुटै राज कर मेघ समै पे जल बरसावैं॥
कजरिन ढुमरिन सों मोरि मुख सम कविता सब कोउ कहै,
हिय भोगवती सम गुप्त हरि प्रेम धार नित ही वहै॥

[2] सौजन्य रूपी अमृत के समुद्र, दूसरे की भलाई में दृढ़वती, दूसरे की परम्परा में बकवादी पर अपनी प्रसंशा में मौनी बाबा, कष्ट में धैर्य्य के समूह को न छोड़ने वाले और सम्पत्ति काल में नम्र जो सज्जन हैं, वे दुष्टों के मुंह से निकले विषभरी बातों से उदास मुख न हों।

मुद्राराक्षस

(नाटक)

सन 1875-77 ई.

परमश्रद्धास्पद श्रीयुक्त राजा शिवप्रसाद बहादुर सी.एस.आई.
के चरण कमलों में
केवल उन्हीं के उत्साहदान से उनके वात्सल्यभाजन छात्र द्वारा बना
हुआ यह ग्रन्थ सादर समर्पित हुआ

मुद्राराक्षस

पूर्व्व कथा

पूर्व्व काल में भारतवर्ष में मगधराज एक बड़ा भारी जनस्थान था। जरासन्ध आदि अनेक प्रसिद्ध पुरुवंशी राजा यहां बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। इस देश की राजधानी पाटलिपुत्र अथवा पुष्पपुर थी। इन लोगों ने अपना प्रताप और शौर्य्य इतना बढ़ाया था कि आज तक इनका नाम भूमंडल पर प्रसिद्ध है। किन्तु कालचक्र बड़ा प्रबल है कि किसी को भी एक अवस्था में रहने नहीं देता। अन्त में नन्दवंश[1] ने पौरवों को निकालकर वहां अपनी जयपताका उड़ाई। वरंच सारे भारतवर्ष में अपना प्रबल प्रताप विस्तारित कर दिया।

इतिहास ग्रन्थों में लिखित है कि एक सौ अड़तीस बरस नन्दवंश ने मगध देश का राज्य किया। इसी वंश में महानन्द का जन्म हुआ। यह बड़ा प्रसिद्ध और अत्यन्त प्रतापशाली राजा हुआ। जब जगद्विजयी सिकन्दर (अलक्षेन्द्र) ने भारतवर्ष पर चढ़ाई की थी तब असंख्य हाथी, बीस हजार सवार और दो लाख पैदल लेकर महानन्द ने उस के विरुद्ध प्रयाण किया था।[2] सिद्धान्त यह कि भारतवर्ष में उस समय महानन्द-सा प्रतापी और कोई राजा न था।

महानन्द के दो मन्त्री थे। मुख्य का नाम शकटार था और दूसरे का नाम राक्षस था। शकटार शूद्र और राक्षस ब्राह्मण था।[3] ये दोनों अत्यन्त बुद्धिमान और महा प्रतिभासम्पन्न थे। केवल भेद इतना था कि राक्षस धीर और गम्भीर था, उस के विरुद्ध शकटार अत्यन्त

---

1. नन्दवंश सम्मिलित क्षत्रियों का वंश था। ये लोग शुद्ध क्षत्रिय नहीं थे।
2. सिकन्दर के कान्यकुब्ज से आगे न बढ़ने से महानन्द से उस से मुकाबिला नहीं हुआ।
3. बृहत्कथा में राक्षस मन्त्री का नाम कहीं नहीं है, केवल वररुचि के एक सच्चे राक्षस से मैत्री की कथा यों लिखी है—एक बड़ा प्रचंड राक्षस पाटलिपुत्र में फिरा करता था। वह एक रात्रि वररुचि से मिला और पूछा कि "इस नगर में कौन स्त्री सुन्दर है?" वररुचि ने उत्तर दिया—'जो जिस को रुचै वही सुन्दर है।' इस पर प्रसन्न होकर राक्षस ने उस से मित्रता की और कहा कि हम सब बात मैं तुम्हारी सहायता करैंगे और फिर सदा राजकाज में ध्यान में प्रत्यक्ष होकर राक्षस वररुचि की सहायता करता।

उद्धत स्वभाव था। यहां तक कि अपने प्राचीनपने के अभिमान से कभी कभी यह राजा पर भी अपना प्रभुत्व जमाना चाहता। महानन्द भी अत्यन्त उग्र स्वभाव, असहनशील और क्रोधी था, जिस का परिणाम यह हुआ कि महानन्द ने अन्त को शकटार को क्रोधान्ध होकर बड़ें निविड़ बन्दीखाने में कैद किया और सपरिवार उस के भोजन को केवल दो सेर सत्तू देता था।[1]

शकटार ने बहुत दिन तक महामात्य का अधिकार भोगा था। इस से यह अनादर उस के पक्ष में अत्यन्त दुखदाई हुआ। नित्य सत्तू का बरतन हाथ में लेकर अपने परिवार से कहता कि जो एक भी नन्दवंश को जड़ से नाश करने में समर्थ हो वह सत्तू खाय। मन्त्री के इस वाक्य से दुखित होकर उस के परिवार का कोई भी सत्तू न खाता। अन्त में कारागार की पीड़ा से एक एक कर के उस के परिवार के सब लोग मर गए।[1]

एक तो अपमान का दुःख दूसरे कुटुम्ब का नाश, इन दोनों कारणों से शकटार अत्यन्त तनछीन मनमलीन दीन हीन हो गया। किन्तु अपने मनसूबे का ऐसा पक्का था कि शत्रु से बदला लेने की इच्छा से अपने प्राण नहीं त्याग किए और थोड़े बहुत भोजन इत्यादि से शरीर को जीवित रक्खा। रात दिन इसी सोच में रहता कि किस उपाय से अपना बदला ले सकैगा।

कहते हैं कि राजा महानन्द एक दिन हाथ-मुंह धोकर हंसते-हंसते जनाने में आ रहे थे। विचक्षणा नाम की एक दासी, जो राजा के मुंह लगने के कारण कुछ धृष्ट हो गई थी, राजा को हंसता देख कर हंस पड़ी। राजा उस की ढिठाई से बहुत चिढ़े और उस से पूछा—तू क्यों हंसी? उस ने उत्तर दिया—'जिस बात पर महाराज हंसे उसी पर मैं भी हंसी।' महानन्द इस बात पर और भी चिढ़ा और कहा अभी बतला मैं क्यों हंसा, नहीं तो तुझ को प्राणदंड होगा। दासी से और कुछ उपाय न बन पड़ा और उस ने घबड़ा कर इस के उत्तर देने की एक महीने की मुहलत चाही। राजा ने

---

1. बृहत्कथा में यह कहानी और ही चाल पर लिखी है। वररुचि, व्याड़ि और इन्द्रदत्त तीनों को गुरुदक्षिणा देने के हेतु करोड़ों रुपये के सोने की आवश्यकता हुई। तब इन लोगों ने सलाह किया कि नन्द (सत्यनन्द) राजा के पास चलकर उस से सोना लें। उन दिनों राजा का डेरा अयोध्या में था। ये तीनों ब्राह्मण वहां गए, किन्तु संयोग से उन्हीं दिनों राजा मर गया। तब आपस में सलाह कर के इन्द्रदत्त योगबल से अपना शरीर छोड़कर राजा के शरीर में चला गया, जिस से राजा फिर जी उठा। तभी से उस का नाम योगानन्द हुआ। योगानन्द ने वररुचि को करोड़ रुपये देने की आज्ञा की। शकटार बड़ा बुद्धिमान था; उस ने सोचा कि राजा का मरकर जीना और एक बारगी एक अपरिचित को करोड़ रुपया देना, इस में हो न हो कोई भेद है। ऐसा न हो कि अपना काम कर के फिर राजा का शरीर छोड़कर यह चला जाय। यह सोचकर शकटार ने राज्य भर में जितने भी मुरदे मिले उन को जलवा दिया, उसी में इन्द्रदत्त का भी शरीर जल गया। जब व्याड़ि ने यह वृत्तान्त योगानन्द से कहा तो यह सुनकर वह पहिले तो दुखी हुआ फिर वररुचि को अपना मन्त्री बनाया। अन्त में शकटार की उग्रता से संतप्त होकर उस को अन्धे कुएं में कैद किया। बृहत्कथा में शकटार के स्थान पर शकटाल नाम लिखा है।

कहा—आज से ठीक एक महीने के भीतर जो उत्तर न देगी तो कभी तेरे प्राण न बचैंगे।

विचक्षणा के प्राण उस समय तो बच गए परन्तु महीने के जितने दिन बीतते थे, मारे चिन्ता के वह मरी जाती थी। कुछ सोच विचार कर वह एक दिन कुछ खाने पीने की सामग्री लेकर शकटार के पास गई और रो रोकर अपनी सब बिपत्ति कहने लगी। मन्त्री ने कुछ देर तक सोचकर उस अवसर की सब घटना पूछी और हंस कर कहा—'मैं जान गया, राजा क्यौं हंसे थे। कुल्ला करने के समय पानी के छोटे छींटों पर राजा को वट बीज की याद आई, और यह भी ध्यान हुआ कि ऐसे बड़े बड़ के वृक्ष इन्हीं छोटे बीजों के अन्तर्गत हैं। किन्तु भूमि पर पड़ते ही वह जल के छीटे नाश हो गए। राजा अपनी इसी भावना को याद करके हंसते थे।' विचक्षणा ने हाथ जोड़कर कहा—'यदि आप के अनुमान से मेरे प्राण की रक्षा होगी तो मैं जिस तरह से होगा आप को कैदखाने से छुड़ाऊंगी और जन्म भर आप की दासी हो कर रहूंगी।'

राजा ने विचक्षणा से एक दिन फिर हंसने का कारण पूछा, तो विचक्षणा ने शकटार से जैसा सुना था कह सुनाया। राजा ने चमत्कृत होकर पूछा—'सच बता, तुझ से यह भेद किस ने कहा।' दासी ने शकटार का सब वृत्त कहा और राजा को शकटार की बुद्धि की प्रशंसा करते देख अवसर पाकर उस के मुक्त होने की प्रार्थना भी की। राजा ने शकटार को बन्दी से छुड़ाकर राक्षस के नीचे मन्त्री बनाकर रक्खा।

ऐसे अवसर पर राजा लोग बहुत चूक जाते हैं। पहले तो किसी की अत्यन्त प्रतिष्ठा बढ़ानी ही नीतिविरुद्ध है। यदि संयोग से बढ़ जाय तो उस की बहुत सी बातों को तरह देकर टालना चाहिए, और जो कदाचित् बड़े प्रतिष्ठित मनुष्य का राजा अनादर करै तो उस की जड़ काट कर छोड़े, फिर उस का कभी विश्वास न करै। प्रायः अमीर लोग पहले तो मुसाहिब या कारिन्दों को बेतरह सिर चढ़ाते हैं और फिर छोटी छोटी बातों पर उन की प्रतिष्ठा हीन कर देते हैं इसी से ऐसे लोग राजाओं के प्राण के गाहक हो जाते हैं और अन्त में नन्द की भांति उन का सर्व्वनाश होता है।

शकटार यद्यपि बन्दीखाने से छूटा और छोटा मन्त्री भी हुआ, किन्तु अपनी अप्रतिष्ठा और परिवार के नाश का शोक उस के चित्त में सदा पहिले ही सा जागता रहा। रात दिन वह यही सोचता कि किस उपाय से ऐसे अव्यवस्थितचित्त उद्धत राजा का नाश कर के अपना बदला लें! एक दिन घोड़े पर हवा खाने जाता था। नगर के बाहर एक स्थान पर देखता है कि एक काला सा ब्राह्मण अपनी कुटी के सामने मार्ग की कुशा उखाड़ उखाड़ कर उस की जड़ में मठा डालता जाता है। पसीने से लथपथ है, परन्तु कुछ भी शरीर की ओर ध्यान नहीं देता। चारों ओर कुशा के बड़े बड़े ढेर लगे हुए हैं। शकटार ने आश्चर्य्य से ब्राह्मण से इस श्रम का कारण पूछा। उस ने कहा—'मेरा नाम विष्णुगुप्त चाणक्य है। मैं ब्रह्मचर्य्य में नीति, वैद्यक, ज्योतिष, रसायन आदि संसार की उपयोगी सब विद्या पढ़कर विवाह की इच्छा से नगर की ओर आया था, किन्तु कुश गड़ जाने से मेरे मनोरथ में विघ्न हुआ, इस से जब तक

इन बाधक कुशाओं का सर्व्वनाश न कर लूंगा और काम न करूंगा। मठा इस वास्ते इन की जड़ में देता हूं जिस से पृथ्वी के भीतर इनका मूल भी भस्म हो जाय।'

शकटार के जी में यह ध्यान आया कि ऐसा पक्का ब्राह्मण जो किसी प्रकार राजा से क्रुद्ध हो जाय तो उस का जड़ से नाश कर के छोड़ै। यह सोच कर उस ने चाणक्य से कहा कि जो आप नगर में चल कर पाठशाला स्थापित करैं तौ मैं अपने को बड़ा अनुगृहीत समझूं। मैं इस के बदले बेलदार लगाकर यहां की सब कुशाओं को खुदवा डालूंगा। चाणक्य इस पर संमत हुआ और उस ने नगर में आकर एक पाठशाला स्थापित की। बहुत से विद्यार्थी लोग पढ़ने आने लगे और पाठशाला बड़े धूमधाम से चल निकली।

अब शकटार इस सोच में हुआ कि चाणक्य से राजा से किस चाल से विगाड़ हो। एक दिन राजा के घर में श्राद्ध था। उस अवसर को शकटार अपने मनोरथ सिद्ध होने का अच्छा समय सोच कर चाणक्य को श्राद्ध का न्योता देकर अपने साथ ले आया और श्राद्ध के आसन पर बिठला कर चला गया, क्यौंकि वह जानता था कि चाणक्य का रंग काला, आंखें लाल और दांत काले होने के कारण नन्द उस को आसन पर से उठा देगा, जिस से चाणक्य अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस का सर्व्वनाश करैगा और ठीक ऐसा ही हुआ—जब राक्षस के साथ नन्द श्राद्धशाला में आया और एक अनिमन्त्रित ब्राह्मण को आसन पर बैठा हुआ और श्राद्ध के अयोग्य देखा तो चिढ़कर आज्ञा दिया कि इस को बाल पकड़कर यहां से निकाल दो। इस अपमान से ठोकर खाए हुए सर्प की भांति अत्यन्त क्रोधित होकर शिखा खोल कर चाणक्य ने सब के सामने प्रतिज्ञा की कि जब तक इस दुष्ट राजा का सत्यानाश न कर लूंगा तब तक शिखा न बांधूंगा। यह प्रतिज्ञा कर के बड़े क्रोध से राजभवन से चला गया।

शकटार अवसर पाकर चाणक्य को मार्ग में से अपने घर ले आया और राजा की अनेक निन्दा कर के उस का क्रोध और भी बढ़ाया और अपनी सब दुर्दशा कहकर नन्द के नाश में सहायता करने की प्रतिज्ञा की। चाणक्य ने कहा कि जब तक हम राजा के घर का भीतरी हाल न जानैं कोई उपाय नहीं सोच सकते। शकटार ने इस विषय में विचक्षणा की सहायता देने का वृत्तान्त कहा और रात को एकान्त में बुलाकर चाणक्य के सामने उस से सब बात का करार ले लिया।

महानन्द को नौ पुत्र थे। आठ विवाहिता रानी से और एक चन्द्रगुप्त मुरा नाम की नाइन स्त्री से। इसी से चन्द्रगुप्त को मौर्य और वृषल भी कहते हैं। चन्द्रगुप्त बड़ा बुद्धिमान था। इसी से और आठों भाई इस से भीतरी द्वेष रखते थे। चन्द्रगुप्त की बुद्धिमानी की बहुत सी कहानियां हैं। कहते हैं कि एक बेर रूम के बादशाह ने महानन्द के पास एक कृत्रिम सिंह लोहे की जाली के पिंजड़े में बन्द करके भेजा और कहला दिया कि पिंजड़ा टूटने न पावै और सिंह इस में से निकल जाय। महानन्द और उस के आठ औरस पुत्रों ने इस को बहुत कुछ सोचा, परन्तु बुद्धि ने कुछ काम

न किया। चन्द्रगुप्त ने विचारा कि यह सिंह अवश्य किसी ऐसे पदार्थ का बना होगा जो या तो पानी से या आग से गल जाय। यह सोच कर पहले उसने उस पिंजड़े को पानी के कुंड में रक्खा और जब वह पानी से न गला तो उस पिंजड़े के चारों तरफ आग जलवाई, जिस की गर्मी से वह सिंह जो लाह और राल का बना था गल गया। एक बेर ऐसे ही किसी बादशाह ने एक अंगीठी में दहकती हुई आग, एक बोरा सरसों और एक मीठा फल महानन्द के पास अपने दूत के द्वारा भेज दिया। राजा की सभा का कोई भी मनुष्य इस का आशय न समझ सका; किन्तु चन्द्रगुप्त ने सोच कर कहा कि अंगीठी यह दिखलाने को भेजी है कि मेरा क्रोध अग्नि है और सरसों यह सूचना कराती है कि मेरी सैना असंख्य है और फल भेजने का आशय यह है कि मेरी मित्रता का फल मधुर है। इन के उत्तर में चन्द्रगुप्त ने एक घड़ा जल और एक पिंजड़े में थोड़े से तीतर और एक अमूल्य रत्न भेजा, जिस का आशय यह था कि तुम्हारी सेना कितनी भी असंख्य क्यौं न हो हमारे वीर उन को भक्षण करने में समर्थ हैं और तुम्हारा क्रोध हमारी नीति से सहज ही बुझाया जा सकता है और हमारी मित्रता सदा अमूल्य और एक रस है। ऐसे ही तीन पुतलीवाली कहानी भी इसी के साथ प्रसिद्ध है। इसी बुद्धिमानी के कारण चन्द्रगुप्त से उस के भाई लोग बुरा मानते थे; और महानंद भी अपने औरस पुत्रों का पक्ष कर के इस से कुढ़ता था। यह यद्यपि शूद्रा के गर्भ से था, परंतु ज्येष्ठ होने के कारण अपने को राज का भागी समझता था; और इसी से इस का राजपरिवार से पूर्ण वैमनस्य था। चाणक्य और शकटार ने इसी से निश्चय किया कि हम लोग चन्द्रगुप्त को राज का लोभ देकर अपनी ओर मिला लें और नन्दों का नाश कर के इसी को राजा बनावैं।

यह सब सलाह पक्की हो जाने के पीछे चाणक्य तौ अपनी पुरानी कुटी में चला गया और शकटार ने चन्द्रगुप्त और विचक्षणा को तब तक सिखा पढ़ाकर पक्का कर के अपनी ओर फोड़ लिया। चाणक्य ने कुटी में जाकर हलाहल विष मिले हुए कुछ ऐसे पकवान तैयार किए जो परीक्षा करने में न पकड़े जायं, किन्तु खाते ही प्राण नाश हो जाय। विचक्षणा ने किसी प्रकार से महानन्द को पुत्रों समेत यह पकवान खिला दिया, जिस से बेचारे सब के सब एक साथ परमधाम को सिधारे[1]।

---

[1] भारतवर्ष की कथाओं में लिखा है कि चाणक्य ने अभिचार से मारण का प्रयोग कर के इन सभों को मार डाला। विचक्षणा ने उस अभिचार का निर्माल्य किसी प्रकार इन लोगों के अंग में छुला दिया था। किन्तु वर्त्तमान काल के विद्वान लोग सोचते हैं कि उस समय निर्माल्य में मन्त्र का बल नहीं था; चाणक्य ने कुछ औषध ऐसे विषमिश्रित बनाए थे कि जिन के भोजन वा स्पर्श से मनुष्य का सद्यः नाश हो जाय। भट्ट सोमदेव के 'कथा सरित्सागर' के पीठलम्बक के चौथे तरंग में लिखा है, योगानन्द को ऊंची अवस्था में नये प्रकार की कामवासना उत्पन्न हुई। वररुचि ने यह सोचकर कि राजा को तो भोगविलास से छुट्टी ही नहीं है, इस से राजकाज का काम शकटार से निकाला जाय तो अच्छी तरह से चले। यह विचार कर और राजा से पूछकर शकटार को अन्धे कुएं से निकाल कर वररुचि ने मन्त्री पद पर नियत किया। एक दिन शिकार खेलने में गंगा में राजा ने अपनी पांचों

चन्द्रगुप्त इस समय चाणक्य के साथ था। शकटार अपने दुःख और पापों से संतप्त हो कर निविड़ वन में चला गया और अनशन कर के प्राण त्याग किए। कोई कोई इतिहास लेखक कहते हैं कि चाणक्य ने अपने हाथ से शस्त्र द्वारा नन्द का वध किया और फिर क्रम से उस के पुत्रों को भी मारा, किन्तु इस विषय का कोई दृढ़ प्रमाण नहीं है। चाहे जिस प्रकार से हो, चाणक्य ने नन्दों का नाश किया, किन्तु केवल पुत्र सहित राजा के मारने ही से वह चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर न बैठा सका, इस से अपने अन्तरंग मित्र जीवसिद्धि को क्षपणक के वेष में राक्षस के पास छोड़ कर आप राजा लोगों से सहायता लेने की इच्छा से विदेश निकला। अन्त में अफगानिस्तान वा उस के उत्तर की ओर के निवासी पर्व्वतक नामक लोभ परतन्त्र एक राजा से मिलकर और उस को जीतने के पीछे मगध राज्य का आधा भाग देने

→ उंगली की परछाई वररुचि को दिखलाया। वररुचि ने अपनी दो उंगलियों की परछाई ऊपर से दिखाई, जिस से राजा के हाथ की परछाई छिप गई। राजा ने इस संज्ञाओं का कारण पूछा। वररुचि ने कहा, आप का यह आशय था कि पांच मनुष्य मिलकर सब कार्य्य साध सकते हैं। मैंने यह कहा कि जो दो चित्त एक हो जायं तो पांच का बल व्यर्थ है। इस बात पर राजा ने वररुचि की बड़ी स्तुति की। एक दिन राजा ने अपनी रानी को एक ब्राह्मण से खिड़की में से बात करते देख कर उस ब्राह्मण को मारने की आज्ञा की, किन्तु अनेक कारणों से वह बच गया। वररुचि ने कहा कि आप के सब महल की यही दशा है। अनेक स्त्री वेषधारी पुरुष महल में रहते हैं और उन सबों को पकड़ कर दिखला दिया। इसी से उस ब्राह्मण के प्राण बचे। एक दिन योगानन्द की रानी के एक चित्र में, जो महल में लगा हुआ था; वररुचि ने जांघ में तिल बना दिया। योगानन्द को गुप्त स्थान में वररुचि के तिल बनाने से उस पर भी सन्देह हुआ और शकटार को आज्ञा दी कि तुम वररुचि को आज ही रात को मार डालो। शकटार ने उस को अपने घर में छिपा रक्खा और किसी और को उस के बदले मार कर उस का मारना प्रकट किया। एक बेर राजा का पुत्र हिरण्यगुप्त जंगल में शिकार खेलने गया था, वहां रात को सिंह के भय से एक पेड़ पर चढ़ गया। उस वृक्ष पर एक भालू था, किन्तु इस ने उस को अभय दिया। इन दोनों में यह बात ठहरी कि आंधी रात तक कुंवर सोवैं, भालू पहरा दें, फिर भालू सोवै, कुंवर पहरा दे। भालू ने अपना मित्र धर्म्म निबाहा और सिंह के बहकाने पर भी कुंवर की रक्षा की। किन्तु अपनी पारी में कुंवर ने सिंह के बहकाने से भालू को ढकेलना चाहा, जिस पर उस ने जाग कर मित्रता के कारण कुंवर को मारा तो नहीं किन्तु कान में मूत दिया जिस से कुंवर गूंगा और बहिरा हो गया। राजा को बेटे की इस दुर्दशा पर बड़ा सोच हुआ और कहा कि वररुचि जीता होता तो इस समय उपाय सोचता। शकटार ने यह अवसर समझकर राजा से कहा कि वररुचि जीता है और ला कर राजा के सामने खड़ा कर दिया। वररुचि ने कहा—कुंवर ने मित्रद्रोह किया, है उसी का यह फल है। वह वृत्त कहकर उस को उपाय से अच्छा किया। राजा ने पूछा, तुम ने यह सब वृत्तान्त किस तरह जाना? वररुचि ने कहा—योगबल से जैसे रानी का तिल। (ठीक यही कहानी राजा भोज, उस की रानी भानुमती, उस के पुत्र और कालिदास की भी प्रसिद्ध है।) यह सब कह कर और उदास हो कर वररुचि जंगल में चला गया। वररुचि से शकटार ने राजा को मारने को कहा था, किन्तु यह धर्मिष्ठ था इस से सम्मत न हुआ। वररुचि के चले जाने पर शकटार ने अवसर पाकर चाणक्य द्वारा कृत्या से नन्द को मारा।

के नियम पर उस को पटने पर चढ़ा लाया। पर्व्वतक के भाई का नाम वैरोधक[1] और पुत्र का नाम मलयकेतु था। और भी पांच म्लेच्छ राजाओं को पर्व्वतक अपनी सहायता को लाया था।

इधर राक्षस मन्त्री राजा के मरने से दुखी हो कर उस के भाई सर्वार्थसिद्धि को सिंहासन पर बैठाकर राजकाज चलाने लगा। चाणक्य ने पर्व्वतक की सैना लेकर कुसुमपुर को चारों ओर से घेर लिया। पन्द्रह दिन तक घोरतर युद्ध हुआ। राक्षस की सेना और नागरिक लोग लड़ते लड़ते शिथिल हो गए; इसी समय में गुप्त रीति से जीवसिद्धि के बहकाने से राजा सर्वार्थसिद्धि वैरागी हो कर वन में चला गया। इस कुसमय में राजा के चले जाने से राक्षस और भी उदास हुआ। चन्दनदास नामक एक बड़े धनी जौहरी के घर में अपने कुटुम्ब को छोड़ कर और शकटदास कायस्थ तथा अनेक राजनीति जानने वाले विश्वासपात्र मित्रों को और कई आवश्यक काम सौंपकर राजा सर्वार्थसिद्धि के फेर लाने को आप तपोवन की ओर गया।

चाणक्य ने जीवसिद्धि द्वारा यह सब सुन कर राक्षस के पहुंचने के पहले ही अपने मनुष्यों से राजा सर्वार्थसिद्धि को मरवा डाला। राक्षस जब तपोवन में पहुंचा और सर्वार्थसिद्धि को मरा देखा तो अत्यन्त उदास होकर वहीं रहने लगा। यद्यपि सर्वार्थसिद्धि के मार डालने से चाणक्य की नन्दकुल के नाश की प्रतिज्ञा पूरी हो चुकी थी, किन्तु उस ने सोचा कि जब तक राक्षस चन्द्रगुप्त का मन्त्री न होगा तब तक राज्य स्थिर न होगा। वरंच बड़े विनय से तपोवन में राक्षस के पास मन्त्रित्व स्वीकार करने का सन्देशा भेजा, परन्तु प्रभु भक्त राक्षस ने उस को स्वीकार नहीं किया।

तपोवन में कई दिन रह कर राक्षस ने यह सोचा कि जब तक पर्व्वतक को हम न फोड़ैंगे, काम न चलैगा। यह सोच कर वह पर्व्वतक के राज्य में गया और वहां उस के बूढ़े मन्त्री से कहा कि चाणक्य बड़ा दगाबाज है, वह आधा राज कभी न देगा। आप राजा को लिखिए, वह मुझ से मिलै तौ मैं सब राज्य उन को दूं। मन्त्री ने पत्र द्वारा पर्व्वतक को यह सब वृत्त और राक्षस की नीतिकुशलता लिख भेजा और यह भी लिखा कि अत्यन्त वृद्ध हूं, आगे से मन्त्री का काम राक्षस को दीजिये। पाटलिपुत्र विजय होने पर भी चाणक्य आधा राज्य देने में विलम्ब करता हैं, यह देखकर सहज लोभी पर्व्वतक ने मन्त्री की बात मान ली और पत्र द्वारा राक्षस को गुप्त रीति से अपना मुख्य अमात्य बना कर इधर ऊपर के चित्त से चाणक्य से मिला रहा।

जीवसिद्धि के द्वारा चाणक्य ने राक्षस का सब हाल जान कर अत्यन्त सावधानतापूर्व्वक चलना आरम्भ किया। अनेक भाषा जानने वाले बहुत से धूर्त पुरुषों को वेष बदल बदल कर भेद लेने को चारों ओर नियुक्त किया। चन्द्रगुप्त को राक्षस का कोई गुप्तचर धोखे से किसी प्रकार की हानि न पहुंचावै, इस का भी पक्का प्रबन्ध किया और पर्व्वतक की विश्वासघातकता का बदला लेने का दृढ़ संकल्प से, परन्तु अत्यन्त गुप्त रूप से, उपाय सोचने लगा।

---

[1] लिखी पुस्तकों में यह नाम, विरोधक, वैरोधक वैबोधक, विरोध इत्यादि कई चाल से लिखा है।

राक्षस ने केवल पर्व्वतक की सहायता से राज के मिलने की आशा छोड़कर कुलूत[1], मलय, काश्मीर, सिन्धु और पारस इन पांचों देशों के राजा से सहायता ली। अब जब इन पांचों देश के राजाओं ने बड़े आदर से राक्षस को सहायता देना स्वीकार किया तो वह तपोवन के निकट फिर से लौट आए और वहां से चन्द्रगुप्त के मारने को एक विषकन्या[2] भेजी और अपना विश्वासपात्र समझ कर जीवसिद्धि को उस के साथ कर दिया। चाणक्य ने जीवसिद्धि द्वारा यह सब बात जान कर और पर्व्वतक की धूर्तता और विश्वासघातकता से कुढ़कर प्रकट में इस उपहार को बड़ी प्रसन्नता से ग्रहण किया और लानेवाले को बहुत सा पुरस्कार देकर विदा किया। सांझ होने के पीछे धूर्ताधिराज चाणक्य ने इस कन्या को पर्व्वतक के पास भेज दिया और इन्द्रियलोलुप पर्व्वतक उसी रात को उस कन्या से संग से मर गया। इधर चाणक्य ने यह सोचा कि मलयकेतु यहां रहैगा तो उस को राज्य का हिस्सा देना पड़ैगा, इस से किसी तरह इस को यहां से भगावैं तो काम चले। इस कार्य्य के हेतु भागुरायण नामक एक प्रतिष्ठित विश्वासपात्र पुरुष को मलयकेतु के पास सिखा पढ़ाकर भेज दिया। उस ने पिछली रात को मलयकेतु से जाकर उस का बड़ा हितू बनकर उस ने कहा कि आज चाणक्य ने विश्वासघातकता कर के आप के पिता को विषकन्या के प्रयोग से मार डाला और अवसर पाकर आप को भी मार डालैगा। मलयकेतु बेचारा इस बात के सुनते ही सन्न हो गया और पिता के शयनागार में जाकर देखा तो पर्व्वतक को बिछौने पर मरा हुआ पाया। इस भयानक दृश्य के देखते ही मुग्ध मलयकेतु के प्राण सूख गए और वह भागुरायण की सलाह से उस रात को छिप कर वहां से भाग कर अपने राज्य की ओर चला गया। इधर चाणक्य के सिखाये भद्रभट इत्यादि चन्द्रगुप्त के कई बड़े-बड़े अधिकारी प्रकट में राजद्रोही बनकर मलयकेतु और भागुरायण के साथ ही भाग गए।

राक्षस ने मलयकेतु से पर्व्वतक के मारे जाने का समाचार सुनकर अत्यन्त सोच किया और बड़े आग्रह और सावधानी से चन्द्रगुप्त और चाणक्य के अनिष्टसाधन में प्रवृत्त हुआ।

चाणक्य ने कुसुमपुर में दूसरे दिन यह प्रसिद्ध कर दिया कि पर्व्वतक और चन्द्रगुप्त दोनों समान बन्धु थे, इस से राक्षस ने विषकन्या भेजकर पर्व्वतक को मार डाला और नगर के लोगों के चित पर, जिन को कि यह सब गुप्त अनुसन्धि न मालूम थी, इस बात का निश्चय भी करा दिया।

इसके पीछे चाणक्य और राक्षस में परस्पर नीति की जो चोटैं चलती हैं, उसी का इस नाटक में वर्णन है।

---

1. कुलूत देश किलात वा कुल्लू देश।
2. विषकन्या शास्त्रों में दो प्रकार की लिखी हैं, एक थोड़े से ऐसे बुरे योग हैं कि उस लग्न में उस प्रकार के ग्रहों के जो कन्या उत्पन्न हो उस के साथ जिस का विवाह हो वा जो उस का साथ करै वह साथ ही वा शीघ्र ही मर जाता है। दूसरे प्रकार की विषकन्या वैद्यक रीति से बनाई जाती थीं। छोटेपन से वरन गर्भ से कन्या को दूध में वा भोजन में थोड़ा थोड़ा विष देते-देते बड़ी होने पर उस का शरीर ऐसा विषमय हो जाता था कि जो उस का अंग संग करता वह मर जाता था।

महाकवि विशाखदत्त का बनाया मुद्राराक्षस

स्थान–रंगभूमि

[रंगशाला में नांदी मंगल पाठ]

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर[1]॥
'कौन है सीस पै'? 'चन्द्रकला',[2]
'कहा याको है नाम यही त्रिपुरारी'?
'हां यही नाम है, भूल गई,
किमि जानत हू तुम प्रान पियारी'॥
'नारिहि पूछत चन्द्रहिं नाहिं',
'कहै विजया जदि चन्द्र लबारी'।
यों गिरिजै छलि गंग छिपावत
ईस हरौ सब पीर तुम्हारी॥
पाद प्रहार सौं जाई पताल न
भूमि सबै तनु बोझ के मारे।

---

[1] स्वतन्त्र मंगलाचरण।

[2] संस्कृत का मंगलाचरण–
धन्या केयं स्थिता ते शिरसि शशिकला किन्नु नामैतदस्याः
नामैवास्यास्तदेतत्; परिचितमपि ते विस्मृतं कस्य हेतोः।
नारी पृच्छामि नेन्दु कथयतु विजया न प्रमाणं यदीन्दुः
देव्या निह्नोतुमिच्छोरिति सुरसरितुं शाठ्यमव्याद्विभोर्वः॥1॥
और भी
पादस्याविर्भवन्तीमवनतिमवनेरक्षतः स्वैरपातैः
संकोचेनैव दोष्णां मुहुरभिनयता सर्व्वलोकातिगानाम्।
दृष्टि लक्ष्ययेषु नोग्रज्वलनकणमुचं वध्नतो दाहभीते
रित्याधारानुरोधात् त्रिपुरविजयिनः पातु वो दुःखनृत्तम्॥2॥

हाथ नचाइबे सों नभ मैं
इत के उत टूटि परै नहिं तारे॥
देखन सों जरि जाहिं न लोक
न खोलत नैन कृपा उर धारे।
यौं थल के बिनु कष्ट सों नाचत
शर्व हरौ दुःख सर्व तुम्हारे॥

नांदी पाठ के अनन्तर

सूत्रधार : बस! बहुत मत बढ़ाओ, सुनो, आज मुझे सभासदों की आज्ञा है कि सामन्त वटेश्वरदत्त के पौत्र और महाराज पृथु के पुत्र विशाखदत्त कवि का बनाया 'मुद्राराक्षस' नाटक खेलौ। सच है, जो सभा काव्य के गुण और दोष को सब भांति समझती है, उस के सामने खेलने में मेरा भी चित्त सन्तुष्ट होता है।

उपजैं आछे खेत मैं, मूरखहूं के धान।
सघन होन मैं धान के, चहिय न गुनी किसान॥

तौ मैं घर से सुघर घरनी को बलुाकर कुछ गाने बजाने का ढंग जमाऊं। **(घूम कर)** यही मेरा घर है, चलूं। **(आगे बढ़ कर)** अहा! आज तो मेरे घर में कोई उत्सव जान पड़ता है, क्यौंकि घरवाले सब अपने अपने काम में चूर हो रहे हैं।

पीसत कोऊ सुगन्ध कोऊ जल भरि कै लावत।
कोऊ बैठि कै रंग रंग की माल बनावत॥
कहं तिय गन हुंकार सहित अति स्रवन सोहावत।
होत मुशल को शब्द सुखद जिय को सुनि भावत॥

अर्थ

'यह आपके सिर पर कौन बड़भागिनी है?' 'शशिकला' है। क्या इस का यही नाम है? हां, यही तो, तुम तो जानती हौ फिर क्यों भूल गई? अजी, हम स्त्री को पूछती हैं, चन्द्रमा को नहीं पूछतीं, 'अच्छा चन्द्र की बात का विश्वास न हो तौ अपनी सखी विजया से पूछ लो।' यौं ही बात बनाकर गंगाजी को छिपाकर देवी पार्वती को ठगने की इच्छा करने वाले महादेवजी का छल तुम लोगों की रक्षा करै।

दूसरा

पृथ्वी झुकने के डर से इच्छानुसार पैर का बोझ नहीं दे सकते, ऊपर के लोगों के इधर उधर हो जाने के भय से हाथ भी यथेच्छ नहीं फेंक सकते, और उस के अग्निकण से जल जायंगे, इसी ध्यान से किसी की ओर भर दृष्टि देख भी नहीं सकते। इस से आधार के संकोच से महादेवजी का कष्ट से नृत्य करना तुम्हारी रक्षा करै।

नाटकों में पहले मंगलाचरण कर के तब खेल आरम्भ करते हैं।

इस मंगलाचरण को नाटकशास्त्र में नांदी कहते हैं। किसी का मत है कि नांदी पहले ब्राह्मण पढ़ता है। कोई कहता है सूत्रधार ही, और किसी का मत है कि परदे के भीतर से नांदी पढ़ी या गाई जाय।

जो हो घर से स्त्री को बुलाकर पूछ लेता हूं **(नेपथ्य की ओर)**

री गुनवारी अब उपाय की जाननवारी।
घर की राखनवारी सब कुछ साधनवारी॥
मो गृह नीति सरूप काज सब कर संवारी।
वेगि आरी नटी विलम्ब न करु सुनि प्यारी॥

(नटी आती है)

नटी : आर्य्यपुत्र[1]! मैं आई, अनुग्रहपूर्व्वक कुछ आज्ञा दीजिये।

सूत्रधार : प्यारी, आज्ञा पीछे दी जायगी पहिले यह बता कि आज ब्राह्मणों को न्यौता कर के तुमने इस कुटुम्ब के लोगों पर क्यों अनुग्रह किया है? या आप ही से आज अतिथि लोगों ने कृपा किया है कि ऐसे धूम से रसोई चढ़ रही है।

नटी : आर्य्य! मैंने ब्राह्मणों को न्यौता दिया है।

सूत्रधार : क्यों? किस निमित्त से?

नटी : चन्द्रग्रहण लगनेवाला है।

सूत्रधार : कौन कहता है?

नटी : नगर के लोगों के मुंह सुना है।

सूत्रधार : प्यारी मैंने ज्योतिःशास्त्र के चौसठों[2] अंगों में बड़ा परिश्रम किया है। जो हो; रसोई तो होने दो[3] पर आज तो ग्रहन है यह तो किसी ने तुझे धोखा ही दिया है क्योंकि :

चन्द्र विम्ब पूरा न भए क्रूर केतु[4] हठ दाप[5]।
बल सों करिहै ग्रास कह–

(नेपथ्य में)

---

[1] संस्कृत मुहाविरे में पति को स्त्रियां आर्यपुत्र कहकर पुकारती हैं।

[2] होरा मुहूर्त जातक, ताजक, रमल इत्यादि।

[3] अर्थात् ग्रहण का योग तो कदापि नहीं है। खैर रसोई हो।

[4] केतु अर्थात् राक्षस मन्त्री। राक्षस मन्त्री ब्राह्मण था और केवल नाम उसका राक्षस था किन्तु गुण उस में देवताओं के थे।

[5] इस श्लोक का यथार्थ तात्पर्य जानने को काशी संस्कृत विद्यालय के अध्यक्ष जगद्विख्यात पंडितवर बापूदेव शास्त्री को मैंने पत्र लिखा। क्योंकि टीकाकारों ने 'चन्द्रमा पूर्ण होने पर' यही अर्थ किया है और इस अर्थ से मेरा जी नहीं भरा। कारण यह कि पूर्ण चन्द्र में तो ग्रहण लगता ही है; इस में विशेष क्या हुआ? शास्त्री जी ने जो उत्तर दिया है वह यहां प्रकाशित होता है श्रीयुत बाबू साहिब को बापूदेव का कोटि आशीर्वाद, आप ने प्रश्न लिख भेजे उनका संक्षेप से उत्तर लिखता हूं।

हैं! मेरे[1] जीते चन्द्र[2] को कौन बल से ग्रस[3] सकता है?

सूत्रधार : जेहि बुध रच्छत आप।

नटी : आर्य्य! यह पृथ्वी ही पर से चन्द्रमा को कौन बचाना चाहता है?

सूत्रधार : प्यारी, मैंने भी नहीं लखा, देखौ, अब फिर से वही पढ़ता हूं और जब वह फिर बोलैगा तौ मैं उसकी बोली से पहिचान लूंगा कि कौन है।

[‘अहो चन्द्र पूरन भए’ फिर से पढ़ता है]

(नेपथ्य में)

---

[1] सूर्य्य के अस्त हो जाने पर जो रात्रि में अन्धकार होता है यही पृथ्वी की छाया है और पृथ्वी गोलाकार है और सूर्य्य से छोटी है। इसलिये उस की छाया सूच्यकार शंकु के आकार की होती है और यह आकाश में चन्द्र के भ्रमण मार्ग को लांघ के बहुत दूर तक सदा सूर्य्य से छह राशि के अन्तर पर रहती है और पूर्णिमा के अन्त में चन्द्रमा भी सूर्य्य से छह राशि के अंतर पर रहता है। इसलिए जिस पूर्णिमा में चन्द्रमा पृथ्वी की छाया में आ जाता है अर्थात् पृथ्वी की छाया चन्द्रमा के बिम्ब पर पड़ती है तभी वह चन्द्र का ग्रहण कहलाता है और छाया जो चन्द्रबिम्ब पर देख पड़ती है वही ग्रास कहलाता है और राहु नामक एक दैत्य प्रसिद्ध है वह चन्द्रग्रहणकाल में पृथ्वी की छाया में प्रवेश कर के, चन्द्र की और प्रजा को पीड़ा करता है। इसी कारण से लोक में राहुकृत ग्रहण कहलाता है और उस काल में स्नान, दान, जप, होम इत्यादि करने से वह राहुकृत पीड़ा दूर होती है और बहुत पुण्य होता है।

[2] पूर्णिमा में चन्द्रबिम्ब भी सम्पूर्ण उज्ज्वल होता है तभी चन्द्रग्रहण होता है।

[3] जब कि पूर्णिमा के दिन चन्द्रग्रहण होता है, इस से पूर्णिमा में चन्द्रमा का और बुध का योग कभी नहीं होता (क्योंकि बुध सर्व्वदा सूर्य्य के पास रहता है और पूर्णिमा के दिन सूर्य्य चन्द्रमा से छह राशि के अन्तर पर रहता है। इसलिए बुध भी उस दिन चन्द्र से दूर ही रहता है)। यों बुध के योग में चन्द्रग्रहण कभी नहीं हो सकता। इति शिवम् संवत् 1937 ज्येष्ठ शुक्ल, 15 मंगल दिने, मंगल मंगले भूयात्।

शास्त्रीजी से एक दिन मुझे इस विषय में फिर वार्ता हुई। शास्त्रीजी को मैंने मुद्राराक्षस की पुस्तक भी दिखलाई। इस पर शास्त्रीजी ने कहा कि मुझ को ऐसा मालूम होता है कि यदि उस दिन उपराग का सम्भव होगा तो सूर्य्य ग्रहण का क्यौंकि बुधयोग अमावस्या के पास होता भी है। पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि राहु चन्द्रमा का ग्रास करता है और केतु सूर्य्य का, और इस श्लोक में केतु का नाम भी है। इस से भी संभव होता है कि सूर्य्य उपराग रहा हो। तो चाणक्य का कहना भी ठीक हुआ कि केतु हठ पूर्व्वक क्यौं चन्द्र को ग्रसा चाहता है अर्थात् एक तो चन्द्रग्रहण का दिन नहीं, दूसरे केतु का चन्द्रमा ग्रास का विषय नहीं क्यौंकि नन्दवीर्य्यजात होने से चन्द्रगुप्त राक्षस का वध्य नहीं है। इस अवस्था में ‘चन्द्रम् असम्पूर्णमंडल’ चन्द्रमा का अधूरा मंडल यह अर्थ करना पड़ेगा। तब छन्द में ‘चन्द विम्ब पूरन भए’ के स्थान पर ‘बिना चन्द्र पूरन भए’ पढ़ना चाहिए।

बुध का बिम्ब प्राचीन भास्कराचार्य्य के मतानुसार छह कला पन्द्रह विकला के लगभग है। परन्तु नवीनों के मत से केवल दस विकला परम है।

परन्तु इस में कुछ सन्देह नहीं कि यह ग्रह बहुत छोटा है क्यौंकि प्राचीनों को इस का ज्ञान बहुत

→

हैं! मेरे जीते चन्द्र को कौन बल से ग्रस सकता है?

सूत्रधार : (सुन कर) जाना।

अरे अहै कौटिल्य

[नटी डर नाट्य करती है]

सूत्रधार : दुष्ट टेढ़ी मतिवारो।
नन्दवंश जिन सहजहिं निज क्रोधानल जारो॥
चन्दग्रहण को नाम सुनत निज नृप को मानी।
इतही आवत चन्द्रगुप्त पैं कछु भय जानी॥
तो अब चलो हम लोग चलें।

[दोनों जाते हैं]

।इति प्रस्तावना।

●

→ कठिनता से हुआ है, इसलिए इसका नाम ही बुध, ज्ञ, इत्यादि हो गया। यह पृथ्वी से 689377 इतने योजन की दूरी पर मध्यम मान से रहता है और सदा सूर्य्य के अनुचर के समान सूर्य्य के पास ही रहता है, एक पाद अर्थात् तीन राशि भी सूर्य्य से आगे नहीं आता। विल्सन ने केतु शब्द से मलयकेतु का ग्रहण किया है। इसमें भी एक प्रकार का अलंकार अच्छा रहता है।

चमत्कृतबुद्धिसम्पन्न पंडित सुधाकरजी ने इस विषय में जो लिखा है वह विचित्र ही है। वह भी प्रकाश किया जाता है–

करत अधिक अंधियार वह, मिलि मिलि करि हरिचन्द।
द्विजराजहु विकसित करत, धनि धुनि यह हरिचन्द॥

श्री बाबू साहब को हमारे अनेक आशीर्वाद,

महाशय!

चन्द्रग्रहण का सम्भव भूछाया के कारण प्रति पूर्णिमा के अन्त में होता है और उस समय में केतु और सूर्य्य साथ रहते हैं। परन्तु केतु और सूर्य्य का योग यदि नियत संख्या के अर्थात् पांच राशि सोलह अंश से लेकर छह राशि चौदह अंश के वा ग्यारह राशि सोलह अंश से लेकर बारह राशि चौदह अंश के भीतर होता है तब ग्रहण होता है और यदि योग नियत संख्या के बाहर पड़ जाता है तब ग्रहण नहीं होता। इसलिए सूर्य्य केतु के योग ही के कारण से प्रत्येक पूर्णिमा में ग्रहण नहीं होता। तब–

क्रूरग्रहः स केतुश्चन्द्रम सम्पूर्ण मंडलमिदानीम्।
अभिभवितुमिच्छिति बलाद्रक्षत्येनं तु बुधयोगः॥

इस श्लोक का यथार्थ अर्थ यह है कि क्रूर ग्रह सूर्य्य केतु के साथ चन्द्रमा के पूर्ण मंडल को न्यून करने की इच्छा करता है परन्तु हे बुध! योग जो है वही बल से उस चन्द्रमा की रक्षा करता है। यहां बुद्ध शब्द पंडित के अर्थ में सबोधन है, ग्रहवाची कदापि नहीं है। बुध शब्द को ग्रहार्थ में ले जाने से जो जो अर्थ होते हैं वे सब बनौआ हैं। इति।

सं. 1937 वैशाख शुक्ल 5

ऊंचे ह्वै गुरु बुध कबी मिलि लरि होत विरूप।
करत समागम सबहि सों यह द्विजराज अनूप॥

आपका पं. सुधाकर

पहिला अंक

स्थान–चाणक्य का घर

[अपनी खुली शिखा को हाथ से फटकारता हुआ चाणक्य आता है]

चाणक्य : बता! कौन है जो मेरे जीते चन्द्रगुप्त को बल से ग्रसना चाहता है?

सदा दंति के कुम्भ को जो बिदारै।
ललाई नए चन्द सी जौन धारै॥
जंभाई समै काल सो जौन बाढ़े।
भलो सिंह को दांत सो कौन काढ़ै॥

और भी

कालसर्पणी नन्द कुल, क्रोध धूम सी जौन।
अबहूं बांधन देत नहिं, अहो शिखा मम कौन॥
दहन नन्दकुल बन सहज, अति प्रज्वलित प्रताप।
को मम क्रोधानल पतंग, भयौ चहत अब पाप॥

शारंगरव! शारंगरव!!

[शिष्य आता है]

शिष्य : गुरुजी! क्या आज्ञा है?

चाणक्य : बेटा! मैं बैठना चाहता हूं।

शिष्य : महाराज! इस दालान में बेंत की चटाई पहिले ही से बिछी है, आप हैं, आप बिराजिये।

चाणक्य : बेटा! केवल कार्य्य में तत्परता मुझे व्याकुल करती है, न कि और उपाध्यायों के तुल्य शिष्यजन से दुःशीलता[1] (बैठ कर आप ही आप) क्या सब लोग यह बात जान गए कि मेरे नन्दवंश[2] के नाश से क्रुद्ध हो कर राक्षस पितावध से दुखी मलयकेतु[3] से मिल कर यवनराज

---

[1] अर्थात् कुछ तुम लोगों पर दुष्टता से नहीं, अपने काम की घबराहट से बिछी हुई चटाई नहीं देखी।

[2] नन्दवंश अर्थात् नव नन्द एक नन्द और उसके आठ पुत्र।

[3] पर्वतेश्वर राजा का पुत्र।

की सहायता लेकर चन्द्रगुप्त पर चढ़ाई किया चाहता है। **(कुछ सोच कर)** क्या हुआ, जब मैं नन्दवंश वध की बड़ी प्रतिज्ञारूपी नदी से पार उतर चुका, तब यह बात प्रकाश होने ही से क्या मैं इस को न पूरा कर सकूंगा?

क्यौंकि–

दिसि सरिस रिपु रमनी बदन शशि शोक कारिख लाय कै।
लै नीति पवनहि सचिव बिटपन छार डारि जराय कै॥
विनु पुर निवासी पच्छिगन नृप बंसमूल नसाय कै।
भो शान्त मम क्रोधाग्नि यह कछु दहन हित नहिं पाय कै[1]॥

और भी

जिन जनन ने अति सोच सो नृप भय प्रगट धिक् नहिं कह्यो।
पै मम अनादर को अतिहि वह सोच जिय जिनके रह्यो[2]॥
ते लखहिं आसन सों गिरायो नन्द सहित समाज कों।
जिमि शिखर तैं बनराज क्रोध गिरावई गजराज कों॥

सो यद्यपि मैं अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुका हूं तौ भी चन्द्रगुप्त के हेतु शस्त्र अब भी धारण करता हूं। देखो मैंने–

नव नन्दन कौं मूल सहित खोद्यो छन भर में।
चन्द्रगुप्त मैं श्री राखी नलिनी जिमि सर में॥
क्रोध प्रीति सों एक नासि कै एक बसायो।
शत्रु मित्र को प्रकट सबन फल लै दिखलायो॥

अथवा जब तक राक्षस नहीं पकड़ा जाता तब तक नन्दों के मारने ही से क्या और चन्द्रगुप्त को राज्य मिलने ही से क्या? **(कुछ सोच कर)** अहा! राक्षस की नन्दवंश में कैसी दृढ़ भक्ति है! जब तक नन्दवंश का कोई भी जीता रहैगा तब तक वह कभी शूद्र का मन्त्री बनना स्वीकार न करैगा, इस से उस के पकड़ने में हम लोगों को निरुद्यम रहना अच्छा नहीं। यही समझकर तो नन्दवंश को सर्वार्थसिद्धि विचारा तपोवन में चला गया तौ भी हमने मार डाला। देखो, राक्षस मलयकेतु को मिलाकर हमारे बिगाड़ने में यत्न करता ही जाता है। **(आकाश में देख कर)** वाह राक्षस मन्त्री वाह! क्यौं न हो! वाह मन्त्रियों में वृहस्पति के समान वाह! तू धन्य है, क्यौंकि–

जब लौं रहै सुख राज को तब लौं सबै सेवा करैं।
पुनि राज बिगड़े कौन स्वामी? तनिक नहिं चित में धरैं॥

---

[1] अग्नि बिना आधार नहीं जलती।

[2] नन्द ने कुरूप होने के कारण चाणक्य को अपने श्राद्ध से निकाल दिया था।

जे विपतिहूं में पालि पूरब प्रीति काज संवारहीं।
ते धन्य नर तुम सरीखे दुरलभ अहै संसय नहीं॥

इसी से तो हम लोग इतना यत्न करके तुम्हें मिलाया चाहते हैं कि तुम अनुग्रह करके चन्द्रगुप्त के मन्त्री वनो, क्यौंकि–

मूरख कातर स्वामिभक्त कछु काम न आवैं।
पंडित हू बिन भक्ति काज कछु नाहिं बनावै॥
निज स्वारथ की प्रीति करैं ते सब जिमि नारी।
बुद्धि भक्ति दोउ होय सबै सेवक सुखकारी॥

सो मैं भी इस विषय में कुछ सोता नहीं हूं, यथाशक्ति उसी के मिलाने का यत्न करता रहता हूं। देखो, पर्व्वतक को चाणक्य ने मारा यह अपवाद न होगा, क्यौंकि सब जानते हैं कि चन्द्रगुप्त और पर्व्वतक मेरे मित्र हैं तौ मैं पर्व्वतक को मारकर चन्द्रगुप्त का पक्ष निर्बल कर दूंगा ऐसी शंका कोई न करैगा, सब यही कहैंगे कि राक्षस ने विषकन्या प्रयोग कर के चाणक्य के मित्र पर्व्वतक को मार डाला। पर एकान्त में राक्षस ने मलयकेतु के जी में यह निश्चय करा दिया है कि तेरे पिता को मैंने नहीं मारा, चाणक्य ही ने मारा। इस से मलयकेतु मुझ से बिगड़ रहा है। जो हो, यदि यह राक्षस लड़ाई करने को उद्यत होगा तौ भी पकड़ा जायगा। पर जो हम मलयकेतु को पकड़ैंगे तौ लोग निश्चय कर लेंगे कि अवश्य चाणक्य ही ने अपने मित्र इस के पिता को मारा और अब मित्रपुत्र अर्थात् मलयकेतु को मारना चाहता है। और भी, अनेक देश की भाषा, पहिरावा, चाल व्यवहार जानने वाले अनेक वेषधारी बहुत से दूत मैंने इसी हेतु चारों ओर भेज रक्खे हैं कि वे भेद लेते रहैं कि कौन हम लोगों से शत्रुता रखता है, कौन, मित्र है और कुसुमपुर निवासी नन्द के मन्त्री और सम्बन्धियों के ठीक ठीक वृत्तान्त का अन्वेषण हो रहा है, वैसे ही भद्र भटादिकों को बड़े बड़े पद देकर चन्द्रगुप्त के पास रख दिया है और भक्ति की परीक्षा लेकर बहुत से अप्रमादी पुरुष भी शत्रु से रक्षा करने को नियत कर दिये हैं। वैसे ही मेरा सहपाठी मित्र विष्णु शर्मा नामक ब्राह्मण जो शुक्रनीति और चौसठों कला से ज्योतिषशास्त्र में बड़ा प्रवीण है, उसे मैंने पहले ही योगी बना कर नन्दवध की प्रतिज्ञा के अनन्तर ही कुसुमपुर में भेज दिया है। वह वहां नन्द के मन्त्रियों से मित्रता कर के, विशेष कर के राक्षस का अपने पर बड़ा विश्वास बढ़ाकर सब काम सिद्ध करैगा, इस से मेरा

सब काम बन गया है परन्तु चन्द्रगुप्त सब राज्य का भार मेरे ही ऊपर रख कर सुख करता है। सच है, जो अपने बल बिना और अनेक दुःखों के भोगे बिना राज्य मिलता है वही सुख देता है। क्योंकि—

अपने बल सों लावहीं जद्यपि मारि सिकार।
तदपि सुखी नहिं होत है, राजा सिंह कुमार॥

(यम[1] का चित्र हाथ में लिये योगी का वेष धारण किए दूत आता है)

दूत : **अरे, और देव को काम नहिं, जम को करो प्रनाम।**
जो दूजन के भक्त को, प्रान हरत परिनाम॥
और
उलटे ते हूं बनत है, काज किए अति हेत।
जो जम जी सबको हरत, सोई जीविका देत॥
तो इस घर मैं चल कर जमघट दिखाकर गावैं।

[घूमता है]

शिष्य : रावलजी! ड्योढ़ी के भीतर न आना।

दूत : अरे ब्राह्मण! यह किसका घर है?

शिष्य : हम लोगों के परम प्रसिद्ध गुरु चाणक्यजी का।

दूत : **(हंस कर)** अरे ब्राह्मण, तब तो यह मेरे गुरुभाई ही का घर है; मुझे भीतर जाने दे। मैं उस को धर्म्मोपदेश करूंगा।

शिष्य : **(क्रोध से)** छिः मूर्ख! क्या तू गुरुजी से धर्म्म विशेष जानता है?

दूत : अरे ब्राह्मण! क्रोध मत कर। सभी सब कुछ नहीं जानते। कुछ तेरा गुरु जानता है, कुछ मेरे से लोग जानते हैं।

शिष्य : **(क्रोध से)** मूर्ख! क्या तेरे कहने से गुरु जी की सर्व्वज्ञता उड़ जायगी?

दूत : भला ब्राह्मण! जो तेरा गुरु सब जानता है तो बतलावे कि चन्द्र किस को नहीं अच्छा लगता?

शिष्य : मूर्ख! इस को जानने से गुरु को क्या काम?

दूत : यही तो कहता हूं कि यह तेरा गुरु ही समझैगा कि इस के जानने से क्या होता है? तू तो सूधा मनुष्य है, तू केवल इतना ही जानता है कि कमल को चन्द्र प्यारा नहीं है। देख—
जदपि होत सुन्दर कमल, उलटो तदपि सुभाव।
जो नित पूरन चन्द सौं, करत विरोध बनाव॥

---

[1] उस काल में एक चाल के फकीर जम का चित्र दिखला कर संसार की अनित्यता के गीत गाकर भीख मांगते थे।

चाणक्य : **(सुन कर आप ही आप)** अहा! "मैं चन्द्रगुप्त के बैरियों को जानता हूं" यह कोई गूढ़ बचन से कहता है।

शिष्य : चल मूर्ख! क्या बेठिकाने की बकवाद कर रहा है।

दूत : अरे ब्राह्मण! यह सब ठिकाने की बातैं होंगी।

शिष्य : कैसे होंगी?

दूत : जो कोई सुनने वाला और समझने वाला होय।

चाणक्य : रावलजी! बेखटके चले आइये। यहां आप को सुनने और समझने वाले मिलैंगे।

दूत : आया। **(आगे बढ़ कर)** जय हो महाराज की।

चाणक्य : **(देख कर आप ही आप)** कामों की भीड़ से यह नहीं निश्चय होता कि निपुणक को किस बात को जानने के लिये भेजा था। अरे जाना, इसे लोगों के जी का भेद लेने को भेजा था। **(प्रकाश)** आओ, आओ, कहो, अच्छे हो? बैठो।

दूत : जो आज्ञा।

[भूमि में बैठता है]

चाणक्य : कहो, जिस काम को गए थे उस का क्या किया? चन्द्रगुप्त को लोग चाहते हैं कि नहीं?

दूत : महाराज! आप ने पहले ही से ऐसा प्रबन्ध किया है कि कोई चन्द्रगुप्त विराग न करै। इस हेतु सारी प्रजा महाराज चन्द्रगुप्त में अनुरक्त है, पर राक्षस मन्त्री के दृढ़ मित्र तीन ऐसे हैं जो चन्द्रगुप्त की वृद्धि नहीं सह सकते।

चाणक्य : **(क्रोध से)** अरे! कह, कौन अपना जीवन नहीं सह सकते, उन के नाम तू जानता है?

दूत : जो नाम न जानता तो आप के सामने क्यौंकर निवेदन करता?

चाणक्य : मैं सुना चाहता हूं कि उन के क्या नाम हैं?

दूत : महाराज सुनिये। पहिले तो शुत्र का पक्षपात करने वाला क्षपणक है।

चाणक्य : **(हर्ष से आप ही आप)** हमारे शत्रुओं का पक्षपाती है? **(प्रकाश)** उस का नाम क्या है?

दूत : जीवसिद्धि नाम है।

चाणक्य : तूने कैसे जाना कि क्षपणक मेरे शत्रुओं का पक्षपाती है?

दूत : क्यौंकि उस ने राक्षस मन्त्री के कहने से देवं पर्व्वतेश्वर पर विषकन्या का प्रयोग किया।

चाणक्य : **(आप ही आप)** जीवसिद्धि तो हमारा गुप्त दूत है। **(प्रकाश)** हां,

और कौन है?

दूत : महाराज! दूसरा राक्षस मन्त्री का प्यारा सखा शकटदास कायथ है।

चाणक्य : **(हंस कर आप ही आप)** कायथ कोई बड़ी बात नहीं है तौ भी क्षुद्र की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। इसी हेतु तो मैंने सिद्धार्थक को उस का मित्र बनाकर उस के पास रक्खा है। **(प्रकाश)** हां, तीसरा कौन है?

दूत : **(हंस कर)** तीसरा तो राक्षस मन्त्री का मानो हृदय ही पुष्पपुरवासी चन्दनदास नामक वह बड़ा जौहरी है जिस के घर में मन्त्री राक्षस अपना कुटुम्ब छोड़ गया है।

चाणक्य : **(आप ही आप)** अरे! यह उस का बड़ा अन्तरंग मित्र होगा; क्यौंकि पूरे विश्वास बिना राक्षस अपना कुटुम्ब यौं न छोड़ जाता। **(प्रकाश)** भला, तूने यह कैसे जाना कि राक्षस मन्त्री वहां अपना कुटुम्ब छोड़ गया है?

दूत : महाराज! इस 'मोहऱ' की अंगूठी से आप को विश्वास होगा।

[अंगूठी देता है]

चाणक्य : **(अंगूठी लेकर और उस में राक्षस का नाम बांचकर प्रसन्न होकर आप ही आप)** आह! मैं समझता हूं कि राक्षस ही मेरे हाथ लगा। **(प्रकाश)** भला, तुम ने यह अंगूठी कैसे पाई? मुझ से सब वृत्तान्त तो कहो।

दूत : सुनिये, जब मुझे आपने नगर के लोगों का भेद लेने भेजा, तब मैंने यह सोचा कि बिना भेष बदले मैं दूसरे के घर में न घुसने पाऊंगा, इस से मैं जोगी का भेष कर के जमराज का चित्र हाथ में लिये फिरता फिरता चन्दनदास जौहरी के घर में चला गया और वहां चित्र फैलाकर गीत गाने लगा।

चाणक्य : हां तब?

दूत : तब महाराज! कौतुक देखने को एक पांच बरस का बड़ा सुन्दर बालक एक परदे के आड़ से बाहर निकला। उस समय परदे के भीतर स्त्रियों में बड़ा कलकल हुआ कि 'लड़का कहां गया।' इतने में एक स्त्री ने द्वार के बाहर मुख निकाल कर देखा और लड़के को झट पकड़ ले गई, पर पुरुष की उंगली से स्त्री की उंगली पतली होती है, इस से द्वार पर ही ये अंगूठी गिर पड़ी, और मैं उस राक्षस मन्त्री का नाम देख कर आप के पास उठा लाया।

चाणक्य : वाह वाह! क्यौं न हो। अच्छा जाओ, मैंने सब सुन लिया! तुम्हें इसका फल शीघ्र ही मिलैगा।

दूत : जो आज्ञा। **(जाता है)**

चाणक्य : शारंगरव! शारंगरव!!

शिष्य : **(आकर)** आज्ञा, गुरुजी!

चाणक्य : बेटा! कलम, दावात, कागज तौ लाओ।

शिष्य : जो आज्ञा। **(बाहर जाकर ले आता है)** गुरुजी! ले आया।

चाणक्य : **(लेकर आप ही आप)** क्या लिखूं? इसी पत्र से राक्षस को जीतना है।

[प्रतिहारी आती है]

प्रतिहारी : जय हो, महाराज की जय हो!

चाणक्य : **(हर्ष से आप ही आप)** वाह वाह! कैसा सगुन हुआ कि कार्य्यारम्भ ही में जय शब्द सुनाई पड़ा। **(प्रकाश)** कहो, शोणोत्तरा, क्यौं आई हो?

प्रतिहारी : महाराज! राजा चन्द्रगुप्त ने प्रणाम कहा है और पूछा है कि मैं पर्व्वतेश्वर की क्रिया किया चाहता हूं इस से आप की आज्ञा हो तौ उन के पहिरे आभरणों को पंडित ब्राह्मणों को दूं।

चाणक्य : **(हर्ष से आप ही आप)** वाह चन्द्रगुप्त वाह! क्यौं न हो; मेरे जी की बात सोच कर संदेश कहला भेजा है। **(प्रकाश)** शोणोत्तरा! चन्द्रगुप्त से कहो कि 'वाह! बेटा वाह!' क्यौं न हो, बहुत अच्छा विचार किया! तुम व्यवहार में बड़े ही चतुर हो, इस से जो सोचा है सो करौ, पर पर्व्वतेश्वर के पहिरे हुए आभरण गुणवान ब्राह्मणों को देने चाहिए, इस से ब्राह्मण मैं चुन के भेजूंगा।

प्रतिहारी : जो आज्ञा महाराज? **(आती है)**

चाणक्य : शारंगरव! विश्वावसु आदि तीनों भाइयों से कहो कि जाकर चन्द्रगुप्त से आभरण लेकर मुझ से मिलैं।

शिष्य : जो आज्ञा।

[जाता है]

चाणक्य : **(आप ही आप)** पीछे तो यह लिखैं पर पहिले क्या लिखैं। **(सोच कर)** अहा! दूतों के मुख से ज्ञात हुआ है कि उस म्लेच्छराज सैना में प्रधान पांच राजा परम भक्ति से राक्षस की सेवा करते हैं।

प्रथम चित्रवर्मा कुलूत को राजा भारी।
मलयदेशपति सिंहनाद दूजो बलधारी॥
तीजो पुसकरनयन अहै कश्मीर देश को।
सिधुसेन पुनि नृपति अति उग्र भेष को॥

मेघाक्ष पांचवों प्रबल अति, बहु हय जुत पारस नृपति।
अब चित्रगुप्त इन नाम को, मेटहिं हम जव लिखहिं हति[1]॥

(कुछ सोच कर) अथवा न लिखूं, अभी सब बात यौं ही रहे। **(प्रकाश)** शारंगरव! शारंगरव!

शिष्य : **(आकर)** आज्ञा गुरुजी!

चाणक्य : बेटा! वैदिक लोग कितना भी अच्छा लिखैं तौ भी उनके अक्षर अच्छे नहीं होते; इस से सिद्धार्थक से कहो **(कान में कह कर)** कि वह शकटदास के पास जाकर यह सब बात यौं लिखवा कर और किसी का लिखा कुछ कोई आप ही बांचै' यह सरनामे पर नाम बिना लिखवा कर हमारे पास आवै और शकटदास से यह न कहै कि चाणक्य ने लिखवाया है।

शिष्य : जो आज्ञा।

[जाता है]

चाणक्य : **(आप ही आप)** अहा! मलयकेतु को तो जीत लिया।

[चिट्ठी लेकर सिद्धार्थक आता है]

सिद्धार्थक : जय हो महाराज की, जय हो, महाराज! यह शकटदास के हाथ का लेख है।

चाणक्य : **(लेकर देखता है)** वाह, कैसे सुन्दर अक्षर हैं! **(पढ़ कर)** बेटा, इस पर यह मोहर कर दो।

सिद्धार्थक : जो आज्ञा। **(मोहर करके)** महाराज, इस पर मोहर हो गई, अब और कहिये क्या आज्ञा है।

चाणक्य : बेटा! हम तुम्हें एक अपने निज के काम में भेजा चाहते हैं।

सिद्धार्थक : **(हर्ष से)** महाराज, यह तो आप की कृपा है। कहिये, यह दास आप के कौन आ सकता है।

चाणक्य : सुनो! पहिले जहां सूली दी जाती है वहां जाकर फांसी देनेवालों को दाहिनी आंख दबाकर[2] समझा देना और जब वे तेरी बात समझ कर डर से इधर उधर भाग जायं तब तुम शकटदास को लेकर राक्षस मन्त्री के पास चले जाना। वह अपने मित्र के प्राण बचाने से तुम पर बड़ा प्रसन्न होगा और तुम्हें पारितोषिक देगा, तुम उस को लेकर

---

1. अर्थात् अब जब हम इनका नाम लिखते हैं तो निश्चय ये सब मरैंगे। इस से अब चित्रगुप्त अपने खाते से इनका नाम काट दें। न ये जीते रहैंगे न चित्रगुप्त को लेखा रखना पड़ैगा।
2. चांडालों को पहले से समझा दिया था कि जो आदमी दाहिनी आंख दबावै उस को हमारा मनुष्य समझ कर तुम लोग झटपट हट जाना।

कुछ दिनों तक राक्षस ही के पास रहना और जब और भी लोग पहुंच जायं तब यह काम करना।

[कान में समाचार कहता है।]

सिद्धार्थक : जो आज्ञा महाराज।

चाणक्य : शारंगरव! शारंगरव!!

शिष्य : (आकर) आज्ञा गुरुजी!

चाणक्य : कालपाशिक और दंडपाशिक से यह कह दो कि चन्द्रगुप्त आज्ञा करता है कि जीवसिद्धि क्षपणक ने राक्षस के कहने से विषकन्या का प्रयोग करके पर्व्वतेश्वर को मार डाला यही दोष प्रसिद्ध करके अपमानपूर्व्वक उस को नगर से निकाल दें।

शिष्य : जो आज्ञा।

[घूमता है]

चाणक्य : बेटा! ठहर सुन, और वह जो शकटदास कायस्थ है वह राक्षस के कहने से नित्य हम लोगों की बुराई करता है। यही दोष प्रकट करके उस को सूली दे दें और उस के कुटुम्ब को कारागार में भेज दें।

शिष्य : जो आज्ञा महाराज।

[जाता है]

चाणक्य : **(चिन्ता करके आप ही आप)** हा! क्या किसी भांति यह दुरात्मा राक्षस पकड़ा जायगा।

सिद्धार्थक : महाराज! लिया।

चाणक्य : **(हर्ष से आप ही आप)** अहा! क्या राक्षस को ले लिया? **(प्रकाश)** कहो, क्या पाया?

सिद्धार्थक : महाराज! आपने जो सन्देश कहा, वह मैंने भली भांति समझ लिया। अब काम पूरा करने जाता हूं।

चाणक्य : **(मोहर और पत्र देकर)** सिद्धार्थक! जा तेरा काम सिद्ध हो।

सिद्धार्थक : जो आज्ञा।

[प्रणाम करके जाता है]

शिष्य : (आकर) गुरुजी कालपाशिक, दंडपाशिक आप से निवेदन करते हैं कि महाराज चन्द्रगुप्त की आज्ञा पूर्ण करने जाते हैं।

चाणक्य : अच्छा बेटा! मैं चन्दनदास जौहरी को देखा चाहता हूं।

शिष्य : जो आज्ञा। **(बाहर जाकर चन्दनदास को लेकर आता है)** इधर आइये सेठ जी!

चन्दनदास : **(आप ही आप)** यह चाणक्य ऐसा निर्दय है कि यह जो एका एक किसी को बुलावै तौ लोग बिना अपराध भी इस से डरते हैं। फिर

कहां मैं इस का नित्य का अपराधी, इसी से मैंने धन सैनादिक तीन महाजनों से कह दिया कि दुष्ट चाणक्य जो मेरा घर लूट ले तौ आश्चर्य नहीं। इस से स्वामी राक्षस का कुटंम्ब और कहीं ले जाओ, मेरी जो गति होनी है वह हो।

शिष्य : इधर आइये साह जी!

चन्दनदास : आया।

[दोनों घूमते हैं]

चाणक्य : **(देख कर)** आइये साहजी! कहिये, अच्छे तो हैं? बैठिये यह आसन है।

चन्दनदास : **(प्रणाम करके)** महाराज! आप नहीं जातने कि अनुचित सत्कार अनादर से भी विशेष दुःख का कारण होता है। इस से मैं पृथ्वी पर बैठूंगा।

चाणक्य : वाह! आप ऐसा न कहिये, आप को तो हम लोगों के साथ यह व्यवहार उचित ही है। इस से आप आसन ही पर बैठिये।

चन्दनदास : **(आप ही आप)** कोई बात तो इस दुष्ट ने जानी। **(प्रकाश)** जो आज्ञा।

[बैठता है]

चाणक्य : कहिये साहजी! चन्दनदासजी! आप को व्यापार में लाभ तो होता है न?

चन्दनदास : महाराज क्यों नहीं, आप की कृपा से सब बनज व्यापार अच्छी भांति चलता है।

चाणक्य : कहिये साहजी! पुराने राजाओं के गुण, चन्द्रगुप्त के दोषों को देख कर, कभी लोगों को स्मरण आते हैं?

चन्दनदास : **(कान पर हाथ रख कर)** राम! राम! शरद ऋतु के पूर्ण चन्द्रमा की भांति शोभित चन्द्रगुप्त को देख कर कौन नहीं प्रसन्न होता?

चाणक्य : जो प्रजा ऐसी प्रसन्न हो तौ राजा भी प्रजा से कुछ अपना भला चाहते हैं।

चन्दनदास : महाराज! जो आज्ञा। मुझ से कौन और कितनी वस्तु चाहते हैं?

चाणक्य : सुनिये साहजी! यह नन्द का राज नहीं है, चन्द्रगुप्त का राज्य है, धन से प्रसन्न होने वाला तौ वह लालची नन्द ही था, चन्द्रगुप्त तौ तुम्हारे ही भले से प्रसन्न होता है।

चन्दनदास : **(हर्ष से)** महाराज यह तौ आप की कृपा है।

चाणक्य : पर यह तौ मुझ से पूछिये कि वह भला किस प्रकार से होगा?

चन्दनदास : कृपा कर के कहिये।

चाणक्य : सौ बात की एक बात यह है कि राजा के विरुद्ध कामों को छोड़ो।

चन्दनदास : महाराज वह कौन अभागा है जिसे आप राजविरोधी समझते हैं?

चाणक्य : उन में पहिले तौ तुम्हीं को।

चन्दनदास : **(कान पर हाथ रख कर)** राम! राम! राम! भला तिनके से और अग्नि से कैसा विरोध?

चाणक्य : विरोध यही है कि तुमने राजा के शत्रु राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब अब तक घर में रख छोड़ा है।

चन्दनदास : महाराज! यह किसी दुष्ट ने आप से झूठ कह दिया है।

चाणक्य : सेठजी! डरो मत। राजा के भय से पुराने राजा के सेवक लोग अपने मित्रों के पास बिना चाहै भी कुटुम्ब छोड़ कर भाग जाते हैं। इस से इस के छिपाने ही में दोष होगा।

चन्दनदास : महाराज! ठीक है। पहिले मेरे घर पर राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब था।

चाणक्य : पहिले तौ कहा कि किसी ने झूठ कहा है। अब कहते हो था, यह गबड़े की बात कैसी?

चन्दनदास : महाराज! इतना ही मुझ से बातों में फेर पड़ गया।

चाणक्य : सुनो, चन्द्रगुप्त के राज्य में छल का विचार नहीं होता। इस से राक्षस का कुटुम्ब दो, तो तुम सच्चे हो जाओगे।

चन्दनदास : महाराज! मैं कहता हूं न, पहिले राक्षस का कुटुम्ब था।

चाणक्य : तो अब कहां गया?

चन्दनदास : न जानै कहां गया।

चाणक्य : **(हंस कर)** सुनो सेठजी! तुम क्या नहीं जानते कि सांप तो सिर पर बूटी पहाड़ पर। और जैसा चाणक्य ने नन्द को...

[इतना कह कर लाज से चुप रह जाता है।]

चन्दनदास : **(आप ही आप)**

प्रिया दूर घन गरजहीं, अहो दुःख अति घोर।
औषधि दूर हिमाद्रि पै, सिर पै सर्प कठोर॥

चाणक्य : चन्द्रगुप्त को अब राक्षस मन्त्री राज पर से उठा देगा, यह आशा छोड़ो, क्यौंकि देखो—

नृप नंद जीवत जीति बल सौं मति रही जिनकी भली।
ते 'वक्रनासादिक' सचिव नहिं थिर सके करि, नसि चली॥
सो श्री सिमिट अब आय लिपटी चन्द्रगुप्त नरेश सों।
तेहि दूर को करि सकै चांदनि छुटत कहूं राकेस सों॥

और भी

"सदा दंति के कुम्भ को" इत्यादि फिर से पढ़ता है।

चन्दनदास : **(आप ही आप)** अब तुम को सब कहना फबता है।

(नेपथ्य में) हटो हटो—

चाणक्य : शारंगरव! यह क्या कोलाहल है देखौ तौ?

शिष्य : जो आज्ञा (**बाहर जाकर फिर आकर**) महाराज, राजा चन्द्रगुप्त की आज्ञा से राजद्वेषी जीवसिद्धि क्षपणक निरादरपूर्व्वक नगर से निकाला जाता है।

चाणक्य : क्षपणक! हा! हा! अथवा राजविरोध का फल भोगै। सुनो चन्दनदास! देखो, राजा अपने द्वेषियों को कैसा कड़ा दंड देता है। मैं तुम्हारे भले की कहता हूं, सुनो, और राक्षस का कुटुम्ब देकर जन्म भर राजा की कृपा से सुख भोगो।

चन्दनदास : महाराज! मेरे घर राक्षस मन्त्री का कुटुम्ब नहीं हैं।

[नेपथ्य में कल कल होता है]

चाणक्य : शारंगरव! देख तौ यह क्या कलकल होता है?

शिष्य : जो आज्ञा। (**बाहर जाकर फिर आता है**) महाराज! राजा की आज्ञा से राजद्वेषी शकटदास कायस्थ को सूली देने ले जाते हैं।

चाणक्य : राजविरोध का फल भोगै। देखो, सेठजी! राजा अपने विरोधियों को कैसा कड़ा दंड देता है, इस से राक्षस का कुटुम्ब छिपाना वह कभी न सहैगा; इसी से उस का कुटुम्ब देकर तुम को अपना प्राण और कुटुम्ब बचाना हो तौ बचाओ।

चन्दनदास : महाराज! क्या आप मुझे डर दिखाते हैं! मेरे यहां अमात्य राक्षस का कुटुम्ब हई नहीं है, पर जो होता तौ भी मैं न देता।

चाणक्य : क्या चन्दनदास! तुम ने यही निश्चय किया है?

चन्दनदास : हां! मैंने यही दृढ़ निश्चय किया है।

चाणक्य : (**आप ही आप**) वाह चन्दनदास! वाह! क्यौं न हो!

दूजे के हित प्रान दै, करै धर्म्म प्रतिपाल।
को ऐसो शिवि के बिना दूजो है या काल॥

(**प्रकाश**) क्या चन्दनदास, तुम ने यही निश्चय किया है?

चन्दनदास : हां! हां! मैंने यही निश्चय किया है।

चाणक्य : (**क्रोध से**) दुरात्मा दुष्ट बनिया! देख राजकोप का कैसा फल पाता है।

चन्दनदास : (**बांह फैला कर**) मैं प्रस्तुत हूं, आप जो चाहिए, अभी दंड दीजिये।

चाणक्य : (**क्रोध से**) शारंगरव! कालपाशिक, दंडपाशिक से मेरी आज्ञा कहो कि अभी इस दुष्ट बनिये को दंड दें। नहीं, ठहरो, दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि इस के घर कर सारा धन ले लें और इस को कुटुम्ब समेत पकड़कर बांध रक्खैं तब तक मैं चन्द्रगुप्त से कहूं, वह आप ही इस के सर्वस्व और प्राण के हरण की आज्ञा देगा।

शिष्य : जो आज्ञा महाराज। सेठजी, इधर आइये।

चन्दनदास : लीजिये महाराज! यह मैं चला। (**उठकर चलता है, आप ही आप**)

अहा! मैं धन्य हूं कि मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं, अपने हेतु तो सभी मरते हैं!

[दोनों बाहर जाते हैं]

चाणक्य : (हर्ष से) अब ले लिया है राक्षस को, क्योंकि–

जिमि इन तृन सम प्रान तजि कियो मित्र को त्रान।
तिमि सोहू निज मित्र अरु कुल रखिहैं दै प्रान॥

[नेपथ्य में कल कल]

चाणक्य : शारंगरव!

शिष्य : (आकर) आज्ञा गुरुजी!

चाणक्य : देख तौ यह कैसी भीड़ है।

शिष्य : **(बाहर जाकर फिर आश्चर्य से आकर)** महाराज! शकटदास को सूली पर से उतार कर सिद्धार्थक लेकर भाग गया।

चाणक्य : **(आप ही आप)** वाह सिद्धार्थक। काम का आरंभ तो किया। **(प्रकाश)** हैं क्या ले गया? **(क्रोध से)** बेटा! दौड़कर भागुरायण से कहो कि उस को पकड़े।

शिष्य : **(बाहर जाकर आता है, विषाद से)** गुरुजी! भागुरायण तो पहिले ही से कहीं भाग गया है।

चाणक्य : **(आप ही आप)** निज काज साधने के लिये जाये। **(क्रोध से प्रकाश)** भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुराज, बलगुप्त, राजसेन, रोहिताक्ष और विजयवर्म्मा से कहो कि दुष्टं भागुरायण को पकड़ें।

शिष्य : जो आज्ञा। **(बाहर जाकर फिर आकर, विषाद से)** महाराज! बड़े दुख की बात है कि सब बेड़े का बेड़ा हलचल हो रहा है। भद्रभट इत्यादि तो सब पिछली ही रात भाग गए।

चाणक्य : **(आप ही आप)** सब काम सिद्ध करैं। **(प्रकाश)** बेटा, सोच मत करो।

जे बात कछु जिय धारि भागे, भले सुख सों भागहीं।
जे रहे तेहू जाहिं, तिन को सोच मोहि जिय कछु नहीं॥
सत सैन सो अधिक साधिनि काज की जेहि जग कहै।
सो नन्दकुल की खननहारी, बुद्धि नित मो मैं रहै॥

(उठ कर और आकाश की ओर देख कर) अभी भद्रभटादिकों को पकड़ता हूं। **(आप ही आप)** राक्षस! अब मुझ से भाग के कहां जायगा, देख–

एकाकी मदगलित गज, जिमि नर लावहिं बांधि।
चन्द्रगुप्त के काज मैं तिमि तोहि धरिहौं साधि॥

[सब जाते हैं]

[जवनिका गिरती है]

●

दूसरा अंक

स्थान–राजपथ

[मदारी आता है]

मदारी : अललललललल, नाग लाए सांप लाए!

तन्त्र युक्ति सब जानहीं, मंडल रचहिं बिचार।
मन्त्र रक्षही ते करहिं, अहि नृप को उपकार॥

(आकाश में देख कर[1]) महाराज! क्या कहा? 'तू कौन है?' महाराज! मैं जीर्णविष नाम सपेरा हूं। **(फिर आकाश की ओर देख कर)** क्या कहा कि 'मैं भी सांप का मन्त्र जानता हूं खेलूंगा? तो आप काम क्या करते हैं यह तो कहिये?' **(फिर आकाश की ओर देख कर)** क्या कहा, 'मैं राजसेवक हूं?' तो आप तो सांप के साथ खेलते ही हैं। **(फिर ऊपर देख कर)** क्या कहा 'कैसे'? मन्त्र और जड़ी बिन मदारी और आंकुस बिन मतवाले हाथी का हाथीवान, वैसे ही नए अधिकार के संग्राम विजयी राजा के सेवक, ये दोनों अवश्य नष्ट होते हैं। **(ऊपर देख कर)** यह देखते देखते कहां चला गया? **(फिर ऊपर देख कर)** यह महाराज? पूछते हैं कि 'इन पिटारियों में क्या है?' इन पिटारियों में मेरी जीविका के सर्प हैं **(फिर ऊपर देख कर)** क्या कहा कि मैं देखूंगा! वाह वाह महाराज। देखिये देखिये, मेरी बोहनी हुई, कहिये इसी स्थान पर खोलूं? परन्तु यह स्थान अच्छा नहीं है। यदि आप को देखने की इच्छा हो तो आप इस स्थान में आइये; मैं दिखाऊं। **(फिर आकाश की ओर देख कर)** क्या कहा कि 'यह स्वामी राक्षस मन्त्री का घर है, इस में मैं घुसने न पाऊंगा तो आप जायं, महाराज! मैं तो अपनी जीविका के प्रभाव से सभी के घर जाता आता हूं। अरे क्या वह गया?' **(चारों ओर देख कर)** अहा, बड़े आश्चर्य की बात है जब मैं चाणक्य की रक्षा में चन्द्रगुप्त को देखता हूं तब समझता

---

1. 'आकाश में देख कर' या 'ऊपर देख कर' के नाटककार यह दिखाना चाहता है कि पात्र किसी अन्य पात्र से बातचीत कर रहा है।

हूं कि चन्द्रगुप्त ही राज्य करैगा, पर जब राक्षस की रक्षा में मलयकेतु को देखता हूं तब चन्द्रगुप्त का राज गया सा दिखाई देता है, क्योंकि–

चाणक्य ने लै जदपि बांधी बुद्धिरूपी डोर सों।
करि अचल लक्ष्मी मौर्य्यकुल में नीति के निज जोर सों॥
पै तदपि राक्षस चातुरी करि हाथ में ताकों करै।
गहि ताहि खींचत आपुनी दिसि मोहि यह जानी परै॥

सो इन दोनों परम नीतिचतुर मन्त्रियों के विरोध में नन्दकुल की लक्ष्मी संशय में पड़ी है।

दोऊ सचिव विरोध सौं, जिमि बन जुग गजराय।
हथिनी सी लक्ष्मी विचल, इत उत झोंका खाय॥

तो चलूं, अब मन्त्री राक्षस से मिलूं।

(जवनिका उठती है और आसन पर बैठा राक्षस और पास प्रियंवदक नामक सेवक दिखाई देता है)

राक्षस : (ऊपर देख कर आंखों में आंसू भर कर) हा! बड़े कष्ट की बात है–

गुन नीति बल सों जीति अरि जिमि आपु जादव गन हयो।
तिमि नन्द को यह विपुल कुल विधि बाम सौं सब नसि गयो॥
एहि सोच में मोहि दिवस अरु निसि नित्य जागत बीतहीं।
यह लखौ चित्र विचित्र मेरे भाग के बिनु भीतहीं॥

अथवा

बिनु भक्ति भूले, बिनहि स्वारथ हेतु हम यह पन लियो।
बिनु प्रान के भय, बिनु प्रतिष्ठालाभ सब अब लौं कियो॥
सब छोड़ि कै परदासता एहि हेत नित प्रति हम करैं।
जो स्वर्ग मैं हूं स्वामि मम निज शत्रु हत लखि सुख भरैं॥

(आकाश की ओर देख कर दुःख से) हा! भगवती लक्ष्मी! तू बड़ी अगुणज्ञा है। क्योंकि–

निज तुच्छ सुख के हेतु तजि गुनरासि नंद नृपाल कों।
अब शूद्र में अनुरक्त ह्वै लपटी सुधा मनु ब्याल कों॥
ज्यौं मत्त गज के मरत मद की धार ता साथहिं नसै।
त्यौं नंद के साथहि नसी किन निलज, अजहूं जग बसै॥

अरे पापिन!

का जग में कुलवंत नृप जीवत रह्यौ न कोय।
जो तू लपटी शूद्र सों नीचगामिनी होय॥

अथवा

वारवधू जन को अहै सहजहिं चपल सुभाव।
तजि कुलीन गुनियन करहिं ओछे जन सों चाव॥

तौ हम भी अब तेरा आधार ही नाश किए देते हैं। **(कुछ सोच कर)** हम मित्रवर चन्दनदास के घर अपना कुटुम्ब छोड़ कर बाहर चले आए सो अच्छा ही किया क्योंकि एक तो अभी कुसुमपुर को चाणक्य घेरा नहीं चाहता, दूसरे यहां के निवासी महाराजनन्द में अनुरक्त हैं, इस से हमारे सब उद्योगों में सहायक होते हैं। वहां भी विषादिक से चन्द्रगुप्त के नाश करने को और सब प्रकार से शत्रु का दांव घात व्यर्थ करने को बहुत सा धन देकर शकटदास को छोड़ ही दिया है। प्रतिक्षण शत्रुओं का भेद लेने को और उन का उद्योग नाश करने को भी जीवसिद्धि इत्यादि सुहृद नियुक्त ही हैं। सो अब तो–

विषवृक्ष, अहिसुत, सिंहपोत समान जा दुखरास कों।
नृपनन्द निजसुत जानि पाल्यौ सकुल निज असु नास कों॥
ता चन्द्रगुप्तहि बुद्धि सर मम तुरत मारि गिराइहै।
जो दुष्ट दैव न कवच बनिकै असह आड़े आइहै॥

[कंचुकी आता है]

कंचुकी : (आप ही आप)

नृपनन्द काम समान चानक नीति जर जरजर भयो।
पुनि धर्म्म सम नृप चन्द्र तिन तन पुरहु क्रम सों बढ़ि लियो॥
अवकास लहि तेहि लोभ राक्षस जदपि जीतन जाइहै।
पै सिथिल बल भे नाहिं कोऊ बिधिहु सों जय पाइहै॥

(देख कर) मन्त्री राक्षस है। (आगे बढ़ कर) मन्त्री! आप का कल्याण हो।

राक्षस जाजलक! प्रणाम करता हूं। अरे प्रियंवदक! आसन ला।

प्रियंवदक : (आसन लाकर) यह आसन है आप बैठें।

कंचुकी : (बैठ कर) मन्त्री, कुमार मलयकेतु ने आप को यह कहा है कि 'आप ने बहुत दिनों से अपने शरीर का सब शृंगार छोड़ दिया है। इस से मुझे बड़ा दुःख होता है। यद्यपि आप को अपने स्वामी के गुण नहीं भूलते और उन के वियोग के दुःख में यह सब कुछ नहीं अच्छा लगता तथापि मेरे कहने से आप इन को पहिरैं।' **(आभरण दिखाता है)** मन्त्री! आभरण कुमार ने अपने अंग से उतार कर भेजे हैं, आप इन्हें धारण करैं।

राक्षस : जाजलक! कुमार से कह दो कि तुम्हारे गुणों के आगे मैं स्वामी के गुण भूल गया। पर–

इन दुष्ट बैरिन सों दुखी निज अंग नाहिं संवारिहौं।
भूषन बसन सिंगार तव लौं हौं न तन कछु धारिहौं॥
जब लौं न सब रिपु नासि, पाटलिपुत्र फेर बसाइहौं।
हे कुंवर! तुम को राज दै, सिर अचल छत्र फिराइहौं॥

कंचुकी : अमात्य! आप जो न करो सो थोड़ा है। यह बात कौन कठिन है? पर कुमार की यह पहिली बिनती तौ मानने ही के योग्य है।

राक्षस : मुझे तौ जैसी कुमार की आज्ञा माननीय है वैसी ही तुम्हारी भी। इस से मुझे कुमार की आज्ञा मानने में कोई विचार नहीं है।

कंचुकी : (आभूषण पहिराता) कल्याण हो महाराज! मेरा काम पूरा हुआ।

राक्षस : मैं प्रणाम करता हूं।

कंचुकी : मुझ को जो आज्ञा हुई थी सो मैंने पूरी की।

[जाता है]

राक्षस : प्रियंवदक! देख तौ मेरे मिलने को द्वार पर खड़ा है।

प्रियंवदक : जो आज्ञा। (आगे बढ़ कर संपेरे के पास आकर) आप कौन हैं?

संपेरा : मैं जीर्णविष नामक संपेरा हूं और राक्षस मन्त्री के सामने मैं सांप खेलना चाहता हूं। मेरी यही जीविका है।

प्रियंवदक : तो ठहरो, हम अमात्य से निवेदन कर लैं। (राक्षस के पास जाकर) महाराज! एक संपेरा है, वह आप को अपना करतब दिखलाना चाहता है।

राक्षस : (बाईं आंख का फड़कना दिखा कर) आप ही आप हैं, आज पहिले ही सांप दिखाई पड़ा। (प्रकाश) प्रियंवदक! मेरा सांप देखने को जी नहीं चाहता सो इसे कुछ देकर विदा कर।

प्रियंवदक : जो आज्ञा। (संपेरे के पास जाकर) लो, मन्त्री तुम्हारा कौतुक बिना देखे ही तुम्हें यह देते हैं, जाओ।

संपेरा : मेरी ओर से यह बिनती करो कि मैं केवल संपेरा ही नहीं हूं किन्तु भाषा का कवि भी हूं इस से जो मन्त्रीजी मेरी कविता मेरे मुख से न सुना चाहैं तौ यह पत्र ही दे दो, पढ़ लैं!

[एक पत्र देता है]

प्रियंवदक : (पत्र लेकर राक्षस के पास आकर) महाराज! वह संपेरा कहता है कि मैं केवल संपेरा नहीं हूं, भाषा का कवि भी हूं। इस से जो मन्त्रीजी मेरी कविता मेरे मुख से सुना न चाहैं तौ यह पत्र ही दे दो पढ़ लैं।

[पत्र देता है]

राक्षस : (पत्र पढ़ता है)

सकल कुसुम रस पान करि मधुप रसिक सिरताज।
जो मधु त्यागत ताहि लै होत सबै जग काज॥

(आप ही आप) अरे!! मैं कुसुमपुर का वृत्तान्त जानने वाला आप का दूत हूं, इस दोहे से यह ध्वनि निकलती है। अह! मैं तो कामों से ऐसा घबड़ा रहा हूं कि अपने भेजे भेदिया लोगों को भी भूल गया। अब स्मरण आया। यह तो संपेरा बना हुआ विराधगुप्त कुसुमपुर से आया है। (प्रकाश) प्रियंवदक! इस को बुलाओ। यह सुकवि है, मैं भी इस की कविता सुना चाहता हूं।

प्रियंवदक : जो आज्ञा। (संपेरे के पास जाकर) आइये, मन्त्री जी आप को बुलाते हैं।

संपेरा : (मन्त्री के सामने जाकर और देख कर आप ही आप) अरे, यही मन्त्री राक्षस है! अहा!–

ले वाम बाहु लताहि राखत कंठ सौं खसि खसि परै।
तिमि धरे दच्छिन बाहु कोहू गोद में बिच लै गिरै॥
जा बुद्धि के डर होइ संकित नृप हृदय कुच नहिं धरै।
अजहूं न लक्ष्मी चन्द्रगुप्तहिं गाढ़ आलिंगन करै॥

(प्रकाश) मन्त्री की जय हो।

राक्षस : (देख कर) अरे विराध (संकोच से बात उड़ा कर) प्रियंवदक! मैं जब तक सर्प से अपना जी बहलाता हूं तब तक सब को लेकर तू बाहर ठहर!

प्रियंवदक : जो आज्ञा।

[बाहर जाता है]

राक्षस : मित्र विराधगुप्त! इस आसन पर बैठो।

विराधगुप्त : जो आज्ञा।

[बैठता है]

राक्षस : (खेद सहित निहार कर) हा! महाराज नन्द के आश्रित लोगों की यह अवस्था!

[रोता है]

विराधगुप्त : आप कुछ सोच न करें, भगवान की कृपा से शीघ्र ही वही अवस्था होगी।

राक्षस : मित्र विराधगुप्त! कहो, कुसुमपुर का वृत्तान्त कहो।

विराधगुप्त : महाराज! कुसुमपुर का वृत्तान्त बहुत लम्बा चौड़ा है जिस से जहां से आज्ञा हो वहां से कहूं।

राक्षस : मित्र! चन्द्रगुप्त के नगर प्रवेश के पीछे मेरे भेजे हुए विष देनेवाले लोगों ने क्या क्या किया, यह सुना चाहता हूं।

विराधगुप्त : सुनिये—शक, यवन, किरात, कांबोज, पारस वाह्लीकादिक देश के चाणक्य के मित्र राजों की सहायता से, चन्द्रगुप्त और पर्व्वतेश्वर के बलरूपी समुद्र से कुसुमपुर चारों ओर से घिर गया है।

राक्षस : **(कृपाण खींच कर क्रोध से)** हैं! मेरे जीते कौन कुसुमपुर घेर सकता है? प्रवीरक! प्रवीरक!

चढ़ौ लै सरैं, धाइ घेरौ अटा कों।
धरौ द्वार पै कुंजरैं ज्यौं घटा कों॥
कहौ जोधनै मृत्यु को जीति धावैं।
चलैं संग भै छांड़ि, कै कीर्ति पावैं॥

विराधगुप्त : महाराज! इतनी शीघ्रता न कीजिये, मेरी बात सुन लीजिये।

राक्षस : कौन बात सुनूं? अब मैंने जान लिया कि इसी का समय आ गया है। **(शस्त्र छोड़ कर आंखों में आंसू भर कर)** हा! देव नन्द! राक्षस को तुम्हारी कृपा कैसे भूलेगी?

हैं जहं झुंड खड़े गज मेघ के आज्ञा करौं तहां राक्षस! जायकै।
त्यौं ये तुरंग अनेकन हैं, तिनहूं के प्रबन्धहि राखौ बनायकै॥
पैदल ये सब तेरे भरोसे हैं, काज करौ तिनको चित लायकै।
यौं कहि एक हमैं तुम मानत है, निज काल हजार बनायकै॥

हां फिर?

विराधगुप्त : तब चारों ओर से कुसुमनगर घेर लिया और नगरवासी बिचारे भीतर ही भीतर घिरे घिरे घबड़ा गए। उन की उदासी देखकर सुरंग के मार्ग से सर्वार्थसिद्धि तपोवन में चला गया और स्वामी के विरह से आप के सब लोग शिथिल हो गए। तब अपने जय की डौंड़ी सब नगर में शत्रु लोगों ने फिरवा दी, और आप के भेजे हुए लोग सुरंग में इधर उधर छिप गए, और जिस विषकन्या को आप ने चन्द्रगुप्त के नाश हेतु भेजा था उस से तपस्वी पर्व्वतेश्वर मारा गया।

राक्षस : अहा मित्र! देखो, कैसा आश्चर्य हुआ—

जो विषमयी नृप चंद्र बध हित नारि राखी लाय कै।
तासौं हत्यौ पर्वत उलटि चाणक्य बुद्धि उपाय कै॥
जिमि करन शक्ति अमोघ अर्जुन हेतु धरी छिपाय कै।
पै कृष्ण के मत सो घटोत्कच पै परी घहराय कै॥

विराधगुप्त : महाराज! समय की सब उलटी गति है क्या कीजियेगा?

राक्षस : हां। तब क्या हुआ?

विराधगुप्त : तब पिता का वध सुन कर कुमार मलयकेतु नगर से निकल कर चले गए और पर्व्वतेश्वर के भाई वैरोधक पर उन लोगों ने अपना

विश्वास जमा लिया। तब उस दुष्ट चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का प्रवेश मुहूर्त प्रसिद्ध करके नगर के सब बढ़ई और लोहारों को बुलाकर एकत्र किया और उन से कहा कि महाराज के नन्द भवन में गृहप्रवेश का मुहूर्त ज्योतिषियों ने आज ही आधी रात का दिया है। इस से बाहर से भीतर तक सब द्वारों को जांच लो। तब उस से बढ़ई लोहारों ने कहा कि महाराज! चन्द्रगुप्त का गृहप्रवेश जान कर दारुवर्म्मा ने प्रवेश द्वार तो पहले ही सोने की तोरनों से शोभित कर रक्खा है। भीतर से द्वारों को हम लोग ठीक करते हैं। यह सुन कर चाणक्य ने कहा कि बिना कहे ही दारुवर्म्मा ने बड़ा काम किया इस से उस को चतुराई का पारितोषिक शीघ्र ही मिलैगा।

राक्षस : **(आश्चर्य से)** चाणक्य प्रसन्न हो यह कैसी बात है? इस से दारुवर्म्मा का यत्न या तो उलटा होगा या निष्फल होगा, क्योंकि इस ने बुद्धिमोह से या राजभक्ति से बिना समय ही चाणक्य के जी में अनेक सन्देह और विकल्प उत्पन्न कराये। हां फिर?

विराधगुप्त : फिर उस दुष्ट चाणक्य ने बुलाकर सबको सहेज दिया कि आज आधी रात को प्रवेश होगा, और उसी समय पर्व्वतेश्वर का भाई वैरोधक और चन्द्रगुप्त को एक आसन पर बिठाकर पृथ्वी का आधा आधा भाग कर दिया।

राक्षस : क्या पर्व्वतेश्वर के भाई वैरोधक को आधा राज मिला, यह पहले ही उस ने सुना दिया?

विराधगुप्त : हां, तो इस से क्या हुआ?

राक्षस : **(आप ही आप)** निश्चय यह ब्राह्मण बड़ा धूर्त है, कि उस ने उस सीधे तपस्वी से इधर उधर की चार बात बनाकर पर्व्वतेश्वर के मारने के अपयश निवारण के हेतु यह उपाय सोचा। **(प्रकाश)** अच्छा कहो—तब?

विराधगुप्त : तब यह तो उस ने पहले ही प्रकाश कर दिया था कि आज रात को गृह प्रवेश होगा, फिर उस ने वैरोधक को अभिषेक कराया और बड़े बड़े बहुमूल्य स्वच्छ मोतियों का उस को कवच पहिराया और अनेक रत्नों से जड़ा सुन्दर मुकुट उस के सिर पर रक्खा और गले में अनेक सुगन्ध के फूलों की माला पहिराई, जिस से वह एक ऐसे बड़े राजा की भांति हो गया कि जिन लोगों ने उसे सर्व्वदा देखा है वे भी न पहिचान सकैं। फिर उस दुष्ट चाणक्य की आज्ञा से लोगों ने चन्द्रगुप्त को चन्द्रलेखा नाम की हथिनी पर बिठाकर बहुत से मनुष्य साथ करके बड़ी शीघ्रता से नन्द मन्दिर में उस का प्रवेश

कराया। जब वैरोधक मन्दिर में घुसने लगा तब आप का भेजा दारुवर्म्मा बढ़ई उस को चन्द्रगुप्त समझकर उस के ऊपर गिराने को अपनी कल की बनी तोरन लेकर सावधान हो बैठा। इस के पीछे चन्द्रगुप्त के अनुयायी राजा सब बाहर खड़े रह गए और जिस बर्बर को आपने चन्द्रगुप्त के मारने के हेतु भेजा था वह भी अपनी सोने की छड़ी की गुप्ती जिस में एक छोटी कृपाण थी, लेकर वहां खड़ा हो गया।

राक्षस : दोनों ने बेठिकाने काम किया। हां फिर?

विराधगुप्त : तब उस हथिनी को मारकर बढ़ाया और उस के दौड़ चलने से कल की तोरण का लक्ष्य, जो चन्द्रगुप्त के धोखे वैरोधक पर किया गया था चूक गया और वहां बर्बर जो चन्द्रगुप्त का आसरा देखता था, वह बेचारा उसी कल की तोरन से मारा गया। जब दारुवर्म्मा ने देखा कि लक्ष्य तो चूक गए, अब मारे जायंगे तब उस ने उस कल के लोहे की कील से उस ऊंचे तोरन के स्थान ही पर से चन्द्रगुप्त के धोखे से तपस्वी वैरोधक को हथिनी ही पर मार डाला।

राक्षस : हाय! दोनों बातैं कैसे दुःख की हुईं कि चन्द्रगुप्त तो काल से बच गया और दोनों बिचारे बर्बर और वैरोधक मारे गए **(आप ही आप)** दैव ने इन दोनों को नहीं मारा हम लोगों को मारा!! **(प्रकाश)** और यह दारुवर्म्मा बढ़ई क्या हुआ?

विराधगुप्त : उस को वैरोधक के साथ के मनुष्यों ने मार डाला।

राक्षस : हाय! बड़ा दुःख हुआ हाय हाय! प्यारे दारुवर्म्मा का हम लोगों से वियोग हो गया। अच्छा! उस वैद्य अभयदत्त ने क्या किया?

विराधगुप्त : महाराज! सब कुछ किया।

राक्षस : **(हर्ष से)** क्या चन्द्रगुप्त मारा गया?

विराधगुप्त : दैव ने न मारने दिया।

राक्षस : **(शोक से)** तो क्या फूल कर कहते हो कि सब कुछ किया।

विराधगुप्त : उस ने औषधि में विष मिलाकर चन्द्रगुप्त को दिया, पर चाणक्य ने उस को देख लिया और सोने के बरतन में रखकर उस का रंग पलटा जानकर चन्द्रगुप्त से कह दिया कि इस औषधि में विष मिला है, इस को न पीना।

राक्षस : अरे वह ब्राह्मण बड़ा ही दुष्ट है। हां, तौ वह वैद्य क्या हुआ?

विराधगुप्त : उस वैद्य को वही औषधि पिलाकर मार डाला।

राक्षस : **(शोक से)** हाय हाय! बड़ा गुणी मारा गया। भला शयनघर के प्रबन्ध करने वाले प्रमोदक ने क्या किया।

विराधगुप्त : उस ने सब चौका लगाया।

राक्षस : (घबड़ा कर) क्यों?

विराधगुप्त : उस मूर्ख को जो आप के यहां से व्यय को धन मिला, उस से उस ने अपना बड़ा ठाटबाट फैलाया। यह देखते ही चाणक्य चौकन्ना हो गया और उस से अनेक प्रश्न किए। जब उस ने उन प्रश्नों के उत्तर अंडबंड दिये तौ उस पर पूरा सन्देह करके दुष्ट चाणक्य ने उस को बुरी चाल से मार डाला!

राक्षस : हा! क्या देव ने यहां भी उलटा हमीं लोगों को मारा! भला वह चन्द्रगुप्त को सोते समय मारने के हेतु जो राजभवन में बीभत्सकादिक वीर सुरंग में छिपा रक्खे थे उन का क्या हुआ?

विराधगुप्त : महाराज! कुछ न पूछिये।

राक्षस : (घबड़ा कर) क्यौं क्यौं क्या चाणक्य ने जान लिया?

विराधगुप्त : नहीं तो क्या?

राक्षस : कैसे?

विराधगुप्त : महाराज! चन्द्रगुप्त के सोने जाने के पहले ही वह दुष्ट चाणक्य उस घर में गया और उस को चारों ओर से देखा तो भीतर की एक दरार से चींटियां चावल के कने लाती हैं। यह देखकर उस दुष्ट ने निश्चय कर लिया कि इस घर के भीतर मनुष्य छिपे हैं। बस, यह निश्चय कर उस ने घर में आग लगवा दिया और धुआं से घबड़ाकर निकल तौ सके ही नहीं, इस से वे बीभत्सकादिक वहीं भीतर ही जल कर राख हो गए।

राक्षस : (सोच से) मित्र! देख, चन्द्रगुप्त का भाग्य कि सब के सब मर गए। (चिन्ता सहित) अहा! सखा! देख दुष्ट चन्द्रगुप्त का भाग्य!

कन्या जो विष की गई ताहि हतन के काज।
तासों मारूयौ पर्व्वतक जाको आधो राज।।
सबै नसे कलबल सहित जे पठये बध हेत।
उलटी मेरी नीति सब मौर्य्यहि को फल देत।।

विराधगुप्त : महाराज! तब भी उद्योग नहीं छोड़ना चाहिए—

प्रारम्भ ही नहिं विघ्न के भय अधम जन उद्यम सजैं।
पुनि करहिं तौ कोउ विघ्न सों डरि मध्य ही मध्यम तजैं।।
धरि लात विघ्न अनेक पै निरभय न उद्यम ते टरैं।
जे पुरुष उत्तम अन्त मैं ते सिद्ध सब कारज करैं।।

और भी—

का सेसहि नहिं भार पैर धरती देर न डारि।
कहा दिवसमनि नहिं थकत पैं नहिं रुकत विचारि॥
सज्जन ताको हित करत जेहि किय अंगीकार।
यहै नेम सुकृतीन को निज जिय करहु विचार॥

राक्षस : मित्र! यह क्या तू नहीं जानता कि मैं प्रारब्ध के भरोसे नहीं हूं? हां, फिर।

विराधगुप्त : तब से दुष्ट चाणक्य चन्द्रगुप्त की रक्षा में चौकन्ना रहता है और इधर उधर के अनेक उपायँ सोचा करता है और पहिचान पहिचान के नन्द के मित्रों को पकड़ता है।

राक्षस : **(घबड़ा कर)** हां! कहौ तौ, मित्र! उस ने किसे किसे पकड़ा है?

विराधगुप्त : सबसे पहले तो जीवसिद्धि क्षपणक को निरादर कर के नगर से निकाल दिया।

राक्षस : **(आप ही आप)** भला, इतने तक तो कुछ चिन्ता नहीं, क्यौंकि वह योगी है उस का घर बिना जी न घबड़ायगा। **(प्रकाश)** मित्र! उस पर अपराध क्या ठहराया?

विराधगुप्त : कि इसी दुष्ट ने राक्षस की भेजी विषकन्या से पर्व्वतेश्वर को मार डाला।

राक्षस : **(आप ही आप)** वाह रे कौटिल्य वाह? क्यौं न हो?

निज कलंक हम पै धर्यौ, हत्यौ अर्ध बंटवार।
नीतिबीज तुव एक ही फल उपजवत हजार॥

[प्रकाश] हां, फिर।

विराधगुप्त : फिर चन्द्रगुप्त के नाश को इस ने दारुवर्म्मादिक नियत किए थे, यह दोष लगाकर शकटदास को शूली दे दी।

राक्षस : **(दुःख से)** हा मित्र, शकटदास! तुम्हारी बड़ी अयोग्य मृत्यु हुई। अथवा स्वामी के हेतु तुम्हारे प्राण गए। इस से कुछ सोच नहीं है। सोच हमीं लोगों का है कि स्वामी के मरने पर भी जीना चाहते हैं।

विराधगुप्त : मन्त्री! ऐसा न सोचिये, आप स्वामी का काम कीजिये।

राक्षस : मित्र।

केवल है यह सोक, जीव लोभ अब लौं बचे।
स्वामि गयो परलोक, पै कृतघ्न इत ही रहे॥

विराधगुप्त : महाराज! ऐसा नहीं।

['केवल है' यह ऊपर का छन्द फिर से पढ़ता है]

राक्षस : मित्र! कहौ और भी सैकड़ों मित्रों का नाश सुनने को ये पापी कान उपस्थित हैं।

विराधगुप्त : यह सब सुन कर चन्दनदास ने बड़े कष्ट से आप के कुटुम्ब को छिपाया।

राक्षस : मित्र! उस दुष्ट चाणक्य के तो चन्दनदास ने विरुद्ध ही किया।

विराधगुप्त : तौ मित्र का बिगाड़ करना तौ अनुचित ही था।

राक्षस : हां, फिर क्या हुआ?

विराधगुप्त : तब चाणक्य ने आप के कुटुम्ब को चन्दनदास से बहुत मांगा पर उस ने नहीं दिया, इस पर उस दुष्ट ब्राह्मण ने...।

सक्षस : (घबड़ा कर) क्या चन्दनदास को मार डाला?

विराधगुप्त : नहीं, मारा तो नहीं, पर स्त्री पुत्र धन समेत बांधकर बन्दीघर में भेज दिया।

राक्षस : तौ क्या ऐसे सुखी होकर कहते हौ कि बन्धन में भेज दिया? अरे! यह कहो कि मन्त्री राक्षस को कुटुम्ब सहित बांध रक्खा है।

[प्रियंवदक आता है]

प्रियंवदक : जय जय महाराज! बाहर शकटदास खड़े हैं।

राक्षस : (आश्चर्य से) सच ही!

प्रियंवदक : महाराज! आप के सेवक कभी मिथ्या बोलते हैं?

राक्षस : मित्र विराधगुप्त! यह क्या!

विराधगुप्त : महाराज! होनहार जो बचाया चाहै तो कौन मार सकता है।

राक्षस : प्रियंवदक! अरे जो सच ही कहता है तो उन को झटपट लाता क्यों नहीं?

प्रियंवदक : जो आज्ञा।

[जाता है। सिद्धार्थक के संग शकटदास आता है]

शकटदास : (देख कर आप ही आप)

वह सूली गड़ी जो बड़ी दृढ़ कै, सोइ चन्द्र को राज थिरयौ प्रन तें।
लपटी वह फांस की डोर सोई, मनु श्री लपटी वृषलै मन तें॥
बजी डौंड़ी निरादर की नृप नन्द के, सेऊ लख्यौ इन आंखन तें।
नहिं जानि परै इतनोहू भये, केहि हेतु न प्रान कढ़े तन तें॥

(राक्षस को देख कर) यह मन्त्री राक्षस बैठे हैं। अहा!

नन्द गए हूं नहिं तजत प्रभुसेवा को स्वाद।
भूमि बैठि प्रगटत मनहुं स्वामिभक्त मरजाद॥

(पास जाकर) मन्त्री की जय हो।

राक्षस : (देख कर आनन्द से) मित्र शकटदास! आओ, मुझ से मिल लौ, क्योंकि तुम दुष्ट चाणक्य के हाथ से बच के आए हो।

[शकटदास मिलता है]

राक्षस : (मिल कर) यहां बैठो।

शकटदास : जो आज्ञा।

[बैठता है]

राक्षस : मित्र शकटदास! कहो तो यह आनन्द की बात कैसे हुई?

शकटदास : **(सिद्धार्थक को दिखा कर)** इस प्यारे सिद्धार्थक ने सूली देनेवाले लोगों को हटाकर मुझ को बचाया है।

राक्षस : **(आनन्द से)** वाह सिद्धार्थक! तुम ने काम तो अमूल्य किया है, पर भला! तब भी यह जो कुछ है सो लो।

[अपने अंग से आभरण उतार कर देता है]

सिद्धार्थक : **(लेकर आप ही आप)** चाणक्य के कहने से मैं सब करुंगा। **(पैर पर गिर के प्रकाश)** महाराज! यहां मैं पहिले पहल आया हूं, इस से मुझे यहां कोई नहीं जानता कि मैं उस के पास इन भूषणों को छोड़ जाऊं। इस से आप इसी अंगूठी से इस पर मोहर करके अपने ही पास रक्खें, मुझे जब काम होगा ले जाऊंगा।

राक्षस : क्या हुआ? अच्छा शकटदास! जो यह कहता है वह करो।

शकटदास : जो आज्ञा। **(मोहर पर राक्षस का नाम देख कर धीरे से)** मित्र! यह तौ तुम्हारे नाम की मोहर है।

राक्षस : **(देख कर बड़े सोच से आप ही आप)** हाय हाय, इस को तो जब मैं नगर से निकला था तो ब्राह्मणी ने मेरे स्मरणार्थ ले लिया था। यह इस के हाथ कैसे लगी? **(प्रकाश)** सिद्धार्थक! तुम ने यह कैसे पाई?

सिद्धार्थक : महाराज! कुसुमपुर में जो चन्दनदास जौहरी हैं उन के द्वार पर पड़ी पाई।

राक्षस : तो ठीक है।

सिद्धार्थक : महाराज! ठीक क्या है?

राक्षस : यही कि ऐसे धनिकों के घर बिना यह वस्तु और कहां मिलै।

शकटदास : मित्र! यह मन्त्रीजी के नाम की मुहर है। इस से तुम इस को मन्त्री को दे दो, तो इस के बदले तुम्हैं बहुत पुरस्कार मिलैगा।

सिद्धार्थक : महाराज! मेरे ऐसे भाग्य कहां कि आप इसे

[मोहर देता है]

राक्षस : मित्र शकटदास! इसी मुद्रा से सब काम किया करो।

शकटदास : जो आज्ञा।

सिद्धार्थक : महाराज! मैं कुछ बिनती करूं?

राक्षस : हां हां! अवश्य करो।

सिद्धार्थक : यह तो आप जानते ही हैं कि उस दुष्ट चाणक्य की बुराई कर के फिर मैं पटने में घुस नहीं सकता। इस से कुछ दिन आप ही के चरणों की सेवा करना चाहता हूं।

राक्षस : बहुत अच्छी बात है। हम लोग तो ऐसा चाहते ही थे। अच्छा है, यहीं रहो।

सिद्धार्थक : (हाथ जोड़ कर) बड़ी कृपा हुई।

राक्षस : मित्र शकटदास! ले जाओ, इस को उतारो और सब भोजनादिक को ठीक करो।

शकटदास : जो आज्ञा।

[सिद्धार्थक को लेकर जाता है]

राक्षस : मित्र विराधगुप्त! अब तुम कुसुमपुर का वृत्तान्त जो छूट गया था मुझ से कहो। वहां के निवासियों को मेरी बातें अच्छी लगती हैं कि नहीं।

विराधगुप्त : बहुत अच्छी लगती हैं, वरन् वे सब तो आप ही की अनुयायी हैं।

राक्षस : ऐसा क्यों?

विराधगुप्त : इस का कारण यह है कि मलयकेतु के निकलने के पीछे चाणक्य को चन्द्रगुप्त ने कुछ चिढ़ा दिया और चाणक्य ने भी उस की बात न सहकर चन्द्रगुप्त की आज्ञा भंग करके उस को दुःखी कर रक्खा है यह मैं भलीभांति जानता हूं।

राक्षस : (हर्ष से) मित्र विराधगुप्त! तौ तुम इसी संपेरे के भेष से फिर कुसुमपुर जाओ और वहां मेरा मित्र स्तनकलस नामक कवि है उस से कह दो कि चाणक्य के आज्ञाभंगादिकों के कवित्त बना बनाकर चन्द्रगुप्त को बढ़ावा देता रहे और जो कुछ काम हो जाय वह करभक से कहला भेजै।

विराधगुप्त : जो आज्ञा।

[जाता है। प्रियंवदक आता है]

प्रियंवदक : जय हो महाराज! शकटदास कहते हैं कि ये तीन आभूषण बिकते हैं, इन्हें आप देखें।

राक्षस : (देख कर) अहा यह तो बड़े मूल्य के गहने हैं। अच्छा शकटदास से कह दो कि दाम चुका कर ले लें।

प्रियंवदक : जो आज्ञा।

[जाता है]

राक्षस : तो अब हम भी चलकर करभक को कुसुमपुर भेजैं। (उठता है) अहा!

क्या उस मृतक चाणक्य से चन्द्रगुप्त से बिगाड़ हो जायगा? क्यौं नहीं? क्यौंकि सब कामों को सिद्ध ही देखता हूं।

चन्द्रगुप्त निज तेज बल करत सबन को राज।
तेहि समझत चाणक्य यह मेरो दियो समाज।।
अपनो अपनो करि चुके काज रह्यो कछु जौन।
अब जौ आपुस में लड़ैं तौ बड़ अचरज कौन।।

[जाता है]

[जवनिका गिरती है]

◆

143761

तीसरा अंक

स्थान–राजभवन की अटारी

[कंचुकी आता है]

कंचुकी : हे रूप आदिक विषय जो राखे हिये बहु लोभ सों।
सो मिटे इन्द्रीगन सहित ह्वै सिथिल अतिही छोभ सों॥
मानत कह्यो कोउ नाहिं सब अंग अंग ढीले ह्वै गए।
तौहू न तृष्णे! क्यौं तजत तू मोहि बूढ़ो हू भए॥

(आकाश की ओर देख कर) अरे! अरे! सुगांगप्रासाद के लोगों! सुनो। महाराज चन्द्रगुप्त ने तुम लोगों को यह आज्ञा दी है कि कौमुदी महोत्सव के होने से परम शोभित कुसुमपुर को मैं देखना चाहता हूं इस से उस अटारी को बिछौने इत्यादि से सजा रक्खो, देर क्यौं करते हो! (आकाश की ओर देख कर) क्या कहा? कि क्या महाराज चन्द्रगुप्त नहीं जानते कि कौमुदी महोत्सव अबकी न होगा? दुर दइमारो! क्या मरने को लगे हो? शीघ्रता करो।

सवैया

बहु फूल की माल लपेट कै खम्भन धूप सुगन्ध सो ताहि धुपाइए।
तापैं चहूं दिस चंद छपा से सुसोभित चौंर घने लटकाइए॥
भार सों चारु सिंहासन के मुरछा में धरा परी धेनु सी पाइए।
छींटि कै तापैं गुलाब मिल्यौ जल चन्दन ताकहं जाइ जगाइए॥

(आकाश की ओर देख कर) क्या कहते हो कि 'हम लोग अपने काम में लग रहे हैं?' अच्छा अच्छा, झटपट सब सिद्ध करो। देखौ! वह महाराज चन्द्रगुप्त आ पहुंचे।

बहु दिन श्रम करि नन्द नृप बह्यो राजपुर जौन।
बालेपन ही में लियौ चंद्र सीस निज तौन॥
डिगत न नेकहु विषम पथ दृढ़ प्रतिज्ञ दृढ़ गात।
गिरन चहत सम्हरत बहुरि नेकु न जिय घबरात॥

[नेपथ्य में–इधर महाराज इधर। राजा और प्रतिहारी आते हैं]

राजा : (आप ही आप) राज उसी का नाम है जिस में अपनी आज्ञा चले, दूसरे के भरोसे राज करना भी एक बोझा ढोना है। क्योंकि–

जो दूजे को हित करै तौ खोवै निज काज।
जो खायो निज काज तौ कौन बात को राज॥
दूजे ही को हित करै तौ वह परवस मूढ़।
कठपुतरी सो स्वाद कछु पावै कबहुं न कूढ़॥

और राज्य पाकर भी इस दुष्ट राजलक्ष्मी को सम्हालना बहुत कठिन है। क्योंकि–

कूर सदा भाखत पियहि चंचल सहज सुभाव।
नर गुन औगुन नहिं लखति सज्जन खल सम भाव॥
डरति सूर सो भीरु कहं गिनति न कछु रति हीन।
बारनारि अरु लच्छमी कहौ कौन बस कीन?॥

यद्यपि गुरु ने कहा है कि तू झूठी कलह कर के स्वतन्त्र होकर अपना प्रबंध कर ले यह तो बड़ा पाप सा है। अथवा गुरुजी के उपदेश पर चलने से हम लोग तो सदा ही स्वतन्त्र हैं।

जब लौं बिगारै काज नहिं तब लौं न गुरु कछु तेहि कहै।
पै शिष्य जाइ कुराह तौ गुरु सीस अंकुस ह्वै रहै॥
तासों सदा गुरु वाक्य वश हम नित्य पर आधीन हैं।
निर्लोभ गुरु से संत जन ही जगत में स्वाधीन हैं॥

(प्रकाश) अजी वैहीनर! 'सुगांगप्रासाद' का मार्ग दिखाओ।

कंचुकी : इधर आइये, महाराज, इधर।

[राजा आगे बढ़ता है]

कंचुकी : महाराज! सुगांगप्रासाद की यही सीढ़ी है।

राजा : (ऊपर चढ़ कर) अहा! शरद ऋतु की शोभा से सब दिशाएं कैसी सुन्दर हो रही हैं। क्योंकि–

सरद बिमल ऋतु सोहई निरमल नील अकास।
निसानाथ पूरन उदित सोलह कला प्रकास॥
चारु चमेली बन रही महमह महँकि सुबास।
नदी तीर फूले लखौ सेत सेत बहु कास॥
कमल कुमोदिनि सरन मैं फूले सोभा देत।
भौंर वृन्द जापै लखौ गूंजि गूंजि रस लेत॥
बसन चांदनी चन्द मुख, उडुगन मोती माल।
कास फूल मधु हास, यह सरद किधौं नव बाल॥

(चारों ओर देख कर) कंचुकी! यह क्या? नगर में ''चन्द्रिकोत्सव'' कहीं नहीं मालूम पड़ता; क्या तूने सब लोगों से ताकीद कर के नहीं कहा था कि उत्सव हो?

कंचुकी : महाराज, सबसे ताकीद कर दी थी।

राजा : तो फिर क्यों नहीं हुआ? क्या लोगों ने हमारी आज्ञा नहीं मानी?

कंचुकी : **(कान पर हाथ रख कर)** राम राम! भला नगर क्या, इस पृथ्वी में ऐसा कौन है जो आप की आज्ञा न मानै?

राजा : तो फिर चन्द्रिकोत्सव क्यों नहीं हुआ? देख न–

गज रथ बाजि सजे नहीं, बंधी न बंदनवार।
तने बितान न कहुं नगर, रंजित कहुं न द्वार।।
नर नारी डोलत न कहुं फूल माल गल डार।
नृत्य बाद धुनि गीत नहिं सुनियत श्रवन मंझार।।

कंचुकी : महाराज! ठीक है, ऐसा ही है।

राजा : क्यों ऐसा ही है?

कंचुकी : महाराज यों ही है।

राजा : स्पष्ट क्यों नहीं कहता?

कंचुकी : महाराज! चन्द्रिकोत्सव बन्द किया गया है।

राजा : **(क्रोध से)** किसने बन्द किया है?

कंचुकी : **(हाथ जोड़ कर)** महाराज! यह मैं नहीं कह सकता।

राजा : कहीं आर्य्य चाणक्य ने तो नहीं बन्द किया?

कंचुकी : महाराज! और किस को अपने प्राणों से शत्रुता करनी थी?

राजा : **(अत्यन्त क्रोध से)** अच्छा, अब हम बैठैंगे।

कंचुकी : महाराज! यह सिंहासन है, विराजिये।

राजा : **(बैठ कर क्रोध से)** अच्छा, कंचुकी! आर्य्य चाणक्य से कह कि 'महाराज आप को देखना चाहते हैं।'

कंचुकी : जो आज्ञा।

[वाहर जाता है]

[एक ओर परदा उठता है और चाणक्य बैठा हुआ दिखाई पड़ता है]

चाणक्य : **(आप ही आप)** दुष्ट राक्षस हमारी बराबरी करता है, जानता है कि–

जिमि हम नृप-अपमान सौं महा क्रोध उर धारि।
करी प्रतिज्ञा नन्द नृप नासन की निरधारि।।
सो नृप नन्दहि पुत्र सह नासि करी हम पूर्ण।
चन्द्रगुप्त राजा कियो करि राक्षस मद चूर्ण।।

तिमि सोऊ मोहि नीति बल छलन चहत हति चन्द।
पै मो आछत यह जतन वृथा तासु अति मन्द॥

(ऊपर देख कर क्रोध से) अरे राक्षस! छोड़ छोड़ यह व्यर्थ का श्रम; देख—

जिमि नृप नन्दहि मारि कै वृषलहि दीनों राज।
आइ नगर चाणक्य किय दुष्ट सर्प सों काज॥
तिमि सोऊ नृप चन्द्र को चाहत करन विगार।
निज लघु मति लांघ्यौ चहत मो बल बुद्धि पहार॥

(आकाश की ओर देख कर) अरे राक्षस! मेरा पीछा छोड़ो। क्योंकि—

राज काज मन्त्री चतुर करत बिना अभिमान।
जैसो तुम नृप नंद हो चन्द्र न तौन समान॥
तुम कछु नहिं चाणक्य जौ साधौं कठिन्हु काज।
तासों हम सों बेर करि नहिं सरिहैं तुव राज॥

अथवा इस में तो मुझे कुछ सोचना ही न चाहिए। क्योंकि—

मम भागुरायन आदि भृत्यन मलय राख्यौ घेरि कै।
तिमि गए सिद्धारथक ऐहैं तेउ काज निबेरि कै॥
अब लखहु करि छल कलह नृप सौं भेद बुद्धि उपाइ कै।
पर्वत जनन सौं हम बिगारत राक्षसहि उलटाइ कै॥

कंचुकी : हा! सेवा बड़ी कठिन होती है।

नृप सौं सचिव सौं सब मुसाहेब गनन सौं डरते रहौ।
पुनि विटहु जे अति पास के तिनकौं कह्यौ करतौ रहौ॥
मुख लखत बीतत दिवस निसि भय रहत संकित प्रान है।
निज उदर पूरन हेतु सेवा स्वान-वृत्ति समान है॥

[चारों ओर घूम कर देख कर]

अहा! यही आर्य्य चाणक्य का घर है तो चलूं (कुछ आगे बढ़ कर और देख कर) अहाहा! यह राजाधिराज श्रीमन्त्रीजी के घर की सम्पत्ति है। जो—

कहुं परे गोमय शुष्क, कहुं सिल परी शोभा दै रही।
कहुं तिल कहूं जब-रासि लागी बटुन जो भिक्षा लही॥
कहुं कुस परे कहुं समिध सूखत भार सौं ताके नयो।
यह लखौ छप्पर महा जरजर होइ कैसो झुकि गयो॥

महाराज चन्द्रगुप्त के भाग्य से ऐसा मन्त्री मिला है।

बिन गुनहूं के नृपन कों धन हित गुरुजन धाई।
सूखो मुख करि झूठहीं बहु गुन कहहिं बनाई॥

पै जिनको तृष्णा नहीं ते न लबार समान।
तिन सौं तृन सम धनिक जन पावत कबहुं न मान॥

(देख कर डर से) अरे आर्य्य चाणक्य यहां बैठे हैं, जिन्होंने–

लोक घरषि चन्द्रहि कियो राजा नन्द गिराइ।
होत प्रात रवि के कढ़त जिमि ससि तेज नसाइ॥

(प्रकट दंडवत करके) जय हो! आर्य्य की जय हो!!

चाणक्य : (देख कर) कौन है, वैहीनर। क्यौं आया है?

कंचुकी : आर्य्य! अनेक राजागणों के मुकुट माणिक्य से सर्व्वदा जिन के पदतल लाल रहते हैं उन महाराज चन्द्रगुप्त ने आप के चरणों में दंडवत् कर के निवेदन किया है कि "यदि आप के किसी कार्य्य में विघ्न न पड़े तो मैं आप का दर्शन किया चाहता हूं।"

चाणक्य : वैहीनर! क्या वृषल मुझे देखा चाहता है? क्या मैंने 'कौमुदी महोत्सव' का प्रतिषेध कर दिया है यह वृषल नहीं जानता?

कंचुकी : आर्य्य, क्यौं नहीं।

चाणक्य : (क्रोध से) हैं? किसने कहा बोल तौ?

कंचुकी : (भय से) महाराज प्रसन्न हों जब सुगांगप्रासाद ही अटारी पर गए थे तो देख कर महाराज ने आप ही जान लिया कि 'कौमुदी महोत्सव' अबकी नहीं हुआ।

चाणक्य : अरे ठहर, मैंने जाना यह तुम्हीं लोगों ने वृषल का जी मेरी ओर से फेरकर उसे चिढ़ा दिया है, और क्या।

[कंचुकी भय से नीचा मुंह करके चुप रह जाता है]

चाणक्य : अरे राज के कारबारियों का चाणक्य के ऊपर बड़ा ही विद्वेष पक्षपात है। अच्छा, वृषल कहां है। बता।

कंचुकी : (डरता हुआ) आर्य्य! सुगांगप्रासाद की अटारी पर से महाराज ने मुझे आप के चरणों में भेजा है।

चाणक्य : (उठ कर) कंचुकी सुगांगप्रासाद का मार्ग बता।

कंचुकी : इधर महाराज।

[दोनों घूमते हैं]

कंचुकी : महाराज! यह सुगांगप्रासाद की सीढ़ियां हैं, चढ़ैं।

[दोनों सुगांगप्रासाद पर चढ़ते हैं और चाणक्य के घर का परदा गिर के छिप जाता है]

चाणक्य : (चढ़ कर और चन्द्रगुप्त को देख कर प्रसन्नता से आप ही आप) अहा! वृषल सिंहासन पर बैठा है–

हीन नन्द सो रहित नृप चन्द्र करत जेहि भोग।
परम होत सन्तोष लखि आसन राजा भोग॥

(पास जाकर) जय हो वृषल की!

चन्द्रगुप्त : **(उठ कर और पैरों पर गिर कर)** आर्य्य! चन्द्रगुप्त दंडवत करता है।

चाणक्य : **(हाथ पकड़ कर उठा कर)** उठो बेटा! उठो।

जहं लौं हिमालय के शिखर सुरधुनी कन सीतल रहै।
जहं लौं विविध मणिखंड मंडित समुद दच्छिन दिसि बहै॥
तहं लौं सबै नृप आइ भय सौं तोहि सीस झुकावहीं।
तिनके मुकुट मणि रंगे तुव पर निरखि हम सुख पावहीं॥

चन्द्रगुप्त : आर्य्य! आप की कृपा से ऐसा ही हो रहा है। बैठिये।

[दोनों यथास्थान बैठते हैं]

चाणक्य : वृषल! कहो मुझे क्यों बुलाया है?

चन्द्रगुप्त : आर्य्य के दर्शन से कृतार्थ होने को।

चाणक्य : **(हंस कर)** भया, बहुत शिष्टाचार हुआ। अब बताओ क्यों बुलाया है? क्यौंकि राजा लोग किसी को बेकाम नहीं बुलाते।

चन्द्रगुप्त : आर्य्य, आपने 'कौमुदी महोत्सव' के न होने में क्या फल सोचा है?

चाणक्य : **(हंस कर)** तो यही उलाहना देने को बुलाया है न?

चन्द्रगुप्त : उलाहना देने को कभी नहीं?

चाणक्य : तो क्यौं?

चन्द्रगुप्त : पूछने को।

चाणक्य : जब पूछना ही है तब तुम को इस से क्या? शिष्य को सर्व्वदा गुरु की रुचि पर चलना चाहिए।

चन्द्रगुप्त : इसमें कोई सन्देह नहीं पर आप की रुचि बिना प्रयोजन नहीं प्रवृत होती, इस से पूछा।

चाणक्य : ठीक है, तुम ने मेरा आशय जान लिया, बिना प्रयोजन के चाणक्य की रुचि किसी ओर कभी फिरती ही नहीं।

चन्द्रगुप्त : इसी से तो सुनने बिना मेरा जी अकुलाता है?

चाणक्य : सुनो, अर्थशास्त्रकारों ने तीन प्रकार के राज्य लिखे हैं– एक राजा के भरोसे, दूसरा मन्त्री के भरोसे, तीसरा राजा और मन्त्री दोनों के भरोसे; सो तुम्हारा राज तो केवल सचिव के भरोसे है, फिर इन बातों के पूछने से क्या? व्यर्थ मुंह दुखाना है, यह सब हम लोगों के भरोसे है, हम लोग जानैं।

[राजा क्रोध से मुंह फेर लेता है; नेपथ्य में दो वैतालिक गाते हैं]

(राग विराग)

प्रथम वैतालिकः अहो यह सदर सम्भु ह्वै आई।
कास फूल फूले चहुं दिसि तें सोइ मनु भस्म लगाई॥
चन्द उदित सोइ सीस अभूषन शोभा लगति सुहाई।
तासों रंजित घन पटली सोइ मनु गज खाल बनाई॥
फूले कुसुम मुंडमाला सोइ सोहत अति धवलाई।
राजहंस सोभा सोइ मानों हास-विभव दरसाई॥
अहो यह सरद सम्भु बनि आई।

[राग कलिंगड़ा]

हरौ हरि नैन तुम्हारी बाधा।
सरद अन्त लखि सेस अंक तें जगे जगत सुभ साधा॥
कछु कछु खुले मुंदे कछु सोभित आलस भरि अनियारे।
अरुन कमल से मद के माते थिर भे जदपि ढरारे॥
सेस सीस मनि चमक चकौंधन तनिकहुं नहिं सकुचाहीं।
नींद भरे श्रम जगे चुभत नित कमला उर माहीं॥
हरौ हरि-नैन तुम्हारी बाधा।

दूसरा वैतालिक : (कड़खे की चाल में)
अहो, जिनको विधि सब जीव सों बढ़ि दीनो जग काज।
अरे, दान सलिल वारे सदा जे जीतहिं गजराज॥
अहो, झुक्यौ न जिनको मान ते नृपवर जग सिरताज।
अरे, सहहिं न आज्ञा भंग जिमि दन्तपात मृगराज॥
अरे, केवल बहु गहिना पहिरि राजा होइ न कोय।
अहो, जाकी नहिं आज्ञा टरै सो नृप तुम सम होय॥

चाणक्य : (सुन कर आप ही आप) भला पहिले ने तो देवता रूप शरद के वर्णन में आशीर्वाद दिया, पर इस दूसरे ने क्या कहा? (कुछ सोच कर) अरे जाना, यह सब राक्षस की करतूत है। अरे दुष्ट राक्षस! क्या तू नहीं जानता कि अभी चाणक्य सो नहीं गया है?

चन्द्रगुप्त : अजी वैहीनर! इन दोनों गाने वालों को लाख लाख मोहर दिलवा दो।

वैहीनर : जो आज्ञा महाराज।

[उठ कर जाना चाहता है]

चाणक्य : वैहीनर, ठहर अभी मत जा। वृषल, कुपात्र को इतना क्यौं देते हो।

चन्द्रगुप्त : आप मुझे सब बातों में यौं ही रोक दिया करते हैं, तब यह मेरा राज्य क्या है वरन् उलटा बन्धन है।

चाणक्य : वृषल! जो राजा आप असमर्थ होते हैं उन में इतना ही तो दोष

है, इस से जो ऐसी इच्छा हो तो अपने राज का प्रबन्ध आप कर लो।

चन्द्रगुप्त : बहुत अच्छा, आज से मैंने सब काम सम्हाला।

चाणक्य : इस से अच्छी और क्या बात है, तो मैं भी अपने अधिकार पर सावधान हूं।

चन्द्रगुप्त : जब यही है तो पहिले मैं पूछता हूं कि 'कौमुदी मोहत्सव' का निषेध क्यौं किया गया?

चाणक्य : मैं भी यही पूछता हूं कि उस के होने का प्रयोजन क्या था!

चन्द्रगुप्त : पहिले तो मेरी आज्ञा का पालन।

चाणक्य : मैंने भी आप की आज्ञा के अपालन के हेतु ही कौमुदी महोत्सव का प्रतिषेध किया, क्यौंकि–

आइ चारहु सिन्धु के छोरहु के भूपाल।
जो शासन सिर पै धरैं जिमि फूलन की माल॥
तोहि हम जो कछु टारहीं सोउ तुव हित उपदेस।
जासो तुमरो विनय गुन, जग मैं बढ़े नरेस॥

चन्द्रगुप्त : और जो दूसरा प्रयोजन है वह भी सुनूं।

चाणक्य : वह भी कहता हूं।

चन्द्रगुप्त : कहिये।

चाणक्य : शोणोत्तरे! अचलदत्त कायस्थ से कहो कि तुम्हारे पास जो भद्रभट इत्यादिकों का लेखपत्र है वह मांगा है।

प्रतिहारी : जो आज्ञा।

[बाहर से पत्र लाकर देती है]

चाणक्य : वृषल, सुनो।

चन्द्रगुप्त : मैं उधर ही कान लगाये हूं।

चाणक्य : **(पढ़ता है)** स्वस्ति परम प्रसिद्ध नाम महाराज श्री चन्द्रगुप्त देव के साथी जो हम अब उन को छोड़कर कुमार मलयकेतु के आश्रित हुए हैं उन का यह प्रतिज्ञापत्र है। पहिला गजाध्यक्ष भद्रभट, अश्वाध्यक्ष पुरुषदत्त, महाप्रतिहार चन्द्रभानु का भानजा हिंगुरात, महाराज के नातेदार महाराज बलगुप्त, महाराज के लड़कपन का सेवक राजसेन, सेनापति सिंहबलदत्त का छोटा भाई भागुरायण, मालवा के राजा का पुत्र रोहिताक्ष और क्षत्रियों में सबसे प्रधान विजय-वर्म्मा **(आप ही आप)** ये हम सब लोग यहां महाराज का काम सावधानी से साधते हैं **(प्रकाश)** यही इस पत्र में लिखा है। सुना?

चन्द्रगुप्त : आर्य्य, मैं इन सबों के उदास होने का कारण सुनना चाहता हूं।

चाणक्य : वृषल! सुनो—जो गजाध्यक्ष और अश्वाध्यक्ष थे वे रात दिन मद्य, स्त्री और जुआ में डूब कर अपने काम से निरे बेसुध रहते थे। इस से मैंने उन से अधिकार लेकर केवल निर्वाह के योग्य जीविका कर दी थी, इस से उदास होकर कुमार मलयकेतु के पास चले गए और वहां अपना-अपना कार्य्य सुनाकर फिर उसी पद पर नियुक्त हुए हैं और हिंगुरात और बलगुप्त ऐसे लालची हैं कि कितना भी दिया पर अन्त में मारे लालच के कुमार मलयकेतु के पास इस लोभ से जा रहे कि यहीं बहुत मिलैगा, और जो आप का लड़कपन का सेवक राजसेन था उस ने आप की थोड़ी ही कृपा से हाथी, घोड़ा, घर और धन सब पाया, पर इस भय से भागकर मलयकेतु के पास चला गया कि सब धन छिन न जाय, और वह जो सिंहबलदत्त सैनापति का छोटा भाई भागुरायण है उस से पर्व्वतक से बड़ी प्रीति थी सो उस ने कुमार मलयकेतु से यह कहा कि "जैसे विश्वासघात करके चाणक्य ने तुम्हारे पिता को मार डाला वैसे ही तुम्हें भी मार डालैगा। इस से यहां से भाग चलो" ऐसे ही बहकाकर कुमार मलयकेतु को भगा दिया और जब आप के बैरी चन्दनदासादिकों को दंड हुआ तब मारे डर के मलयकेतु के पास जा रहा। उस ने भी यह समझकर कि इस ने मेरे प्राण बचाये और मेरे पिता का परिचित भी है उस को कृतज्ञता से अपना अन्तरंगी मन्त्री बनाया है, और वे जो रोहिताक्ष और विजयवर्म्मा थे वे ऐसे अभिमानी थे कि जब आप उन के नातेदारों का आदर करते थे तब वह कुढ़ते थे, इसी से वे भी मलयकेतु के पास चले गए, बस, यही उन लोगों की उदासी का कारण है।

चन्द्रगुप्त : आर्य्य। जब इन सबके भागने का उद्यम जानते ही थे तो क्यों न रोक रक्खा?

चाणक्य : ऐसा कर नहीं सके।

चन्द्रगुप्त : क्यों आप इस में असमर्थ हो गए वा कुछ उस में भी प्रयोजन था?

चाणक्य : असमर्थ कैसे हो सकते हैं? उस में भी कुछ प्रयोजन ही था।

चन्द्रगुप्त : आर्य्य। वह प्रयोजन मैं सुना चाहता हूं।

चाणक्य : सुनो और भूल मत जाओ।

चन्द्रगुप्त : आर्य्य! मैं सुनता हूं, भूलूंगा भी नहीं; कहिये।

चाणक्य : जब जौ लोग उदास हो गए हैं या बिगड़ गए हैं उन के दो ही उपाय हैं या तो फिर से उन पर अनुग्रह करें या उन को दंड दें और भद्रभट, पुरुषदत्त से जो अधिकार ले लिया गया है तो अब उन पर अनुग्रह यही है कि फिर उन को उन का अधिकार दिया जाय; और यह

हो नहीं सकता, क्यौंकि उन को मृगया, मद्यपानादिक का जो व्यसन है इस से इस योग्य नहीं हैं कि हाथी, घोड़ों को सम्हालें और सब सैना की जड़ हाथी घोड़े ही हैं। वैसे ही हिंगुरात बलगुप्त को कौन प्रसन्न कर सकता है, क्यौंकि उन को सब राज्य पाने में भी संतोष न होगा, और राजसेन और भागुरायण तो धन और प्राण के डर से भागे हैं; ये तो प्रसन्न होई नहीं सकते, और रोहिताक्ष, विजयवर्म्मा का तो कुछ पूछना ही नहीं है क्यौंकि वे तो और नातेदारों के मान से जलते हैं और उन का कितना भी मान करो, उन्हें थोड़ा ही दिखलाता है; तो इन का क्या उपाय है। यह तो अनुग्रह का वर्णन हुआ, अब दंड का सुनिये। यदि हम इन सबों को प्रधान पद पाकर के जो बहुत दिनों से नन्दकुल के सर्व्वदा शुभाकांक्षी और साथी रहे दंड देकर दुखी करैं तो नन्दकुल के साथियों का हम पर से विश्वास उठ जाय, इस से छोड़ ही देना योग्य समझा, सो इन्हीं सब हमारे भृत्यों को पक्षपाती बनाकर राक्षस के उपदेश से म्लेच्छराज की बड़ी सहायता पाकर और अपने पिता के वध से क्रोधित होकर पर्व्वतक का पुत्र कुमार मलयकेतु हम लोगों से लड़ने को उद्यत हो रहा है, सो यह लड़ाई के उद्योग का समय है, उत्सव का समय नहीं। इस से गढ़ के संस्कार के समय 'कौमुदीमहोत्सव' क्या होगा, यही सोच कर उस का प्रतिषेध कर दिया।

चन्द्रगुप्त : आर्य्य! मुझे अभी इस में बहुत कुछ पूछना है।

चाणक्य : भली भांति पूछो, क्यौंकि मुझे भी बहुत कुछ कहना है।

चन्द्रगुप्त : यह पूछता हूं।

चाणक्य : हां! मैं भी कहता हूं।

चन्द्रगुप्त : यह कि हम लोगों के सब अनर्थों की जड़ मलयकेतु है; उसे आपने भागते समय क्यौं नहीं पकड़ा?

चाणक्य : वृषल! मलयकेतु के भागने के समय भी दो ही उपाय थे—या तो मेल करते या दंड देते। जो मेल करते तो आधा राज देना पड़ता और जो दंड देते तो फिर हम लोगों की कृतघ्नता सब पर प्रसिद्ध हो जाती कि इन्हीं लोगों ने पर्व्वतक को भी मरवा डाला और जो आधा राज देकर अब मेल कर लें तो उस बिचारे पर्व्वतक के मारने का पाप ही पाप लगै। इस से मलयकेतु को भागते समय छोड़ दिया।

चन्द्रगुप्त : और भला राक्षस इसी नगर में रहता था, उस का भी आप ने कुछ न किया इस का क्या उत्तर है।

चाणक्य : सुनो, राक्षस अपने स्वामी की स्थिर भक्ति से और यहां बहुत दिन

रहने से यहां के लोगों का और नन्द के सब साथियों का विश्वासपात्र हो रहा है और उन का स्वभाव सब लोग जान गए हैं। उस में बुद्धि और पौरुष भी है, वैसे ही उस के सहायक भी हैं और कोषबल भी हैं, इस से जो वह यहां रहे तो भीतर के सब लोगों को फोड़कर उपद्रव करै और जो यहां से दूर रहै तो वह ऊपरी जोड़ तोड़ लगावै पर उन के मिटाने में इतनी कठिनाई न हो। इस से उस के जाने के समय उपेक्षा कर दी गई।

चन्द्रगुप्त : तो जब वह यहां था तभी उस को वश में क्यौं नहीं कर लिया?

चाणक्य : वश क्या कर लें, अनेक उपायों से तो वह छाती में गड़े कांटे की भांति निकाल कर दूर किया गया है! उसे दूर करने में और कुछ प्रयोजन ही था।

चन्द्रगुप्त : तो बल से क्यौं नहीं पकड़ रक्खा?

चाणक्य : वह राक्षस ऐसा नहीं है, उस पर जो बल किया जाता तो या तो वह आप मारा जाता या तुम्हारी सैना का नाश कर देता। और—

हम खोवैं इक महत नर जो वह पावै नास।
जौ वह नासै सैन तुव तौहू जिय अति त्रास॥
तासों कल बल करि बहुत अपने बस करि वाहि।
जिमि गज पकरैं सुघर तिमि बांधैंगे हम ताहि॥

चन्द्रगुप्त : मैं आप की बात तो नहीं काट सकता, पर इस से तो मन्त्री राक्षस ही बढ़ चढ़ के जान पड़ता है।

चाणक्य : (क्रोध से) 'आप नहीं' इतना क्यौं छोड़ दिया? ऐसा कभी नहीं है। उस ने क्या किया है कहो तो?

चन्द्रगुप्त : जो आप न जानते हौं तो सुनिये कि वह माहत्मा—

जदपि आपु जीती पुरी तदपि धारि कुशलात।
जब लौं जिय चाह्यौ रह्यौं धारि सीस पै लात॥
डौंड़ी फेरन के समय निज बल जय प्रगटाय।
मेरो दल के लोग को दीनों तुरत हराय॥
मोहे परिजन रीति सों जाके सब बिनु त्रास।
जो मो पै निज लोकहू आनहिं नहिं विश्वास॥

चाणक्य : (हंस कर) वृषल! राक्षस ने वह सब किया?

चन्द्रगुप्त : हां! हां! अमात्य राक्षस ने यह सब किया।

चाणक्य : तो हम ने जाना, जिस तरह नन्द का नाश कर के तुम राजा हुए वैसे ही अब मलयकेतु राजा होगा।

चन्द्रगुप्त : आर्य्य! यह उपालम्भ आप को नहीं शोभा देता। करने वाला सब दूसरा है।

चाणक्य : रे कृतघ्न।

अतिहि क्रोध करि, खोलिकै सिखा प्रतिज्ञा कीन।
सो सब देखत भुव करी नव नृप नन्द विहीन॥
घिरी स्वान अरु गीध सों भय उपजावनिहारि।
जारि नन्दहू नहिं भई सांत मसान दवारि॥

चन्द्रगुप्त : यह सब किसी दूसरे ने किया।

चाणक्य : किसने?

चन्द्रगुप्त : नन्दकुल के द्वेषी दैव ने।

चाणक्य : दैव तो मूर्ख लोग मानते हैं।

चन्द्रगुप्त : और विद्वान् लोग भी यद्वा तद्वा करते हैं।

चाणक्य : **(क्रोध नाट्य कर के)** अरे वृषल! क्या नौकरों की तरह मुझ पर आज्ञा चलाता है।

खुली सिखाहूं बांधिबे चंचल भे पुनि हाथ।
(क्रोध से पैर पृथ्वी पर पटक कर)
घोर प्रतिज्ञा पुनि चरन करन चहत कर साथ॥
नन्द नसे सों निरुज ह्वै तू फूल्यौ गरबाय।
सो अभिमान मिटाइहौं तुरहिं लेहिं गिराय॥

चन्द्रगुप्त : **(घबड़ा कर)** अरे! क्या आर्य्य को सचमुच क्रोध आ गया!

फर फर फरकत अधर पुट, भये नयन जुग लाल।
चढ़ी जाति भौंहैं कुटिल, स्वांस तजत जिमि व्याल॥
मनहुं अचानक रुद्रदृग खुल्यौं त्रितिय दिखरात।
(आवेग सहित)
धरनी धार्‌यौ बिनु धंसे हा हा किमि पदघात॥

चाणक्य : **(निकली क्रोध रोक कर)** तो वृषल! इस कोरी बकवाद से क्या लाभ है! जो राक्षस चतुर है तो यह शस्त्र उसी को दे। **(शस्त्र फेंक और उठ कर आप ही आप)** ह ह ह! 'राक्षस'! यही तुम ने चाणक्य को जीतने का उपाय किया।

तुम जानौ चाणक्य सों नृप चन्दहि लखाय।
सहजहि लैहैं राज हम निज बल बुद्धि उपाय॥
सो हम तुमहीं कहूं छलन कियो क्रोध परकास।
तुमरोई करिहै उलटि यह तुव भेद बिनास॥

[क्रोध प्रकट करता हुआ चला जाता है]

चन्द्रगुप्त : आर्य्य वैहीनर! ''चाणक्य का अनादर कर के आज से चन्द्रगुप्त सब काम काज आप ही संभालेंगे,''—यह लोगों से कह दो।

कंचुकी : **(आप ही आप)** अरे! आज महाराज ने चाणक्य के पहले आर्य्य शब्द नहीं कहा! क्यों? क्या सचमुच अधिकार छीन लिया? वा इसमें महाराज का क्या दोष है!

सचिव दोष सों होत है नृपहु बरे ततकाल।
हाथीवान प्रमाद सों गज कहवावत व्याल॥

चन्द्रगुप्त : क्यों जी? क्या सोच रहे हो?

कंचुकी : यही कि महाराज को महाराज शब्द यथार्थ शोभा देता है।

चन्द्रगुप्त : **(आप ही आप)** इन्हीं लोगों के धोखा खाने से आर्य्य का काम होगा। **(प्रकट)** शोणोत्तरे! इस सूखी कलह से हमारा सिर दुखने लगा, इस से शयनगृह का मार्ग दिखलाओ।

प्रतिहारी : इधर आवैं, महाराज, इधर आवैं।

चन्द्रगुप्त : **(उठ कर चलता हुआ आप ही आप)**

गुरु आयसु छल सौं कलह करिहू जीय डराय।
किमि नर गुरुजन सौं लरहिं, यहै सोच जिय हाय॥

[सब जाते हैं—जवनिका गिरती है]

●

चौथा अंक

स्थान–मन्त्री राक्षस के घर के बाहर का प्रान्त।

[करभक घबड़ाया हुआ आता है]

करभक : अहाहा हा! अहाहा हा!

अतिसय दुरगम ठाम मैं सत जोजन सौं दूर।
कौन जात है धाइ बिन प्रभु निदेस भरपूर॥

अब राक्षस मन्त्री के घर चलूं। **(थका सा घूम कर)** अरे कोई चौकीदार है! स्वामी राक्षस मन्त्री से जाकर कहो कि 'करभक काम पूरा कर के पटने से दौड़ा आता है।'

[दौवारिक आता है]

दौवारिक : अजी ! चिल्लाओ मत। स्वामी राक्षस मन्त्री को राजकाज सोचते सोचते सिर में ऐसी बिथा हो गई है कि अब तक सोने के बिछौने से नहीं उठे। इस से एक घड़ी भर ठहरो। अवसर मिलता है तौ मैं निवेदन किए देता हूं।

[परदा उठता है और सोने के बिछौने पर चिन्ता में भरा राक्षस और शकटदास दिखाई पड़ते हैं]

राक्षस : **(आप ही आप)**

कारज उलटो होत है कुटिल नीति के जोर।
का कीजै सोचत यही जागि होय है भोर॥

और भी

आरम्भ पहिले सोचि रचना वेश की करि लावहीं।
इक बात में गर्भित बहुत फल गूढ़ भेद दिखावहीं॥
कारन अकारन सोचि फैली क्रियन को सकुचावहीं।
जे करहिं नाटक बहुत दुःख हम सरिस तेऊ पावहीं॥

और भी यह दुष्ट ब्राह्मण चाणक्य–

दौवारिक : **(प्रवेश कर)** जय जय।

राक्षस : किसी भांति मिलाया या पकड़ा जा सकता है!

दौवारिक : अमात्य—

राक्षस : **(बाएं नेत्र के फड़कने का अपशकुन देख कर आप ही आप)** 'ब्राह्मण चाणक्य जय जय' और 'पकड़ा जा सकता है अमात्य'—यह उलटी बात हुई और उसी समय असगुन भी हुआ। तो भी क्या हुआ, उद्यम नहीं छोड़ेंगे। **(प्रकाश)** भद्र! क्या कहता है?

दौवारिक : अमात्य! पटने से करभक आया है सो आप से मिलना चाहता है।

राक्षस : अभी लाओ।

दौवारिक : जो आज्ञा। **(करभक के पास जाकर, उस को संग ले आकर)** भद्र! मन्त्रीजी वह बैठते हैं, उधर जाओ।

[जाता है]

करभक : **(मन्त्री को देख कर)** जय हो, जय हो।

राक्षस : अजी करभक! आओ आओ, अच्छे हो? बैठो।

करभक : जो आज्ञा।

[पृथ्वी पर बैठ जाता है]

राक्षस : **(आप ही आप)** अरे! मैंने इस को किस काम का भेद लेने को भेजा था यह भूला जाता है।

[चिन्ता करता है। बेंत हाथ में लेकर एक पुरुष आता है]

पुरुष : हटे रहना, बचे रहना—अजी दूर रहो—दूर रहो, क्या नहीं देखते?

नृप द्विजादि जिन नरन को मंगल रूप प्रकास।
ते न नीच मुखहू लखहिं, कैसो पास निवास॥

(आकाश की ओर देख कर) अजी क्या कहा, कि क्यों हटाते हो? अमात्य राक्षस के सिर में पीड़ा सुनकर कुमार मलयकेतु उन को देखने को इधर ही आते हैं! जाता है।

[भागुरायण और कंचुकी के साथ मलयकेतु आता है]

मलयकेतु : **(लम्बी सांस लेकर–आप ही आप)** हा! देखो पिता को मरे आज दस महीने हुए और व्यर्थ वीरता का अभिमान करके अब तब हम लोगों ने कुछ भी नहीं किया, वरन् तर्पण करना भी छोड़ दिया। यह क्या हुआ। मैंने तो पहिले यही प्रतिज्ञा की है कि—

कर वलय उर ताड़त गिरे, आंचरहु की सुधि नहिं परी।
मिलि करहिं आरतनाद हाहा, अलक खुलि रज सों भरी॥
जो शोक सों भई मातुगन की दशा सो उलटायहैं।
करि रिपु जुवतिगन की सोई गति पितहिं तृप्त करायहैं॥

और भी—

रन मरि पितु ढिग जात हम बीरन की गति पाय।
कै माता दृग जल धरत रिपु जुवती मुख लाय।।

(प्रकाश) अजी जाजले! सब राजा लोगों से कहो कि "मैं बिना कहे सुने राक्षस मन्त्री के पास अकेला जाकर उन को प्रसन्न करूंगा, इस से वे सब लोग उधर ही ठहरैं!"

कंचुकी : जो आज्ञा! **(घूमते घूमते नेपथ्य की ओर देख कर)** अजी राजा लोग! सुनो कुमार की आज्ञा है कि मेरे साथ कोई न चलै **(देख कर आनन्द से)** महाराज देखिये। आप की आज्ञा सुनते ही सब राजा रुक गए–

अति चपल जे रथ चलत, ते सुनि चित्र से तुरतहि भए।
जे खुरन खोदत नभ पथहि, ते बाजिगन झुकि रुकि गए।।
जे रहे धावत, ठिठकि ते गज मूक घंटा सह सधे।
मरजाद तुव नहिं तजहिं नृपगण जलधि से मानहुं बंधे।।

मलयकेतु : अजी जाजले! तुम भी सब लोगों को लेकर जाओ, एक केवल भागुरायण मेरे संग रहे।

कंचुकी : जो आज्ञा।

[सबको लेकर जाता है]

मलयकेतु : मित्र भागुरायण! जब मैं यहां आता था तो भद्रभट प्रभृति लोगों ने मुझ से निवेदन किया कि 'हम राक्षस मन्त्री के द्वारा कुमार के पास नहीं रहा चाहते, कुमार के सेनापति शिखरसेन के द्वारा रहैंगे। दुष्ट मन्त्री ही के डर तो चन्द्रगुप्त को छोड़कर यहां सब बात का सुबीता जानकर कुमार का आश्रय लिया है। सो उन लोगों की बात का मैंने आशय नहीं समझा।

भागुरायण : कुमार! यह तो ठीक ही है, क्यौंकि अपने कल्याण के हेतु सब लोग स्वामी का आश्रय हित और प्रिय के द्वारा करते हैं।

मलयकेतु : मित्र भागुरायण! तो फिर राक्षस मन्त्री तो हम लोगों का परम प्रिय और बड़ा हितू है।

भागुरायण : ठीक है, पर बात यह है कि अमात्य राक्षस का बैर चाणक्य से है, कुछ चन्द्रगुप्त से नहीं है। इस से तो चाणक्य की बातों से रूठ कर चन्द्रगुप्त उस से मन्त्री का काम ले ले और नन्दकुल की भक्ति से "यह नन्द ही के वंश का है"–यह सोच कर राक्षस चन्द्रगुप्त से मिल जाय और चन्द्रगुप्त भी अपने बड़े लोगों का पुराना मन्त्री समझ कर उस को मिला ले, तो ऐसा न हो कि कुमार हम लोगों पर भी विश्वास न करैं।

मलयकेतु : ठीक है, मित्र भागुरायण। राक्षस मन्त्री का घर कहां है?

भागुरायण : इधर, कुमार, इधर। (**दोनों घूमते हैं**) कुमार! यही राक्षस मन्त्री का घर है! चलिए।

मलयकेतु : चलें।

[दोनों भीतर जाते हैं]

राक्षस : अहा! स्मरण आया। (**प्रकाश**) कहो जी! तुम ने कुसुमपुर में स्तनकलस वैतालिक को देखा था?

करभक : क्यों नहीं?

मलयकेतु : मित्र भागुरायण! जब तक कुसुमपुर की बातें हों तब तक हम लोग इधर ही ठहरकर सुनें कि क्या बात होती है, क्योंकि–

भेद न कछु जामैं खुलैं याही भय सब ठौर।
नृप सों मन्त्रीजन कहहिं बात और की और॥

भागुरायण : जो आज्ञा।

[दोनों ठहर जाते हैं]

राक्षस : क्यों जी! वह काम सिद्ध हुआ?

करभक : अमात्य की कृपा से सब काम सिद्ध ही है।

मलयकेतु : मित्र भागुरायण। वह कौन-सा काम है?

भागुरायण : कुमार मन्त्रीजी की बातें बड़ी गुप्त हैं। कौन जानै? इस से देखिये अभी सुन लेते हैं कि क्या कहते हैं।

राक्षस : अजी, भलीभांति कहो।

करभक : सुनिये, जिस समय आप ने आज्ञा दिया कि करभक, तुम जाकर वैतालिक स्तनकलस से कह दो कि जब जब चाणक्य चन्द्रगुप्त की आज्ञा भंग करै तब तब तुम ऐसे श्लोक पढ़ो जिस से उस का जी और फिर जाय।

राक्षस : हां तब?

करभक : तब मैंने पटने में जाकर स्तनकलस से आप का सन्देशा कह दिया।

राक्षस : तब?

करभक : इस के पीछे नन्दकुल के विनाश से दुःखी लोगों का जी बहलाने के हेतु चन्द्रगुप्त ने कुसुमपुर में कौमुदीमहोत्सव होने की डौंड़ी पिटा दी और उस को बहुत दिन से बिछुड़े हुए मित्रों के मिलाप की भांति पुर के निवासियों ने बड़ी प्रसन्नता पूर्व्वक स्नेह से मान लिया!

राक्षस : (**आंसू भर कर**) हा देव नन्द!

जदपि उदित कुमुदन सहित पाइ चांदनी चन्द।
तदपि न तुम बिन लसत हे नृपससि! जगदानन्द॥

हां, फिर क्या हुआ?

करभक : तब चाणक्य दुष्ट ने सब लोगों के नेत्र के परमानन्ददायक उस उत्सव को रोक दिया और उसी समय स्तनकलस ने ऐसे ऐसे श्लोक पढ़े कि राजा का भी मन फिर जाय।

राक्षस : कैसे श्लोक थे?

करभक : **[‘जिनको बिधि’ सब पढ़ता है]**

राक्षस : वाह मित्र स्तनकलस, वाह क्यों न हो! अच्छे समय में भेद बीज बोया है, फल अवश्य होगा। क्योंकि–

नृप रूठे अचरज कहा, सकल लोग जा संग।
छोटे हूं मानैं बुरो परे रंग में भंग॥

मलयकेतु : ठीक है।

[‘नृप रूठे’ यह दोहा फिर पढ़ता है]

राक्षस : हां फिर क्या हुआ?

करभक : तब आज्ञा भंग से रुष्ट होकर चन्द्रगुप्त ने आप की बड़ी प्रशंसा की और दुष्ट चाणक्य से अधिकार ले लिया।

मलयकेतु : मित्र भागुरायण! देखो प्रशंसा कर के राक्षस में चन्द्रगुप्त ने अपनी भक्ति दिखाई।

भागुरायण : गुण प्रशंसा से बढ़कर चाणक्य का अधिकार लेने से।

राक्षस : क्यौं जी, एक कौमुदी महोत्सव के निषेध ही से चाणक्य चन्द्रगुप्त में बिगाड़ हुआ कि कोई और कारण भी है?

मलयकेतु : क्यौं मित्र भागुरायण! एक और बैर में यह क्या फल निकालैंगे?

भागुरायण : यह फल निकाला है कि चाणक्य बड़ा बुद्धिमान है। वह व्यर्थ चन्द्रगुप्त को क्रोधित न करावैगा और चन्द्रगुप्त भी उस की बात जानता है, वह भी बिना बात चाणक्य का ऐसा अपमान न करैगा। इस से उन लोगों में बहुत झगड़े से जो बिगाड़ होगा तो पक्का होगा।

करभक : आर्य्य! और भी कई कारण हैं।

राक्षस : कौन?

करभक : कि जब पहले यहां से राक्षस और कुमार मलयकेतु भागे तब उस ने क्यौं नहीं पकड़ा?

राक्षस : **(हर्ष से)** मित्र शकटदास! अब तो चन्द्रगुप्त हाथ में आ जायगा।

शकटदास : अब चन्दनदास छूटैगा, और आप कुटुम्ब से मिलैंगे, वैसे ही जीवसिद्धि इत्यादि लोग क्लेश से छूटैंगे।

भागुरायण : **(आप ही आप)** हां, अवश्य जीवसिद्धि का क्लेश छूटा।

मलयकेतु : मित्र भागुरायण! अब मेरे हाथ चन्द्रगुप्त आवैगा, इस से इन का

क्या अभिप्राय है?

भागुरायण : और क्या होगा? यही होगा कि चाणक्य से छूटे चन्द्रगुप्त के उद्वार का समय देखते हैं।

राक्षस : अजी, अब अधिकार छिन जाने पर यह ब्राह्मण कहां है?

करभक : अभी तो पटने ही में है।

राक्षस : (घबड़ा कर) हैं! अभी वहीं है? तपोवन नहीं चला गया? या फिर कोई प्रतिज्ञा नहीं की?

करभक : अब तपोवन जायगा ऐसा सुनते हैं।

राक्षस : (घबड़ा कर) शकटदास, यह बात तो काम की नहीं।

देव नन्द को नहिं सह्यौ जिन भोजन अपमान।
सो निज कृत नृप चन्द की बात न सहिहै जान॥

मलयकेतु : मित्र भागुरायण! चाणक्य के तपोवन जाने वा फिर प्रतिज्ञा करने में कौन कार्य्य सिद्धि निकाली है।

भागुरायण : कुमार! यह तो कोई कठिन बात नहीं है। इस का आशय तो स्पष्ट ही है कि चन्द्रगुप्त से जितनी दूर चाणक्य रहैगा उतनी ही कार्य्यसिद्ध होगी।

शकटदास : अमात्य! आप व्यर्थ सोच न करैं, क्यौंकि देखें–

सबहिं भांति अधिकार लहि अभिमान नृप चंद।
नहिं सहिहै अपमान अब राजा होइ स्वच्छन्द॥
तिमि चाणक्यहु पाइ दुःख एक प्रतिज्ञा पूरि।
अब दूजो करिहै न कछु निज उद्यम मद चूरि॥

राक्षस : ऐसा ही होगा। मित्र शकटदास! जाकर करभक को डेरा इत्यादि दो।

मलयकेतु : जो आज्ञा।

[करभक को लेकर जाता है]

राक्षस : इस समय कुमार से मिलने की इच्छा है।

मलयकेतु : (आगे बढ़ कर) मैं आप ही आप से मिलने को आया हूं।

राक्षस : (आसन से उठ कर) अरे कुमार, आप ही आ गए! आइये, इस आसन पर बैठिये।

मलयकेतु : मैं बैठता हूं आप बिराजिये।

[दोनों बैठते हैं]

मलयकेतु : इस समय सिर की पीड़ा कैसी है?

राक्षस : जब तक कुमार के बदले महाराज कह कर आप को नहीं पुकार सकते तब तक यह पीड़ा कैसे छूटैगी।

मलयकेतु : आप ने जो प्रतिज्ञा की है तो सब कुछ होगा। परन्तु सब सैना सामन्त

के होते भी अब आप किस बात का आसरा देखते हैं?

राक्षस : किसी बात का नहीं, अब चढ़ाई कीजिये।

मलयकेतु : अमात्य! क्या इस समय शत्रु किसी संकट में है?

राक्षस : बड़े।

मलयकेतु : किस संकट में?

राक्षस : मन्त्री संकट में।

मलयकेतु : मन्त्री संकट तो कोई संकट नहीं है।

राक्षस : और किसी राजा को न हो तो न हो, चन्द्रगुप्त को तो अवश्य है।

मलयकेतु : आर्य्य! मेरी जान में चन्द्रगुप्त को और भी नहीं है।

राक्षस : आप ने कैसे जाना कि चन्द्रगुप्त को 'मन्त्री-संकट' संकट नहीं है?

मलयकेतु : क्यौंकि चन्द्रगुप्त के लोग तो चाणक्य के कारण उस से उदास रहते हैं, जब चाणक्य ही न रहैगा, तब उस के सब कामों को लोग और भी सन्तोष से करैंगे।

राक्षस : कुमार, ऐसा नहीं है, क्यौंकि वहां दो प्रकार के लोग हैं एक चन्द्रगुप्त के साथी, दूसरे नन्दकुल के मित्र, उन में जो चन्द्रगुप्त के साथी हैं उन को चाणक्य ही से दुःख था; नन्दकुल के मित्रों को कुछ दुःख नहीं हैं क्यौंकि वह लोग तो यही सोचते हैं कि इसी कृतघ्न चन्द्रगुप्त ने राज के लोभ से अपने पितृकुल का नाश किया है, पर क्या करैं उन का कोई आश्रय नहीं है। इस से चन्द्रगुप्त के आसरे पड़े हैं। जिस दिन आप को शत्रु के नाश में और अपने पक्ष के उद्धार में समर्थ देखैंगे उसी दिन चन्द्रगुप्त को छोड़कर आप से मिल जायंगे इस के उदाहरण हमी लोग हैं।

मलयकेतु : आर्य्य! चन्द्रगुप्त पर चढ़ाई करने का एक यही कारण है कि कोई और भी है?

राक्षस : और बहुत क्या होंगे एक यही बड़ा भारी है।

मलयकेतु : क्यौं आर्य्य! यही क्यौं प्रधान है? क्या चन्द्रगुप्त और मन्त्रियों से या आप अपना काम करने में असमर्थ हैं।

राक्षस : निरा असमर्थ है।

मलयकेतु : क्यौं?

राक्षस : यौं कि जो आप राज्य सम्हालते हैं या जिन का राज राजा और मन्त्री दोनों करते हैं वह राजा ऐसे हों तो हों; परन्तु चन्द्रगुप्त तो कदापि ऐसा नहीं है। चन्द्रगुप्त एक तो दुरात्मा है, दूसरे वह तो सचिव ही के भरोसे सब काम करता है। इस से वह कुछ व्यवहार जानता ही नहीं, तो फिर वह सब काम कैसे कर सकता है? क्यौंकि—

लक्ष्मी करत निवास अति प्रबल सचिव नृप पाय।
पै निज बाल सुभाव सों इकहिं तजत अकुलाय॥
और भी–
जो नृप बालक सों रहत सदा सचिव के गोद।
बिन कछु जग देखे सुने सो नहिं पावत मोद॥

मलयकेतु : (आप ही आप) तो हम अच्छे हैं कि सचिव के अधिकार में नहीं (प्रकाश) अमात्य! यद्यपि यह ठीक है तथापि जहां शत्रु के अनेक छिद्र हैं तहां तक इसी सिद्धि से सब काम न निकलैगा।

राक्षस : कुमार के सब काम इसी से सिद्ध होंगे। देखिये–
चाणक्य को अधिकार छूटयौ चंद्र हैं राजा नए।
पुर नन्द में अनुरक्त तुम निज बल सहित चढ़ते भए॥
जब आप हम–(कह कर लज्जा से कुछ ठहर जाता है)
तुव बस सकल उद्यम सहित रन मति करी।
वह कौन सो नृप! बात जो नहिं सिद्धि स्वै है ता धरी॥

मलयकेतु : अमात्य! जो अब आप ऐसा लड़ाई का समय देखते हैं तो देर करके क्यौं बैठे हैं? देखिये–
इनको ऊंचो सीस है, वाको उच्च करार।
श्याम दोऊ, वह जल स्रवत, ये गंडन मधुधार॥
उतै भंवर को शब्द, इत भंवर करत गुंजार।
निज सम तेहि लखि नासिहैं, दंतन तोरि कछार॥
सीस सोन सिन्दूर सों ते मतंग बल दाप।
सो न सहज ही खोलिहैं निश्चय जानहुं आप॥
और भी–
गरजि गरजि गम्भीर रव, बरसि बरसि मधु धार।
सत्रु नगर गज घेरिहैं, घन जिमि विविध पहार॥
[शस्त्र उठा कर भागुरायण के साथ जाता है]

राक्षस : कोई है?

[प्रियंवदक आता है]

प्रियंवदक : आज्ञा।

राक्षस : देख तो द्वार पर कौन भिक्षुक खड़ा है?

प्रियंवदक : जो आज्ञा। (बाहर जाकर फिर आता है) अमात्य! एक क्षपणक भिक्षुक।

राक्षस : (असगुन जान कर आप ही आप) पहिले ही क्षपणक का दर्शन हुआ।

प्रियंवदक : जीवसिद्धि है।

राक्षस : अच्छा बोलाकर ले आ।

प्रियंवदक : जो आज्ञा।

[जाता है]

[क्षपणक आता है]

क्षपणक : **पहिले कटु परिणाम मधु, औषध सम उपदेस।**
मोह व्याधि के वैद्य गुरु, तिन को सुनहु निदेश॥
(पास जाकर) उपासक! धर्म्म लाभ हो!

राक्षस : ज्योतिषीजी, बताओ, अब हम लोग प्रस्थान किस दिन करें?

क्षपणक : **(कुछ सोच कर)** उपासक! मुहूर्त तो देखा। आज भद्रा तो पहर पहिले ही छूट गई है और तिथि भी सम्पूर्णचन्द्रा पौर्णमासी है। आप लोगों को उत्तर से दक्षिण जाना है और नक्षत्र भी दक्षिण ही है।
अथए सूरहि, चन्द के उदए गमन प्रशस्त।
पाइ लगन बुध केतु तौ उदयो हू भो अस्त[1]॥

राक्षस : अजी, पहिले तो तिथि ही नहीं शुद्ध है।

क्षपणक : उपासक!
एक गुनी तिथि होत है, त्यौं चौगुन नक्षत्र।
लगन होत चौंतिस[2] गुनो, यह भाखत सब पत्र॥
लगन होत है शुभ लगन छोड़ि कूर ग्रह एक।
जाहु चन्द्र कल देखि कै पावहु लाभ अनेक॥

राक्षस : अजी, तुम और ज्योतिषियों से जाकर झगड़ो।

---

1. भद्रा छूट गई अर्थात् कल्याण को तो आप ने जब चन्द्रगुप्त का पक्ष छोड़ा तभी छोड़ा और सम्पूर्ण-चन्द्रा पौर्णमासी है अर्थात् चन्द्रगुप्त का प्रताप पूर्ण व्याप्त है। उत्तर नाम, प्राचीन पक्ष छोड़ कर दक्षिण अर्थात् यम की दिशा को जाना है। नक्षत्र दक्षिण है अर्थात् आप का वाम (विरुद्ध पक्ष) नक्षत्र और आप का दक्षिण पक्ष (मलयकेतु) नक्षत्र (बिना क्षत्र के) अथए इत्यादि तुम जो सूर हो उस की बुद्धि के अस्त के समय और चन्द्रगुप्त के उदय के समय जाना अच्छा है अर्थात् चाणक्य की ऐसे समय में जय होगी। लग्न अर्थात् कारण भाव में बुध चाणक्य पड़ा है इस से केतु अर्थात् मलयकेतु का उदय भी है तौ भी अस्त ही होगा। अर्थात् इस युद्ध में चन्द्रगुप्त जीतैगा और मलयकेतु हारैगा। सूर अथए—इस पद से जीवसिद्धि ने अमंगल भी किया। आश्विन पूर्णिमा तिथि, भरणी नक्षत्र, गुरुवार, मेष के चन्द्रमा मीन लग्न में उस ने यात्रा बतलाई। इस में भरणी नक्षत्र, गुरुवार, पूर्णिमा तिथि यह सब दक्षिण की यात्राओं में निषिद्ध हैं। फिर सूर्य्य मृत है, चन्द्र जीवित है यह भी बुरा है। लग्न में मीन का बुध पड़ने से नीच का होने से बुरा है। यात्रा में नक्षत्र दक्षिण होने ही से बुरा है।
2. अर्थात् मलयकेतु का साथ छोड़ दो तो तुम्हारा भला हो। वास्तव में चाणक्य के मित्र होने से जीवसिद्धि ने साइत भी उलटी दी। ज्योतिष के अनुसार अत्यन्त क्रूर बेला क्रूर ग्रह बेध में युद्ध आरम्भ होना चाहिए। उस के विरुद्ध सौम्य समय में युद्ध यात्रा कही, जिस का फल पराजय है।

क्षपणक : आप ही झगड़िये, मैं जाता हूं?

राक्षस : क्या आप रूस तो नहीं गए?

क्षपणक : नहीं, तुम से ज्योतिषी नहीं रूसा है।

राक्षस : तो कौन रूसा है?

क्षपणक : **(आप ही आप)** भगवान, कि तुम अपना पक्ष छोड़ कर शत्रु का पक्ष ले बैठे हो।

[जाता है]

राक्षस : प्रियंवदक! देख तौ कौन समय है।

प्रियंवदक : जो आज्ञा। **(बाहर से हो आता है)** आर्य्य! सूर्य्यास्त होता है।

राक्षस : **(आसन से उठ कर और देख कर)** अहा! भगवान् सूर्य्य अस्ताचल को चले–

जब सूरज उदयो प्रवल, तेज धारि आकाश।
तब उपवन तरुवर सबै छायाजुत भे पास॥
दूर परे ते तरू सबै अस्त भए रवि ताप।
जिमि धन बिन स्वामिहि तजै भृत्य स्वारथी आप॥

(दोनों जाते हैं)

[जवनिका गिरती है]

◆

पांचवां अंक

[हाथ में मोहर और गहिने की पेटी और पत्र लेकर सिद्धार्थक आता है]

सिद्धार्थक : अहाहा!

देशकाल के कलश में सिंची बुद्धि जल जौन।
लता नीति चाणक्य की बहु फल दैहै तौन॥

अमात्य राक्षस की मोहर का, आर्य्य चाणक्य का लिखा हुआ यह लेख और मोहर की यह आभूषण की पेटिका लेकर मैं पटने जाता हूं। **(नेपथ्य की ओर देख कर)** अरे! यह क्या क्षपणक आता है? हाय हाय! यह तो बुरा असगुन हुआ। तो मैं सूरज को देख कर इस का दोष छुड़ा लूं।

[क्षपणक आता है]

क्षपणक : **नमो नमो अर्हन्त को, जो निज बुद्धि प्रताप।**
लोकोत्तर की सिद्धि सब करत हस्तगत आप॥

सिद्धार्थक : भदंत! प्रणाम।

क्षपणक : उपासक! धर्म्म लाभ हो। **(भलीभांति देख कर)** आज तो समुद्र पार होने का बड़ा भारी उद्योग कर रक्खा है।

सिद्धार्थक : भदंत, तुम ने कैसे जाना?

क्षपणक : इस में छिपी कौन बात है? जैसे समुद्र में नाव पर सबके आगे मार्ग दिखलाने वाला मांझी रहता है, वैसे ही तेरे हाथ में यह लखौटा है।

सिद्धार्थक : अजी भदंत! भला यह तुमने ठीक जाना कि मैं परदेश जाता हूं, पर यह कहो कि आज दिन कैसा है?

क्षपणक : **(हंस कर)** वाह श्रावक वाह! तुम मूंड़ मुंड़ाकर भी नक्षत्र पूछते हो?

सिद्धार्थक : भला अभी क्या बिगड़ा है? कहते क्यों नहीं? दिन अच्छा होगा जायंगे, न अच्छा होगा न जायंगे।

क्षपणक : चाहे दिन अच्छा हो या न अच्छा हो, मलयकेतु के कटक से बिना मोहर लिये कोई जाने नहीं पाता।

सिद्धार्थक : यह नियम कब से हुआ?

क्षपणक : सुनो, पहिले तो कुछ भी रोक टोक नहीं थी, पर जब से कुसुमपुर के पास आए हैं तब से यह नियम हुआ है कि बिना मोहर के न कोई जाय न आवै। इस से जो तम्हारे पास भागुरायण की मोहर हो तो जाओ नहीं तो चुप बैठ रहो, क्योंकि पीछे से तुम्हें हाथ पैर न बंधवाना पड़ै।

सिद्धार्थक : क्या यह तुम नहीं जानते कि हम राक्षस के अन्तरंग खेलाड़ी मित्र हैं? हमैं कौन रोक सकता है?

क्षपणक : चाहे राक्षस के मित्र हो चाहे पिशाच के, बिना मोहर के कभी न जाने पाओ गे।

सिद्धार्थक : भदंत! क्रोध मत करो, कहो कि काम सिद्ध हो।

क्षपणक : जाओ, काम सिद्ध होगा, हम भी पटने जाने के हेतु भागुरायण से मोहर लेने जाते हैं।

[दोनों जाते हैं]

इति प्रवेशक

[भागुरायण और सेवक आते हैं]

भागुरायण : (आप ही आप) चाणक्य की नीति भी बड़ी विचित्र है।

कहुं विरल, कहुं सघन, कहुं विफल, कहुं फलवान।
कहुं कृस, कहु अति थूल, कछु भेद परत नहिं जान॥
कहूं गुप्त अति ही रहत, कबहूं प्रगट लखात।
कठिन नीति चाणक्य की, भेद न जान्यो जात॥

(प्रकट) भासुरक! मलयकेतु से मुझे क्षण भर भी दूर रहने में दुःख होता है इस से बिछौना बिछा तो बैठें।

सेवक : जो आज्ञा। बिछौना बिछा है, बिराजिये।

भागुरायण : (आसन पर बैठ कर) भासुरक! बाहर कोई मुझ से मिलने आवै तो आने देना।

सेवक : जो आज्ञा।

[जाता है]

भागुरायण : (आप ही आप करुणा से) राम राम! मलयकेतु तो मुझ से इतना प्रेम करता है, मैं उस का बिगाड़ किस तरह करूंगा?

अथवा—

जस कुल तजि, अपमान सहि, धन हित परबस होय।
जिन बेंच्यौ निज प्रान तन, सबै सकत करि सोय॥

(आगे आगे मलयकेतु और पीछे प्रतिहारी आते हैं)

मलयकेतु : **(आप ही आप)** क्या करैं राक्षस का चित्त मेरी ओर से कैसा है—यह सोचते हैं तो अनेक प्रकार के विकल्प उठते हैं, कुछ निर्णय नहीं होता।

नन्दवंश को जानिकैं ताहि चंद्र की चाह।
कै अपनायो जानि निज मेरो करत निबाह॥
को हित अनहित तासु को यह नहिं जान्यो जात।
तासों जिय सन्देह अति, भेद न कछू लखात॥

(प्रकट) विजये! भागुरायण कहां हैं देख तो?

प्रतिहारी : महाराज! भागुरायण वह बैठे हुए आप की सेना के जानेवाले लोगों को राह-खर्च और परवाना बांट रहे है?

मलयकेतु : विजये! तुम दबे पांव से उधर से आओ। मैं पीछे से जाकर मित्र भागुरायण की आंखें बन्द करता हूं।

प्रतिहारी : जो आज्ञा।

[दोनों दबे पांव से चलते हैं और भासुरक आता है]

भासुरक : **(भागुरायण से)** बाहर क्षपणक आया है, उस को परवाना चाहिए।

भागुरायण : अच्छा, यहां भेज दो।

भासुरक : जो आज्ञा। (जाता है)

[क्षपणक आता है]

क्षपणक : श्रावक को धर्म्म लाभ हो।

भागुरायण : **(छल से उस की ओर देख कर)** यह तो राक्षस का मित्र जीवसिद्धि है। **(प्रकट)** भदंत! तुम नगर में राक्षस के किसी काम से जाते होगे।

क्षपणक : **(कान पर हाथ रख कर)** छी छी! हम से राक्षस वा पिशाच से क्या काम?

भागुरायण : आज तुम से और मित्र से कुछ प्रेम कलह हुआ है, पर यह तो बताओ कि राक्षस ने तुम्हारा कौन अपराध किया है?

क्षपणक : राक्षस ने कुछ अपराध नहीं किया है, अपराधी तो हम हैं।

भागुरायण : ह ह ह ह भदंत! तुम्हारे इस कहने से तो मुझ को सुनने की और भी उत्कंठा होती है।

मलयकेतु : **(आप ही आप)** मुझ को भी।

भागुरायण : तो भदंत। कहते क्यौं नहीं?

क्षपणक : तुम सुन के क्या करोगे?

भागुरायण : तो जाने दो, हमैं कुछ आग्रह नहीं है, गुप्त हो तो मत कहो।

क्षपणक : नहीं उपासक! गुप्त ऐसा नहीं है, पर वह बहुत बुरी बात है।

भागुरायण : तो जाओ, हम तुम को परवाना न देंगे।

क्षपणक : **(आप ही आप की भांति)** जो यह इतना आग्रह करता है तो कह दें। **(प्रकट)** श्रावक! निरुपाय होकर कहना पड़ा। सुनो। मैं पहिले कुसुमपुर में रहता था, तब संयोग से मुझ से राक्षस से मित्रता हो गई। फिर उस दुष्ट राक्षस ने चुपचाप मेरे द्वारा विषकन्या का प्रयोग करा के विचारे पर्व्वतेश्वर को मार डाला।

मलयकेतु : **(आंखों में पानी भर के)** हाय हाय! राक्षस ने हमारे पिता को मारा, चाणक्य ने नहीं मारा। हा!

भागुरायण : हां, तो फिर क्या हुआ?

क्षपणक : फिर मुझे राक्षस का मित्र जानकर उस दुष्ट चाणक्य ने मुझ को नगर से निकाल दिया—तब मैं राक्षस के यहां आया, पर राक्षस ऐसा जालिया है कि अब मुझ को ऐसा काम करने को कहता है जिस से मेरा प्राण जाय।

भागुरायण : भदंत! हम तो यह समझते हैं कि पहिले जो आधा राज देने को कहा था, वह न देने को चाणक्य ही ने यह दुष्ट कर्म्म किया, राक्षस ने नहीं किया।

क्षपणक : **(कान पर हाथ रख कर)** कभी नहीं। चाणक्य तो विषकन्या का नाम भी नहीं जानता। यह घोर कर्म्म उस दुर्बुद्धि राक्षस ही ने किया है।

भागुरायण : हाय हाय! बड़े कष्ट की बात है। लो मुहर तो तुम को देते हैं, पर कुमार को भी यह बात सुना दो।

मलयकेतु : **(आगे बढ़ कर)**

सुन्यो मित्र, श्रुति भेद कर शत्रु कियो जो हाल।
पिता मरन को मोहि दुःख दुगुन भयो एहि काल॥

क्षपणक : **(आप ही आप)** मलयकेतु दुष्ट ने यह बात सुन ली तो मेरा काम हो गया।

[जाता है]

मलयकेतु : **(दाँत पीस कर ऊपर देख कर)** अरे राक्षस!

जिन तोपै विश्वास करि सौंप्यो सब धन धाम।
ताहि मारि दुःख दै सबन सांचो किय निज नाम॥

भागुरायण : **(आप ही आप)** आर्य्य चाणक्य की आज्ञा है कि "अमात्य राक्षस के प्राण की सर्वथा रक्षा करना" इस से अब बात फेरें। **(प्रकाश)** कुमार! इतना आवेग मत कीजिए। आप आसन पर बैठिए तो मैं कुछ निवेदन करूं।

मलयकेतु : मित्र, क्या कहते हो? कहो। **(बैठ जाता है)**

भागुरायण : कुमार! बात यह है कि अर्थशास्त्रवालों की मित्रता और शत्रुता अर्थ

ही के अनुसार होती है। साधारण लोगों की भांति इच्छानुसार नहीं होती। उस समय सवार्थसिद्धि को राक्षस राजा बनाया चाहता था। तब देव पर्व्वतेश्वर ही उस कार्य्य में कंटक थे तो उस कार्य्य की सिद्धि के हेतु यदि राक्षस ने ऐसा किया तो कुछ दोष नहीं–आप देखियेः

मित्र शत्रु स्वै जात है, शत्रु करहिं अति नेह।
अर्थ नीति बस लोग सब बदलहिं मानहुं देह॥

इस से राक्षस को ऐसी अवस्था में दोष नहीं देना चाहिए। और जब तक नन्दराज्य न मिलै तब तक उस पर प्रकट स्नेह ही रखना नीतिसिद्धि है। राज मिलने पर कुमार जो चाहैंगे करैंगे।

मलयकेतु : मित्र! ऐसा ही होगा। तुम ने बहुत ठीक सोचा है। इस समय इस के वध करने से प्रजागण उदास हो जायंगे और ऐसा होने से जय में भी सन्देह होगा।

[एक मनुष्य आता है]

मनुष्य : कुमार की जय हो! कुमार के कटकद्वार के रक्षाधिकारी दीर्घचक्षु ने निवेदन किया है कि "मुद्रा लिए बिना एक पुरुष कुछ पत्र सहित बाहर जाता हुआ पकड़ा गया है सो उस को एक बेर आप देख लें।"

भागुरायण : अच्छा, उस को ले जाओ।

पुरुष : जो आज्ञा।

[जाता है हाथ बंधे हुए सिद्धार्थक को लेकर आता है]

सिद्धार्थक : **(आप ही आप)**

गुन पै रिझवति दोस सों दूर बचावति जौन।
स्वामि-भक्ति जननी सरिस, प्रनमत नित हम तौन॥

पुरुष : **(हाथ जोड़ कर)** कुमार! यही मनुष्य है।

भागुरायण : **(अच्छी तरह देख कर)** यह क्या बाहर का मनुष्य है या यहीं किसी का नौकर है?

सिद्धार्थक : मैं अमात्य राक्षस का पासवर्ती सेवक हूं।

भागुरायण : तो तुम क्यौं मुद्रा लिए बिना कटक के बाहर जाते थे?

सिद्धार्थक : आर्य्य! काम की जल्दी से।

भागुरायण : ऐसा कौन काम है, जिस के आगे राजाज्ञा का भी कुछ मोल नहीं गिना?

[सिद्धार्थक भागुरायण के हाथ में लेख देता है]

भागुरायण : **(लेख लेकर देख कर)** कुमार! इस लेख पर अमात्य राक्षस की मुहर है।

मलयकेतु : ऐसी तरह से खोल कर दो कि मुहर न टूटे।

[भागुरायण पत्र खोल कर मलयकेतु को देता है]

मलयकेतु : (पढ़ता है) स्वस्ति। यथास्थान में कहीं से कोई किसी पुरुष विशेष को कहता है हमारे विपक्ष को निराकरण करके सच्चे मनुष्य ने सचाई दिखलाई। अब हमारे पहले के रक्खे हुए हमारे हितकारी मित्रों को भी जो जो देने को कहा था वह देकर प्रसन्न करना। यह लोग प्रसन्न होंगे तो अपना आश्रय छूट जाने पर सब भांति अपने अपने उपकारी की सेवा करैंगे। सच्चे लोग कहीं नहीं भूलते तो भी हम स्मरण कराते हैं। इन में से कोई तो शत्रु का कोष और हाथी चाहते हैं और कोई राज चाहते हैं। हम को सत्यवादी ने जो तीन अलंकार भेजे सो मिले। हम ने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजे सो मिले। हम ने भी लेख अशून्य करने को कुछ भेजा है सो लेना। और जबानी हमारे अत्यन्त प्रामाणिक सिद्धार्थक[1] से सुन लेना।

मलयकेतु : मित्र भागुरायण! इस लेख का आशय क्या है।

भागुरायण : भद्र सिद्धार्थक! यह लेख किस का है?

सिद्धार्थक : आर्य्य! मैं नहीं जानता।

भागुरायण : धूर्त! लेख लेकर जाता है और यह नहीं जानता कि किस ने लिखा है, और संदेसा किस से कहैगा?

सिद्धार्थक : **(डरते हुए की भांति)** आप से।

भागुरायण : क्यौं रे! हम से?

सिद्धार्थक : आप ने पकड़ लिया। हम कुछ नहीं जानते कि क्या बात है?

भागुरायण : **(क्रोध से)** अब जानैगा! भद्र भासुरक! इस को बाहर ले जाकर जब तक यह सब कुछ न बतलावै तब तक खूब मारो।

पुरुष : जो आज्ञा।

[सिद्धार्थक को बाहर लेकर जाता है और हाथ में एक पेटी लिए फिर आता है]

आर्य्य! उस को मारने के समय उस के बगल में से यह मुहर की हुई पेटी गिर पड़ी।

भागुरायण : **(देख कर)** कुमार! इस पर भी राक्षस की मुहर है।

मलयकेतु : यही लेख अशून्य करने को होगी। इस की भी मुहर बचाकर हम को दिखलाओ।

[भागुरायण पेटी खोल कर दिखलाता है]

---

1. यह वही लेख है जिस को चाणक्य ने शकटदास से धोखा देकर लिखवाया था और अपने हाथ से राक्षस की मुहर उस पर करके सिद्धार्थक को दिया था।

मलयकेतु : अरे! यह तो वही सब आभरण हैं जो हमने राक्षस को भेजे थे। निश्चय यह चन्द्रगुप्त को लिखा है।

भागुरायण : कुमार! अभी सब संशय मिट जाता है। भासुरक! उस को और मारो।

पुरुष : जो आज्ञा। **(वाहर जाकर फिर आता है)**
आर्य्य! हम ने उस को बहुत मारा है। अब कहता है कि अब हम कुमार से सब कह देंगे।

मलयकेतु : अच्छा, ले आओ।

पुरुष : जो कुमार की आज्ञा।

[वाहर जाकर सिद्धार्थक को लेकर आता है]

सिद्धार्थक : **(मलयकेतु के पैरों पर गिर कर)** कुमार! हम को अभय दान दीजिए।

मलयकेतु : भद्र! उठो, शरणागत जन यहां सदा अभय हैं। तुम इसका वृत्तान्त कहो।

सिद्धार्थक : **(उठ कर)** सुनिये। मुझ को अमात्य राक्षस ने यह पत्र देकर चन्द्रगुप्त के पास भेजा था।

मलयकेतु : जबानी क्या कहने को कहा था, वह कहो।

सिद्धार्थक : कुमार! मुझ को अमात्य राक्षस ने यह कहने को कहा था कि मेरे मित्र कुलूत देश के राजा चित्रवर्म्मा मलयाधिपति सिंहनाद, कश्मीरेश्वर पुष्कराक्ष सिन्धु महाराज सिन्धुसेन और पारसीकपालक मेघाक्ष इन पांच राजाओं से आप से पूर्व्व में सन्धि हो चुकी है। इस में पहिले तीन तो मलयकेतु का राज चाहते हैं और बाकी दो खजाना और हाथी चाहते हैं जिस तरह महाराज ने चाणक्य को उखाड़कर मुझ को प्रसन्न किया उसी तरह इन लोगों को प्रसन्न करना चाहिए। यही राजसन्देश है।

मलयकेतु : **(आप ही आप)** क्या चित्रवर्म्मादिक भी हमारे द्रोही हैं। तभी राक्षस में उन लोगों की ऐसी प्रीति है। **(प्रकाश)** विजये! हम अमात्य राक्षस को देखा चाहते हैं।

प्रतिहारी : जो आज्ञा। **(जाती है)**

[एक परदा हटता है और राक्षस आसन पर बैठा हुआ चिन्ता की मुद्रा में एक पुरुष के साथ दिखाई पड़ता है]

राक्षस : **(आप ही आप)** चन्द्रगुप्त की ओर के बहुत लोग हमारी सेना में भरती हो रहे हैं इस से हमारा मन शुद्ध नहीं है। क्यौंकि—

रहत साध्य तें अन्वित अरु विलसत निज पच्छहिं।
सोई साधन साधक जो नहिं छुअत बिपच्छहिं॥
जो पुनि आपु असिद्ध सपच्छु विपच्छहु में सम।
कछु कहुं नहिं निज पच्छ मांहि जाको है संगम॥

नरपति ऐसे साधनन कों अनुचित अंगीकार करि।
सब भांति पराजित होत हैं बादी लौं बहु विधि बिगरि॥

वा जो लोग चन्द्रगुप्त से उदास हो गए हैं वही लोग इधर मिले हैं। मैं व्यर्थ सोच करता हूं। (प्रकट) प्रियंवदक! कुमार के अनुयायी राजा लोगों से हमारी ओर से कह दो कि अब कुसुमपुर दिन दिन पास आता जाता है, इस से सब लोग अपनी सेना अलग अलग करके जो जहां नियुक्त हों वहां सावधानी से रहें।

आगे खस अरु मगध चलें जयध्वजहिं उड़ाये।
यवन और गन्धार रहें मधि सैन जमाये॥
चेदि हून सकराज लोग पीछे सों धावहिं।
कौलूतादिक नृपति कुमारहि घेरे आवहिं॥

प्रियंवदक : अमात्य की जो आज्ञा। **[जाता है]**

[प्रतिहारी आती है]

प्रतिहारी : अमात्य की जय हो। कुमार अमात्य को देखना चाहते हैं।

राक्षस : भद्र! क्षण भर ठहरो। बाहर कौन है?

[एक मनुष्य आता है]

मनुष्य : अमात्य! क्या आज्ञा है?

राक्षस : भद्र! शकटदास से कहो कि जब से कुमार ने हम को आभरण पहराया है तब से उनके सामने नंगे अंग जाना हम को उचित नहीं है। इस से जो तीन आभरण मोल लिए हैं उन में से एक भेज दें।

मनुष्य : जो अमात्य की आज्ञा। **(बाहर जाता है और आभरण लेकर आता है)** अमात्य! अलंकार लीजिए।

राक्षस : **(अलंकार धारण कर के)** भद्रे! राजकुल में जाने का मार्ग बतलाओ।

प्रतिहारी : इधर से आइए।

राक्षस : अधिकार ऐसी बुरी वस्तु है कि निर्दोष मनुष्य का भी जी डरा करता है।

सेवक प्रभु सों डरत सदाहीं।
पराधीन सपने सुख नाहीं॥
जे ऊंचे पद के अधिकारी।
तिनको मन हीं मन भय भारी॥
सबहीं द्वेष बड़न सो करहीं।
अनुछिन कान स्वामी को भरहीं॥
जिमि जे जनमें ते मरे, मिले अवसि बिलगाहिं।
तिमि जे अति ऊंचे चढ़े, गिरिहैं संसय नाहिं॥

प्रतिहारी : (आगे बढ़ कर) अमात्य! कुमार यह बिराजते हैं, आप जाइए।

राक्षस : अरे, कुमार यह बैठे हैं।

लखत चरन की ओर हू, तऊ न देखत ताहि।
अचल दृष्टि इक ओर ही, रही बुद्धि अवगाहि॥
कर पै धारि कपोल निज लसत झुको अवनीस।
दुसह काज के भार सों मनहुं नमित भो सीस॥

(आगे बढ़ कर) कुमार की जय हो!

मलयकेतु : आर्य्य! प्रणाम करता हूं। आसन पर बिराजिये।

[राक्षस बैठता है]

मलयकेतु : आर्य्य! बहुत दिनों से हम लोगों ने आप को नहीं देखा।

राक्षस : कुमार! सेना को आगे बढ़ाने के प्रबन्ध में फंसने के कारण हम को यह उपालम्भ सुनना पड़ा।

मलयकेतु : अमात्य! सेना के प्रयाण का आपने क्या प्रबन्ध किया है? मैं भी सुनना चाहता हूं।

राक्षस : कुमार! आप के अनुयायी राजा लोगों को यह आज्ञा दी है।

['आगे खस अरु मगध' इत्यादि छंद पढ़ता है]

मलयकेतु : **(आप ही आप)** हां, जाना; जो हमारा नाश करने के हेतु चन्द्रगुप्त से मिले हैं वहीं हम को घेरे रहैंगे। **(प्रकाश)** आर्य्य, अब कुसुमपुर से कोई आता है या वहां जाता है कि नहीं?

राक्षस : अब यहां किसी के आने जाने से क्या प्रयोजन? पांच छः दिन में हम लोग ही वहां पहुंचैंगे।

मलयकेतु : **(आप ही आप)** अभी सब खुल जाता है। **(प्रकट)** जो यही बात है तो इस मनुष्य को चिट्ठी लेकर आप ने कुसुमपुर क्यौं भेजा था?

राक्षस : (देख कर) अरे! सिद्धार्थक है? भद्र! यह क्या?

सिद्धार्थक : **(भय और लज्जा नाट्य करके)** अमात्य! हम को क्षमा कीजिए। अमात्य! हमारा कुछ भी दोष नहीं है, मार खाते खाते हम आप का रहस्य छिपा न सके।

राक्षस : भद्र! वह कौन सा रहस्य है यह हम को नहीं समझ पड़ता!

सिद्धार्थक : निवेदन करते हैं, मार खाने से...

[इतना ही कह वह लज्जा से नीचा मुंह कर लेता है]

मलयकेतु : भागुरायण! स्वामी के सामने लज्जा और भय से यह कुछ न कह सकेगा, इससे तुम सब बात आर्य्य से कहो।

भागुरायण : कुमार की जो आज्ञा। अमात्य! यह कहता है कि अमात्य राक्षस ने हम को चिट्ठी देकर और सन्देश कह कर चन्द्रगुप्त के पास भेजा है।

राक्षस : भद्र सिद्धार्थक! क्या यह सत्य है?

सिद्धार्थक : **(लज्जा नाट्य करके)** बहुत मार खाने के डर से मैंने कह दिया।

राक्षस : कुमार! यह झूठ है, मार खाने से लोग क्या नहीं कह देते?

मलयकेतु : भागुरायण ! चिट्ठी दिखला दो और सन्देशा वह अपने मुंह से कहैगा।

[भागुरायण चिट्ठी खोल कर 'स्वस्ति कहीं से कोई किसी को' इत्यादि पढ़ता है]

राक्षस : कुमार! कुमार! यह सब शत्रु का प्रयोग है।

मलयकेतु : लेख शून्य करने को आर्य्य ने जो आभरण भेजे हैं वह शत्रु कैसे भेजैगा?

[आभरण दिखलाता है]

राक्षस : कुमार यह मैंने किसी को नहीं भेजा। कुमार ने यह मुझ को दिया और मैंने प्रसन्न होकर सिद्धार्थक को दिया।

भागुरायण : अमात्य! क्या ऐसे उत्तम आभरणों का, विशेष कर क्या अपने अंग से उतारकर कुमार की दी हुई वस्तु का यह पात्र है?

मलयकेतु : और संदेश भी बड़े प्रामाणिक सिद्धार्थक से सुनना, यह आर्य्य ने लिखा है।

राक्षस : कैसा संदेश और कैसी चिट्ठी? यह हमारा कुछ नहीं है।

मलयकेतु : तो मुहर किस की है?

राक्षस : धूर्त लोग कपटमुद्रा भी बना लेते हैं।

भागुरायण : कुमार! अमात्य सच कहते हैं। सिद्धार्थक, यह चिट्ठी किस की लिखी है?

[सिद्धार्थक राक्षस का मुंह देख कर चुप रह जाता है]

भागुरायण : चुप मत रहो! जी कड़ा करके कहो।

सिर्द्धाथक : आर्य्य! शकटदास ने।

राक्षस : शकटदास ने लिखा तो मानो मैंने ही लिखा।

मलयकेतु : विजये! शकटदास को हम देखा चाहते हैं।

भागुरायण : **(आप ही आप)** आर्य्य चाणक्य के लोग बिना निश्चय समझे हुए कोई बात नहीं करते। जो शकटदास आकर यह चिट्ठी किस प्रकार लिखी गई है यह वृत्तान्त कह देगा तो मलयकेतु फिर बहक जायगा। **(प्रकाश)** कुमार! शकटदास ने अमात्य राक्षस के सामने लिखा होगा तो भी न स्वीकार करैंगे, इस से उन का कोई और लेख मंगाकर अक्षर मिला लिए जायं।

मलयकेतु : विजये! ऐसा ही करो।

भागुरायण : और मुहर भी आवै।

मलयकेतु : हां, वह भी।

कंचुकी : जो आज्ञा।

[बाहर जाती है और पत्र और मुहर लेकर आती है]

कुमार! यह शकटदास का लेख है और मुहर है।

मलयकेतु : **(देख कर, अक्षर और मुहर की मिलान करके)** आर्य्य! अक्षर तो मिलते हैं।

राक्षस : **(आप ही आप)** अक्षर निस्सन्देह मिलते हैं, किन्तु शकटदास हमारा मित्र है, इस हिसाब से नहीं मिलते। तो क्या शकटदास ही ने लिखा, अथवा–

पुत्र दार की याद करि स्वामि भक्ति तजि देत।
छोड़ि अचल जस कों करत चल धन सों जन हेत॥

या इस में सन्देह ही क्या है?

मुद्रा ताके हाथ में, सिद्धार्थक हू मित्र।
ताही के कर को लिख्यौ, पत्रहु साधन चित्र॥
मिलि कै शत्रुन सों करन भेद भूलि निज धर्म्म।
स्वामि विमुख शकटहि कियो, निश्चय यह खल कर्म्म॥

मलयकेतु : आर्य्य! श्रीमान् ने तीन आभरण भेजे सो मिले, यह जो आप ने लिखा है सो उसी में का एक आभरण यह भी है? **(राक्षस के पहने हुए आभरण को देख कर आप ही आप)** क्या यह पिता के पहने हुए आभरण हैं? **(प्रकाश)** आर्य्य, यह आभरण आप ने कहां से पाएं।

राक्षस : जौहरी से मोल लिया था।

मलयकेतु : विजये! तुम इन आभरणों को पहचानती हो?

प्रतिहारी : **(देख कर आंसू भरके)** कुमार! हम सुगृहीत नामधेय महाराज पर्व्वतेश्वर के पहिरने के आभरणों को न पहचानैंगी?

मलयकेतु : **(आंखों में आंसू भर के)**

भूषण प्रिय! भूषण सबै, कुल भूषण! तुव अंग।
तुव मुख ढिग इमि सोहतो, जिमि ससि तारन संग॥

राक्षस : **(आप ही आप)** ये पर्व्वतेश्वर के पहने हुए आभरण हैं? **(प्रकाश)** जाना, यह भी निश्चय चाणक्य के भेजे हुए जौहरियों ने ही बेचा है?

मलयकेतु : आर्य्य! पिता के पहने हुए आभरण और फिर चन्द्रगुप्त के हाथ पड़े हुए जौहरी बेंचे, यह कभी हो नहीं सकता। अथवा हो सकता है–

अधिक लाभ के लोभ सों, क्रूर! त्यागि सब नेह।
बदले इन आभरण के, तुम बेंच्यौ मम देह॥

राक्षस : **(आप ही आप)** अरे! यह दांव तो पूरा बैठ गया।

मम लेख नहिं यह किमि कहैं, मुद्रा छपी जब हाथ की।
विश्वास होत न शकट तजिहै, प्रीति कबहुं साथ की॥
पुनि बेंचिहैं नृप चंद भूषण कौन यह पतियाइहै।
तासों भलो अब मौन रहनो कथन तें पति जाइहै॥

मलयकेतु : आर्य्य! हम यह पूछते हैं?

राक्षस : जो आर्य्य हो उससे पूछो; हम अब पापकारी अनार्य्य हो गए हैं।

मलयकेतु : **स्वामि पुत्र तुव मौर्य्य, हम मित्र पुत्र सह हेत।**
पैहौ उत वाको दियो, इत तुम हमको देत॥
सचिवहु भे उत दास ही, इत तुम स्वामी आप।
कौन अधिक फिर लोभ जो, तुम कीन्हो यह पाप॥

राक्षस : **(आंखों में आंसू भर के)** कुमार! इसका निर्णय तो आप ही ने कर दिया—
स्वामि पुत्र मम मौर्य्य, तुम मित्र पुत्र सह हेत।
पैहें उत वाको दियो, इत हम तुमको देत॥
सचिवहु भे उत दास ही, इत हम स्वामी आप।
कौन अधिक फिर लोभ जो, हम कीन्हो यह पाप॥

मलयकेतु : **(चिट्ठी, पेटी इत्यादि दिखला कर)** यह सब क्या है?

राक्षस : **(आंखों में आंसू भर के)** यह सब चाणक्य ने नहीं किया, दैव ने किया।
निज प्रभु सों करि नेह जे भृत्य समर्पत देह।
तिन सों अपने सुत सरिस सदा निबाहत नेह॥
ते गुणगाहक नृप सबै जिन मारे छन माहिं।
ताही बिधि को दोस यह, औरन को कछु नाहिं॥

मलयकेतु : **(क्रोध पूर्व्वक)** अनार्य्य! अब तक छल किए जाते हो कि यह सब दैव ने किया।
विषकन्या दै पितु हत्यौ प्रथम प्रीति उपजाय।
अब रिपु सों मिलि हम सबन बधन चहत ललचाय॥

राक्षस : **(दुःख से आप ही आप)** हा! यह और जले पर नमक है। **(प्रकट कानों पर हाथ रख कर)** नारायण! देव पर्व्वतेश्वर का कोई अपराध हमने नहीं किया।

मलयकेतु : फिर पिता को किस ने मारा?

राक्षस : यह दैव से पूछो।

मलयकेतु : दैव से पूछैं, जीवसिद्धि क्षपणक से न पूछैं?

राक्षस : **(आप ही आप)** क्या जीवसिद्धि भी चाणक्य का गुप्तचर है! हाय! शत्रु ने हमारे हृदय पर भी अधिकार कर लिया?

मलयकेतु : (क्रोध से) भासुरक, शिखरसेन सैनापति से कहो कि राक्षस से मिला कर चन्द्रगुप्त को प्रसन्न करने को पांच राजे जो हमारा बुरा चाहते हैं, उन में कौलूत चित्रवर्म्मा, मलयाधिपति सिंहनाद और कश्मीराधी पुष्कराक्ष ये तीन हमारी भूमि की कामना रखते हैं, सो इन को भूमि ही में गाड़ दे; और सिन्धुराज सुषेण और पारसीकपति मेघाक्ष हमारी हाथी की सैना चाहते हैं सो इन को हाथी ही के पैर के नीचे पिसवा दे।

पुरुष : जो कुमार की आज्ञा।

[जाता है]

मलयकेतु : राक्षस? हम मलयकेतु हैं, कुछ तुम से विश्वासघाती राक्षस नहीं है। इस से तुम जाकर अच्छी तरह चन्द्रगुप्त का आश्रय करो।

चन्द्रगुप्त चाणक्य सों मिलिये सुख सों आप।
हम तीन्हुं को नासिहैं जिमि त्रिवर्ण कहं पाप॥

भागुरायण : कुमार! व्यर्थ अब कालक्षेप मत कीजिये। कुसुमपुर घेरने को हमारी सैना चढ़ चुकी है।

उड़िकै तियगन गंड जुगल कहं मलिन बनावति।
अलिकुल से कल अलकन निज कन धवल छवावति॥
चपल तुरग खुर घात उठी घन घुमड़ि नवीनी।
सत्रु सीस पैं धूरि परै गजमद सों भीनी॥

[अपने भृत्यों के साथ मलयकेतु जाता है]

राक्षस : (घबड़ा कर) हाय! हाय! चित्रवर्म्मादिक साधु सब व्यर्थ मारे गए। हाय! राक्षस की सब चेष्टा शत्रु के नहीं, मित्रों ही के नाश करने को होती है। अब हम मन्द भाग्य क्या करैं?

जाहि तपोवन, पै न मन शांत होत सह क्रोध।
प्रान देहिं रिपु के जियत यह नारिन को बोध॥
खींचि खंगकर पतंग सम जाहिं अनल अरि पास।
पै या साहस होइहै चन्दनदास विनास॥

[सोचता हुआ जाता है]

[जवनिका गिरती है]

●

छठा अंक

स्थान—नगर से बाहर सड़क

[कपड़ा, गहिना पहिने हुए सिद्धार्थक आता है]

सिद्धार्थक : जलद नील तन जयति जय, केशव केशी काल।
जयति सृजन जन दृष्टि ससि, चन्द्रगुप्त नरपाल॥
जयति आर्य्य चाणक्य की नीति सहज बल-भौन।
बिनही साजे सैन नित, जीतत अरि कुल जौन॥

चलो, आज पुराने मित्र समिद्धार्थक से भेंट करें। (घूम कर) अरे! मित्र समिद्धार्थक आप ही इधर आता है।

[समिद्धार्थक आता है]

समिद्धार्थक : मिटत ताप नहिं पान सों, होत उछाह विनास।
बिना मीत के सुख सबै औरहु करत उदास॥

सुना है कि मलयकेतु के कटक से मित्र सिद्धार्थक आ गया है। उसी को खोजने को हम भी निकले हैं कि मिलैं तो बड़ा आनन्द हो। (आगे बढ़ कर) अहा! सिद्धार्थक तो यही हैं। कहो मित्र! अच्छे तो हो?

सिद्धार्थक : अहा! मित्र समिद्धार्थक आप ही आ गए। (बढ़ कर) कहो मित्र! क्षेम कुशल तो है?

[दोनों गले से मिलते हैं]

समिद्धार्थक : भला! यहां कुशल कहां कि तुम्हारे ऐसा मित्र बहुत दिन पीछे घर भी आया तो बिना मिले फिर चला गया!

सिद्धार्थक : मित्र! क्षमा करो। मुझ को देखते ही आर्य्य चाणक्य ने आज्ञा दी कि इस प्रिय वृत्तांत को अभी चन्द्रमा सदृश प्रकाशित शोभावाले परम प्रिय महाराज प्रिय दर्शन से जाकर कहो। मैं उसी समय महाराज के पास चला गया और उन से निवेदन कर के यह सब पुरस्कार पाकर तुम से मिलने को तुम्हारे घर अभी जाता ही था।

समिद्धार्थक : मित्र! जो सुनने के योग्य हो तो महाराज प्रियदर्शन से जो प्रिय वृत्तान्त

कहा है वह हम भी सुनैं।

सिद्धार्थक : मित्र! तुम से भी कोई बात छिपी है! सुनो! आर्य्य चाणक्य की नीति से मोहित मति होकर उस नष्ट मलयकेतु ने राक्षस को दूर कर दिया और चित्रवर्म्मादिक पांचों प्रबल राजों को मरवा डाला। यह देखते ही और सब राजे अपने प्राण और राज्य का संशय समझकर उस को छोड़कर सैना सहित अपने अपने देश चले गए। जब शत्रु ऐसी निर्बल अवस्था में हुआ, तो भद्रभट, पुरुषदत्त, हिंगुरात, बलगुप्त, राजसेन, भागुरायण, रोहिताक्ष, विजयवर्म्मा, इत्यादि लोगों ने मलयकेतु को कैद कर लिया।

समिद्धार्थक : मित्र! लोग तो यह जानते हैं कि भद्रभट इत्यादि लोग महाराज चन्द्रश्री को छोड़ कर मलयकेतु से मिल गए तो क्या कुकवियों के नाटक की भांति इस के मुख में और तथा निवर्हण में और बात है?

सिद्धार्थक : वयस्य! सुनो, जैसे दैव की गति नहीं जानी जाती वैसे ही आर्य्य चाणक्य की जिस नीति की भी गति नहीं जानी जाती उस को नमस्कार है?

समिद्धार्थक : हां कहो, तब क्या हुआ?

सिद्धार्थक : तब इधर से सब सामग्री लेकर आर्य्य चाणक्य बाहर निकले और विपक्ष के शेष राजाओं को निःशेष करके बर्बर लोगों की सब सामग्री लूट ली।

समिद्धार्थक : तो यह अब कहां हैं?

सिद्धार्थक : वह देखो।

स्रवत गंडमद गरब गज, नदत मेघ अनुहार।
चाबुक भय चितवत चपल, खड़े अस्व बहु द्वार।।

समिद्धार्थक : अच्छा, यह सब जाने दो। यह कहो कि सब लोगों के सामने इतना अनादर पाकर फिर भी आर्य्य चाणक्य उसी मन्त्री के काम को क्यौं करते हैं?

सिद्धार्थक : मित्र। तुम अब तक निरे सीधे साधे बने हो। अरे, अमात्य राक्षस भी आर्य्य चाणक्य की जिन चालों को नहीं समझ सकते उन को हम तुम क्या समझैंगे।

समिद्धार्थक : वयस्य। अमात्य राक्षस अब कहां हैं?

सिद्धार्थक : उस प्रलय कोलाहल के बढ़ने के समय मलयकेतु की सैना से निकलकर उंदुर नामक चर के साथ कुसुमपुर ही की ओर वह आते हैं, यह आर्य्य चाणक्य को समाचार मिला है।

समिद्धार्थक : मित्र! नन्दराज्य के फिर स्थापन की प्रतिज्ञा करके स्वनामतुल्य पराक्रम अमात्य राक्षस, उस काम को पूरा किए बिना फिर कैसे

कुसुमपुर आते हैं?

सिद्धार्थक : हम सोचते हैं कि चन्दनदास के स्नेह से।

समिद्धार्थक : ठीक है। चन्दनदास के स्नेह ही से। किन्तु तुम सोचते हो कि चन्दनदास के प्राण बचैंगे?

सिद्धार्थक : कहां उस दीन के प्राण बचैंगे? हमीं दोनों को वधस्थान में ले जाकर उस को मारना पड़ैगा।

समिद्धार्थक : (क्रोध से) क्या आर्य्य चाणक्य के पास कोई घातक नहीं है कि ऐसा नीच काम हम लोग करैं?

सिद्धार्थक : मित्र! ऐसा कौन है जिस को इस जीवलोक में रहना हो और वह आर्य्य चाणक्य की आज्ञा न मानै? चलो, हम लोग चांडाल का वेष बनाकर चन्दनदास को वधस्थल में ले चलैं।

[दोनों जाते हैं]

इति प्रवेशक

स्थान : बाहरी प्रांत में प्राचीन बारी।

[फांसी हाथ में लिए हुए एक पुरुष आता है]

पुरुष : षटगुन सुदृढ़ गुथी मुख फांसी।
जय उपाय परिपाटी गांसी॥
रिपु-बन्धन मैं पटु प्रति पोरी।
जय चाणक्य नीति की डोरी॥

आर्य्य चाणक्य के चर उंदुर ने इसी स्थान में मुझ को अमात्य राक्षस से मिलने को कहा है। (देख कर) यह अमात्य राक्षस सब अंग छिपाये हुए आते हैं। तब तक इस पुरानी बारी में छिपा कर हम देखैं कि यह कहां ठहरते हैं। (छिप कर बैठता है)

[सब अंग छिपाए हुए राक्षस आता है]

राक्षस : (आंखों में आंसू भर के) हाय! बड़े कष्ट की बात है।

आश्रय बिनसें और पैं जिमि कुलटा तिय जाय।
तजि तिमि नन्दहि चंचला चंद्रहि लपटी धाय॥
देखा देखी प्रजहु सब कीनो ता अनुगौन।
तजि कै निज नृप नेह सब कियो कुसुमपुर भौन॥
होइ बिफल उद्योग मैं, तजि कै कारज भार।
आप्त मित्रहू थकि रहे, सिर बिनु जिमि अहि छार॥
तजि कै निज पति भुवन पति सुकुल जात नृप नन्द।
श्री वृषली गइ वृषल ढिग सील त्यागि करि छन्द॥
जाइ तहां थिर स्वै रही निज गुन सहज बिसारि।

बस न चलत जब बाम बिधि सब कछु देत बिगारि।।
नन्द मरे सैलेश्वरहि देन चह्यौ हम राज।
सोऊ बिनसे तब कियो ता सुत हित सो साज।।
बिगर्‍यौ तौन प्रबन्ध हू, मिट्‌यौ मनोरथ मूल।
दोस कहां चाणक्य को दैवहि भो प्रतिकूल।।

वाह रे म्लेच्छ मलयकेतु की मूर्खता! जिस ने इतना नहीं समझा कि–

मरे स्वामिहू नहिं तज्यौ जिन निज नृप अनुराग।
लोभ छांड़ि दै प्रान जिन करी शत्रु सों लाग।।
सोई राक्षस शत्रु सों मिलिहै यह अन्धेर।
इतनो सूझ्यौ वाहि नहिं दई दैव मति फेर।।

सो अब भी शत्रु के हाथ में पड़ के राक्षस नाश हो जायगा, पर चन्द्रगुप्त से सन्धि न करैगा। लोग झूठा कहें, यह अपयश हो, पर शत्रु की बात कौन सहैगा? (चारों ओर देख कर) हा! इसी प्रान्त में देव नन्द रथ पर चढ़ कर फिरने आते थे।

इतहि देव अभ्यास हित सर तजि धनु सन्धानि।
रचत रहे भुव चित्र सम रथ सुचक्र परिखानि।।
जहं नृपगन संकित रहे इत उत थमे लखात।
सोई भुव ऊजर भई दृगन लखी नहिं जात।।

हाय! यह मन्दभाग्य अब कहां जाय? (चारों ओर देख कर) चलो, इस पुरानी बारी में कुछ देर ठहर कर मित्र चन्दनदास का कुछ समाचार लें। (घूम कर आप ही आप) अहा! पुरुष के भाग्य की उन्नति अवनति की भी क्या क्या गति होती है कोई नहीं जानता।

जिमि नव ससि कहं सब लखत निज निज करहि उठाय।
तिमि पुरजन हम को रहे लखत आनन्द बढ़ाय।।
चाहत हे नृपगन सबै, जासु कृपा दृग कोर।
सो हम इत संकित चलत मानहु कोऊ चोर।।

वा जिस के प्रसाद से यह सब था, जब वही नहीं है तो यह होगा ही। (देख कर) यह पुराना उद्यान कैसा भयानक हो रहा है।

नसे बिपुल नृप कुल सरिस बड़े बड़े गृह जाल।
मित्र नास सों साधुजन हित सम सूखे ताल।।
तरुवर भे फलहीन जिमि बिधि बिगरे सब नीति।
तृन सों लोपी भूमि जिमि मति लहि मूढ़ कुरीति।।
तीछन परसु प्रहार सों कटे तरोबर गात।

रोअत मिलि पिंडूक संग ताके घाव लखात।।
दुखी जानि निज मित्र कहं अहि मनु लेत उसास।
निज केंचुल मिस धरत हैं, फाहा तरु-व्रन पास।।
तरुगन को सूख्यौ हियो, छिदे कीट सों गात।
दुखी पत्र फल छांह बिनु, मनु मसान सब जात।।

तो तब तक हम इस शिला पर, जो भाग्यहीनों को सुलभ है, लेटें। **(बैठ कर और कान देकर सुन कर)** अरे! यह शंख डंके से मिला हुआ नांदी शब्द कहां हो रहा है?

अति ही तीखन होन सों फोरत स्रोता कान।
जब न समायो घरन मैं तब इत कियो पयान।।
संख पटह धुनि सों मिल्यौ भारी मंगल नाद।
निकस्यौ मनहु दिगंत की दूरी देखन स्वाद।।

(कुछ सोच कर) हां, जाना। यह मलयकेतु के पकड़े जाने पर राजकुल **(रुक कर)** मौर्यकुल को आनन्द देने को हो रहा है। **(आंखों में आंसू भर कर)** हाय, बड़े दुःख की बात है।

मेरे बिनु अब जीति दल शत्रु पाइ बल घोर।
मोहि सुनावन हेतु ही कीन्हों शब्द कठोर।।

पुरुष : अब तो यह बैठे हैं तो अब आर्य्य चाणक्य की आज्ञा पूरी करैं। **[राक्षस की ओर न देख कर अपने गले में फांसी लगाना चाहता है]**

राक्षस : **(देख कर आप ही आप)** अरे यह फांसी क्यौं लगाता है? निश्चय कोई हमारा सा दुखिया है। जो हो, पूछैं तो सही। **(प्रकाश)** भद्र, यह क्या करते हो?

पुरुष : **(रोकर)** मित्रों के दुःख से दुःखी होकर हमारे ऐसे मन्दभाग्यों का जो कर्त्तव्य है।

राक्षस : **(आप ही आप)** पहले ही कहा था, कि कोई हमारा सा दुखिया है। **(प्रकाश)** भद्र, जो अति गुप्त वा किसी विशेष कार्य्य की बात न हो तो हम से कहो कि तुम क्यौं प्राण त्याग करते हो?

पुरुष : आर्य्य! न तो गुप्त ही है न कोई बड़े काम की बात है; परन्तु मित्र के दुःख से मैं अब क्षण भर भी ठहर नहीं सकता।

राक्षस : **(आप ही आप दुःख से)** मित्र की विपत्ति में हम पराए लोगों की भांति उदासीन होकर जो देर करते हैं मानो उस में शीघ्रता करने की यह अपना दुःख कहने के बहाने शिक्षा देता है। **(प्रकाश)** भद्र! जो रहस्य नहीं है तो हम सुना चाहते हैं कि तुम्हारे दुःख का क्या कारण है?

पुरुष : आप को इस में बड़ा ही हठ है तो कहना पड़ा। इस नगर में जिष्णुदास

नामक एक महाजन है।

राक्षस : (आप ही आप) कहता है कि वह हमारा प्यारा मित्र है। इस अति निकट सम्बन्ध से इस को चन्दनदास का वृत्तान्त ज्ञात होगा।

पुरुष : (रो कर) सो दीन जनों को सब धन देकर वह अब अग्निप्रवेश करने जाता है। यह सुनकर हम यहां आए हैं कि इस दुःखवार्ता सुनने के पूर्व्व ही अपने प्राण दे दें।

राक्षस : भद्र! तुम्हारे मित्र के अग्निप्रवेश का कारण क्या है?

कै तेहि रोग असाध्य भयो
कोऊ जाको न औषध नाहिं निदान है?

पुरुष : नहीं आर्य्य!

राक्षस : **कै विष अग्निहु सो बढ़ि कै**
नृप कोप महा फंसि त्यागन प्रान है?

पुरुष : राम राम! चन्द्रगुप्त के राज्य में लोगों को प्राणहिंसा का भय कहां?

राक्षस : **कै कोउ सुन्दरी पै जिय देत**
लग्यो हिय मांहि बियोग को बान है?

पुरुष : राम राम! महाजन लोगों की यह चाल नहीं; विशेष करके साधु जिष्णुदास की।

राक्षस : **तौ कहुं मित्रहि को दुख वाहू कै**
नाश के हेतु तुम्हारे समान है?

पुरुष : हां, आर्य्य।

राक्षस : (घबड़ा कर आप ही आप) अरे इस के मित्र का प्रिय मित्र तो चन्दनदास ही है और यह कहता है कि सुहृदविनाश ही उस के विनाश का हेतु है। इस से मित्र के स्नेह से मेरा चित्र बहुत ही घबड़ाता है। (प्रकाश) भद्र! तुम्हारे मित्र का चरित्र हम सविस्तर सुना चाहते हैं।

पुरुष : आर्य्य! अब मैं किसी प्रकार से मरने में विलम्ब नहीं कर सकता।

राक्षस : यह वृत्तान्त तो अवश्य सुनने के योग्य है, इस से कहो।

पुरुष : क्या करैं? आप ऐसा हठ करते हैं तो सुनिए।

राक्षस : हां! जी लगाकर सुनते हैं, कहो।

पुरुष : आप ने सुना ही होगा कि इस नगर में प्रसिद्ध जौहरी सेठ चन्दनदास हैं।

राक्षस : (दुःख से आप ही आप) दैव ने हमारे विनाश का द्वार अब खोल दिया। हृदय! स्थिर हो अभी न जानैं क्या क्या कष्ट तुम को सुनना होगा। (प्रकाश) भद्र! हम ने भी सुना है कि वह साधु अत्यन्त

मित्रवत्सल है।

पुरुष : वह जिष्णुदास के अत्यन्त मित्र हैं।

राक्षस : **(आप ही आप)** यह सब हृदय के हेतु शोक का वज्रपात है। **(प्रकाश)** हां, आगे।

पुरुष : सो जिष्णुदास ने मित्र की भांति चन्द्रगुप्त से बहुत विनय किया।

राक्षस : क्या किया?

पुरुष : कि देव! हमारे घर में जो कुछ कुटुम्बपालन का द्रव्य है आप सब ले लें, पर हमारे मित्र चन्दनदास को छोड़ दें।

राक्षस : **(आप ही आप)** वाह जिष्णुदास! तुम धन्य हो। तुम ने मित्रस्नेह का निर्व्वाह किया।

जा धन के हित नारि तजैं,
पति पूत तजैं पितु सीलहिं खोई।
भाई सों भाई लरैं रिपु से,
पुनि मित्रता मित्र तजै दुख जोई॥
ता धन को बनिया स्वै गिन्यौ न,
न दियो दुख मीत सों आरत होई।
स्वारथ अर्थ तुम्हारोई है तुमरे,
सम और न या जग कोई॥

(प्रकाश) इस बात पर मौर्य्य ने क्या कहा?

पुरुष : आर्य्य! इस पर चन्द्रगुप्त ने उस से कहा कि जिष्णुदास! हम ने धन के हेतु चन्दनदास को नहीं दंड दिया है। इस ने अमात्य राक्षस का कुटुम्ब अपने घर में छिपाया था, और बहुत मांगने पर भी न दिया। अब भी जो यह दे दे तो छूट जाय, नहीं तो इसको प्राणदंड होगा। तभी हमारा क्रोध शांत होगा और दूसरे लोगों को भी इस से डर होगा—यह कह उस को वध स्थान में भेज दिया। जिष्णुदास ने कहा कि 'हम कान से अपने मित्र का अमंगल सुनने के पहिले मर जायं तो अच्छी बात है' और अग्नि में प्रवेश करने को वन में चले गए। हमने भी इसी हेतु कि उन का मरण न सुने यह निश्चय किया कि फांसी लगाकर मर जायं और इसी हेतु यहां आए हैं।

राक्षस : **(घबड़ा कर)** अभी चन्दनदास को मारा तो नहीं।

पुरुष : आर्य्य! अभी नहीं मारा है। बारम्बार अब भी उन से अमात्य राक्षस का कुटुम्ब मांगते हैं और वह मित्रवत्सलता से नहीं देते, इसी में इतना विलम्ब हुआ।

राक्षस : **(सहर्ष आप ही आप)** वाह मित्र चन्दनदास! वाह! धन्य! धन्य!!!

मित्र परोच्छहुं मैं कियो सरनागत प्रतिपाल।
निरमल जस सिबि सो लियो तुम या काल कराल॥

(प्रकाश) भद्र! तुम शीघ्र जाकर जिष्णुदास को जलने से रोको, हम जाकर अभी चन्दनदास को छुड़ाते हैं?

पुरुष : आर्य्य आप किस उपाय से चन्दनदास को छुड़ाइएगा?

राक्षस : **(खड्ग मियान से खींच कर)** इन दुःखों में एकान्त मित्र निष्कृप कृपाण से।

समर साध तन पुलकित नित साथी मम कर को।
रन महं बारहिं बार परिछूयो जिन बल पर को॥
बिगत जलद नभ नील खड्ग यह रोस बढ़ावत।
मीत कष्ट सो दुखिहु मोहिं रनहित उमगावत॥

पुरुष : सेठ चन्दनदास के प्राण बचाने का उपाय मैंने सुना किन्तु ऐसे टेढ़े समय में इसका परिणाम क्या होगा, यह मैं नहीं कह सकता। **(राक्षस को देख कर पैर पर गिरता है)** आर्य्य! क्या सुगृहीत—नामधेय अमात्य राक्षस आप ही हैं? यह मेरा सन्देह आप दूर कीजिए।

राक्षस : भद्र! भृर्तकुल विनाश से दुःखी और मित्र के नाश का कारण यथार्थ नामा अनार्य्य राक्षस मैं ही हूं।

पुरुष : **(फिर पैर पर गिरता है)** धन्य हैं! बड़ा ही आनन्द हुआ। आप ने हम को आज कृतकृत्य किया है!

राक्षस : भद्र! उठो। देर करने की कोई आवश्यकता नहीं। जिष्णुदास से कहो कि राक्षस चन्दनदास को अभी छुड़ाता है।

[खड्ग खींचे हुए 'सार साध' इत्यादि पढ़ता हुआ इधर उधर टहलता है]

पुरुष : **(पैर पर गिर कर)** अमात्यचरण! प्रसन्न हों। मैं यह बिनती करता हूं कि चन्द्रगुप्त दुष्ट ने पहले शकटदास के वध की आज्ञा दी थी फिर न जानै कौन शकटदास को छुड़ा कर उस को कहीं परदेश भगाकर ले गया। आर्य्य शकटदास के वध में धोखा खाने से चन्द्रगुप्त ने क्रोध करके प्रमादी समझ कर उन वधिकों ही को मार डाला। तब से वधिक जो किसी को वधस्थान में ले जाते हैं और मार्ग में किसी को शस्त्र खींचे हुए देखते हैं तो छुड़ा लें जाने के भय से अपराधी को बीच ही में तुरन्त मार डालते हैं। इस से शस्त्र खींचे हुए आप के वहां जाने से चन्दनदास की मृत्यु में और भी शीघ्रता होगी।

[जाता है]

राक्षस : (आंप ही आप) उस चाणक्य बटु का नीति मार्ग कुछ समझ नहीं पड़ता क्यौंकि–

सकट बच्यौ जो ता कहैं तौ क्यौं घातक घात।
जाल भयो का खेल मैं कछु समझ्यौ नहिं जात॥
(सोच कर)
नहिं शस्त्र को यह काल यासों मीत जीवन जाइहै।
जो नीति सोचैं या समय तौ व्यर्थ समय नसाइहै॥
चुप रहनहू नहिं जोग जब मम हित बिपति चन्दन पर्‌यौ।
तासों बचावन प्रियहिं अब हम देह निज विक्रय कर्‌यौ॥

(तलवार फेंक कर जाता है)

[जवनिका गिरती है]

●

सातवां अंक

स्थान–सूली देने का मसान

[पहिला चांडाल आता है]

चांडाल : हटो लोगों, हटो दूर हो भाइयों, दूर हो। जो अपना प्राण, धन और कुल बचाना हो तो दूर हो। राजा का विरोध यत्नपूर्व्वक छोड़ो।

करि कै पथ्य विरोध इक रोगी त्यागत प्रान।
पै विरोध नृप सों किए नसत सकुल नर जान॥

जो न मानो तो इस राजा के विरोधी को देखो जो स्त्री पुत्र समेत यहां सूली देने को लाया जाता है। **(ऊपर देख कर)** क्या कहा कि 'इस चन्दनदास के छूटने का कुछ उपाय भी है?' भला इस बेचारे के छूटने का कौन उपाय है? पर हां, जो यह मन्त्री राक्षस का कुटुम्ब दे दे तो छूट जाय। **(फिर ऊपर देख कर)** क्या कहा कि 'यह शरणागत वत्सल प्राण देगा पर यह बुरा कर्म्म न करैगा।' तो फिर इस की बुरी गति होगी क्यौंकि बचने का तो वही एक उपाय है।

[कन्धे पर सूली रखे मृत्यु का कपड़ा पहने चन्दनदास, उन की स्त्री और पुत्र, दूसरा चांडाल आते हैं]

स्त्री : हाय हाय! जो हम लोग नित्य अपनी बात बिगड़ने के डर से फूंक फूंक कर पैर रखते थे उन्हीं हम लोगों की चोरों की भांति मृत्यु होती है। काल देवता को नमस्कार है, जिस को मित्र उदासीन सभी एक से हैं। क्यौंकि–

छोड़ि मांस भख मरन भय जियहि खाइ तृन घास।
तिन गरीब मृग को करहिं निरदय व्याधा नास॥

[चारों ओर देख कर]

अरे भाई जिष्णुदास! मेरी बात का उत्तर क्यौं नहीं देते? हाय! ऐसे समय में कौन ठहर सकता है।

चन्दनदास : **(आंसू भर कर)** हाय! यह मेरे सब मित्र बिचारे कुछ नहीं कर सकते,

केवल रोते हैं और अपने को अकर्मण्य समझ शोक से सूखा सूखा मुंह किए आंसू भरी आंखों से एकटक मेरी ही ओर देखते चले आते हैं।

दोनों चांडाल : **(घूम कर और चारों ओर देख कर के)** अजी चन्दनदास! अब तुम फांसी के स्थान पर आ चुके इस से कुटुम्ब को विदा करो

चन्दनदास : **(स्त्री से)** अब तुम पुत्र को लेकर जाओ, क्योंकि आगे तुम्हारे जाने की भूमि नहीं है।

स्त्री : ऐसे समय में तो हम लोगों को विदा करना उचित ही है, क्योंकि आप परलोक जाते हैं, कुछ परदेश नहीं जाते।

[रोती है]

चन्दनदास : सुनो, मैं कुछ अपने दोष से नहीं मारा जाता, एक मित्र के हेतु मेरे प्राण जाते हैं, तो इस हर्ष के स्थान पर क्या रोती है?

स्त्री : नाथ! जो यह बात है तो कुटुम्ब को क्यों विदा करते हो?

चन्दनदास : तो फिर तुम क्या कहती हो?

स्त्री : **(आंसू भर कर)** नाथ! कृपा कर के मुझे भी साथ ले चलो।

चन्दनदास : हा! यह तुम कैसी बात कहती हो? अरे! तुम इस बालक का मुंह देखो और इस की रक्षा करो, क्योंकि यह बिचारा कुछ भी लोकव्यवहार नहीं जानता। यह किस का मुंह देख के जीएगा?

स्त्री : इस की रक्षा कुलदेवी करैंगी। बेटा! अब पिता फिर न मिलैंगे। इस से मिल कर प्रणाम कर ले।

बालक : **(पैरों पर गिर के)** पिता! मैं आप के बिना क्या करूंगा?

चन्दनदास : बेटा, जहां चाणक्य न हो वहां बसना।

दोनों चांडाल : **(सूली खड़ी करके)** अजी चन्दनदास! देखो, सूली खड़ी हुई अब सावधान हो जाओ!

स्त्री : **(रोकर)** लोगों, बचाओ! अरे! कोई बचाओ!

चन्दनदास : भाइयों, तनिक ठहरो। **(स्त्री से)** अरे! अब तुम रो रोकर क्या नन्दों को स्वर्ग से बुला लोगी? अब वे लोग यहां नहीं हैं जो स्त्रियों पर सर्व्वदा दया रखते थे।

पहला चांडाल : अरे वेणुवेत्रक! पकड़ इस चन्दनदास को। घर वाले आप ही रो पीटकर चले जायंगे?

दूसरा चांडाल : अच्छा वज्रलोमक, मैं पकड़ता हूं।

चन्दनदास : भाइयों! तनिक ठहरो, मैं अपने लड़के से तो मिल लूं। **(लड़के को गले लगाकर और माथा सूंघ कर)** बेटा! मरना तो था ही पर एक मित्र के हेतु मरते हैं, इस से सोच मत कर।

पुत्र : पिता, क्या हमारे कुल के लोग ऐसा ही करते आए हैं?

[पैरों पर गिर पड़ता है]

दूसरा चांडाल : पकड़ रे वज्रलोमक!

[दोनों चन्दनदास को पकड़ते हैं]

स्त्री : लोगो! बचाओ रे, बचाओ!

[वेग से राक्षस आता है]

राक्षस : डरो मत डरो मत। सुनो सुनो, घातको! चन्दनदास को मत मारना, क्यौंकि—

नसत स्वामिकुल जिन लख्यौ निज चख शत्रु समान।
मित्र दुःख हूं मैं धर्‌यौ निलज होइ जिन प्रान॥
तुम सो हारि बिगारि सब कढ़ी न जाकी सांस।
ता राक्षस के कंठ मैं डारहु यह जमफांस॥

चन्दनदास : **(देख कर आंखों में आंसू भर कर)** अमात्य यह क्या करते हो?

राक्षस : मित्र, तुम्हारे सच्चरित्र का एक छोटा सा अनुकरण।

चन्दनदास : अमात्य, मेरा किया तो सब निष्फल हो गया, पर आप ने ऐसे समय यह साहस अनुचित किया।

राक्षस : मित्र चन्दनदास! उलाहना मत दो। सभी स्वार्थी हैं (चांडाल से) अजी! तुम उस दुष्ट चाणक्य से कहो।

दोनों चांडाल : क्या कहैं?

राक्षस : **जिन कलि मैं हूं मित्र हित तृन सम छोड़े प्रान।**
जाके जस रवि सामुहे सिवि जस दीप समान॥
जाको अति निर्मल चरित, दया आदि नित जानि।
बौद्धहु सब लज्जित भए, परम शुद्ध जेहि मानि॥
ता पूजा के पात्र को मारत तू धरि पाप।
जाके हित सों शत्रु तुव आयो इत मैं आप॥

पहला चांडाल : अरे वेणुवेत्रक! तू चन्दनदास को पकड़ कर इस मसान के पेड़ की छाया मैं बैठ, तब से मन्त्री चाणक्य को मैं समाचार दूं कि अमात्य राक्षस पकड़ा गया।

दूसरा चांडाल : अच्छा रे वज्रलोमक! **[चन्दनदास, स्त्री, बालक और सूली को लेकर आता है]**

पहला चांडाल : **[राक्षस को लेकर घूम कर]** अरे यहां पर कौन है? नन्दकुल सेनासंचय के चूर्ण करने वाले वज्र से, वैसे ही मौर्य्यकुल में लक्ष्मी और धर्म्म स्थापना करनेवाले, आर्य्य चाणक्य से कहो...।

राक्षस : (आप ही आप) हाय! यह भी राक्षस को सुनना लिखा था!

पहला चांडाल : कि आप की नीति ने जिस की बुद्धि को घेर लिया है, वह अमात्य राक्षस पकड़ा गया।

[परदे में सब शरीर छिपाए केवल मुंह खोले चाणक्य आता है]

चाणक्य : अरे कहो, कहो।

किन जिन वसननि मैं धरी कठिन अगिनि की ज्वाल?
रोकी किन गति वायु की डोरिन ही के जाल?
किन गजपति मर्दन प्रबल सिंह पींजरा दीन?
किन केवल निज बाहु बल पार समुद्रहि कीन?

पहला चांडाल : परमनीतिनिपुण, आप ही ने तो।

चाणक्य : अजी! ऐसा मत कहो, वरन् "नन्दकुलद्वेषी दैव ने" यह कहो।

राक्षस : (देख कर आप ही आप) अरे! क्या यही दुरात्मा वा महात्मा कौटिल्य है? क्योंकि–

सागर जिमि बहु रत्नमय तिमि सब गुन की खानि।
तोष होत नहिं देखि गुण वैरी हूं निज जानि॥

चाणक्य : (देख कर) अरे! यही अमात्य राक्षस है जिस महात्मा ने–

बहु दुःख सों सोचत सदा जागत रैन विहाय।
मेरी मति अरु चन्द्र की सैनहि दई थकाय॥

(परदे से बाहर निकल कर) अजी अमात्य राक्षस! मैं विष्णुगुप्त आप को दंडवत् करता हूं।

[पैर छूता है]

राक्षस : (आप ही आप) अब मुझे अमात्य कहना तो केवल मुंह चिढ़ाना है। (प्रकट) अजी विष्णुगुप्त! मैं चांडालों से छू गया हूं इस से मुझे मत छूओ।

चाणक्य : अमात्य राक्षस! वह श्वपाक नहीं है, वह आप का जाना सुना सिद्धार्थक नामा राजपुरुष है; और दूसरा भी समिद्धार्थक नामा राजपुरुष ही है; और इन्हीं दोनों द्वारा विश्वास उत्पन्न करके उस दिन शकटदास को धोखा देकर मैंने वह पत्र लिखवाया था।

राक्षस : (आप ही आप) अहा! बहुत अच्छा हुआ कि मेरा शकटदास पर से सन्देह दूर हो गया।

चाणक्य : बहुत कहां तक कहूं–

वे सब भद्रभटादि, वह सिद्धार्थक, वह लेख।
वह भदंत, वह भूषनहु, वह नट आरत भेख॥
वह दुःख चन्दनदास को जो कछु दियो दिखाय।
(लज्जा से कुछ सकुच कर)
सो सब राजा चंद्र को तुम सों मिलन उपाय॥

देखिये, यह राजा भी आप से मिलने आप ही आते हैं।

राक्षस : (आप ही आप) अब क्या करैं? (प्रकट) हां! मैं देख रहा हूं।

[सेवकों के संग राजा आता है]

राजा : (आप ही आप) गुरुजी ने बिना युद्ध ही दुर्जय शत्रु का कुल जीत लिया इस में कोई सन्देह नहीं। मैं तों बड़ा लज्जित हो रहा हूं, क्यौंकि–

ह्वै बिनु काम लजाय करि नीचो मुख भरि सोक।
सोवत सदा निषंग में मम बानन के थोक॥
सोवहिं धनुष उतारि हम जदपि सकहिं जग जीति।
जा गुरु के जागत सदा नीति निपुण गत भीति॥

(चाणक्य के पास जाकर) आर्य्य! चन्द्रगुप्त प्रणाम करता है।

चाणक्य : वृषल! अब सबै असीस सच्ची हुई। इस से इन पूज्य अमात्य राक्षस को नमस्कार करो। यह तुम्हारे पिता के सब मन्त्रियों में मुख्य हैं।

राक्षस : (आप ही आप) लगाया न इस ने सम्बन्ध–

राजा : (राक्षस के पास जाकर) आर्य्य! चन्दगुप्त प्रणाम करता है।

राक्षस : (देख कर आप ही आप) अहा! यही चन्द्रगुप्त है।

होनहार जाको उदय बालपने ही जोइ।
राज लस्यौ जिन बाल गज जूथाधिप सम होइ॥

(प्रकट) महाराज! जय हो।

राजा : आर्य्य!

तुमरे आछत बहुरि गुरु जागत नीति प्रवीन।
कहहु कहा या जगत में जाहि न जय हम कीन॥

राक्षस : (आप ही आप) देखो, यह चाणक्य का सिखाया पढ़ाया मुझ से कैसी सेवकों की सी बात करता है! नहीं नहीं, यह आप ही विनीत है। अहा! देखो, चन्द्रगुप्त पर डाह के बदले उलटा अनुराग होता है। चाणक्य सब स्थान पर यशस्वी है, क्यौंकि–

पाइ स्वामि सतपात्र जो मन्त्री मूरख होइ।
तौहू पावै लाभ जस, इत तौ पंडित दोइ॥
मूरख स्वामी लहि गिरै, चतुर सचिव हूं हारि।
नदी तीर तरु जिमि नसत जीरन है लहि बारि॥

चाणक्य : क्यौं अमात्य राक्षस! आप क्या चन्दनदास के प्राण बचाया चाहते हैं।

राक्षस : इसमें क्या सन्देह है?

चाणक्य : पर अमात्य–आप शस्त्र ग्रहण नहीं करते, इस से सन्देह होता है

कि आप ने अभी राजा पर अनुग्रह नहीं किया। इस से जो सच ही चन्दनदास के प्राण बचाया चाहते हो तो यह शस्त्र लीजिए।

राक्षस : सुनिए विष्णुगुप्त! ऐसा कभी नहीं हो सकता, क्योंकि हम उस योग्य नहीं, विशेष करके जब तक तुम शस्त्र ग्रहण किए हो तब तक हमारे शस्त्र ग्रहण करने का क्या काम है?

चाणक्य : भला अमात्य! आप ने यह कहां से निकाला कि हम योग्य हैं और आप अयोग्य हैं? क्यौंकि देखिए–

रहत लगामहिं कसे अश्व की पीठ न छोड़त।
खान पान असनान भोग तजि मुख नहिं मोड़त॥
छूटे सब सुख साज नींद नहीं आवत नयनन।
निसि दिन चौंकत रहत वीर सब भय धरि निज मन॥
वह हौदन सौं सब छन कस्यौ नृप गजगन अवरेखिए।
रिपुदर्प दूर कर अति प्रबल निज महात्म बल देखिए॥

वा इन बातों से क्या! आप के शस्त्र ग्रहण किए बिना तो चन्दनदास बचता भी नहीं।

राक्षस : **(आप ही आप)**

नन्द नेह छूट्यौ नहीं दास भए अरि साथ।
ते तरु कैसे काटिहैं जे पाले निज हाथ॥
कैसे करिहैं मित्र पै हम निज कर सों घात।
अहो भाग्य गति अति प्रबल, मोहिं कछु जानि न जात॥

(प्रकाश) अच्छा विष्णुगुप्त! मंगाओं खड्ग "नमस्सर्व्वकार्य्य प्रतिपत्तिहेतवे सुहृत्स्नेहाय" देखो, मैं उपस्थित हूं।

चाणक्य : **(राक्षस को खड्ग देकर हर्ष से)** राजन् वृषल! बधाई है, बधाई है! अब अमात्य राक्षस ने तुम पर अनुग्रह किया। अब तुम्हारी दिन दिन बढ़ती ही है।

राजा : यह सब आप की कृपा का फल है।

[पुरुष आता है]

पुरुष : जय हो महाराज की, जय हो। महाराज! भद्रभट भागुरायणादिक मलयकेतु को हाथ पैर बांधकर लाए हैं और द्वार पर खड़े हैं। इस में महाराज की क्या आज्ञा होती है?

चाणक्य : हां सुना। अजी! अमात्य राक्षस से निवेदन करो, अब सब काम वही करैंगे।

राक्षस : **(आप ही आप)** कैसे अपने वश में करके मुझी से कहलाता है।

क्या करैं? **(प्रकाश)** महाराज चन्द्रगुप्त! यह तो आप जानते हैं कि हम लोगों का मलयकेतु का कुछ दिन तक सम्बन्ध रहा है। इस से उस का प्राण तो बचाना ही चाहिए।

[राजा चाणक्य का मुंह देखता है]

चाणक्य : महाराज। अमात्य राक्षस की पहिली बात तो सर्व्वथा माननी ही चाहिए। **(पुरुष से)** अजी! तुम भद्रभटादिकों से कह दो कि "अमात्य राक्षस के कहने से महाराज चन्द्रगुप्त मलयकेतु को उस के पिता का राज्य देते हैं।" इस से तुम लोग संग जाकर उस को राज पर बिठा आओ।

[जाता है]

चाणक्य : अजी, अभी ठहरो, सुनो! दुर्गपाल विजयपाल से यह कह दो कि अमात्य राक्षस के शस्त्र ग्रहण पर प्रसन्न हो कर महाराज चन्द्रगुप्त यह आशा करते हैं कि 'चन्दनदास को सब नगरों का जगत् सेठ कर दो।'

पुरुष : जो आज्ञा।

[जाता है]

चाणक्य : चन्द्रगुप्त! अब और मैं क्या तुम्हारा प्रिय करुं?

राजा : इस से बढ़कर और क्या भला होगा?

मैत्री राक्षस सों भई, मिल्यौ अकंटक राज।
नंद नसे सब अब कहा यासों बढ़ि सुख साज॥

चाणक्य : **(प्रतिहारी से)** विजये! दुर्गपाल विजयपाल से कहो कि 'अमात्य राक्षस के मेल से प्रसन्न होकर महाराज चन्द्रगुप्त आज्ञा करते हैं कि हाथी, घोड़ों को छोड़ कर और सब बन्धुओं का बन्धन छोड़ दो' वा जब अमात्य राक्षस मन्त्री हुए तब अब हाथी घोड़ों का क्या सोच है? इस से—

छोड़ौ सब गज तुरग अब कछु मत राखौ बांधि।
केवल हम बांधत सिखा निज परतिज्ञा साधि॥

(शिखा बांधता है)

प्रतिहारी : जो आज्ञा।

[जाती है]

चाणक्य : अमात्य राक्षस! मैं इस से बढ़कर और कुछ भी आप का प्रिय कर सकता हूं?

राक्षस : इस से बढ़कर और हमारा क्या प्रिया होगा? पर जो इतने पर भी

सन्तोष न हो तो यह आशीर्वाद सत्य हो–

''वाराहीमात्मयोनेस्तनुमतनुबलामास्थितस्यानुरूपा
यस्य प्राग्दन्तकोटिम्प्रलयपरिगता शिश्रिये भूतधात्री।
म्लेच्छैरुद्वेज्यमाना भुजयुगमधुना पीवरं राजमूर्तेः
स श्रीमद्बन्धुभृत्यश्चिरभवतु महीम्पार्थिवश्चन्द्रगुप्तः॥''[1]

(सब जाते हैं)

इति

जवनिका गिरती है।

[विशाखदत्त कृत 'मुद्राराक्षस' का भाषानुवाद]

---

[1] महाबली वाराह शरीरधारी स्वयं श्रीविष्णु, जिनके दृष्टांग पर प्रलय में निमग्ना पृथ्वी ठहरी हुई थी तथा बड़े भाई का अनुयायी ऐश्वर्यशाली राजा चन्द्रगुप्त बहुत दिनों तक पृथ्वी की रक्षा करते रहे, जिस राजमूर्ति की दोनों दृढ़ भुजाओं में म्लेच्छों से उत्पीड़ित होकर वह आश्रय पा रही है।

परिशिष्ट

उपसंहार

(क)

इस नाटक में आदि, अन्त तथा अंकों के विश्रामस्थल में रंगशाला में ये गीत गाने चाहिए। यथा–

सबसे पूर्व्व मंगलाचरण में
(ध्रुवपद चौताला)

जय जय जगदीश राम, श्याम धाम पूर्ण काम,
आनन्दघन ब्रस्म विष्णु सत् चित सुखकारी॥
कंस रावनादि काल सतत प्रनत भक्त पाल,
सोभित गल मुक्तमाल, दीनतापहारी॥
प्रेमभरन, पापहरन, असरन जग सरन चरन,
सुखहि करन दुखहि हरन, वृन्दावनचारी॥
रमावास जगनिवास, राम रमन समनत्रास,
विनवत 'हरिचंद' दास, जयजय गिरधारी॥

प्रस्तावना के अन्त में प्रथम अंक के आरम्भ में। चाल लखनऊ की ठुमरी 'शाहजादे आलम तेरे लिए' इस चाल की–

जिनके हितकारक पंडित हैं
तिनको कहा सत्रुन को डर है।
समुझैं जग मैं सब नीतिन्ह जो
तीन्है दुर्ग विदेस मनो घर है।
जिन मित्रता राखी है लायक सों
तिनकों तिनकाहू महा सर है।
जिनकी परतिज्ञा टरै न कबौं
तिनकी जय ही सब ही थर है॥

(पहले अंक की समाप्ति और दूसरे अंक के प्रारम्भ में)

जग मैं घर की फूट बुरी।
घर के फूटहि सों बिनसाई सुबरन लंकपुरी॥
फूटहि सों सब कौरव नासे भारत युद्ध भयो।
जाको घाटो या भारत मैं अबलौं नहिं पुज्यो॥
फूटहिं सों जयचंद बुलायो जवनन भारत धाम।
जाको फल अबलौं भोगत सब आरज होइ गुलाम॥
फूटहि सों नव नंद बिनासे गयो मगध को राज।
चन्द्रगुप्त को नासन चाहयौ आपु नसे यह साज॥
जो जग मैं धन मान और बल अपुनो राखन होय।
तो अपुने घर मैं भूलेहू फूट करौ मति कोय॥

(दूसरे अंक की समाप्ति और तीसरे अंक के आरम्भ में)

जग में तेई चतुर कहावैं।
जे सब बिधि अपने कारज को नीकी भांति बनावैं॥
पढ़्यौ लिख्यौ किन होइ जु पै नहिं कारज साधन जानै।
ताही को मूरख या जग मैं सब कोऊ अनुमानै॥
छल मैं पातक होत जदपि यह शास्त्रन मैं बहु गायो।
पै अरि सों छल किए दोष नहिं मुनिजन यहै बतायो॥

(तीसरे अंक की समाप्ति और चौथे अंक के आरम्भ में)

ठुमरी

तिनको न कछू कबहूं बिगरैं,
गुरु लोगन को कहनो जे करैं।
जिनको गुरु पंथ दिखावत हैं,
ते कुपंथ पैं भूलि न पांव धरैं॥
जिनको गुरु रच्छत आप रहैं,
ते बिगारे न बैरिन के बिगरैं।
गुरु को उपदेश सुनौ सब ही,
जग कारज जासों सबै संभरैं॥

(चौथे अंक की समाप्ति और पांचवें अंक के आरम्भ में)

पूरबी

करि मूरख मित्र मिताई, फिर पछितैहो रे भाई।
अन्त दगा खैहौ सिर धुनिहौ रहि हौ सबै गंवाई॥

मूरख जो कछु हितहु करै तो तामैं अन्त बुराई।
उलटो उलटो काज करत सब दैहै अन्त नसाई।।
लाख करी हित मूरख सों पै ताहि न कछु समुझाई।
अन्त बुराई सिर पैं ऐहै रहि जैहो मुंह बाई।।
फिर पछितैहौ रे भाई।।

(पांचवें अंक की समाप्ति और छठे अंक के आरम्भ में)

(काफी ताल होली का)

छलियन सों रहो सावधान नहिं तो पछताओगे।
इनकी बातन मैं फंसि रहिहौ सबहि गंवाओगे।।
स्वारथ लोभी जन सों आखिर दगा उठाओगे।
तब सुख पैहौ जब सांचन सों नेह बढ़ाओगे।।
छलियन सों।।

(छठे अंक की समाप्ति और सातवें अंक के आरम्भ में)

('जिनके मन में सिय राम बसें' इस धुन की)

जग सूरज चंद टरैं तो टरैं
पै न सज्जन नेहु कबौं बिचलै।
धन सम्पति सर्बस गेह नसौ
नहिं प्रेम की मेड़ सो एड़ टलै।।
सतवादिन कों तिनका सम प्रान
रहै तो रहै वा ढलै तो ढलै।
निज मीत की प्रीत प्रतीत रहौ
इक और सबै जग जाउ भलै।।

अन्त में गाने को विहाग

श्लोक के अर्थ के अनुसार

हरौ हरि रूप सबै जग बाधा।
जा सरूप सों धरनि उधारी निज जन कारज साधा।।
जिमि तव दाढ़ अग्र लै राखी महि हति असुर गिरायो।
कनक दृष्टि म्लेच्छन हूं तिमि किन अब लौं मारि नसायो।।
आरज राज रूप तुम तासों मांगत यह बरदाना।
प्रजा कुमुदगन चन्द्रनृपति को करहु सकुल कल्याना।।

(विहाग ठुमरी)
पूरी अमी की कटोरिया सी
चिरजीओ सदा विकटोरिया रानी।
सूरज चंद प्रकास कर जब लौं
रहै सात हू सिन्धु मैं पानी॥
राज करौ सुख सों तब लौं निज
पुत्र और पौत्र समेत सयानी।
पालौ प्रजागन को सुख सों जग
कीरति मान करैं गुन गानी॥

(कलिंगड़ा)
लहौ सुख सब विधि भारतवासी।
विद्या कला जगत को सीखौ तजि आलस की फांसी॥
अपनो देश धरम कुल समुझहु छोड़ि वृत्ति निज दासी।
उद्यम करिकैं होहु एकमति निज बल बुद्धि प्रकासी॥
पंच पीर की भगति छोड़ि कै भय हरिचरन उपासी।
जग के और नरन सम येऊ होउ सबै गुनरासी॥

उपसंहार

(ख)

इस नाटक के विषय में विलसन साहिब लिखते हैं कि यह नाटक और नाटकों से अति विचित्र है, क्योंकि इस में सम्पूर्ण राजनीति के व्यवहारों का वर्णन है। चन्द्रगुप्त (जो यूनानी लोगों का सैंद्रोकोत्तस Sandracotus है) और पाटलिपुत्र (जो यूरप की पालीबोत्तरा Palibothra है) के वर्णन का ऐतिहासिक नाटक होने के कारण यह विशेष दृष्टि देने के योग्य है।

इस नाटक का कवि विशाखदत्त महाराज पृथु का पुत्र और सामंत बटेश्वरदत्त का पौत्र था। इस लिखने से अनुमान होता है कि दिल्ली के अन्तिम हिन्दू राजा पृथ्वीराज चौहान ही का पुत्र विशाखदत्त है, क्योंकि अन्तिम श्लोक से विदेशी शत्रु की जय की ध्वनि पाई जाती है। भेद इतना ही है कि रायसे में पृथ्वीराज के पिता का नाम सोमेश्वर और दादा का आनन्द लिखा है। मैं यह अनुमान करता हूं कि सामन्त बटेश्वर इतने बड़े नाम को कोई शीघ्रता से या लघु करके कहे तो सोमेश्वर हो सकता है और सम्भव है कि चन्द ने भाषा में सामन्त बटेश्वर को ही सोमेश्वर लिखा हो।

मेजर विल्फर्ड ने 'मुद्राराक्षस' के कवि का नाम गोदावरी तीर निवासी अनन्त लिखा है, किन्तु वह केवल भ्रममात्र है। जितनी प्राचीन पुस्तकें उत्तर वा दक्षिण में मिलीं, किसी में अनन्त का नाम नहीं मिला है।

इस नाटक पर बटेश्वर मैथिल पंडित की एक टीका भी है। कहते हैं कि गुहसेन नामक किसी अपर पंडित की भी एक टीका है, किन्तु देखने में नहीं आई। महाराज तंजौर के पुस्तकालय में ब्यासराज यज्वा की एक टीका और है।

चन्द्रगुप्त[1] की कथा विष्णुपुराण, भागवत और पुराणों में और वृहत्कथा में वर्णित है। कहते हैं कि विकटपल्ली के राजा चन्द्रदास का उपाख्यान लोगों ने इन्हीं कथाओं से निकाल लिया है।

---

[1] प्रियदर्शी-प्रियदर्शन, चन्द्र, चन्द्रगुप्त, श्रीचन्द्र, चन्द्रश्री, मौर्य्य यह सब चन्द्रगुप्त के नाम हैं, और चाणक्य, विष्णुगुप्त, द्रोमिल या द्रोहिण, अशुल, कौटिल्य यह सब चाणक्य के नाम हैं।

महानन्द अथवा महापद्मनन्द भी शूद्रा के गर्भ से था, और कहते हैं कि चन्द्रगुप्त इस की एक नाइन स्त्री के पेट से पैदा हुआ था। यह पूर्वपीठिका में लिख आए हैं कि इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र थी। इस पाटलिपुत्र (पटने) के विषय में यहां कुछ लिखना अवश्य हुआ। सूर्य्यवंशी सुदर्शन[1] राजा की पुत्री पाटली ने पूर्व्व में इस नगर को बसाया। कहते हैं कि कन्या को बन्ध्यापन के दुःख और दुर्नाम से छुड़ाने को राजा ने एक नगर बसाकर उसका नाम पाटलिपुत्र रक्खा था। वायुपुराण में 'जरासन्ध' के पूर्व्वपुरुष वसु राजा ने बिहार प्रांत का राज्य संस्थापन किया, यह लिक्खा है। कोई कहते हैं कि 'वेदों में जिस बसु के यज्ञों का वर्णन है वही राज्यगिरि राज्य का संस्थापक है' जो लोग चरणाद्रि को 'राज्यगृह का पर्व्वत बतलाते हैं' उन को केवल भ्रम है। इस राज्य का आरम्भ चाहे जिस तरह हुआ हो पर जरासन्ध ही के समय से यह प्रख्यात हुआ। मार्टिन साहिब ने जरासन्ध ही के विषय में एक अपूर्व कथा लिखी है। वह कहते हैं कि जरासन्ध दो पहाड़ियों पर दो पैर रख कर द्वारका में जब स्त्रियां नहाती थीं तो ऊंचा होकर उन को घूरता था। इसी अपराध पर श्रीकृष्ण ने उस को मरवा डाला।

मगध शब्द मग से बना है। कहते हैं कि "श्रीकृष्ण के पुत्र सांब ने शाकद्वीप से मग जाति के ब्राह्मणों को अनुष्ठान करने को बुलाया था और वे जिस देश में बसे उस की मगध संज्ञा हुई।" जिन अंगरेज विद्वानों ने 'मगध देश' शब्द को मद्ध (मध्यदेश) का अपभ्रंश माना है उन्हें शुद्ध भ्रम हो गया है जैसा कि मेजर विल्फर्ड पालीबोत्रा को राजमहल के पास गंगा और कोसी के संगम पर बतलाते और पटने का शुद्ध नाम पद्मावती कहते हैं। यौं तो पाली इस नाम के कई शहर हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध हैं किन्तु पालीबोत्रा पाटलिपुत्र ही है। सोन के किनारे मावलीपुर एक स्थान है जिस का शुद्ध नाम महाबलीपुर है। महाबली नन्द का नामांतर भी है, इसी से और वहां प्राचीन चिह्न मिलने से कोई कोई शंका करते हैं कि बलीपुर वा बलीपुत्र का पालीबोत्रा अपभ्रंश है, किन्तु यह भी भ्रम ही है। राजाओं के नाम से अनेक ग्राम बसते हैं इसमें कोई हानि नहीं, किन्तु इन लोगों की राजधानी पाटलिपुत्र ही थी।

कुछ विद्वानों का मत है कि मग लोग मिस्र से आए और यहां आकर इसीरीस और ओसीरीस नामक देव और देवी की पूजा प्रचलित की। यह दोनों शब्द ईश और ईश्वरी के अपभ्रंश बोध होते हैं। किसी पुराण में 'महाराज दशरथ ने शाक द्वीपियों को बुलाया' यह लिखा है। इस देश में पहले कोल और चेरु (चोल) लोग बहुत रहते थे। शुनक और अजक इस वंश में प्रसिद्ध हुए। कहते हैं कि ब्राह्मणों ने लड़ कर इन दोनों को निकाल दिया। इसी इतिहास से भुइंहार जाति का भी सूत्रपात होता है और जरासन्ध के यज्ञ से भुइंहार की उत्पत्तिवाली किंवदंती इसका पोषण करती

---

1. सुदर्शन सहस्रबाहु अर्जुन का भी नामान्तर था, किसी किसी ने भ्रम से पाटली को शूद्रक की कन्या लिखा है।

है। बहुत दिन तक ये युद्धप्रिय ब्राह्मण यहां राज्य करते रहे। किन्तु एक जैन पंडित 'जो 800 वर्ष ईसामसीह के पूर्व्व हुआ है' लिखता है कि इस देश के प्राचीन राजा को मग नामक राजा ने जीत कर निकाल दिया। कहते हैं कि बिहार के पास बारागंज में इस के किले का चिह्न भी है। यूनानी विद्वानों और वायु पुराण के मत से उदयाश्व ने मगधराज संस्थापन किया। इस का समय 550 ई. पू. बतलाते हैं और चन्द्रगुप्त को इस से तेरहवां राजा मानते हैं। यूनानी लोगों ने सोन का नाम Eranobaos (इरन्नोबाओस) लिखा है, यह शब्द हिरण्यवाह का अपभ्रंश है। हिरण्यवाह, स्वर्णनद और शोण का अपभ्रंश सोन है। मेगास्थनीज अपने लेख में पटने के नगर को 80 स्टेडिया (आठ मील) लम्बा और 15 चौड़ा लिखता है, जिस से स्पष्ट होता है कि पटना पूर्व्वकाल ही से लम्बा नगर है[1]। उस ने उस समय नगर के चारों ओर 30 फुट गहरी खाई, फिर ऊंची दीवार और उस में 570 बुर्ज और 64 फाटक लिखे हैं। यूनानी लोग जो इस देश को (Prassi) प्रास्सि कहते हैं वह पलाशी का अपभ्रंश बोध होता है, क्यौंकि जैनग्रन्थों में उस भूमि के पलाश वृक्ष से आच्छादित होने का वर्णन दिया गया है।

जैन और बौद्धों से इस देश से और भी अनेक सम्बन्ध हैं। मसीह के छः सौ बरस पहले बुद्ध पहले पहल राजगृह ही में उदास होकर चलें गए थे। उस समय इस देश की बड़ी समृद्धि लिखी है और राजा का नाम बिम्बिसार लिक्खा है। (जैन लोग अपने बीसवें तीर्थंकर सुव्रत स्वामी का राजगृह में कल्याणक भी मानते हैं) बिम्बिसार ने राजधानी के पास ही इन के रहने को कलद नामक बिहार भी बना दिया था। फिर अजातशत्रु और अशोक के समय में भी बहुत से स्तूप बने। बौद्धों के बड़े बड़े धर्मसमाज इस देश में हुए हैं। उस काल में हिन्दू लोग इस बौद्ध धर्म्म के अत्यन्त विद्वेषी थे। क्या आश्चर्य है कि बुद्धों के द्वेष ही से मगध देश को इन लोगों ने अपवित्र ठहराया हो और गौतम की निन्दा ही के हेतु अहल्या की कथा बनाई हो।

भारत नक्षत्र नक्षत्री राजा शिवप्रसाद साहब ने अपने इतिहास तिमिरनाशक के तीसरे भाग में इस समय और देश के विषय में जो लिखा है वह हम पीछे प्रकाशित करते हैं। इस से बहुत सी बातैं उस समय की स्पष्ट हो जायंगी।

---

[1] जिस पटने का वर्णन उस काल के यूनानियों ने उस समय इस धूम से किया है उस की वर्त्तमान स्थिति यह है। पटने का जिला 24.58 से 52.42 लैटि और 84.44 से 86.05 लौंगि, पृथ्वी 2101 मील समचतुष्कोण 1559638 मनुष्य-संख्या। पटने की सीमा उत्तर गंगा, गंगा पश्चिम, पश्चिम सोन, पूर्व्व मुंगेर का जिला और दक्षिण गया का जिला। नगर की बस्ती अब सवा तीन लाख मनुष्य और बावन हजार घर हैं। साढ़े आठ लाख मन के लगभग बाहर से प्रतिवर्ष यहां माल आता है पांच लाख मन लगभग जाता है। हिन्दुओं में छः जातियां यहां विशेष हैं। यथा एक लाख अस्सी हजार ग्वाला, एक लाख सत्तर हजार कुनबी, एक लाख सत्रह हजार भुइंहार, पचासी हजार चमार, अस्सी हजार कोइरी, आठ हजार राजपूत। अब दो लाख के आस पास मुसलमान पटने के जिले में बसते हैं।

प्रसिद्ध यात्री हिआन सांग सन 637 ई. में जब भारतवर्ष में आया था तब मगध देश हर्षवर्द्धन नामक कन्नौज के राजा के अधिकार में था। किन्तु दूसरे इतिहास लेखक सन 200 से 400 तक बौद्ध कर्णवंशी राजाओं को मगध का राजा बतलाते हैं और अन्ध्रवंश का भी राज्य चिह्न सम्हलपुर में दिखलाते हैं।

सन 1292 ई. में पहले इस देश में मुसलमानों का राज्य हुआ। उस समय पटना बनारस के बन्दावत राजपूत राजा इन्द्रदमन के अधिकार में था। सन 1225 में अलतिमश ने गयासुद्दीन को मगध प्रान्त का स्वतन्त्र सूबेदार नियत किया। इस के थोड़े ही काल पीछे फिर हिन्दू लोग स्वतन्त्र हो गए। फिर मुसलमानों ने लड़ कर अधिकार किया सही, किन्तु झगड़ा नित्य होता रहा, यहां तक कि सन 1393 में हिन्दू लोग स्वतन्त्र रूप में फिर यहां के राजा हो गए और तीसरे महमूद की बड़ी भारी हार हुई। यह दो सौ बरस का समय भारतवर्ष का पैलेस्टाइन का समय था। इस समय में गया के उद्धार के हेतु कई महाराणा उदयपुर के देश को छोड़कर लड़ने आए[1] और पंजाब से लेकर गुजरात दक्षिण तक के हिन्दू मगध देश में जाकर प्राण त्याग करना बड़ा पुण्य समझते थे। प्रजापाल नामक एक राजा ने सन 1400 के लगभग बीस बरस मगध देश को स्वतन्त्र रक्खा। किन्तु आर्य्यमत्सरी दैव ने यह स्वतन्त्रता स्थिर नहीं रक्खी और पुण्यधाम गया। फिर मुसलमानों के अधिकार में चला गया। सन 1478 तक यह प्रदेश जौनपुर के बादशाह के अधिकार में रहा। फिर बहलूलवंश ने इस को जीत लिया था, किन्तु 1491 में हुसेनशाह ने फिर जीत लिया। इस के पीछे बंगाल के पठानों से और जौनपुर वालों से कई लड़ाई हुई और सन 1494 में दोनों राज्य में एक सुलहनामा हो गया। इस के पीछे सूर लोगों का अधिकार हुआ

---

[1] गया के भूगोल में पंडित शिवनारायण त्रिवेदी भी लिखते हैं, "औरंगाबाद से तीन कोस अग्निकोण पर देव बड़ी भारी बस्ती है। यहां श्रीभगवान् सूर्य्यनारायण का बड़ा भारी संगीन पश्चिम रुख का मन्दिर है। यह मन्दिर देखने से बड़ा प्राचीन जान पड़ता है। यहां कातिक और चैत की छठ को बड़ा मेला लगता है। दूर दूर के लोग यहां आते और अपने लड़कों के मुंडन छेदन आदि की मनौती उतारते हैं। मन्दिर से थोड़ी दूर दक्खिन बाजार के पूरब ओर सूर्य्यकुंड का तालाब है। इस तालाब से सटा हुआ और एक कच्चा तालाब है। उस में कमल बहुत फूलते हैं। देव राजधानी है। यहां के राजा महाराजा उदयपुर के घराने के मड़ियार राजपूत हैं। इस घराने के लोग सिपाहगरी के काम में बहुत प्रसिद्ध होते आए हैं। यहां के महाराज श्री जयप्रकाश सिंह के. सी. एस. आई. बड़े शूर सुशील और उदार मनुष्य थे। यहां से दो कोस दक्खिन कंचनपुर में राजा साहिब का बाग और मकान देखने लायक बना है। देव से तीन कोस पूरब उमगा एक छोटी सी बस्ती है, उस के पास पहाड़ के ऊपर देव के सूर्य्यमन्दिर के ढंग का एक महादेव का मन्दिर है। पहाड़ के नीचे एक टूटा गढ़ भी देख पड़ता है। जान पड़ता है कि पहले राजा देव के घराने के लोग यहां ही रहते थे। पीछे देव में बसे। देव और उमगा दोनों इन्हीं की राजधानी थी। इस से दोनों नाम साथ ही बोले जाते हैं (देवमूंगा)। तिल संक्रान्ति को उमगा में बड़ा मेला लगता है।" इस से स्पष्ट हुआ है कि उदयपुर से जो राणा लोग आए उन्हीं के खानदान में देव के राजपूत हैं और 'बिहारदर्पण' से भी यह वात पाई जाती है कि मड़ियार लोग मेवाड़ से आए हैं!

और शेरशाह ने बिहार छोड़कर पटने को राजधानी किया। सूरों के पीछे क्रमान्वय से (1575 ई.) यह देश मुगलों के अधीन हुआ और अन्त में जरासन्ध और चन्द्रगुप्त की राजधानी पवित्र पाटलिपुत्र ने आर्य्य वेश और आर्य्य नाम परित्यग करके औरंगजेब के पोते अजीमशाह के नाम पर अपना नाम अजीमाबाद प्रसिद्ध किया (1697 ई.) बंगाले के सूबेदारों में सबसे पहले सिराजुद्दौला ने अपने को स्वतन्त्र समझा था किन्तु 1757 की पलासी की लड़ाई में मीर जाफर अंगरेजों के बल से बिहार बंगाला और उड़ीसा सा अधिनायक हुआ। किन्तु अन्त में जगद्विजयी अंगरेजों ने सन 1763 में पूर्व्व में पटना पर अधिकार करके दूसरे बरस बकसर की प्रसिद्ध लड़ाई जीत कर स्वतन्त्र रूप से सिंह चिह्न की ध्वजा की छाया के नीचे इस देश के प्रान्त मात्र को हिन्दोस्तान के मानचित्र में लाल रंग से स्थापित कर दिया।

जस्टिन (Justin) कहता है—सन्द्रकुत्तस महापराक्रमी था। असंख्य सैन्य संग्रह कर के विरुद्ध लोगों का इसने सामना किया था।[1] डियोडोरस सिक्यूलस (Deodorus Siculus) कहता है--प्राच्य देश के राजा चन्द्रमा के पास 20000 अश्व, 20000 पदाति, 2000 रथ और 4000 हाथी थे।[2] यद्यपि यह Xandramas शब्द चन्द्रमा का अपभ्रंश है, किन्तु कई भ्रान्त यूनानियों ने नन्द को भी इसी नाम से लिखा है। क्विन्तस करशिअस (Quintus Curtius) लिखता है[3]—चन्द्रमा के क्षौरकार पिता ने पहले मगधराज को फिर उस के पुत्रों को नाश कर के रानी के गर्भ में अपने उत्पन्न किए हुए पुत्र को गद्दी पर बैठाया। स्ट्राबो (Strabo) कहता है[4]—सिल्युकस ने मेगास्थनीज को सन्द्रकुत्तस के निकट भेजा और अपना भारतवर्षीय समस्त राज्य देकर उस से सन्धि कर लिया। ओरियन (Orriun) लिखता है[5]—मेगास्थनीज अनेक बार सन्द्रकुत्तस की सभा में गया था।[6] प्लूटार्क (Plutarch) ने चन्द्रगुप्त को दो लक्ष सेना का नायक लिखा है। इन सब लेखों को पौराणिक वर्णनों से मिलाने से यद्यपि सिद्ध होता है कि सिकन्दरकृत पुरु पराजय के पीछे मगधराज मन्त्री द्वारा निहित हुए और उन के लड़के भी उसी गति को पहुंचे और उस के पीछे चन्द्रगुप्त राजा हुआ, किन्तु बहुत से यूनानी लेखकों ने चन्द्रगुप्त को पट्टरानी के गर्भ में क्षौरकार से उत्पन्न लिख कर व्यर्थ अपने को भ्रम में डाला है। चन्द्रगुप्त क्षत्रियवीर्य्य से दासी में उत्पन्न था यह सर्व्वसाधारण का सिद्धांत है।[7] इस क्रम से 327 ई. पू. में नन्द का मरण और 314 ई. पू. में

---

1. Justin His, Phellipp Lip XV Chap. IV.
2. Deodorus Siculus XVII. 93.
3. Quitus Curtius IX. 2.
4. Strabo XV. 2.9.
5. Orriun Indica X.5.
6. Plutarch Vita Alexanbri O. 62.
7. टाड आदि कई लोगों का अनुमान है कि मोरी वंश के चौहान जो बापाराव के पूर्व्व चित्तौर के राजा थे वे भी मौर्य्य थे। क्या चन्द्रगुप्त चौहान था? या ये मोरा सब शूद्र थे?

चन्द्रगुप्त का अभिषेक निश्चय होता है। पारस देश की कुमारी के गर्भ से सिल्युकस को जो एक अति सुन्दर कन्या हुई थी वहीं चन्द्रगुप्त को दी गई। 302 ई. पू. में यह सन्धि और विवाह हुआ। इसी कारण अनेक यवनसेना चन्द्रगुप्त के पास रहती थी। 292 ई. पू. में चन्द्रगुप्त 24 बरस राज्य कर के मरा।

चन्द्रगुप्त के इस मगधराज्य को आइने अकबरी में मकता लिखा है। डिग्विग्नेस (Deguignes) कहता है कि चीनी मगध देश को मकियात कहते हैं। केंफर (Kemfer) लिखता है कि जापानी लोग उस को मगत् कफ कहते हैं। (कफ शब्द जापानी में देशवाची है)। प्राचीन फारसी लेखकों ने इस देश का नाम मावाद वा मुवाद लिखा है। मगध राज्य में अनुगांग प्रदेश मिलने ही से तिब्बत वाले इस देश को अनुखेक वा अनोनखेक कहते हैं और तातारवाले इस देश को एनाकाक लिखते हैं।

सिसली डिउडोरस ने लिखा है कि मगध राजधानी पालीपुत्र भारतवर्षीय हर्क्यूलस (हरिकुल) देवता द्वारा स्थापित हुई। सिसरो ने हर्क्यूलस (हरिकुल) देवता का नामान्तर बेलस (बलः) लिखा है। बल शब्द बलदेवजी का बोध करता है और इन्ही का नामान्तर बली भी है। कहते हैं कि निज पुत्र अंगद निमित्त बलदेवजी ने यह पुरी निर्माण की, इसी से बलीपुत्र पुरी इस का नाम हुआ। इसी से पालीपुत्र और फिर पाटलीपुत्र हो गया। पाली भाषा, पाली धर्म्म, पाली देश इत्यादि शब्द भी इसी से निकले हैं। कहते हैं कि बाणासुर के बसाये हुए जहां तीन पुर थे उन्हीं को जीतकर बलदेव जी ने अपने पुत्रों के हेतु पुर निर्माण किए। यह तीनों नगर महाबलीपुर इस नाम से एक मद्रास में, एक विदर्भदिश में (मुजफ्फरपुर वर्त्तमान नाम) और एक (राजमहल वर्त्तमान नाम) बंगदेश में है। कोई कोई बालेश्वर, मैसूर, पुरनियां प्रभृति को भी बाणासुर की राजधानी बतलाते हैं। यहां एक बात बड़ी विचित्र प्रकट होती है। बाणासुर भी बलीपुत्र है। क्या आश्चर्य है कि पहले उसी के नाम से बलीपुत्र शब्द निकला हो। कोई नन्द ही का नामांतर महाबली कहते हैं और कहते हैं कि पूर्व्व में गंगाजी के किनारे नन्द ने केवल एक महल बनाया था। उस के चारों ओर लोग धीरे धीरे बसने लगे और फिर वह पत्तन (पटना) हो गया। कोई महाबली के पितामह उदसी, उदासी, उदय, श्री उदयसिंह (?) ने 450 ई. पू. इस को बसाया मानते हैं। कोई पाटली देवी के कारण पाटलीपुत्र मानते हैं।

विष्णुपुराण और भागवत में महापद्म के बड़े लड़के का नाम सुमाल्य लिखा है। वृहत्कथा में लिखते हैं कि शकटार ने इन्द्रदत्त का शरीर जला दिया इस से योगानन्द (अर्थात् नन्द के शरीर में इंद्रदत्त की आत्मा) फिर राजा हुआ। व्याडि जाने के समय शकटार को नाश करने का मन्त्र दे गया था। वररुचि मन्त्री हुआ किन्तु योगानन्द ने मदमत्त हो कर उस को नाश करना चाहा। उस से वह शकटार के घर में छिपा। उस की स्त्री उपकोशा पति को मृत समझकर सती हो गई। योगानन्द के पुत्र हिरण्यगुप्त के पागल होने पर वररुचि फिर राजा के पास गया था, किन्तु फिर तपोवन में चला गया। फिर शकटार के कौशल से चाणक्य नन्द के नाश का कारण हुआ। उसी समय

शकटार ने हिरण्यगुप्त जो कि योगानन्द का पुत्र था, उस को मार कर चन्द्रगुप्त को जो कि असली नन्द का पुत्र था, गद्दी पर बैठाया।

ढुंढिराज पंडित लिखते हैं कि सर्वार्थसिद्धि नन्दों में मुख्य था। इस को दो स्त्रियां थी। सुनन्दा बड़ी थी और दूसरी शूद्रा थी, उस का नाम मुरा था। एक दिन राजा दोनों रानियों के साथ एक ऋषि के यहां गया और ऋषि कृत मार्जन के समय सुनन्दा पर नौ और मुरा पर एक छींट पानी की पड़ी। मुरा ने ऐसी भक्ति से उस जल को ग्रहण किया कि ऋषि ने प्रसन्न होकर वरदान दिया। सुनन्दा को एक मांसपिंड और मुरा को मौर्य्य उत्पन्न हुआ। राक्षस ने मांसपिंड काटकर नौ टुकड़े किया, जिस से नौ लड़के हुए। मौर्य्य को सौ लड़के थे, जिस में चन्द्रगुप्त सबसे बड़ा बुद्धिमान था। सवार्थसिद्धि ने नन्दों को राज्य दिया और आप तपस्या करने लगा। नन्दों न ईर्षा से मौर्य्य और उस के लड़कों को मार डाला, किन्तु चन्द्रगुप्त चाणक्य ब्राह्मण के पुत्र विष्णुगुप्त की सहायता से नन्दों को नाश कर के राजा हुआ।

यों ही भिन्न भिन्न कवियों और विद्वानों ने भिन्न-भिन्न कथायें लिखी हैं। किन्तु सबके मूल का सिद्धान्त पास पास एक ही आता है।

इतिहास 'तिमिरनाशक' में इस विषय में जो कुछ लिखा है वह नीचे प्रकाश किया जाता है।

बिम्बिसार को उस के लड़के अजातशत्रु ने मार डाला। मालूम होता है कि यह फसाद ब्राह्मणों ने उठाया। अजातशत्रु बौद्ध मत का शत्रु था। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध श्रावस्ती में रहने लगा। यहां भी प्रसेनजित को उसके बेटे ने गद्दी से उठा दिया। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध कपिलवस्तु में गया।

अजातशत्रु की दुश्मनी बौद्ध मत से धीरे धीरे बहुत कम हो गई। शाक्यमुनि गौतम बुद्ध फिर मगध में गया। पटना उस समय एक गांव था, वहां हरकारों की चौकी में ठहरा। वहां से विशाली[1] में गया। विशाली की रानी एक वेश्या थी। वहां से पावा गया, वहां से कुशीनार गया। बौद्धों के लिखने बमूजिब उसी जगह सन् ईसवी 543 बरस पहले 80 बरस ही उमर में साल के वृक्ष के नीचे बाईं करवट लेते हुए इस का निर्वाण हुआ।[2] कश्यप उस का जानशीन हुआ। अजातशत्रु के पीछे तीन राजा अपने बाप को मारक मगध की गद्दी पर बैठे, यहां कि प्रजा ने घबराकर विशाली

---

[1] जैनी महावीर के समय विशाली अथवा विशाला का राजा चेटक बतलाते हैं। यह जगह पटने के उत्तर तिरहुत में है; उजड़ गई है। वहां वाले अब उसे बसहर पुकारते हैं।

[2] जैनी यहां महावीर का निर्वाण बतलाते हैं, पर जिस जगह को अब पावापुर मानते हैं; असल में वह नहीं है। पावा विशाली से पश्चिम और गंगा से उत्तर होनी चाहिए।

जैन अपने चौबीसवें अर्थात् सबसे पिछले तीर्थंकर महावीर का निर्वाण विक्रम के संवत् से 470 अर्थात् सन् ईसवी से 527 बरस पहले बतलाते हैं और महावीर के निर्वाण से 250 बरस पहले अपने तेईसवें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का निर्वाण मानते हैं।

कैसे आश्चर्य की बात हैं, चेटक रंडी के भड़वे को भी कहते हैं। (हरिश्चन्द्र)

की वेश्या के बेटे शिशुनाग मन्त्री को गद्दी पर बैठा दिया। वह बड़ा बुद्धिमान था। इस के बेटे काल अशोक ने, जिस का नाम ब्राह्मणों ने काकवर्ण भी लिखा है, पटना अपनी राजधानी बनाया।

जब सिकन्दर का सैनापति बाबिल का बादशाह सिल्युकस सूबेदारों के तदारूक को आया, पटने से सिन्धु किनारे तक नन्द के बेटे चन्द्रगुप्त के अमल दखल में पाया, बड़ा बहादुर था, शेर ने इस का पसीना चाटा था और जंगली हाथी ने इस के सामने सिर झुका दिया था।

पुराणों में बिम्बिसार को शिशुनाग के बेटे काकवर्ण का परपोता बतलाया है और नन्दिबर्द्धन को बिम्बिसार के बेटे अजातशत्रु का परपोता; और कहा है कि नन्दिबर्द्धन का बेटा महानन्द और महानन्द का बेटा शूद्री से महापद्मनन्द और इसी महापद्मनन्द और इस के आठ लड़कों के बाद जिन्हें नवनन्द कहते हैं, चन्द्रगुप्त मौर्य्य गद्दी पर बैठा। बौद्ध कहते हैं कि तक्षशिला के रहनेवाले चाणक्य ब्राह्मण ने धननन्द को मार के चन्द्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाया और वह मोरिया नगर के राजा का लड़का था और उसी जाति का था जिस में शाक्यमुनि गौतम बुद्ध पैदा हुआ।

मेगास्थनीज लिखता है कि पहाड़ों में शिव और मैदान में विष्णु पुजाते हैं, पुजारी बदन रंग कर और सिर में फूलों की माला लपेटकर घंटा और झांझ बजाते हैं। एक वर्ण का आदमी दूसरे वर्ण की स्त्री ब्याह नहीं सकता है और पेशा भी दूसरे का इख्तियार नहीं कर सकता। हिन्दू घुटने तक जामा पहनते हैं और सिर और कन्धों पर कपड़ा रखते हैं। जूते उन के रंग बरंग के चमकदार और कारचोबी के होते हैं। बदन पर अकसर गहने, भौं मेंहदी से रंगते हैं और दाढ़ी मूंछ पर खिजाब करते हैं। छतरी, सिवाय बड़े आदमियों के और कोई नहीं लगा सकता। रथों में लड़ाई के समय घोड़े और मंजिल काटने के लिये बैल जोते जाते हैं। हाथियों पर भारी जर्दोजी झूल डालते हैं। सड़कों की मरम्मत होती है। पुलिस का अच्छा इन्तिजाम है। चन्द्रगुप्त के लश्कर में औसत चोरी तीस रुपये रोज से जियादा नहीं सुना जाती है। राजा जमीन की पैदावार से चौथाई लेता है।

चन्द्रगुप्त सन् ई. के 91 बरस पहले मरा। उस के बेटे बिन्दुसार के पास यूनानी एलची दयोमेकस (Diamachos) आया था परन्तु वायुपुराण में उस का नाम भद्रसार और भागवत में बारिसार और मत्स्यपुराण में शायद बृहद्रथ लिखा है। केवल विष्णुपुराण बौद्ध ग्रन्थों के साथ बिन्दुसार बतलाता है। उस के 16 रानी थीं और उनसे 101 लड़के, उन में अशोक जो पीछे से 'धर्म्मअशोक' कहलाया, बहुत तेज था, उज्जैन का नाजिम था। वहां के एक सेठ[1] की लड़की देवी उस से ब्याही थी, उसी से महेन्द्र लड़का और संघमित्रा (जिसे सुमित्रा भी कहते हैं) लड़की हुई थी।

---

[1] सेठ श्रेष्ठी का अपभ्रंश है, अर्थात् जो सबसे बड़ा हो।

दुर्ल्लभ बन्धु

(नाटक)

सन 1880 ई.

दुर्ल्लभा गुणिनो शूराः दातारश्चातिदुर्ल्लभाः ।
मित्रार्थे त्यक्तसर्व्वस्वो बन्धुस्सर्व्वैस्सुदुर्ल्लभः॥

दुर्ल्लभ बन्धु

प्रथम अंक

पहिला दृश्य

स्थान–वंशपुर की सड़क

[अनन्त, सरल और सलोने आते हैं]

अनन्त : सचमुच न जाने मेरा जी इतना क्यों उदास रहता है, इस से मैं तो व्याकुल हो ही गया हूं पर तुम कहते हो कि तुम लोग भी घबड़ा गए। हा, न जाने यह उदासी कैसी है, कहां से आई और क्यों मेरे चित्त पर इस ने ऐसा अधिकार कर लिया है? मेरी बुद्धि ऐसी अकुला रही है कि मैं अपने आपे से बाहर हुआ जाता हूं।

सरल : आप का जी क्या यहां हैं, आप का चित तो वहां है जहां समुद्र में आप के सौदागरी के भारी भारी जहाज बड़ी बड़ी पाल उडाए हुए धनमत लोगों की भांति डगमगी चाल से चल रहे होंगे और वरुण देवता के विमान की भांति झूमते और आसपास की छोटी छोटी नौकाओं की ओर दयादृष्टि से देखते आते होंगे और वे बेचारियां भी अपने छोटे छोटे परों से उड़ती हुई और सिर झुका झुकाकर बारम्बार उन को प्रणाम करती किसी तरह से लगी बझी उन का अनुगमन करती चली आती होंगी।

सलोने : महाराज! हम सच कहते हैं! जो हमारी इतनी जोखिम जहाज पर बाहर होती तो हमारा जी आठ पहर उसी में लगा रहता, प्रति क्षण तिनका उठा कर हम हवा का रुख देखा करते, रात दिन नकशा लिये सड़क, बंदर और खाड़ियों को ताका करते और थोड़े से खटके में भी अपनी हानि के डर से घबड़ा जाते।

सरल : और मेरा कलेजा तो गरम दूध के फूंकने में भी तूफान की याद करके दहल जाता और सोचता कि हाय यदि कहीं समुद्र में आंधी चली तो जहाजों की क्या गति होगी। बालू की घड़ी देखने से मुझे यह ध्यान बंधता कि मेरा माल से लदा जहाज बालू की चर पर

चढ़ गया है और उस के उलट जाने से उस का ऊंचा मस्तूल झुका हुआ ऐसा दिखाई देता है मानों वह अपने प्यारे जलयान की समाधि को गले लगाकर रो रहा है। देवालय के शिखर का ऊंचा पत्थर देखते ही मुझे पहाड़ों की चट्टानें याद आतीं और सोचता कि इन्हीं चट्टानों से ठोकर खाकर मेरा भरा पूरा जहाज टूट गया है, किराना पानी पर फैल गया है और रंग रंग के रेशमी कपड़े समुद्र की लहरों पर लहरा रहे हैं, यहां तक कि जो जहाज अभी लाखों रुपये का था छन भर में एक पैसे का भी न रहा। बतलाइए कि जब एक बार इस तरह का शोच जी में आवै तो सम्भव है कि मनुष्य हानि के डर से उदास न हो जाय?

सलोने : मैं जानता हूं कि आप को अपनी जोखों ही का सोच है।

अनन्त : इस का नहीं। मैं धन्यवाद करता हूं कि मेरा माल कुछ एक ही जहाज पर नहीं लदा है, और न सब के सब एक ही ओर भेजे गए हैं, और न एक साल के घाटे नफे से मेरे व्यापार की इतिश्री है, इस से सौदागरी की जोखों के सबब से मैं इतना उदास नहीं हूं।

सरल : तो कहीं किसी से आंख तो नहीं लगी है?

अनत : छि छि!

सरल : वह भी नहीं यह भी नहीं तब तो आप का जी झूठ मूठ उदास हैं, अभी हंसो, बोलो, खेलो कूदो, अभी प्रसन्न हो जांय। संसार में दो प्रकार के लोग होते हैं। कुछ तो ऐसे हैं जो बेसमझे बूझे तुच्छ तुच्छ बात पर बड़े बड़े दांत निकाल कर खिलखिला उठते हैं और बाजे ऐसे (**मुहर्रमी पैदाइश के**) होते हैं कि ऐसा उत्तम परिहास जिस पर धर्म्मराज सा गम्भीर मनुष्य हंस पड़े उस पर भी उनका फूला हुआ थूथन नहीं पिचकता।

[बसन्त, लवंग और गिरीश आते हैं]

सलोने : लो गिरीश और लवंग के साथ आप के प्रियबन्धु बसन्त आते हैं। अब हमारा प्रणाम लो। हम लोग आप को अपने से अच्छी मंडली में छोड़ कर जाते हैं।

सरल : भाई यदि ये उत्तम मित्रगण न आ जाते तो आप को अच्छी तरह प्रसन्न किए बिना कभी न जाता।

अनन्त : मेरे हिसाब तो तुम भी बहुत उत्तम मित्र हो। परन्तु तुम्हें किसी आवश्यक काम से जाना है इसी हेतु अवसर पाकर यह बात बनाई है।

सरल : प्रणाम महाशयो।

बसन्त : दोनों मित्रों को प्रणाम। कहो अब हम लोग फिर कब हंसे बोलेंगे।

तुम लोग तो अब निरे अपरिचित हो गए। सचमुच क्या चले ही जाओगे?

सरल : हम लोग अवसर के समय फिर मिलैंगे।

[सरल और सलोने जाते हैं]

लवंग : मेरे श्रीमन्त बसन्त लीजिए आप से और अनन्त गुणकन्त अनन्त से भेंट हो गई अब हम लोग भी जाते हैं, परन्तु खाने के समय जहां मिलने का निश्चय किया उसे न भूलियेगा।

बसन्त : नहीं, न भूलूंगा।

गिरीश : भाई अनन्त! आप उदास मालूम पड़ते हो। हुआ ही चाहैं। संसार के कामों में जो जितना विशेष फंसा रहेगा उतना ही विशेष वह उदास रहेगा। मैं सच कहता हूं कि आप की सूरत बिलकुल बदल गई है।

अनन्त : मैं संसार को उस के वास्तविक रूप से बढ़ कर कदापि नहीं समझता। गिरीश! संसार एक रंगशाला है, जहां सब मनुष्यों को एक न एक स्वांग अवश्य बनना पड़ता है, उन में उदासी का नाटक मेरे हिस्से है।

गिरीश : और मैं विदूषक की नकल करता हूं। मैं चाहता हूं कि मेरे बाल भी हंसते खेलते पकें। नित्य मद्य पीने से मेरे कलेजे में गर्मी पहुंचे न कि आहों के भरने से उस में शीत आवै। शरीर में रक्त की गर्मी रहते भी लोग क्योंकर मूरत की तरह चुपचाप बैठे रह सकते हैं, जागते हुए लोग भी किस तरह सो जाते हैं, या रोगी की तरह कराह कराह कर दिन बिताते हैं। आप मेरी बात से अप्रसन्न न हूजियेगा। मैं आप को जी से चाहता हूं तब इतनी धृष्टता की है। बहुतेरे मनुष्य ऐसे होते हैं कि बंधे पानी के तालाब की भांति उन के मुख का रंग सदा गंदला बना रहता है और यह समझकर कि लोग हम को बड़ा सोचने वाला, विचारवान, पंडित और गंभीर कहैंगे व्यर्थ को भी मुंह फुलाये रहते हैं उन का मुंह देखने से स्पष्ट प्रकट होता है कि वह लोग अपने को वेदव्यास से भी बढ़कर लगाते और अपनी बात को वेदवाक्य से भी बढ़कर समझते हैं। मेरे प्यारे अनन्त! मैं ऐसे बहुतेरे लोगों को जानता हूं जो केवल जीभ न हिलाने के कारण समझदार प्रसिद्ध हैं। मैं सच कहता हूं कि ऐसे लोगों से बोलना ही पाप है क्योंकि इन की बात के सुनते ही क्रोध आ जाता है और मनुष्य के मुंह से बुरा भला निकल ही आता है। मैं इस विषय में आप से फिर कभी बातचीत करूंगा। देखिए, ऐसा न हो कि उसी झूठी बड़ाई की इच्छा आप पर भी प्रबल हो। भाई लवंग चलो

अब इस समय बिदा। खाने के पीछे आकर मैं अपना व्याख्यान समाप्त करूंगा।

लवंग : तो खाने के समय तक के लिए जाता हूं। परन्तु मैं तो उन्हीं गूंगे बुद्धिमानों में से एक हूं, क्योंकि गिरीश अपनी बकवाद में मुझे तो कभी बोलने ही नहीं देता।

गिरीश : अभी दो बरस मेरी संगति में और रहो तो फिर तुम्हारी जिह्वा का शब्द तुम्हारे कान को भी न सुनाई पड़ैगा।

अनन्त : अच्छा जाओ, मैं भी तब तक बकवाद करना सीख रखता हूं।

गिरीश : आप बड़ी कृपा कीजियेगा क्योंकि चुप रहने का स्वभाव यों तो पशुओं के लिए योग्य होता है या ऐसी स्त्रियों के लिए जिसे व्याह करने वाला न मिलता हो।

[गिरीश और लवंग जाते हैं]

अनन्त : कहो भाई, इस की बात में कोई आनन्द था?

बसन्त : गिरीश बहुत ही व्यर्थ बकता है। सारे वंशनगर में उस से बढ़ कर कोई बक्की न निकलैगा। व्यर्थ की बकवाद की जाल में उस का वास्तविक आशय ऐसा छिपा रहता है जैसे गट्ठे भर भूसे में अनाज का एक दाना। जब दिन भर उस के लिए हैरान हो तब कहीं एक दाना हाथ लगे, वैसे ही जब बहुत सा समय इस की बात के पीछे नाश करो तब उस का आशय समझ में आवै और इतने कष्ट के पीछे समझने पर भी कुछ उस का फल नहीं।

अनन्त : हुआ, यह रामकहानी दूर करो। अब यह बतलाओ कि वह कौन सी स्त्री है जिस के लिए तुम गुप्त यात्रा करनेवाले हो। देखो, आज मुझ से सब वृत्तान्त कहने का वादा है।

बसन्त : भाई अनन्त! तुम अच्छी तरह जानते हो कि मैंने अपनी सब जायजाद किस तरह गंवा दी। समझकर व्यय न कर के सर्व्वदा बड़ी चाल चला और यही चाल मेरे नाश का कारण हुई। परन्तु मुझे अपनी अवस्था के घट जाने का कुछ भी शोच नहीं है। शोच है तो केवल इस बात का है कि मुझ पर जो बहुत सा ऋण हो गया है उसे किसी तरह चुका दूं। भाई अनन्त! तुम्हारा मैं सब प्रकार ऋणी हूं। रुपये का कहो, दया का कहो, इसलिए ऋण चुकाने का मैं जो-जो उपाय सोचता हूं वह तुम से सब स्वच्छ स्वच्छ वर्णन करके अपने चित्त के बोझ को हलका करूंगा।

अनन्त : प्यारे बसन्त! परमेश्वर के वास्ते मुझ से सब वृत्तांत स्पष्ट वर्णन करो। यदि वह उपाय धर्म्म का है जैसा कि तुम सदा बरतते आए

हो तो निश्चय रक्खो कि मेरा रुपया मेरा शरीर सब कुछ तुम्हारे लिए समर्पण है।

बसन्त : छोटेपन में जब मैं पाठशाला में पढ़ता था तब यदि मेरा कोई तीर खो जाता था तो उस के ढूंढ़ने को मैं वैसा ही दूसरा तीर उसी ओर छोड़ता था और ध्यान रखता था कि यह तीर कहां गिरता है। इसी भांति दुहरी जोखों उठाने से प्रायः दोनों मिल जाते थे। इस लड़कपन की बात के छेड़ने से मेरा आशय यह है कि अब मैं जो उपाय किया चाहता हूं वह भी इसी लड़कपन के खेल की भांति है। मैं तुम्हारा बड़ा ऋणी हूं। जो कुछ मैंने तुम से लिया वह सब एक हठी लड़के की भांति गंवा दिया परन्तु जहां तुम ने पहिले एक तीर छोड़ा है उसी ओर यदि एक तीर और फेंको तो मैं तुम्हें निश्चय दिलाता हूं कि अब की मैं उस के लक्ष्य की ओर अच्छी तरह दृष्टि रख कर जैसे होगा वैसे दोनों तीर खोज लाऊंगा। और यदि संयोग से पहिला न मिला तो दूसरा तो अवश्य ही फेर लाऊंगा और पहिले के लिए धन्यवाद के साथ तुम्हारा सदा ऋणी रहूंगा।

अनन्त : भाई, तुम तो मुझे अच्छी तरह जानते हो। फिर मेरा जी टटोलने के लिए फेरवट के साथ बात कर के व्यर्थ क्यौं समय नष्ट करते हो। मुझे इसका दुःख है कि तुम ने इस बात में सन्देह किया कि मैं तुम्हारे लिए प्राण तक दे सकता हूं। यदि तुम मेरी सर्वस्व हानि किए होते तब भी मुझे इतना दुःख न होता जो इस बात से हुआ। व्यर्थ बात बढ़ाने से क्या लाभ? केवल इतना कहो कि मुझे तुम्हारे हेतु क्या करना होगा, मैं उस के लिए प्रस्तुत हूं शीघ्र बतलाओ।

बसन्त : बिल्वमठ में एक क्वांरी स्त्री रहती है जो अपने मां बाप के मर जाने से एक बड़ी रियासत की स्वामिनी हुई है। उस का रूप ऐसा है कि केवल सौन्दर्य के शब्द से उस की स्तुति हो ही नहीं सकती। उस में अनगिनत गुण हैं। कुछ दिन हुए उस की चितवन ने मुझ को ऐसे प्रेम सन्देश दिए थे कि मुझ को उस की ओर से पूरी आशा है। उस का नाम पुरश्री है, वह सचमुच पुरश्री है, पुरश्री क्या सारे संसार की श्री है। रूप में श्री और गुण में सरस्वती है। संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं जहां उस की स्तुति की सुगन्ध न फैली हो। चारों ओर से बड़े बड़े राजकुमार और धनिक उसके ब्याह की आशा में आते हैं। भाई अनन्त! यदि मुझे इतना रुपया मिलता कि वहां जाकर इन लोगों के समक्ष मैं विवाह की प्रार्थना कर सकता तो मेरा जी कहता है कि मैं अपने मनोरथ में अवश्य विजयी होता।

अनन्त : भाई, तुम अच्छी तरह जानते हो कि मेरी सब लक्ष्मी समुद्र में है, इस समय न मेरे पास मुद्रा है न माल जिसे बेचकर रूपया मिल सके, इस से जाओ देखो तो मेरी साक वंशनगर में क्या कर सकती है। तुम्हें पुरश्री के पास बिल्वमठ जाने के लिए जो रुपया चाहिए उस के प्रबन्ध में मैं ऊंचा नीचा सब काम करने को प्रस्तुत हूं। देखो अभी जाकर खोज करो कि रुपया कहां मिल सकता है और मैं भी जाता हूं मेरे नाम या जमानत से जिस प्रकार रुपया मिले मुझे किसी बात में सोच विचार नहीं है।

[दोनों जाते हैं]

◆

दूसरा दृश्य

स्थान–विल्वमठ में पुरश्री के घर का एक कमरा

[पुरश्री और नरश्री आती हैं]

पुरश्री : नरश्री, मैं सच कहती हूं कि मेरा नन्हा सा जी इतने बड़े संसार से बहुत ही दुःखी आ गया है।

नरश्री : मेरी प्यारी सखी, यह बात तो आप तब कहतीं जब, भगवान न करे, जैसा आप को सुख है उस के बदले उतना ही दुःख होता। परन्तु न जाने क्यौं प्रायः ऐसा देखा है कि जो बहुत धनवान हैं वह भी संसार से वैसे ही घबड़ाए रहते हैं जैसे वह जो लोग भूखों मरते हैं। इसी से निश्चय होता है कि मध्यावस्था कुछ साधारण भाग्य की बात नहीं। लक्ष्मी बहुत शीघ्र श्वेत बाल करती है पर तृप्ति बहुत दिन तक जिलाती है।

पुरश्री : क्यौं न हो तुम ने कैसे मनोहर वाक्य कहे और कैसी अच्छी तरह।

नरश्री : यदि उन का बरताव किया जाय तो और उत्तम हो।

पुरश्री : यदि अच्छी बात का करना उतना ही सहज होता जितना कि उस का जानना तो सब मढ़ियां मन्दिर और सब झोपड़ियां महल हो जातीं। अच्छा गुरु वही है जो अपनी शिक्षा पर आप ही चलता है। बीस अच्छी बातैं दूसरों को सिखलाना सहज है किन्तु उन में से अपनी शिक्षा के अनुसार एक पर भी चलना कठिन है। बुद्धि स्वभाव के ठंडा करने के लिए बहुत से उपाय बतलाती है किन्तु समय पर क्रोध की गर्मी को कब रोक सकती है। यौवन का हिरन शिक्षा के फन्दे में से बहुत सहज से छूट जाता है किन्तु इस बात से और मेरे पतिवरण करने से कोई सम्बन्ध नहीं। हाय! भला मेरे वरण करने का फल ही क्या? मैं तो न जिसे चाहूं उसे स्वीकर कर सकती हूं और जिसे न चाहूं, उसे अस्वीकार कर सकती हूं। हाय! एक जीती लड़की की आशा एक मरे हुए बाप के मृत पत्र से कैसी रुक रही है। नरश्री क्या यह घोर दुःख की बात नहीं है कि न मैं किसी

को स्वीकार कर सकती हूं और न अस्वीकार?

नरश्री : आप के बाप बड़े अच्छे और धर्मिष्ठ मनुष्य थे और ऐसे महात्माओं को मरने के समय अनुभव हुआ करते हैं। इस से सोने चांदी और जस्ते के तीन सन्दूकों के निश्चय करने में जो बात उन्होंने सोची थी (जिस के अनुसार वह मनुष्य जो उन का बतलाया हुआ सन्दूक ग्रहण करैगा उसी का विवाह आप से होगा) वह कभी बुराई न करैगी। मुझे निश्चय है कि चिह्नित सन्दूक को वही मनुष्य चुनेगा जिसे आप जी से प्यार करती होंगी। परन्तु यह तो कहिए कि इतने राजकुमार और धनिक जो विवाह की आशा में आए हैं उन में से किसी की ओर आप को कुछ भी स्नेह है या नहीं?

पुरश्री : तुम उन के नामों को मेरे सामने कहती जाओ तो मैं प्रत्येक के विषय में अपना विचार दर्शन करती जाऊंगी। इसी से तुम मेरे प्रेम का वृत्तांत जान लोगी।

नरश्री : अच्छा तो नेपाल के राजकुमार से आरंभ कीजिए।

पुरश्री : छिः छिः! वह तो निरा बछेड़ा है, और कोई काम नहीं, बस रात दिन अपने घोड़ों ही का वर्णन। सारे अस्तबल की बला अपने सिर लिए रहता है और बड़ा भारी अभिमान इस बात पर करता है कि मैं अपने घोड़े की नाल आप ही बांध लेता हूं। वह तो बिलकुल खोगीर की भरती है। निखट्टू नेपाली टट्टू।

नरश्री : और पाटन वाला?

पुरश्री : मरकहा बैल। रात दिन फूं फूं किया करता है मानो उस की चितवन कहे देती है कि या तो ब्याह करो या साफ जवाब दो। सैकड़ों हंसी की बातें सुनाता है पर चाहे कि तनिक भी उस का थूथन पिचके। मुस्कुराना तो सपने में नहीं जानता। हंसी मानो जुए में हार आया है। अभी जब हट्टा कट्टा सांड़ बना है तब तो वह रोनी मूरत है तो बुढ़ापे में तो बात पूछते रो देगा। सिवाय हर हर भजने के और किसी काम का न रहैगा। मेरा ब्याह चाहे एक मुर्दे से हो पर इन भद्दे जानवरों से नहीं। भगवान् इन दोनों से बचावैं।

नरश्री : और भला फनेश देश के नरेश को आप कैसा समझती हैं?

पुरश्री : बेलगाम का ऊंट। मनुष्य के सांचे में ढल गया है बस इसी से मनुष्य कहा जाता है, नहीं तो है निरा पशु। किसी की निन्दा करनी निस्सन्देह पाप है पर सच्ची बात यह है कि नेपाल के राजकुमार से जैसा एक चाशनी बढ़ कर यह घुड़चढ़ा है वैसा ही पाटन वाले से बढ़ कर नकचढ़ा। आप तो कुछ भी नहीं है पर छाया उस में सब किसी

की है। अभी गौरिया बोले तो आप उस की तान पर नाचने लगैं और अभी अपनी परछाईं देखे तो तलवार लेकर उस से लड़ने चलैं। एक उस से न ब्याह किया मानो बीस मनुष्य से एक साथ ब्याह किया। यदि वह मुझ से घृणा करैगा तो मैं उस से कदापि अप्रसन्न न हूंगी वरंच अपना सौभाग्य समझूंगी क्यौंकि यदि वह मेरे प्रेम में पागल भी हो जायगा तो मैं उसे प्यार न कर सकूंगी।

नरश्री : अच्छा, अंगदेश के नवयुवक धनी ब्रजपालक को आप क्या कहती हैं।

पुरश्री : तुम जानती हो कि मैं उस से कुछ नहीं कह सकती क्यौंकि न वह मेरी बात समझता है न मैं उस की। वह न हिन्दी जानता है न व्रजभाषा न मारवारी और तुम शपथपूर्व्वक कह सकोगी कि मैथिल में मुझे कितना न्यून अभ्यास है। उस की सूरत तो बहुत अच्छी है पर इस से क्या? खिलौने से कोई भी बातचीत कर सकता है? उस का पहिनावा कैसा बेजोड़ है। उसने अपना अंगा मारवाड़ में मोल लिया है, पाजामा मथुरा में बनवाया है, टोपी गुजरात से मंगनी लाया है और चालढाल थोड़ी थोड़ी सब जगह से भीख मांग लाया है।

नरश्री : और उस का परोसी मालवा का अधिपति?

पुरश्री : परोसी की सी क्षमा तो उसके स्वभाव में निस्सन्देह है क्यौंकि उस दिन जब उस अंगवाले ने उस की कनपटी पर एक घूसा मारा था तो उसने सौगन्द खाई थी कि अवसर मिलैगा तो अवश्य बदला लूंगा। इस पर फनेश देशवाले ने बीच में पड़कर झगड़ा यौं निबटा दिया कि रूसो मत, दाहिने के बदले बायां भी तुम को मिल जायगा।

नरश्री : और उस नवयुवक शर्म्मण्य देश के मंडलेश्वर के भतीजे को आप कैसा पसन्द करती हैं?

पुरश्री : राम राम! वह तो बड़ा भारी घनचक्कर है। सबेरे जब वह अपने आपे में रहता है तभी बहुत बुरा रहता है तो तीसरे पहर जब मद में चूर होता है तब तो और भी बुरा हो जाता है। अच्छी दशा में वह मनुष्य से कुछ न्यून रहता है और बुरी दशा में पशु से भी नीचे हो ही जायगा। भगवान न करैं यदि यह आपत्ति पड़े कि मुझ को उस से विवाह करना हो तो जैसे हो सके वैसे मैं उस से दूर रहूं।

नरश्री : भला यदि ऐसा हुआ कि उसने वही मंजूषा चुना जिस के चुनने से वह आप को पावै तब क्या कीजिएगा क्यौंकि फिर तो विवाह न करना अपने बाप की इच्छा के विरुद्ध चलना है।

पुरश्री : इसी से मैं तुम से कहती हूं कि जिस मंजूषा में भूत की मूर्ति है, उस के ऊपर एक उत्तम मद्य से भरा हुआ पात्र रख दो क्यौंकि

भीतर भूत ऊपर मद्य; बस वह उसी संदूक को चुनैगा। जैसे हो उस समुंदर सोख अगस्त से बचाने का कोई उपाय करना ही पड़ेगा।

नरश्री : सखी आप इस बात का भय मत कीजिये कि इन लोगों में से किसी से आप को विवाह करना पड़ेगा क्यौंकि मैं सब के जी का हाल ले चुकी हूं। यदि आप अपने बाप की आज्ञा के अनुसार मंजूषा के चुनने ही पर अपना निश्चय रक्खेंगी और कोई दूसरी प्रतिज्ञा न करैंगी तो यह सब के सब यहां से चले जायंगे और फिर विवाह की इच्छा प्रकट कर के आप को कष्ट न देंगे।

पुरश्री : तुम निश्चय जानो कि यदि मुझे मार्कंडेय की आयु मिले तो भी मैं अम्बालिका की तरह क्वांरी मर जाऊंगी पर अपने पूज्य पिता की इच्छा के विरुद्ध कभी ब्याह न करूंगी। मुझ को बड़ा आनन्द है कि इन सन्दूकों में ऐसी चातुरी है कि यह सब आपत्ति बिना मन्त्र-जन्त्र के आप से आप दूर हो जाती है क्यौंकि इन में से ऐसा कोई नहीं जिस का मैं घड़ी भर रहना भी सह सकती हूं।

नरश्री : क्यौं सखी, आप को स्मरण है कि नहीं आप के पिता के समय में फनित मठ के राजा के साथ वंशनगर का एक युवक बुद्धिमान और शूर मनुष्य आया था?

पुरश्री : हां वह बसन्त था—क्यौं यही न उस का नाम था?

नरश्री : हां सखी—जहां तक कि मुझ मूर्ख की समझ है—सुन्दर स्त्री के योग्य उस से उत्तम और कोई वर मुझे दृष्टि नहीं पड़ा।

पुरश्री : मुझ को भलीभांति स्मरण है और जो कुछ तुमने उस की प्रशंसा की बहुत ठीक है।

[एक नौकर आता है]

क्यौं क्यौं! कोई नई बात है?

नौकर : बबुई साहिब ऊ चारों आदमी आप से बिदा होए कै ठाढ़ होएं और एक पांचवां का हरकारा आयल हौ। सो क़हत हौ की मोरकुटी कै राजकुमार ओकर मालिक आज राती के इहां पहुंचीहैं।

पुरश्री : यदि यह पांचवां मनुष्य ऐसा होता है कि मैं उस के आने पर वैसी ही प्रसन्नता प्रकट कर सकती जैसी प्रसन्नता से इन चारों को विदा करती हूं तो क्या बात थी। परन्तु यदि इस का रूप भूत का सा है और चित्त देवता का सा तो मैं उस का शाप देना इस की अपेक्षा उत्तम समझूंगी कि वह मुझ से ब्याह करे। नरश्री चलो। नौकर तू आगे जा। एक गाहक जाने ही नहीं पाता कि दूसरा आ उपस्थित होता है।

[सब जाते हैं]

तीसरा दृश्य

[वसन्त और शैलाक्ष आते हैं]

शैलाक्ष : छः सहस्र मुद्रा...हूं।

वसन्त : हां साहिब–तीन महीने के वादे पर।

शैलाक्ष : तीन महीने का वादा...हूं।

बसन्त : और इस के लिए, जैसा कि मैं आप से कह चुका हूं, अनन्त जामिन होंगे।

शैलाक्ष : अनन्त जामिन होंगे...हूं।

बसन्त : तो आप मुझे देंगे? आप से मेरा काम निकलैगा? मैं आप के उत्तर की राह देखता हूं।

शैलाक्ष : छः सहस्र मुद्रा तीन महीने का वादा–और अनन्त की जमानत।

बसन्त : जी हां। आप क्या उत्तर देते हैं?

शैलाक्ष : अनन्त है तो अच्छा मनुष्य।

बसन्त : क्यौं क्या आप ने इस के विरुद्ध कुछ सुना है?

शैलाक्ष : नहीं नहीं, मेरा अभिप्राय उनके अच्छे होने से यह है कि उन की जमानत ही बहुत है–यद्यपि आजकल उन की दशा हीन है क्यौंकि उन का एक जहाज त्रिपुल को गया है दूसरा हिन्दुस्तान को, सुना है कि बाजार में भी कुछ व्यवहार है, एक तीसरा जहाज मौक्षिक में तथा चौथा अंग देश में है। इसी भांति इधर उधर और बंदरों में भी उन की जोखों है। परन्तु जहाज फिर भी काठ ही है और मल्लाह भी मनुष्य ही है; चूहे थल में भी होते हैं और जल में भी। वैसे ही चोर पृथ्वी पर भी होते हैं और पानी में भी अर्थात् डाकुओं का भय सभी स्थल है और फिर आंधी, तूफान और चट्टान का भय अलग लगा हुआ है पर फिर भी वह बहुत हैं–छः सहस्र मुद्रा–मैं समझता हूं कि उन की जमानत स्वीकार कर लूंगा।

बसन्त : संतोष रखिए, उन की जमानत निस्सन्देह ग्रहण करने योग्य है।

शैलाक्ष : मैं अपना मन भर लूंगा और किस तरह मेरा तोष होगा इस पर

विचार करूंगा—मैं अनन्त से इस की बातचीत कर सकता हूं?

बसन्त : यदि दोपहर को कृपा कर के हम लोगों के साथ खाना खाइए तो वहां सब बात निश्चय हो जाय।

शैलाक्ष : जी हां सूअर सूंघने को और उस घर में खाने को जहां आप के देवताओं ने सब पिशाची की बातें भर दी हैं। मैं आप लोगों से लेन देन करूंगा, बोलूंगा, आप के साथ चलूं फिरूंगा और ऐसे ही दूसरी बातें करूंगा, परन्तु यह नहीं हो सकता कि मैं आप लोगों के साथ खाना खाऊं, पानी पीऊं या पूजा करूं। बाजार की क्या खबर है?—यह कौन आता है?

[अनन्त आता है]

बसन्त : अनन्त आप आ पहुंचे।

शैलाक्ष : **(आप ही आप)** देखो इस की सूरत ही से यह बात झलकती है कि यह हिन्दुओं को प्रसन्न करने के लिए जैनियों से शत्रुता रखता है। मैं इस से घृणा करता हूं क्यौंकि यह ईसाई है परन्तु मुख्यतः इस कारण से कि ऐसा निरुत्साह और नीच है कि लोगों को रुपया बिना ब्याज के ऋण दे देकर हम लोगों के ब्याज का भाव बिगाड़ देता है। यदि एक बार भी मेरे हाथ चढ़े तो मैं सब पुरानी कसर निकाल लूं। यह मनुष्य हमारी पवित्र जाति को तुच्छ समझता है और मेरी और मेरे व्यवहारों की निन्दा वहां भी नहीं छोड़ता जहां बहुत से व्यापारी इकट्ठा होते हैं। मेरे धर्म्मोपार्जित द्रव्य का ब्याज नाम रखता है। धिक्कार है मेरी जाति को यदि मैं इस मनुष्य से बदला न लूं।

बसन्त : शैलाक्ष, आप ने सुना?

शैलाक्ष : मैं अभी अपने जी में हिसाब कर रहा था कि मेरे पास कितना रुपया तैयार है और जहां तक मैंने सोचा इस समय मेरे पास छ सहस्र रुपया न निकलैगा—पर इस से क्या? मैं त्र्यंबक से जो मेरी जाति का एक धनिक पुरुष है शेष मुद्रा ले लूंगा। परन्तु नेक ठहरिए कै महीने की मिलती आप चाहते हैं? **(अनन्त से)** प्रणाम महाशय, आप की बड़ी आयु है, अभी आप ही का हम लोग वर्णन कर रहे थे।

अनन्त : शैलाक्ष यद्यपि मैं ब्याज पर रुपये का कभी लेन देन नहीं करता तो भी अपने मित्र की अत्यन्त आवश्यकता को समझ कर अपने नियम के तोड़ने पर प्रस्तुत हूं। बसन्त, तुम इन से कह चुके हो कि कितने रुपये की आवश्यकता है?

शैलाक्ष : हां हां—छः सहस्र मुद्रा।

अनन्त : और तीन महीने के लिए।

शैलाक्ष : हां, मैं भूल गया था–तीन महीने की मिती पर–आप कह चुके हैं–तो किन प्रतिज्ञाओं पर, नेक ठहरिए–किंतु सुनिए तो सही अभी आप ने कहा था कि हम सूद पर लेन देन नहीं करते।

अनन्त : मैं इसका व्यापार कभी नहीं करता।

शैलाक्ष : जब कि यादव अपने मामा लवेंद्र की भेड़ों को चराते थे–तो उन को उन की मां की चातुरी से बरकत मिली थी।

अनन्त : तो उन के नाम लेने से यहां क्या तात्पर्य है? क्या वह सूद खाते थे?

शैलाक्ष : नहीं, ब्याज नहीं खाते थे, जिसे आप सूद कहते हैं ठीक वैसा व्याज नहीं लेते थे–सुनिये वह क्या उपाय करते थे। जब कि लवेन्द्र और उन में परस्पर यह बात निश्चय हुई कि जितने भेड़ों के बच्चे धारीदार और चितकबरे पैदा हों वह यादव को वेतन में मिलैं तो यादव ने चतुराई से बहुत सी हरी छड़ियां काटकर और स्थान स्थान से छिलका उड़ा कर उन्हें गन्डेदार बनाया और उठी हुई भेड़ों के सामने गाड़ दिया और जब यह गाभिन हुई तो इसके प्रयोग से चितकबरे बच्चे उत्पन्न हुए, जो यादव के भाग में आए। यह लाभ उठाने का एक उपाय था और यादव पर ईश्वर की कृपा थी क्योंकि लाभ भी होना ईश्वर की कृपा है, यदि मनुष्य उस को चोरी से न उपार्जन करै।

अनन्त : यह तो ईश्वर की दया थी जिस से यादव ने अपने परिश्रम का इस प्रकार से फल पाया। इस में उन का कुछ वश न था वरंच केवल ईश्वर की माया से यह बात प्रकट हुई। पर क्या आप का यह तात्पर्य है कि इतिहास में इस कथा के लिखने से यह अभिप्राय था कि ब्याज लेना उचित समझा जाय या आप अपने रुपये और अशरफी को भेड़ा भेड़ी समझते हैं।

शैलाक्ष : मैं यह नहीं कह सकता परन्तु मैं उन से बच्चे वैसे ही शीघ्र उत्पन्न कर लेता हूं। परन्तु नेक इस बात को सुनिए।

अनन्त : बसन्त इस पर विचार करो, राक्षस भी अपने स्वार्थ के लिए इतिहास और पुराण का प्रमाण दे सकता है। दुष्ट मनुष्य जो अपनी निष्कलंकता प्रकट करता है एक हंसमुख घात करनेवाला होता है। वह एक सेब की भांति है जिसका छिलका बहुत स्वच्छ और उत्तम है परन्तु भीतर बिलकुल सड़ा हुआ है, देखो झूठ की सूरत देखने में कैसी चिकनी चुपड़ी होती है।

शैलाक्ष : छः हजार रुपया–यह तो एक पूरी जमा है–और महीने भी तीन–तो

हमें भाव सोचने दीजिए।

अनन्त : स्पष्ट कहो, रुपया देना है या नहीं।

शैलाक्ष : अनन्त महाशय, आप ने बाजार में सहस्रों ही बार मेरे धन और लाभ के लिए मेरी दुर्दशा की होगी पर मैंने क्षमा करने के सिवाय कभी कुछ उत्तर नहीं दिया क्योंकि क्षमा हमारी जाति का चिह्न है। आप मुझे नास्तिक, गलकट्टा और कुत्ता कहकर मेरे जातीय परिधान पर थूकते थे और यह सब केवल इस अपराध के लिए कि मैं अपनी जमा को जिस भांति चाहता हूं काम में लाता हूं। अस्तु, तो अब जान पड़ता है कि आप मेरी सहायता के अपेक्षी हैं, आप मेरे पास आए हैं। और कहते हैं कि शैलाक्ष हमें रुपया ऋण दो–ऐं, आप ऐसा कहते हैं, आप जो मेरी डाढ़ी को अपना उगालदान समझते थे और मुझे ठीक इस तरह ठोकर मारते थे जैसे कोई अपनी देहली पर अनजान कुत्ते को मारता है। आप की प्रार्थना रुपये की है–इस का मैं आप को क्या उत्तर दूं? क्या मैं आप से यह पूछूं कि साहिब कहीं कुत्ते के पास भी रुपया सुना है? कभी सम्भव है कि अपवित्र कुत्ता भी छ सहस्र मुद्रा ऋण दे सके। या नम्रता से सिर झुकाकर भृत्य की भांति कांपता हुआ धीमे स्वर से निवेदन करूं 'महाराज ने कृपा पूर्वक मुझ पर गए बुध को थूका था और फलाने दिन ठोकर मारी थी और फलाने दिन कुत्ते की उपाधि दी थी, अतः इन कृपाओं के बदले मैं उतना रुपया देने को प्रस्तुत हूं।'

अनन्त : मैं तुझे फिर भी ऐसा कहूंगा और तुझ पर थूकूंगा और लात मारूंगा। यदि तुझे रुपया उधार देना है तो मुझे अपना मित्र समझकर मत दे (क्योंकि मित्रता रुपये से जो एक बांझ की भांति है, बच्चे कब उत्पन्न कर सकती है?) वरंच अपना शत्रु समझ कर जिससे भंगप्रतिज्ञ होने पर तुझे सर्व्व प्रकार से प्रतिज्ञानुसार दंड ग्रहण करने का मुंह पड़े।

शैलाक्ष : वाह! वाह!! देखिए तो आप कैसा आपे से बाहर हो गए। मैं आप से मित्रता का नाता रक्खा चाहता हूं और पिछले बैरों को भुलाकर आप के स्नेह की आशा रखता हूं, मैं आप को रुपया उधार देने को प्रस्तुत हूं और सूद एक पैसा नहीं चाहता तिस पर भी आप मेरी बात नहीं सुनते। क्या यह मेरा बर्ताव मित्रता का नहीं है?

बसन्त : यह आप की दया है?

शैलाक्ष : मैं इस कृपा को दिखलाऊंगा। **(अनन्त से)** मेरे साथ किसी व्यवस्थापक के यहां चलिए और उस के सामने तमस्सुक पर अपनी मुहर कर

दीजिए और हंसी की रीति पर यह शर्त लिख दीजिए कि यदि अमुक दिन और अमुक स्थान पर आप मेरा रुपया जिस का तमस्सुक में वर्णन है न चुका दें तो मुझे अधिकार होगा कि उसके बदले मैं आपके जिस शरीर के अंश से चाहूं आध सेर मांस काट लूं।

अनन्त : मैं चित्त से प्रसन्न हूं और इन शर्तों पर मुहर कर दूंगा और यह भी कहूंगा कि इस जैन में बड़ी मनुष्यता है।

बसन्त : तुम मेरे लिए ऐसे तमस्सुक पर हस्ताक्षर न करने पाओगे इस से तो मैं अपनी दरिद्रावस्था में रहना ही श्रेय समझूंगा।

अनन्त : क्यों? डरो मत—प्रतिज्ञा भंग होने की घड़ी कदापि न आवैगी—दो महीने के भीतर अर्थात् तमस्सुक की मिती पूजने के एक महीना पहिले मुझे आशा है कि इस का तिगुना धन मेरे पास पहुंच जायगा।

शैलाक्ष : हे ईश्वर, ये आर्य्य भी कैसे मनुष्य होते हैं! जैसा इन का चित्त कठोर होता है वैसा ही औरों का भी समझकर सन्देह करते हैं! भला यह तो बतलाइए कि यदि इन्होंने प्रतिज्ञा भंग की तो मुझे इस शर्त के पूरा कराने से क्या लाभ होगा? मनुष्य के शरीर का आध सेर मांस किस रोग की औषधि है और वह किस गिनती में है? क्या वह उतना भी काम में आ सकता है जैसा भेड़ी बकरी का मांस? सुनिये केवल इन से मैत्री करने के लिए मैं इन के साथ ऐसी कृपा करता हूं, यदि यह इसे समझे तो अच्छी बात है नहीं तो प्रणाम और मेरी प्रीति के बदले मेरे साथ बुराई न कीजिएगा।

अनन्त : हां शैलाक्ष, मैं इस तमस्सुक पर मुहर कर दूंगा।

शैलाक्ष : तो अभी व्यवस्थापक के घर पर जाइए और इस हंसी की दस्तावेज के लिखने को कहिए। मैं भी शीघ्र ही जाकर थैली में छ हजार रुपए लिए हुए वहीं पहुंचता हूं और अपना घर भी देखता आऊंगा जिसे एक बड़े बहुव्ययी और अविश्वासी भृत्य को सौंप आया हूं—मैं सब काम कर के बात की बात में आप से मिलता हूं।

[जाता है]

अनन्त : अच्छा झटपट जाओ। यह जैन ऐसा कृपालु होता जाता है कि आर्य्य बन जायगा।

बसन्त : मैं चिकनी चुपड़ी बातें और दुष्ट अन्तःकरण नहीं पसन्द करता।

अनन्त : आओ, इसमें कोई धोखा नहीं हो सकता क्योंकि मेरे जहाज मिति पूजने के एक महीना पहिले अवश्य ही पहुंच जायंगे।

(जाते हैं)

●

द्वितीय अंक

पहिला दृश्य

स्थान–विल्वमठ। पुरश्री के घर का एक कमरा

[तुरहियां बजती है। मोरकुटी का राजकुमार अपने सभासदों के सहित और पुरश्री, नरश्री और अपनी दूसरी सहेलियों के संग आती हैं]

मोरकुटी : मेरी रंगत देखकर मुझ से घृणा न करना क्योंकि यह तो सूर्य्य की दी हुई वर्दी है जिसके समीप मैं रहता हूं और जिसकी छाया में पला हूं। उत्तर के देश जहां सूर्य्य की गर्मी बर्फ के टुकड़ों को भी नहीं गला सकती वहां के किसी सुन्दर से सुन्दर युवा को मेरे सामने लाओ और हम दोनों तुम्हारे प्रेम के लिए अपने शरीर में नश्तर चुभावें तो विदित होगा कि किस का रुधिर अधिक रक्त है। सखी तुम विश्वास मानो कि मेरे इसी चेहरे ने बड़े से बड़े वीरों का पित्ता पानी कर दिया है, और मैं अपने प्रेम की सौगन्द खा कर कहता हूं कि इसी मुख को मेरे देश की परम सुन्दरी युवतियां भी चाहती हैं। मैं अपने इस रंग को किसी अवस्था में बदलना पसन्द न करूंगा पर हां तुम्हारी प्रसन्नता के लिए।

पुरश्री : मेरी रुचि के लिए केवल मेरी आंखें ही नहीं हैं और न मैं किसी भांति अपनी इच्छा के अनुसार पति वर सकती हूं, किन्तु ऐ प्रसिद्ध राजकुमार, यदि मेरे पिता ने मुझे परवश न कर दिया होता अर्थात् इस बात की उलझन न लगा दी होती कि जो कोई मुझे उस विधि से जीते (जिस का मैं आप से वर्णन कर चुकी हूं) उस की मैं स्त्री बनूं तो जिन लोगों को मैंने अब तक देखा है उन में से आप को किसी की अपेक्षा पूर्ण मनोरथ होने का अवसर कम न था।

मोरकुटी : मैं इतनी कृपा के लिए भी तुम्हारा धन्यवाद करता हूं, तो ईश्वर के लिए मुझे संदूकों के पास ले चलो जिस में अपने प्रारब्ध की

परीक्षा करूं। शपथ है इस खंग की, जिसने राजा को वध किया और इन्दर से उस राजकुमार को मारा जो महाराज सुलक्षण से तीन लड़ाइयां जीता था। तुम्हारे मिलने की आशा में मैं संसार में वीर से वीर का सामना करने को प्रस्तुत हूं, रीछ की मादा के सामने से उसके बच्चे उठा लाने को उपस्थित हूं, सिंह जिस समय के शिकार की खोज में गरज रहा हो उस की आंख निकाल लाने को प्रस्तुत हूं पर हाय ऐसी अवस्था में किसका वश है! यदि हारीत और लक्षेन्द्र पासा फेंककर इस बात को निश्चय करना चाहें कि दोनों में कौन बड़ा आदमी है तो सम्भव है कि पासे के पड़ने से अनारी जीत जाय और संसार का सबसे बड़ा पहलवान अपने एक नीच नौकर के सामने नीचा देखे। ऐसे ही संयोग से मेरी अवस्था हो सकती है कि अपने लक्ष्य के प्राप्त करने में असमर्थ हूं जिसे कदाचित् एक साधारण व्यक्ति भी कर ले और मुझे कुढ़ कुढ़ कर मरना पड़े।

पुरश्री : लाचारी है—बिना मंजूषा चुने हुए कुछ नहीं हो सकता, इसलिए या तो आप इस इच्छा ही को छोड़ दें या यदि चुनना चाहें तो पहिले इस बात की शपथ खाएं कि यदि आप झूठे मंजूषा को चुनें तो फिर आमरण किसी स्त्री की ओर ब्याह करने के अभिप्राय से दृष्टि न करें—इसे खूब सोच लीजिए।

मोरकुटी : हमें यह प्रतिज्ञा स्वीकार है। चलो अपने भाग्य की परीक्षा करें।

पुरश्री : पहिले मन्दिर में चलिए। तीसरे पहर सन्दूक चुनिएगा।

मोरकुटी : ऐ भाग्य, सहाय हो। मुझे सबसे अधिक प्रसन्न या सबसे अधिक अभागा बनाना तेरे ही हाथ है।

[तुरहियां बजती हैं]

[सब जाते हैं]

●

दूसरा दृश्य

स्थान—वंशनगर। एक सड़क

[गोप आता है]

गोप : निस्सन्देह मेरा धर्म्म मुझे इस जैन अपने स्वामी के पास से भाग जाने की सम्मति देगा। प्रेत मेरे पीछे लगा है और मुझे बहकाता है कि गोप, मेरे अच्छे गोप, पांव उठाओ, आगे बढ़ो, और चलते फिरते दिखलाई दो। मेरा धर्म्म कहता है—नहीं, खबरदार सच्चे गोप खबरदार, सच्चे गोप भागो मत, भागने पर लात मारो। तो एक ओर से बली भूत बहका रहा है कि अपनी बोरिया बंधना बांधो, धता हो, दूर हो, साहस को दृढ़ करो और नौ दो ग्यारह हो जाओ—दूसरी ओर से धर्म्म मेरे चित्त को, गले का हार हो कर, इस प्रकार से शिक्षा देता है—मेरे धर्मिष्ट मित्र गोप! तुम कि एक धर्मात्मा के पुत्र हो वरंच यों कहना चाहिए कि एक धर्मात्मा स्त्री के पुत्र हो अस्तु मेरा धर्म्म कहता है कि अपने स्थान से हिलो मत—तो अब भूत कहता है कि अपने स्थान से हिलो और धर्म्म कहता है कि अपने स्थान से मत हिलो। मैं अपने धर्म्म से कहता हूं कि तुम्हारी सम्मति बहुत अच्छी है। फिर मैं भूत से कहता हूं कि तुम्हारी राय बहुत अच्छी है। यदि मैं अपने धर्म्म की आज्ञा मानता हूं तो मुझे अपने स्वामी जैन के साथ ठहरना पड़ता है जो कि आप ही एक प्रकार का भूत है—यदि मैं जैन के पास से भाग जाता हूं तो भूत की आज्ञा पर चलता हूं जो कि (स्वामी की प्रतिष्ठा में अन्तर नहीं डालता) आप ही भूत हैं। निस्सन्देह जैन तो निज भूत का अवतार है, इसलिए मेरी जान में तो मेरा धर्म्म बड़ा कठोर है जो इस जैन के साथ ठहरने की सम्मति देता है। भूत की सम्मति बहुत भली जान पड़ती है, तो ले भूत, मैं भागने को उपस्थित हूं, मेरे पांव तेरी आज्ञा में हैं, मैं अवश्य भागूंगा।

[वृद्ध गोप एक टोकरा लिए हुए आता है]

वृद्ध गोप : भाई समृद्ध परदेशी महाजन के घर का कौन सा मार्ग है?

गोप : **(आप ही आप)** ईश्वर का त्राण! आप मेरे सगे बाप हैं, जो ऐसे अन्धे हो गए हैं कि अपने जनमाए हुए लड़के को नहीं पहिचानते। ठहरो तनिक इन की परीक्षा लूंगा।

वृद्ध गोप : साहिबा, नेक कृपा करके परदेसी महाजन के घर का मार्ग तो बता देते।

गोप : आगे के मोड़ पर पहुंच कर अपने दाहिने हाथ को फिर जाना, और सब से आगे के मोड़ पर जब पहुंचो तो अपने बाएं हाथ को मुड़ना, फिर, दूसरे मोड़ पर किसी ओर न फिरना वरंच तिरछे मुड़कर सीधे परदेसी महाजन के घर चले जाना।

वृद्ध गोप : भगवान की शपथ है इस मार्ग का पाना तो कठिन होगा। भला आप को विदित है कि एक मनुष्य गोप नाम का जो उनके यहां रहता था अब वहां है या नहीं?

गोप : क्या तुम युवक गोप को पूछते हो?–**(आप ही आप)** अब देखो मैं कैसा खेल करता हूं–क्या तुम युवा गोप महाशय का वर्णन करते हो?

वृद्ध गोप : 'महाशय, न कहिए वरंच एक दरिद्र का बेटा। उस का बाप एक बहुत ही धर्मात्मा दरिद्री है पर धन्य है ईश्वर को कि रोटी कपड़े से सुखी है।'

गोप : उस के बाप को कौन पूछता है वह जो चाहै सो हो, यहां तो इस समय युवा गोप महाशय का वर्णन है।

वृद्ध गोप : जी हां वही गोप आप का मित्र।

गोप : इसीलिए तो बूढ़े बाबा मैं तुम से कहता हूं, इसीलिए तो निवेदन करता हूं कि उसे युवा महाशय कहो।

वृद्ध गोप : आप की साहिबी बनी रहै मैं गोप को पूछता हूं।

गोप : तो उस का नाम गोप महाशय हुआ–बाबा गोप महाशय का वर्णन न करो क्योंकि वह युवा सज्जन मनुष्य तो कुछ दिन हुए मर गया या यौं समझ लो कि स्वर्ग को गया।

वृद्ध गोप : भगवान न करे! वही लड़का तो मेरे बुढ़ापे की लकड़ी था, मेरे अंधेरे घर का दीपक था।

गोप : मेरी सूरत तो कहीं लकड़ी या दिये से नहीं मिलती?–बाबा, तुम मुझे पहिचानते हो?

वृद्ध गोप : शोच है कि मैं आप को नहीं पहिचानता, किन्तु ईश्वर के लिए मुझे शीघ्र बतलाइए कि मेरा लड़का **(भगवान उस की आत्मा को सुख**

दे!) जीता है कि मर गया?

गोप : बाबा तुम मुझे नहीं पहिचानते?

वृद्ध गोप : साहिब, मैं तो बिलकुल अन्धा हूं और तुम्हें नहीं पहिचान सकता।

गोप : और न यदि तुम्हारे आंख होती तो तुम मुझे पहिचान सकते। यह बड़े बुद्धिमान पिता का काम है कि अपने लड़के को पहिचान ले। अच्छा बूढ़े बाबा मैं तुम्हारे बेटे का हाल तुम से कहूंगा। मुझे आशीर्वाद दो, अभी सच्चा हाल खुल जायगा। रुधिर अधिक दिन तक नहीं छिप सकता, लड़का कदाचित् छिप सके—परन्तु अन्त को मुख्य बात प्रकट हो जाती है।

[घुटने के बल झुकता है]

वृद्ध गोप : भाई, उठो यह क्या बात है? मुझे निश्चय है कि तुम मेरे लड़के गोप नहीं हो।

गोप : ईश्वर के लिए कुछ अधिक मूर्ख मत बनो और मुझे आशीर्वाद दो। मैं वही गोप हूं जो पहिले तुम्हारा लड़का था। अब तुम्हारा बेटा है, और आगे तुम्हारा बच्चा कहलावैगा।

वृद्ध गोप : मैं कैसे जानूं कि तुम मेरे बेटे हो?

गोप : मैं नहीं जानता कि तुम्हारी समझ को क्या कहूं पर महाजन का नौकर गोप मैं ही हूं और भलीभांति जानता हूं कि तुम्हारी पत्नी मागधी मेरी माता है।

वृद्ध गोप : निस्सन्देह उस का नाम मागधी है। मैं शपथ से कह सकता हूं कि यदि तू गोप है तो मेरे ही मांस और रुधिर से है। वाह वाह तेरे डाढ़ी कितनी लंबी निकल आई है! जितने बाल तेरी ठुड्डी पर हैं उतने तो मेरे घोड़े दमनक की पूंछ पर भी न होंगे।

गोप : तो इससे मालूम होता है कि दमनक की पूंछ बढ़ने के बदले दिन पर दिन भीतर घुसी जाती है। मुझे स्मरण है कि जब मैंने, उसे अन्तिम बार देखा था तो उस की पूंछ के बाल मेरी डाढ़ी के बाल से कहीं बड़े थे।

वृद्ध गोप : हे भगवान! तुझ में कितना अन्तर हो गया है। भला तुझ से और तेरे स्वामी से कैसी पटती है? मैं उस के लिए कुछ भेंट लाया हूं। बता तेरी उनके साथ कैसी निभती है?

गोप : किसी भांति निभ जाती है। मैं अपने जी में नौ दो ग्यारह होने की ठान चुका हूं और जब तक कुछ दूर भाग न लूंगा कदापि दम नहीं लूंगा। मेरा स्वामी पूरा जैन है। उसे भेंट दोगे! हुंह, उसे फांसी दो। मैं उस की नौकरी में भूखों मरता हूं—नेक मेरी दशा तो देखो

कि कोई चाहे तो मेरी अंगुली की हर एक नसों को गिन ले। बाबा, बड़ी बात हुई कि तुम यहां आ गए। चलो, अपनी भेंट बसन्त महाराज को दो जो अच्छी नई नई वर्दियां बांटता है। यदि मुझे इस की नौकरी न मिली तो जहां तक कि ईश्वर के पास पृथ्वी है मैं भाग जाऊंगा। अहा! मेरा भाग्य कैसा प्रबल है! देखो वह आप चले आते हैं। बाबा इस से कहो, क्योंकि यदि अब मैं एक दम भी जैन की नौकरी करूं तो मैं उस से अधम।

[बसन्त लोरी तथा दूसरे भृत्यों के सहित आता है]

बसन्त : अच्छा यों ही करो–परन्तु देखो ऐसी शीघ्रता से सब प्रबन्ध हो कि अधिक से अधिक पांच बजे तक ब्यालू तैयार हो जाय। इन पत्रों को डाक में डाल आओ, वर्दियां झटपट बनवा लो और गिरीश से जाकर कहो कि अभी मेरे घर आवें।

[एक नौकर जाता है]

गोप : बाबा–हूं।

वृद्ध गोप : ईश्वर आप को चिरायु करै।

बसन्त : (धन्यवाद पूर्व्वक) तुम्हें मुझ से कुछ काम है?

वृद्ध गोप : धर्म्मावतार यह दीन बालक मेरा पुत्र–

गोप : दीन बालक नहीं महाराज वरंच धनिक महाजन का मनुष्य जो इस बात को चाहता है जैसा कि मेरा पिता विवरण के साथ कहैगा कि–

वृद्ध गोप : इसे नौकरी की बड़ी इच्छा है और–

गोप : सचमुच महाराज मुख्य बात यह है कि मैं जैन के यहां नौकर हूं और इच्छा रखता हूं जैसा कि मेरा बाप कहेगा कि...।

वृद्ध गोप : महाराज, इस की और इसके स्वामी की जरा भी नहीं पटती...।

गोप : मैं थोड़े में सच्ची बात कहे देता हूं कि जैन ने मेरे साथ बुराई की है, जिस के कारण से मैं चाहता हूं, जैसा कि मेरा बाप जो मैं आशा करता हूं कि एक वृद्ध मनुष्य है आप से सविस्तर वर्णन करेगा।

वृद्ध गोप : मैं एक थाली कबूतर के मांस की आप को पारितोषिक देने को लाया हूं और मेरी प्रार्थना यह है कि–

गोप : सौ बात की एक बात यह है कि यह प्रार्थना मेरे विषय में जैसा कि आप को इस सच्चे बूड्ढे के कहने से विदित होगा जो यद्यपि बूढ़ा और दीन है तो भी मेरा बाप है।

बसन्त : दो के बदले एक मनुष्य बोलो–तुम क्या चाहते हो?

गोप : सर्कार की सेवा करना।

वृद्ध गोप : जी हां, यही मुख्य तात्पर्य है।

बसन्त : मैं तुम्हें भलीभांति जानता हूं, तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार हुई। तुम्हारे स्वामी शैलाक्ष ने आज ही तुम्हारी सिफारिश की है, यदि एक धनवान जैन की सेवा छोड़कर मुझ ऐसे दरिद्री की नौकरी करना चाहते हो।

गोप : वह पुरानी कहावत सर्कार के और मेरे स्वामी शैलाक्ष के विषय में ठीक ठीक घट गई है—सर्कार पर ईश्वर की कृपा है और उसके पास पुष्कल धन है।

बसन्त : यह बात तो तुमने खूब कही। बूढ़े बाबा अपने बेटे के साथ जाओ, अपने पुराने स्वामी से विदा होकर मेरे घर का पता लगा कर उपस्थित हो। (**अपने भृत्यों से**) इस मनुष्य को एक वर्दी जिस में औरों की वर्दियों से उत्तम लैस टंकी हो दे दो, देखो अभी निबटा दो।

गोप : बाबा, चलो—मेरे लिए कहीं नौकरी की कमी हो सकती है, नहीं। मैं कभी अपने मुंह से प्रार्थना नहीं करता! हां (**अपना हाथ देख कर**) क्या मुझ से बढ़कर मारवाड़ भर में किसी की हथेली निकलैगी, जो पुस्तक लेकर शपथ खाने को प्रस्तुत है कि तुम खूब रुपया कमाओगे! यह देखो आयु की रेखा कैसी सीधी चली गई है!—और यह पत्नियों का एक साधारण लेखा है—हां केवल पन्द्रह स्त्री यह तो कुछ भी नहीं है—ग्यारह रांड़ और नौ क्वांरियों से ब्याह करना तो मनुष्य के लिए थोड़ी ही बात है—फिर तीन बार डूबते डूबते बचना—और फिर एक तिनके से जीव का जोखिम—यह देखो यह इन सब आपत्तियों से बचने की रेखा है—अहा! यदि विधाता कोई स्त्री है तो ऐसे उत्तम स्त्रीधन के साथ अवश्य ब्याहने के योग्य है—बाबा आओ—पलक भांजते मैं जैन से विदा हो लूंगा।

[गोप और वृद्ध गोप जाते हैं]

बसन्त : लोरी इस को भलीभांति समझ लो। इन वस्तुओं को मोल लेकर और वर्दियां बांट कर शीघ्र लौट आओ क्योंकि आज ही रात को मुझे अपने परम प्रतिष्ठित मित्र का आतिथ्य करना है। शीघ्रता करो, जाओ।

लोरी : जहां तक हो सकता है शीघ्र प्रबन्ध करके उपस्थित होता हूं।

[गिरीश आता है]

गिरीश : तुम्हारे स्वामी कहां हैं?

लोरी : महाराज, वहां टहल रहे हैं।

[लोरी जाता है]

गिरीश : बसन्त महाशय!

बसन्त : गिरीश!

गिरीश : मेरी आप से एक प्रार्थना है।

बसन्त : मैंने स्वीकार की—कहो।

गिरीश : देखिए अस्वीकार न कीजिएगा—मैं आप के साथ बिल्वमठ चलूंगा।

बसन्त : इस में कौन सी बात है आनन्द से चलो—लेकिन सुनो गिरीश, तुम में ढिठाई, अनार्य्यता और असभ्यता अधिक है जो यद्यपि तुम में गुण जान पड़ते हैं और हमारी दृष्टि में दुर्गुण नहीं ठहरते तथापि बाहर वालों की दृष्टि में धृष्टता समझी जाती है। नेक इस का ध्यान रखना और लज्जा के ठंडे पानी से अपने चिलबिलेपन की गर्मी को ठंडा करने का यत्न करना जिस में ऐसा न हो कि जहां मैं जानेवाला हूं वहां तुम्हारी अनार्यता के कारण मैं भी हल्का समझा जाऊं और मेरी सब आशाएं धूलि में मिल जायं।

गिरीश : बसन्त महाराज, सुनिए यदि मैं गंभीर बन जाऊं, नम्रता के साथ न बोलूं, शपथ खाने का अभ्यास कम न कर दूं, स्तोत्र की पुस्तक जेब में न भरे रहूं, दृष्टि नीची न रक्खूं, केवल इतना ही नहीं वरंच जिस समय स्तुति पढ़ी जाती हो अपनी टोपी की इस तरह आंख पर अंधेरी न चढ़ा लूं, और आह भरकर एवमस्तु कहूं, और एक बड़े विद्वान सभ्य मनुष्य की भांति नम्रता के साथ हर बात में चुनाचुनी न करूं, तो आज से मेरी बात का विश्वास न कीजिएगा।

बसन्त : वह तो देखने ही में आवैगा।

गिरीश : हां पर आज की रात को इस प्रतिबन्धन से दूर रखिए, आज की रात हंसी के लिए रुकावट न रहैगी।

बसन्त : नहीं नहीं, मैं कब ऐसा चाहने लगा, वरंच मैं तो स्वयं कहने को था कि आज की सभा में नियम से भी अधिक ढीठ रहो क्योंकि आज ऐसे मित्रों का भोज है जो चुहल ही इच्छा रखते हैं—परन्तु इस समय विदा हो क्योंकि मुझे कुछ काम है।

गिरीश : और मैं लवंग प्रभृति के पास जाता हूं, पर भोजन के समय हम सब अवश्य उपस्थित होंगे।

[दोनों जाते हैं]

●

तीसरा दृश्य

स्थान—वंशनगर। शैलाक्ष के घर की एक कोठरी

[जसोदा और गोप आते हैं]

जसोदा : मुझे खेद है कि तू मेरे बाप की नौकरी छोड़ता है। यह घर मुझे नरक समान लगता है पर तुझ ऐसे हंसमुख भूत के कारण थोड़ा बहुत जी बहल जाता था। अस्तु, विदा हो; यह ले यह एक रुपया तेरे लिए पारितोषिक है। और सुन गोप! थोड़ी देर में तेरे नए स्वामी के यहां लवंग भोजन करने जायगा। उसे चुपके से यह पत्र दे देना—बस जा—मैं नहीं चाहती कि मेरा बाप मुझे तुझ से बात करते देख ले।

गोप : तुम्हें ईश्वर को सौंपता हूं!—आंसुओं के मारे तो मेरे मुंह से शब्द नहीं निकलने पाता। ऐ सुन्दरी कामिनी, ऐ प्यारी जैनि कुमारी, यदि कोई आर्य्य तुझे न ठगै और अपनी स्त्री न बनावै तो मेरा नाम नहीं। किन्तु बस, ईश्वर ही रक्षा करे। प्रेम के आंसू तो मेरे दृढ़ चित्त पर प्रबल हुआ चाहते हैं। ईश्वर रक्षा करे—

[जाता है]

जसोदा : अच्छा बिदा हो सुहृद गोप। हाय! मेरे लिए कैसे यह पाप की बात है कि मैं अपने बाप की लड़की होने से लज्जित होऊं! परन्तु यद्यपि मैं उस के रक्त में उत्पन्न हूं पर मेरा चित्त उस का सा नहीं है। ऐ लवंग, यदि तू अपने वचन पर दृढ़ रहा तो मैं इस झगड़े को निबटा दूंगी और आर्य्य होकर तेरी प्यारी स्त्री बन जाऊंगी।

[जाती है]

●

चौथा दृश्य

स्थान—वंशनगर। एक सड़क

[गिरीश, लवंग, सलारन और सलोने आते हैं]

लवंग : नहीं, वरंच हम लोग खाने के समय खिसक देंगे और मेरे घर पर आकर भेस बदल कर सब लोग लौट आवैंगे। एक घंटे में सब काम हो जायगा।

गिरीश : हम लोगों ने अभी सब तैयारी नहीं की है।

सलारन : अब तक मशाल्चियों का भी कुछ प्रबन्ध नहीं हुआ है।

सलोने : जब तक कि स्वांग का उत्तमता के साथ प्रबंध न हो वह निरा लड़कों का खेल होगा और मेरी सम्मति में ऐसी अवस्था में उस का न करना ही उत्तम होगा।

लवंग : अभी तो केवल चार बजा है—अभी हमें तैयारी के लिए दो घंटे का अवकाश है...।

[गोप हाथ में पत्र लिए आता है]

कहो जी गोप क्या समाचार लाये?

गोप : यदि आप इसे खोलैंगे तो आप ही सब समाचार विदित हो जायगा।

लवंग : मैं इन अक्षरों को पहिचानता हूं, ईश्वर की सौगंध कैसे सुन्दर अक्षर हैं, और जिस कोमल हाथ ने इन्हें लिखा है, वह इस पत्र से भी अधिक गोरा है।

गिरीश : निस्सन्देह यह तुम्हारी प्यारी का पत्र है।

गोप : साहिब अब मुझे आज्ञा होती है?

लवंग : कहां जाते हो?

गोप : अपने पुराने स्वामी जैन को अपने नए आर्य्य स्वामी के साथ आज रात को भोजन करने के लिए निमन्त्रण देने।

लवंग : ठहरो, यह लो, प्यारी जसोदा से कह दो कि कदापि अन्तर न पड़ेगा—देखो अकेले में कहना—जाओ।

[गोप जाता है]

महाशयो आप लोग अब तो रात के लिए स्वांग की तैयारी करैंगे? मशाल दिखलाने वाले का प्रबन्ध हो गया।

सलारन : जी हां, मैं अभी जा कर तैयार होता हूं।

सलोने : और मैं भी चला।

लवंग : लगभग एक घंटे के, गिरीश के घर पर मुझ से और गिरीश से मिलना।

सलारन : बहुत ठीक।

गिरीश : वह पत्र जसोदा ही का न था?

[सलारन और सलोने जाते हैं]

लवंग : अवश्य है कि मैं तुम से सब हाल वर्णन कर दूं। उस ने मुझे सूचना दी है कि मैं उसे किस भांति उस के बाप के घर से ले जाऊं, कितनी अशरफी और गहने उस ने ले रक्खे हैं, और कैसा परिचारक का वस्त्र अपने लिए उपस्थित कर रक्खा है। भाई गिरीश, यदि कभी इसके बाप जैन को स्वर्ग में आने की आज्ञा मिलैगी तो अपनी बेटी के सुकृत के बदले, और यदि कभी कोई बुराई इस तक आवैगी तो इस बहाने से कि वह एक अधर्म्मी जैन की बेटी है। आओ, मेरे साथ आओ, मार्ग में इसे पढ़ते चलो। सुन्दरी जसोदा आज स्वांग में मशाल दिखलावैगी।

[दोनों जाते हैं]

●

पांचवां दृश्य

स्थान–वंशनगर–शैलाक्ष के घर के सामने

[शैलाक्ष और गोप आते हैं]

शैलाक्ष : अच्छा तो तू देखेगा, तेरी आंखें आप ही इस बात का न्याय करेंगी कि वृद्ध शैलाक्ष और बसन्त में कितना अंतर है। अरी जसोदा! जैसा तू मेरे यहां भुखमुए की भांति ढाई सेर भकोसता था उस का स्मरण वहां आवैगा। अरी जसोदा! और हर समय पड़े रहने और खर्राटे लेने और कपड़े फाड़ डालने की महिमा भी जान पड़ैगी। अरी जोसदा, सुनती नहीं।

गोप : जसोदा!

शैलाक्ष : तुझे किसने पुकारने को कहा है? मैंने तुझ से नहीं कहा कि पुकार।

गोप : आप ही न मुझ पर सदा क्रुद्ध हुआ करते थे कि तू बेकहे कोई काम नहीं करता।

[जसोदा आती है]

जसोदा : मुझे आप ने बुलाया है? आज्ञा?

शैलाक्ष : मुझे आज का नेवता आया है, लो जसोदा यह कुंजियां तुम्हारे सुपुर्द हैं। पर मैं क्यौं जाने लगा? मुझे वह लोग कुछ प्रेम में नहीं बुलाते वरंच सुश्रूषा से, किन्तु क्या हुआ मैं भी तिरस्कार की दृष्टि से जाऊंगा और उस बहुव्ययी आर्य्य का माल चाभूंगा। मेरी प्यारी बेटी, तू घर से सावधान रहियो। मेरा जाने को तनिक भी जी नहीं चाहता, मुझे कोई बुराई आती मालूम होती है जिस का मेरे जी में खटका लग रहा है, क्यौंकि आज ही रात को मैंने रुपये के तोड़ों का सपना देखा था।

गोप : आप कृपा करके चलैं; मेरे नये स्वामी आप की राह देखते होंगे, और उन लोगों ने आपस में गुट किया है। यह मैं नहीं कह सकता कि आप अवश्य ही स्वांग देखियेगा परन्तु यदि ऐसा हुआ तो निस्सन्देह कुछ न कुछ रंग खिलेगा क्यौंकि मेरी नाक से उस दिन

तेवहार के छः बजे सबेरे से रुधिर का बहना व्यर्थ न जायगा।

शैलाक्ष : क्या स्वांग भी बनेंगे? सुनो जसोदा, द्वारों में ताला लगा दो और जब भेर की ढबढब और बांसुरी की ध्वनि सुनाई दे तो झरोखों में से झांकने के लिए ऊपर न चढ़ना और न इन आर्य्य मसखरों के लुक फेर हुए चेहरों को देखने के लिये खिड़की से बजार की ओर सिर निकालना वरंच शीघ्र ही मेरे घर के कानों को अर्थात् खिड़कियों को बन्द कर लेना जिस में ऐसे असभ्य तुच्छ जनों का शब्द मेरे सभ्य घर के भीतर न पहुंचने पावै। शपथ है अर्हन्त देव की छड़ी की, मेरा जी आज रात के नेवते में जाने को नेक भी नहीं उभरता। किन्तु मैं जाऊंगा। अबे तू आगे जा कह दे कि मैं आऊंगा।

गोप : महाराज, मैं चला। बबुई तुम इन की बकबक पर ध्यान न देकर अवश्य खिड़की में से झांकती रहना क्योंकि ''आज होगा उस मसीहा का गुजर इस राह से, जिस ने मूसा है, यहूदी के दिले बीमार को।''

[जाता है]

शैलाक्ष : वह मूर्ख प्रेत का अवतार क्या कहता था, ऐं?

जसोदा : उस ने केवल इतना ही कहा कि 'बबुई ईश्वर आप की रक्षा करैं' और कुछ नहीं।

शैलाक्ष : यह मूर्ख प्रेत तो रक्खा है परन्तु खाने में सांड़ से अधिक है, दिन को सोने में जंगली बिल्ली से बढ़ कर और काम करने में घोंघे से अधिक सुस्त। ऐसे कृतघ्नों का निर्वाह मेरे साथ कहां हो सकता है; इसीलिए मैं उसे दूर करता हूं, और फिर उसे पल्ले भी कैसे मनुष्य के बांधता हूं जिस के उधार लिये हुए रुपये के नष्ट करने में वह सहायता देगा। अच्छा जसोदा, अब तुम भीतर जाओ, कदाचित् मैं अभी लौट जाऊं। जिस भांति मैंने समझा दिया है वैसा ही करना। द्वारों को बन्द करती जाओ—'जागै सो पावै, सोवै सो खोवै' यह कहावत बहुत ठीक है।

[जाता है]

जसोदा : जाइये—**(आप ही आप)**

''गर बर आई आर्जू मेरी तो रुखसत आप को,
आप ने बेटी को खोया और मैंने बाप को।''

[जाती है]

●

छठा दृश्य

स्थान–शैलाक्ष के घर के सामने

[गिरीश और सलारन भेस बदले हुए आते हैं]

गिरीश : यही बरामदा है जिस के नीचे लवंग ने हमें खड़े रहने को कहा था।

सलारन : उन का समय तो हो गया।

गिरीश : आश्चर्य है कि उन्होंने देर की क्योंकि अनुरागियों की चाल तो सदा घड़ी से तीव्र रहती है।

सलारन : ओह! नए अनुरागी कामदेव के कबूतर की भांति अनुराग की दस्तावेज पर मुहर करने को तो दस गुने तेज उड़ते हैं पर फिर उस की उलझन में उतने ही सुस्त हो जाते हैं।

गिरीश : यह तो नियम की बात है। किसी को भी खाने के पश्चात् वह भूख नहीं रह जाती है जो खाने पर बैठने के समय थी? कोई घोड़ा भी उस तीव्रगति के साथ नहीं लौट सकता है जिस के साथ वह चला था? संसार में जितनी वस्तुएं हैं उन के मिलने के पूर्व्व जो उत्साह रहता है वह उन के मिलने पर नहीं रहता जैसा कि कहा भी है। "जो मजा इन्तिजार में देखा, वह नहीं वस्ले यार में देखा।" जिस समय जहाज अपनी खाड़ी से रवाना होता है तो कैसा एक युवा व्यसनी अथवा बहुव्ययी के भांति झंडियां फहराए हुए और दुष्ट वायु के गले लगा हुआ चला जाता है! पर जब वह लौटता है तो उसी बहुव्ययी की भांति उस की कैसी दुरवस्था हो जाती है अर्थात् तूफान से किनारे टूटे हुए, पाल फटे हुए, निरान्तक और व्याकुल! और यह सब बुराइयां उसी कठोर वायु के द्वारा होती हैं।

[लवंग आता है]

गिरीश : वह देखो लवंग आ पहुंचे। उस विषय में हम लोग फिर बातचीत करैंगे।

लवंग : मेरे प्यारे मित्रों, मुझे, विलम्ब के लिए क्षमा करना। इस में अपराध मेरा न था वरंच आवश्यक कामों का। जब स्त्री चुराने की तुम्हारी

बारी आवैगी तब मैं भी इतनी देर तक तुम्हारी राह देखूंगा। अच्छा इधर आओ, यहीं मेरा ससुरा जैनी रहता है। ऐ, कोई भीतर है।

[जसोदा लड़के का कपड़ा पहिने हुए ऊपर से झांकती है]

जसोदा : तुम कौन हो? शीघ्र बतलाओ जिस में मेरा पूरा सन्तोष हो जाय। यद्यपि मैं शपथ खा सकती हूं कि मैं तुम्हारा शब्द पहिचानती हूं।

लवंग : तुम्हारा प्रेमी लवंग।

जसोदा : निस्सन्देह तुम लवंग हो, और सचमुच मेरे प्यारे, क्योंकि मैं तुम्हारे सिवाय किसको प्यार करती हूं? किन्तु प्यारे इस बात को सिवाय तुम्हारे कौन जान सकता है कि मैं भी तुम्हारी प्यारी हूं या नहीं?

लवंग : इस बात का साक्षी तो ईश्वर और तुम्हारा मन है।

जसोदा : लो इस संदूक को संभालो, इस में हम लोगों के परिश्रम का पूरा मिहनताना मिलैगा। मुझे हर्ष है कि रात का समय है और तुम मेरी सूरत नहीं देख सकते क्योंकि मुझे अपने इस वेष पर बड़ी लज्जा आती है; पर प्रेम अंधा होता है और प्रेमी अपनी मूर्खता की बातों को कभी नहीं देख सकते, क्योंकि यदि वह देख सकैं तो कामदेव आप मुझे लड़के के वेष में देखकर लज्जित हो जाय।

लवंग : उतरो, क्योंकि तुम्हें मशअल दिखलानी होगी।

जसोदा : क्या मैं अपनी निर्लज्जता को आप ही मशअल लेकर दिखाऊं? वह तो स्वयं अत्यन्त प्रकाशमान है। प्यारे, मशअलची तो इसलिए होता है कि अंधेरे में की वस्तुओं को प्रकट करै पर मुझे तो उस के विरुद्ध अपने तई छिपाना चाहिए।

लवंग : प्यारी, तुम तो लड़के के सुहावने वेष में आप ही छिपी हो। परन्तु अब शीघ्रता करो क्योंकि रात, जो प्रेमियों की अवलम्ब है, बीतती जाती है और हम लोगों को अभी बसन्त के भोज में कुछ देर ठहरना है।

जसोदा : मैं द्वार बंद करके और कुछ और रुपये लेकर अभी आती हूं।

[ऊपर से जाती है]

गिरीश : मैं शपथ खाकर कह सकता हूं कि यह जैन नहीं वरंच आर्य्या जान पड़ती है।

लवंग : मेरा बुरा हो यदि मैं इसे जी से न प्यार करता हूं। यदि मेरी समझ ठीक है तो यह बुद्धिमती है, और यदि मेरी आंखें अन्धी नहीं हो गई हैं तो सुन्दर भी अत्यन्त ही है। सचाई इस की जैसी कुछ है विदित है। अतः ऐसी बुद्धिमती, सुन्दरी और सच्ची युवती का मैं, सदा मन से आज्ञाकारी रहूंगा।

[जसोदा नीचे आती है]

क्या तुम आ गई? चलो महाशयों, चलो! हमारे स्वांग के साथी लोग हमारी राह देख रहे होंगे।

[जसोदा और सलारन के साथ जाता है]

[अनन्त आता है]

अनन्त : कौन है?

गिरीश : अनन्त महाराज?

अनन्त : छी छी गिरीश! और लोग कहां हैं? नौ बज गया। हमारे सब मित्र तुम लोगों का बाट जोहते हैं। आज स्वांग बंद रहा क्योंकि अभी—अनुकूल वायु चला है और बसन्त शीघ्र ही यात्रा करने जायंगे। मैंने बीसियों मनुष्यों को तुम्हारी खोज में चारों ओर दौड़ाया है।

गिरीश : मैं इस समाचार से बहुत प्रसन्न हुआ। मुझे स्वांग से कहीं बढ़ कर इस बात में आनन्द मिलैगा कि आज ही रात को पाल उड़ाऊं और चलता फिरता दिखलाई दूं।

[जाते हैं]

●

सातवां दृश्य

स्थान–विल्वमठ, पुरश्री के घर का एक कमरा

[तुरहियां बजती हैं। पुरश्री और मोरकुटी का राजकुमार अपने अपने साथियों के साथ आते हैं]

पुरश्री : जाओ, पर्दे उठाओ और इस प्रतिष्ठित राजकुमार को तीनों सन्दूक दिखलाओ। अब आप पसन्द कर लें।

मोरकुटी : पहला सन्दूक सोने का है जिस पर यह लेख लिखा है–''जो कोई मुझे पसन्द करैगा वह उस वस्तु को पावैगा जिस की बहुत लोग इच्छा रखते हैं।''

दूसरा चांदी का है जिस पर यह प्रतिज्ञा लिखी है–''जो कोई मुझे पसन्द करैगा वह उतना पावैगा जितने के वह योग्य है।''

तीसरा सन्दूक सीसे का है जिस पर वैसी ही धमकी भी लिखी हुई हैं–''जो कोई मुझे पसन्द करै वह अपनी सब वस्तुओं को भय में डाले और उन से हाथ धोवै।'' भला मैं कैसे जानूंगा कि मैंने सही सन्दूक चुना?

पुरश्री : इन में से एक में मेरी तस्वीर है–यदि आप उसे चुनैंगे तो मैं भी उस चित्र के साथ आप की हो जाऊंगी।

मोरकुटी : कोई देवता इस अवसर पर मेरी सहायता करता! देखूं तो; मैं इन सन्दूकों के परिलेखों पर फिर तो विचार करूं। इस सीसे के सन्दूक पर क्या लिखा है?

''जो कोई मुझे पसन्द करै वह अपनी सब वस्तुओं को भय में डाले और उन से हाथ धोवै।''

''हाथ धोवै–किसके लिए? सीसे के लिए? भय में डालना और सीसे के लिए? यह सन्दूक तो बहुत ही धमकाता है; लोग जो अपनी सब वस्तुओं को जोखों में डालते हैं तो अच्छे अच्छे लाभ की आशा में; सहृदय कूड़े करकट की ओर कब झुक सकता है; तो मैं सीसे के लिए न किसी वस्तु के हाथ धोऊंगा और न उसे भय में डालूंगा।

अब देखो यह चांदी जिसकी रंगत अल्पवयस्क कामिनियों की सी है, क्या कहती है? "जो कोई मुझे पसन्द करैगा वह उतना पावैगा जितने के वह योग्य है।" उतना जितने के वह योग्य है?—मोरकुटी के राजकुमार नेक ठहर और हाथ साध कर अपनी योग्यता को तौल। यदि तू अपने नाम की ख्याति के अनुसार आंका जाय तो तू निस्सन्देह बहुत कुछ पाने के योग्य है, पर कौन जाने कदाचित् यह कुमारी इस बहुत कुछ से बढ़ कर हो। किन्तु इसी के साथ अपनी योग्यता में सन्देह करना भी निर्बलता की बात है और अपनी योग्यता में बट्टा लगाना है। उतना जितने के मैं योग्य हूं? वाह वह तो यही कुमारी है; मैं अपनी उत्पत्ति, अपनी लक्ष्मी, अपनी शिक्षा, अपनी चालचलन हर बात से उसके पाने की क्षमता रखता हूं, पर सब से बढ़ कर अपने प्रेम के ध्यान से मैं अपने को उसके योग्य कह सकता हूं। तो अब मैं आगे क्यों भटकूं और इसी को चुन लूं—पर एक बार सोने के सन्दूक की लिपि को फिर तो देखूं। "जो कोई मुझे पसन्द करैगा वह उस वस्तु को पावैगा जिस की बहुत लोग इच्छा रखते हैं।"

वाह, वह तो यही कुमारी है; सारा संसार उस की इच्छा रखता है और पृथ्वी के चारों कोनों से लोग इस जागृत महात्मा के पैर चूमने को चले आते हैं। हरिद्वार के जंगल और बीकानेर के उजाड़ मैदान दोनों आजकल पुरश्री के प्रणयी राजकुमारों के लिए साधारण मार्ग हो रहे हैं। समुद्र जिस का अभिमानी मस्तक आकाश के मुंह पर थूकता है उस का भय भी आनेवालों के साहस को नहीं तोड़ सकता और लोग पुरश्री के देखने की लालसा में उस पर से ऐसे चले आते हैं जैसे कोई एक छोटे से नाले को पार करता हो। इन सन्दूकों में से एक में उस का मनोहर चित्र है। क्या यह सम्भव है कि वह सीसे के भीतर हो? ऐसा तुच्छ विचार मेरे नाश का कारण होगा। सीसा तो अंधेरी समाधि में उसके कफन के रखने के लिए भी एक बड़ी भद्दी वस्तु होगी। या यह समझूं कि वह चांदी में बन्द है जिसका मूल्य खरे सोने से दस गुना कम है? ऐसा सोचना ही पाप है! भला कभी भी ऐसा अलभ्य रत्न सोने से कम मूल्य वाले पदार्थ में जड़ा गया है? अंग में एक सोने का सिक्का होता है जिस पर पार्षदों का चित्र खुदा रहता है, परन्तु वह तो ऊपर खुदा रहता है और यहां सचमुच एक अप्सरा सोने के बिछौने पर भीतर मग्न है। अच्छा मुझे ताली दो मैं इसी को चुनता हूं आगे जो कुछ मेरे भाग्य में हो!

पुरश्री : यह लो राजकुमार यदि मेरी तस्वीर इस के भीतर निकली तो मैं आप की हो चुकी।

[सोने के सन्दूक को खोलता है]

मोरकुटी : हाय अंधेर! यह क्या निकला। एक खोपरी जिस की आंख के गढ़े में एक लिपटा हुआ पत्र खोसा है! इसे पढ़ूं तो सही–

''करि विचार देखहु जिय माहीं।
जो चमकत सो सुबरन नाहीं॥
कितने ही मम छबि ललचाने।
नाहक प्रान देत बिनु जाने॥
जे समाधिगन कनक रंगाए।
तिन में भरे कीट बहु पाए॥
जिमि तुअ अंग वीर रस साना।
तिमि होते गुन ज्ञान निधाना॥
जिमि तुमरे तन जोबन जोती।
तैसिहि बुद्धि वृद्ध की होती॥
तो न होत यह पढ़ि स्रम नासा।
जाहु प्रनाम सरद तुअ आसा॥''

सचमुच सर्द और श्रम व्यर्थ, तो अब गर्मी को विदा और सर्दी से काम–पुरश्री का ईश्वर रक्षक हो! मेरा जी इतना टूट गया है कि अब एक दम ठहरने का सामर्थ्य नहीं रखता। जिसका मनोरथ पूरा नहीं होता वे ऐसे ही विदा होते हैं।

[जाता है]

पुरश्री : अच्छी छूटी। जाओ परदों को गिराओ। यदि इस राजकुमार की रंगत के सब लोग मुझे इसी भांत वरैं तो क्या बात है।

[सब जाते हैं]

●

आठवां दृश्य

स्थान–वंशनगर। एक सड़क

[सलारन और सलोने आते हैं]

सलारन : अजी मैंने स्वयं बसन्त को जहाज पर जाते देखा; उन्हीं के साथ गिरीश भी गया है, पर मुझे विश्वास है कि उस जहाज में लवंग कदापि नहीं है।

सलोने : उस दुष्ट जैन ने वह आपत्ति मचाई कि महाराज को स्वयं बसन्त के जहाज की तलाशी लेने के लिए जाना पड़ा।

सलारन : हां, परन्तु वह देर करके पहुंचे, उस समय जहाज जा चुका था और वहां महाराज को समाचार मिला कि लवंग अपनी वल्लभा जसोदा के सहित एक छोटी सी नाव में जाता दृष्टि पड़ा था। इस के सिवाय अनन्त ने महाराज को अपने भरोसे पर इस बात का विश्वास कराया कि वह दोनों बसन्त के जहाज पर नहीं है।

सलोने : मैंने तो आज तक घबराहट और झुंझलाहट के ऐसे बेजोड़ और विचित्र वाक्य न सुने थे जैसे कि वह जैनी कुत्ता सड़क पर बक रहा था–मेरी बेटी!–हाय मेरी अशरफियां!–हाय मेरी बेटी!–हाय!–एक आर्य्य के साथ भाग गई!–हाय मेरी आर्य्य अशरफियां!–न्याय कानून! मेरी अशरफियां और मेरी बेटी! एक सरबमुहर तोड़ा, दो सरबमुहर तोड़े अशरफियों के, कलदार अशरफियों के मेरी बेटी चुरा ले गई!–और रत्न; दो नगीने, दो अमूल्य अलभ्य नगीने, जिन्हें मेरी बेटी चुरा ले गई–न्याय! लड़की का पता लगाओ! उसी के पास अशरफियां और पत्थर हैं।'

सलारन : अजी वंशनगर के सारे लड़के उस के पीछे दौड़ते हैं और हल्ला मचा कर चिढ़ाते हैं–इस के पत्थर, इस की लड़की और इस की अशरफियां।

सलोने : अनन्त महाशय को चाहिए कि उस से सावधान रहें और ठीक समय पर ऋण चुका दें नहीं तो पीछे से पछताना पड़ेगा।

सलारन : तुम ने अच्छा स्मरण दिलाया। कल मैं एक फनेशवासी से बातचीत कर रहा था कि उस ने वर्णन किया कि उस छोटे समुद्र में जो फनेश और अंगदेश को जुदा करता है तुम्हारे देश का एक अमूल्य धन से लदा हुआ जहाज डूब गया है। मुझे इस समाचार के सुनते ही अनन्त के जहाज का ध्यान आया और मन में ईश्वर से प्रार्थना करने लगा कि वह उन का जहाज न हो।

सलोने : पर तुम को यही उचित है कि जो कुछ सुनो अनन्त के कान तक पहुंचा दो, किन्तु अकस्मात् मत कह देना क्योंकि इस में कदाचित् उन्हें अधिक सोच हो।

सलारन : मुझे तो उन से बढ़ कर दयावन्त मनुष्य सारे संसार में दृष्टि नहीं आता। मैं बसन्त और अनन्त में जुदा होने के समय उपस्थित था। बसन्त ने उन से कहा कि मैं जहां तक सम्भव होगा शीघ्र लौट आऊंगा। जिस पर उन्होंने उत्तर दिया—"बसन्त मेरे लिए काम में कदापि शीघ्रता न करना वरंच उचित अवसर के अधीन रहना और उस दस्तावेज के विषय में जो मैंने जैन को लिख दी है कभी अपने जी में ध्यान न करना। प्रति क्षण प्रसन्न रहना और अपने चित्त को प्राणप्रिया की प्रसन्नता और प्रेम के सूचित करने में आसक्त रखना जो तुम्हारे मनोरथ के लिए उपयुक्त हों" परन्तु अन्त को उन की आंखों में आंसू ऐसे डबडबा आए कि और कुछ न कह सके और अपना मुंह फेर कर बसन्त की ओर हाथ बढ़ाया और एक अद्‌भुत अनुराग सहित जिस से सच्ची प्रीति टपकती थी उन से हाथ मिलाकर बिदा हुए।

सलोने : मैं समझता हूं कि वह संसार को बसन्त ही के लिए चाहते हैं। चलो उन्हें खोज करके मिलैं और उनके जी की उदासी को किसी शुभ समाचार से दूर करैं।

सलारन : चलो।

[जाते हैं]

●

नौवां दृश्य

स्थान–बिल्वमठ, पुरश्री के घर का एक कमरा

[नरश्री एक नौकर के साथ आती है]

नरश्री : शीघ्रता करो; पर्दे को झटपट उठाओ; आर्य्यग्राम के राजकुमार शपथ ले चुके और सन्दूक चुनने के लिए पहुंचा ही चाहते हैं।

[तुरहियां बजती हैं। पुरश्री और आर्य्यग्राम का राजकुमार अपने अपने मुसाहिबों के सहित आते हैं]

पुरश्री : अवलोकन कीजिये। ऐ प्रसिद्ध राजकुमार, वह सन्दूक रक्खे हैं। यदि आप ने उस मंजूषा को चुना जिस के भीतर मेरी छवि है तो अभी आप के साथ मेरे विवाह के उपचार हो जायंगे। परन्तु यदि आप भ्रम में पड़े तो शीघ्र ही मुख से एक वर्ण उच्चारण किए बिना आप को यहां से चले जाना पड़ैगा।

आर्य्यग्राम का राजकुमार : मुझे शपथ है कि प्रण के अनुसार तीन बातों का ध्यान रखना होगा। पहिले इस बात को किसी पर प्रकट न करना कि मैंने कौन से सन्दूक चुना था; दूसरे यदि मैं लक्ष्य मंजूषा को न चुन सकूं तो फिर अपनी अवस्था भर किसी स्त्री की ओर प्रणय की दृष्टि से न देखूं; तीसरे यदि मैं सन्दूक के चुनने में त्रुटि करूं तो शीघ्र ही तुम से पृथक् होकर अपनी राह लूं।

पुरश्री : जो कोई मुझ अधम के प्राप्त करने का प्रयत्न करता है उस से इन्हीं प्रणों के अनुसरण करने की सौगन्द खानी पड़ती है।

आर्य्यग्राम का राजकुमार : और मैं भी तो उसी के अनुकूल कर चुका। हे ईश्वर मेरे मन का मनोरथ पूरा कर!–सोना, चांदी और तुच्छ सीसा "जो कोई मुझे चाहे वह अपनी सब वस्तुओं को विघ्न में डाले और उनसे हाथ धो बैठे।" वाह, इसी रूप पर? नेक अपने मुख की श्यामता को धो ले तब विघ्न डालने और हाथ धोने की सुना। और सोने का सन्दूक क्या कहता है? तनिक देखूं तो सही;
"जो कोई मुझे चाहैगा वह उस पदार्थ को पावैगा, जिस की बहुत

लोग इच्छा रखते हैं।''
जिस की बहुत लोग इच्छा रखते हैं। सम्भव है कि इस 'बहुत' का संकेत मूर्खों की ओर हो जो कि बाहरी चमक दमक पर जाते हैं और दृष्टि के ऐसे स्थूल होते हैं कि किसी वस्तु की आन्तरिक अवस्था को कदापि नहीं ज्ञात कर सकते, वरंच गोला कबूतर की भांति अपने खोते को भय स्थान में घर की बाहरी दीवार पर बनाते हैं जहां कि हर समय भय रहता है। मैं उस वस्तु को नहीं चाहूंगा जिस की बहुत लोग इच्छा रखते हैं क्योंकि मैं सर्वसाधारण के तुल्य नहीं हुआ चाहता और गंवार लोगों की सहायता नहीं किया चाहता। तो अब मैं तेरी ओर ध्यान देता हूं ऐ चांदी के संदूक, एक बार फिर तो बता तेरा क्या प्रण है, ''जो कोई मुझे चाहैगा वह उतना पावैगा जितने के वह योग्य है।'' भई, सच्ची सच्ची तूने इस में कही क्योंकि निज की योग्यता बिना कौन प्रष्ठिता लाभ कर सकता और कौन बड़ा हो सकता है। किसी मनुष्य को अपनी योग्यता से अधिक अधिकार पाने का साहस न करना चाहिए। अहा! कैसा अच्छा होता यदि अधिकार, उपाधि और पद उत्कोच से न मिल सकते और प्रतिष्ठा निष्कलंक बनी रहती अर्थात् केवल पानेवाले की योग्यता से मोल ली जा सकती। फिर कितने सिर जो अब मान सूचन में नंगे दिखलाई देते हैं टोपी से ढके हुए दृष्टि पड़ते। कितने लोग जो अब हाकिम हैं महकूम होते। कितने कमीने जो बड़े बन बैठे हैं मानियों में से दूध की मक्खी की भांति निकाल दिये जाते और कितने प्रतिष्ठित जो समय के हेरफेर से साधारण लोगों में मिल गए हैं भूसी में से अन्न की भांति छांटकर बड़े पद पर पहुंचा दिये जाते। अस्तु, किन्तु मैं अपना काम देखूं। ''जो कोई मुझे चाहैगा वह उतना पावैगा जितने के वह योग्य है।'' मैं अपनी योग्यता को मान लेता हूं। मुझे इस की कुंजी दो तो मैं इसे तुरन्त खोल कर अपने भाग्य की परीक्षा करूं।

[चांदी के संदूक को खोलता है]

पुरश्री : क्या निकला? आह इतना क्यों रुके हैं?

आर्य्यग्राम का राजकुमार : ऐं यह क्या है? एक झूठे अंधे का चित्र जो मुझे एक पत्र दे रहा है! मैं इसे पढ़ूंगा। हां! मुझ में और पुरश्री के स्वरूप में क्यों सादृश्य। और मुझ से और मेरी आशाएं और योग्यता से क्या सम्बन्ध! 'जो कोई मुझे चाहैगा वह उतना पावैगा जिसके वह योग्य है।' क्या मेरे मुंह के योग्य यही मूर्ख का मस्तक है? क्या मेरे लिए यही पारितोषिक है? क्या मेरी योग्यता इस से अधिक नहीं है।

पुरश्री : अपराध करना और न्याय करना दो विरुद्ध बातें हैं और एक दूसरे के प्रतिकूल।

आर्य्यग्राम का राजकुमार : इस में लिखा क्या है?

[पढ़ता है]

''जिमि यह उज्जल रजत सुहायो।
सात बेर लै अगिन तपायो॥
तिमि यह बुद्धिहु बहु विधि जांची।
कोउ प्रकार ठहरी नहिं कांची॥
ऐसे बहु मूरख जग मांही।
जे छाया संग धाए जाहीं॥
पै कहुं तिन को आस पुराई।
मृग मरीचि कहुं प्यास बुझाई॥
जो सुख छायहिं अंक लगाए।
होत तिनहिं सोई गहि पाए॥
ऐसे बहु जग नर अज्ञाना।
सेत केस भे रजत समाना॥
पै नहिं बुद्धि तिनहीं अछु आई।
तैसहि यह मूख सिर भाई॥
जो रहिहैं तुअ होइ निसानी।
करहु अबे जो तुअ मन मानी॥
ब्याहहु जाई औरहीं काहू।
हारि चुके बाजी घर जाहू॥''

मैं जितनी देर तक यहां ठहरूंगा उतना ही अधिक मूर्ख बनूंगा, एक मूढ़ का सिर लेकर तो मैं ब्याह करने को आया पर अब दो लेकर जाता हूं। प्यारी, ईश्वर रक्षा करै! मैं अपनी सौगन्द पर स्थिर रहूंगा और सन्तोष के साथ अपने दुःख को खाऊंगा।

[आर्य्यग्राम का राजकुमार अपने साथियों के सहित जाता है]

पुरश्री : वाह इस कर्पूरवर्तिका ने तो अच्छे उस पतंग के पंख जला दिए। समझदार मूर्ख ऐसों ही को कहते हैं। जिस समय वह सन्दूकों को चुनते हैं तो अपने मन की स्फूर्ति में सब बुद्धि को खो देते हैं।

नरश्री : यह पुरानी कहावत मिथ्या नहीं है—फांसी और स्त्री दोनों का मिलना भाग्य से होता है।

पुरश्री : नरश्री, आओ पर्दे को गिराओ।

[एक भृत्य आता है]

भृत्य : रानी साहिब कहां हैं?

पुरश्री : इधर, राजा साहिब क्या आज्ञा करते हैं?

भृत्य : सर्कार की डेवढ़ी पर वंशनगर का एक नवयुवक अपने स्वामी के आगमन का समाचार लेकर आया है। यह मनुष्य अपने स्वामी के प्रणाम के साथ बहुमूल्य सौगात भी लाया है। अब तक मैंने अभिलाष का ऐसा मनोहर दूत न देखा था। बसन्त ऋतु जो कि सुहावन ग्रीष्म के आगमन का समाचार देता है ऐसा प्रिय नहीं प्रतीत होता जैसा कि यह दूत जो अपने स्वामी के पहुंचने का समाचार लाया है।

पुरश्री : किसी भांति चुप भी रह; मैं सोचती हूं कि थोड़ी ही देर में तेरे मुंह से सुनूंगी कि वह मनुष्य तेरा कोई सम्बन्धी है क्योंकि उस की प्रशंसा तू अत्यन्त कर रहा है। आओ नरश्री आओ; मैं इस अभिलाष के दूत को जो ऐसी नम्रता के साथ आता है अभी देखा चाहती हूं।

नरश्री : ऐ कामदेव यह मनुष्य बसन्त का हो?

[जाती है]

●

तीसरा अंक

पहिला दृश्य

स्थान–वंशनगर, एक सड़क
[सलोने और सलारन आते हैं]

सलोने : कहो बाजार का कोई नया समाचार है?

सलारन : इस बात का अब तक वहां बड़ा कोलाहल है कि अनन्त का एक अनमोल माल से लदा हुआ जहाज उस छोटे समुद्र में नष्ट हो गया; कदाचित् उस स्थान को लोग दुरूह कहते हैं जो एक बड़ी भयानक बालू की ठेक है, जहां कितने ही बड़े बड़े अनमोल जहाज नष्ट हो गए हैं। यदि यह समाचार निरी गप हांकने वाली कुटनी का न हो।

सलोने : ईश्वर करे वह वैसी ही झूठी कुटनी निकले जो आंसू बहाने के लिए अपनी आंखों में लाल मिर्च मल लेती है, जिस से लोगों पर अपने तीसरे पति के मरने का दुःख प्रकट करे। पर यह सच है और मैं बिना इस के कि बात को बढ़ाऊं या बातचीत की सीधी राह से मुड़ूं कहता हूं कि सुहृद अनन्त धर्मिष्ठ अनन्त–हाय मुझे तो कोई ऐसा शब्द ही नहीं मिलता जिस से उस की प्रशंसा सूचित हो सके।

सलारन : अच्छा तो अब तुम्हारा वाक्य समाप्त हुआ।

सलोने : वाह! क्या कहते हो? अच्छा तो उस का परिणाम यह है कि उन का एक जहाज नष्ट हो गया।

सलारन : मैं तो आशीर्वाद देता हूं कि उन की हानि यहीं पर समाप्त हो जाय।

सलोने : मैं भी झटपट एवमस्तु कह दूं। कहीं ऐसा न हो कि भूत मेरी प्रार्थना में विघ्न करै क्योंकि यह देखो वह जैन की सूरत में चला जाता है।

[शैलाक्ष आता है]

सलोने : कहो जी शैलाक्ष, आज कल सौदागरों में क्या समाचार है?

शैलाक्ष : मेरी बेटी के भागने का हाल तुम को भलीभांति विदित है। तुम से बढ़ कर इस बात को कोई नहीं जानता, कोई नहीं जानता।

सलारन : इस में भी कोई सन्देह है, परन्तु यदि मुझ से पूछो तो मैं केवल इतना ही जानता हूं कि अमुक दर्जी ने उस के लिए पर बनाए थे जिनके सहारे से उड़ी।

सलोने : और शैलाक्ष भी इस बात को जानता था कि उस चिड़िए के पर जम चुके हैं जिस के होने से सब पक्षियों का नियम है कि अपने मां बाप के खोते से निकल भागते हैं।

शैलाक्ष : वह इस अपराध के लिए अवश्य नरक में पड़ेगी।

सलारन : अवश्य यदि चेत भूत उस का न्यायकर्त्ता हो।

शैलाक्ष : ऐं! मेरा ही मांस और रुधिर मुझी से विरुद्ध हो!

सलोने : तुम भी पुराने घाघ होकर क्या ही वाही तबाही बकते हो! भला ऐसी युवा कुमारी के ऐसे कृत्य को विरुद्ध कह सकते हैं?

शैलाक्ष : क्या मेरी लड़की मेरा मांस और लहू नहीं है?

सलारन : तुम्हारे और उस के मांस में तो उस से भी अधिक अन्तर है जैसा कि नीलमणि और स्फटिक में होता है; तुम्हारे और उस के रुधिर में उस से भी अधिक अन्तर है जैसा कि सिंगर्फ और गेरू में होता है। पर यह तो कहो कि तुम ने भी अनन्त के जहाज के नष्ट होने का कुछ हाल सुना है?

शैलाक्ष : वह मेरे लिए एक दूसरे घाटे की बात है; पर पूरा व्यर्थ व्यय करने वाला और दीवालिया जो अब बाजार में किसी को मुंह नहीं दिखला सकता; एक भिखमंगा जो किस बनावट के साथ बन ठनकर बाजार में आया करता था; नेक वह अपनी दस्तावेज तो देखै; वह मुझे बड़ा व्याज खानेवाला कहता था; नेक वह अपनी दस्तावेज तो देखै; वह लोगों को बहुत अपनी आर्य्य दयालुता दिखलाने के लिए व्यर्थ रुपया ऋण दिया करता था। नेक वह अपनी दस्तावेज तो देखै।

सलारन : क्यौं, मुझे विश्वास है कि यदि वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर सके तो तुम उस का मांस न मांगोगे; भला वह तुम्हारे किस काम में आ सकता है?

शैलाक्ष : मछली फंसाने के लिए चारे के काम में यदि वह और किसी वस्तु का चारा नहीं हो सकता तो मेरे बदले का चारा तो होगा। उस ने मुझे अप्रतिष्ठित किया है और कम से कम मेरा पांच लाख का लाभ रोक दिया है; वह सदा मेरी हानि पर हंसा है, मेरे लाभ की निन्दा की है, मेरी जाति की अप्रतिष्ठा की है, मेरे व्यवहारों में टांच मारी

है, मेरे मित्रों को ठंडा और मेरे शत्रुओं को गर्म्म किया है; और यह सब किसलिए? केवल इसलिए कि मैं जैनी हूं। क्या जैनी की आंख, नाक, हाथ, पांव और दूसरे अंग आर्य्यों की तरह नहीं होते? क्या उस की सुधि, सुख और दुःख, प्रीति और क्रोध आर्य्यों की भांति नहीं होता? क्या वह वही अन्न नहीं खाता, उन्हीं शस्त्रों से घायल नहीं होता, वही रोग नहीं झेलता, उन्हीं औषधियों से अच्छा नहीं होता, उसी गर्मी और जाड़े से सुख और कष्ट नहीं उठाता जैसा कि कोई आर्य्य? क्या यदि तुम चुटकी काटो तो हम लोगों के रुधिर नहीं निकलता? क्या यदि तुम गुदगुदाओ तो हम लोगों को हंसी नहीं आती? क्या यदि तुम विष दो तो हम लोग मर नहीं जाते? तो फिर जो तुम हम पर अत्याचार करोगे तो क्या हम बदला न लेंगे? यदि हम लोग और बातों में तुम्हारे सदृश हैं तो इस बात में भी तुम्हारे तुल्य होंगे। यदि कोई जैनी किसी आर्य्य को दुःख दे तो वह किस भांति अपनी नम्रता प्रकट कर सकता है? बदला लेकर। तो यदि कोई आर्य्य किसी जैन को क्लेश पहुंचावे तो इसे उस के उदाहरण के अनुसार किस प्रकार से सहन करना चाहिए। अवश्य बदला लेकर। जो पाजीपन तुम लोग मुझे अपने उदाहरण से सिखलाते हो, उसे मैं कर दिखलाऊंगा और कितनी ही कठिनता क्यों न पड़े मैं बदला लेने में अवश्य तुम से बढ़ कर रहूंगा।

[एक भृत्य आता है]

भृत्य : महाशयो मेरे स्वामी अनन्त अपने घर पर हैं और आप दोनों से कुछ बातचीत किया चाहते हैं।

सलारन : हम लोग तो उन को चारों ओर खोज ही रहे थे।

[दुर्बल आता है]

सलारन : यह देखो एक दूसरा जैनी आया; अब तीसरा इन की बराबरी का नहीं निकल सकता पर हां उस दशा में कि भूत आप ही एक जैन बन जाय।

[सलोने, सलारन और भृत्य जाते हैं]

शैलाक्ष : कहो जी, दुर्बल जयपुर से क्या समाचार लाये? मेरी बेटी का पता लगाया?

दुर्बल : मैंने जहां जहां उस का समाचार सुना, वहां वहां पहुंचा। परन्तु कहीं पता न लगा?

शैलाक्ष : वही, वही वही वह हीरा ले गई जो मैंने दो सहस्र अशरफी को फरीदकोट में लिया था! ऐसा बड़ा ईश्वर का कोप हमारी जाति पर

आज तक न गिरा था। मुझे तो आज तक उस का अनुभव न हुआ था—दो सहस्र अशरफी का एक हीरा और दूसरे अमूल्य रत्न अलग। अच्छा होता कि मेरी लड़की मेरी आंखों के सामने मर गई होती और वह रत्न उस के शरीर पर होते! अच्छा होता कि उस का शव मेरे पांवों के नीचे गड़ता और अशरफियां उस के कफन में होती। उन का कुछ पता नहीं लगा? यही परिणाम हमारे प्रयत्नों का है और विदित नहीं कि इस खोज में कितना व्यय पड़ा हाय, यह हानि पर हानि! “मुफलिसी में आटा गीला!” इतना तो चोर ले गया और इतना चोर की खोज में नष्ट हुआ। तिस पर न कुछ उस के सन्ती मिलने की आशा और न बदला निकलने की। किसी और के घर दुःख भी दृष्टि पड़ता जिसे देख कर धीरज हो। हां यदि है तो मेरी गर्दन पर सवार, कहीं से आह भी नहीं सुनाई देती सिवाय उस के जो मेरे हृदय से निकलती है, और न सिवाय मेरे किसी के आंसू गिरते हैं?

दुर्बल : ऐसा तो नहीं और लोग भी अपने अपने दुःख से खाली नहीं है। अभी मैंने जयपुर में समाचार पाया कि अनन्त का...।

शैलाक्ष : क्या, क्या, क्या? दुःख दुःख?

दुर्बल : उस के जहाजों का एक बेड़ा त्रिपुल से आते समय राह में नष्ट हो गया।

शैलाक्ष : धन्य है ईश्वर को, धन्य है ईश्वर को। क्या यह समाचार सच्चा है? क्या यह समाचार सच्चा है?

दुर्बल : मैं आप उन खलासियों के मुंह से सुन आया हूं जो जहाज के नष्ट होने से बच कर आए हैं?

शैलाक्ष : मैं तुम्हारा धन्यवाद करता हूं अच्छे दुर्बल, बड़ा अच्छा समाचार लाये, बड़ा अच्छा समाचार लाये, अहाहा—कहां? जयपुर में?

दुर्बल : मैंने जयपुर में सुना कि तुम्हारी बेटी ने एक रात में अस्सी अशरफियां व्यय की।

शैलाक्ष : तू मेरे कलेजे में छुरी मारता है। अब मैं फिर अपनी अशरफियों को इन आंखों से न देखूंगा; हाय! अस्सी अशरफियां! एक बार में अस्सी अशरफियां!

दुर्बल : अनन्त के कई ऋणदाता मेरे साथ वंशनगर को आए जो शपथ खाकर कहते थे कि अब उस के काम का बिगड़ना किसी भांति नहीं रुक सकता।

शैलाक्ष : बड़े हर्ष की बात है; मैं उसे बहुत रुलाऊंगा, मैं उसे कोच कोच कर

मारूंगा; बड़े हर्ष का विषय है।

दुर्बल : उन में से एक ने मुझे एक अंगूठी दिखलाई जो तुम्हारी बेटी ने उसे एक बन्दर के मोल में दी है।

शैलाक्ष : उस का नाम मत लो दुर्बल! तुम मेरे हृदय में रह रह के घात करते हो! वह मेरी नीलम की अंगूठी थी; मैंने उसे कमलाक्षी से पाया था, जबकि मेरा ब्याह नहीं हुआ था। यदि मुझे कोई बन्दरों का जंगल का जंगल देता तो भी मैं इस अंगूठी को अपने से पृथक् न करता।

दुर्बल : लेकिन अनन्त तो निस्सन्देह नष्ट हो गया।

शैलाक्ष : इस में भी कोई सन्देह है, यह तो स्पष्ट है, यह तो भलीभांति प्रकट है। जाओ दुर्बल उस के पकड़ने के लिए एक प्रधान ठहराओ, उसे पंद्रह दिन पहले से पक्का कर रक्खो। यदि यह मनुष्य अपने प्रण के अनुसार रुपया न दे सका तो मैं इसका पिता निकलवा लूंगा क्यौंकि यदि यह कांटा वंशनगर से निकल जाय तो मेरा व्यापार मनमाना चलै। अच्छा दुर्बल, अब जाओ और मुझ से मन्दिर में मिलो, जाओ प्यारे दुर्बल; देखो हम लोगों के मन्दिर में मिलना।

[दोनों जाते हैं]

* * *

दूसरा दृश्य

स्थान–विल्वमठ, पुरश्री के घर का एक कमरा

[बसन्त, पुरश्री, गिरीश, नरश्री और उन के साथी आते हैं। सन्दूक रक्खे जाते हैं]

पुरश्री : भगवान् के निहोरे थोड़ा ठहर जाइए। भला अपने भाग्य की परीक्षा के पहिले एक दो दिन तो ठहर जाइए, क्योंकि यदि आप की रुचि ठीक न हुई तो आप के साथ रहने का आनन्द तुरन्त ही हाथ से जाता रहेगा। इसलिए थोड़ा धीरज धरिए। न जाने क्यौं मेरा जी आप से पृथक् होने को नहीं करता, पर मैं समझती हूं कि इस का कारण अनुराग नहीं है और यह तो आप भी कहैंगे कि घृणा का इससे सम्बन्ध नहीं हो सकता। किन्तु कदाचित् आप मेरे जी की बात न समझे हों। इसलिए मैं आप को भाग्य की परीक्षा करने के पहिले दो एक महीने तक ठहराऊंगी, परन्तु इस से क्या होना है? कुमारी अपने जी की बात को जिह्वा पर कब ला सकती है। मैं आप को पते का सन्दूक बता सकती हूं पर मेरी सौगंद टूट जायगी और यह मुझे किसी तरह पर अंगीकार नहीं। कदाचित् मैं आप को न मिलूं पर यदि ऐसा हुआ तो मेरा चित्त यही कहैगा कि तू ने अपराध क्यौं न किया और शपथ क्यौं न तोड़ डाली मेरा मन करता है कि आप की आंखों को कोसूं, इन्हीं ने तो मुझे मोल ले लिया और मेरे दो भाग कर डाले–आधी तो मैं आप की हूं, और शेष आधी भी आप ही की, क्यौंकि यदि मैं यौं कहूं कि अपनी हूं तो भी आप ही की हुई, इसलिए सब आप ही की ठहरी। क्या बुरा समय आ गया है कि अपनी वस्तु पर भी अपना बस नहीं! अतएव यद्यपि मैं आप ही की हूं तो भी क्या? हुई न हुई दोनों बराबर–यदि कहीं भाग्य ने धोखा दिया तो उस के कारण मैं क्यौं दुःख में पड़ूं, पड़े तो भाग्य पड़े जिस का दोष है। मैं बहुत कुछ बक गई पर तात्पर्य मेरा यह है कि बातचीत में कुछ समय कटै और आप के

सन्दूक पसन्द करने के लिये जाने में इसी बहाने कुछ देर हो।

बसन्त : मुझे झटपट चुन लेने दीजिए। यों रहने से तो मेरा जी सूली पर टंगा है।

पुरश्री : सूली पर, तो कहिए कि आप के प्रेम के साथ दगा कैसी मिली हुई है?

बसन्त : दगा का क्या काम? हां यदि कुछ है तो अपने चित्त के अभिलाष पूरे होने की ओर से अविश्वास। मेरे प्रेम के साथ तो दगा का होना ऐसा है मानो आग और बर्फ की मित्रता।

पुरश्री : जी हां, पर मुझे भय है कि आप का जी तो सूली पर टंगा है, और सूली पर लोग प्रायः विवश होकर बेसिर पैर की बका करते हैं।

बसन्त : जीवनदान दीजिए तो यथार्थ कह दूं।

पुरश्री : अच्छा तो फिर कहिए, आप का जीवन आप को मुबारक।

बसन्त : कह दूं, मेरा प्राण मुझ को मुबारक! तौ तो मेरा मनोरथ बर आया, वाह, जब सताने वाला आप ही वह राह दिखलाता है जिस से जी बचे तो कष्ट भी परम सुख है। परन्तु अच्छा अब मुझे संदूकों के साथ अपने भाग्य की परीक्षा के लिए छोड़ दीजिए।

पुरश्री : अच्छा तो आप जायं, उन सन्दूकों में से एक में मेरा चित्र है; यदि आप मुझे चाहते होंगे तो वह आप को मिल जायगा। नरश्री तुम अब अलग खड़ी हो जाओ और जब आप संदूक पसन्द करने लगें तो कुछ गान का भी आरम्भ हो, जिस में यदि आप कहीं चूक जायं तो जैसे बत्तक अपना दम निकलने के समय गाता है वैसे ही आप के विदा होने के समय भी गाना होता रहे। यदि कहिए कि बत्तक की समाधि पानी में होती है तो मेरी आंखें नदी बनकर आप के शत्रुओं की समाधि बन जायंगी। यदि कहीं आप ने दांव मारा तो गाना क्या है मानो उस समय की सलामी का बाजा है जब कोई नया राजा सिंहासन पर बैठता है और उस की शुभचिन्तक प्रजा उस के अभिनन्दन को आती है, या वह मीठी तान है जिसे सुनकर नया वर विवाह के दिन सबेरे ही उठकर ब्याह की तैयारी करता है। देखिए वह जाते हैं। जब रुद्र उस कुमारी को छुड़ाने गया था, जिसे त्र्यंबक ने समुद्र की एक आपत्ति को सौंप दिया था तो जैसा तेज उस के मुख पर बरसता था वैसा ही उन के मुंह पर बरसता है परन्तु प्रेम तो उस की अपेक्षा कई अंश अधिक हैं। मैं भी उस कुमारी की भांति बलिदान के लिए प्रस्तुत हूं और ये स्त्रियां मानो त्र्यंबक की रहने वाली हैं और वियोगिन बनी हुई खड़ी देख रही हैं कि इस

दुस्तर कर्म्म का क्या परिणाम होता है। अच्छा मेरे रुद्र जाओ! अब तो मेरा जीवन तुम्हारे प्राण के साथ है। और निश्चय रखिए कि आप का चित्त यद्यपि आप स्वयं लड़ने जाते हैं, इतना न धड़कता होगा जितना मेरा धड़कता है यद्यपि मैं केवल दूर से खड़ी हुई कौतुक देख रही हूं।

गीत

अहो यह भ्रम उपजत कित आय।
जिय मैं कै सिर मैं जनमत है बढ़त कहां सुख पाय॥
ता को यह उत्तर जिय उपजत बढ़त दृष्टि मैं धाय।
पै यह अति अचरज कै जित यह जनमत तितहि नसाय॥
देखि ऊपरी चमक चतुर हूं जद्यपि जात भुलाय।
पै जब जानत अथिर ताहि तब निज भ्रम पर पछिताय॥
तासों टनटन बजै कहौ अब घंटा हू घहराय॥

बसन्त : सच है जो पदार्थ देखने में भले और भड़कीले होते हैं, वस्तुतः कुछ नहीं होते। संसार के लोग बाहरी चमक दमक में भूल जाया करते हैं। देखिये, कानून में कोई दलील कैसी ही झूठी और बेसिर पैर की क्यों न हो, यदि उसी को साधु भाषा में नमक मिर्च लगाकर कहिये तो उस का सब अवगुण छिप जाता है। उसी भांति धर्म्म में देखिये तो कैसी ही घृणा के योग्य भूल क्यों न हो कोई न कोई उपयुक्त युक्ति मनुष्य उस के प्रमाण में देकर उसे सराहैगा और उस के दोषों पर सुवर्ण का पर्दा डाल देगा। निरी बुराई पर भी बाहरी भलाई का मुलम्मा चढ़ जाता है। देखिये कितने ऐसे डरपोक मनुष्य जिन के चित्त बालू की भीत की भांति निर्बल हैं, डाढ़ी और रूप रंग में मानसिंह और विजयसेन को तुच्छ करते हैं और भीतर देखिये तो उन का दुर्बल अन्तःकरण दूध सा स्वच्छ है। उन लोगों को कहना चाहिए कि यह केवल वीरपुरुषों का उतरन अपना प्रभाव दिखलाने के निमित पहिन लेते हैं। सुन्दरता की ओर दृष्टि कीजिये तो विदित होगा कि वह केवल चांदी की न्यौछावर है। जितना रुपया लगाइये उतनी ही भड़क हो। वास्तव में तत्त्वनिरूपण करने पर करामात प्रतीत होने लगती है, जिस के सिर पर जितना अधिक भार है उतना ही विशेष तुच्छ है। यही दशा उन घुंघरवाले सुन्दर कंचकलापों का है जो वायु में इस भांति बल खाते हैं कि मन को लुभा लेते हैं। देखिये एक के सिर से उतर कर दूसरे के सिर चढ़ते हैं और जिस सिर ने उन्हें पाला था वह अन्त में कीड़ों का आहार है। अतः भूषण

वसन क्या हैं मानो किसी बड़े भयानक समुद्र का ऐसा किनारा है जो थाह बता कर गोता दे या किसी हिन्दुस्तानी स्त्री का भड़कीला दुपट्टा है, अर्थात् यह कहना चाहिए कि समय के छली लोग झूठ को ऐसा सच कर के दिखा देते हैं कि बड़े बड़े बुद्धिमान की बुद्धि चकित हो जाती है। इसलिए चमकीले सोने जिस ने महाराज मागधि से उस का खाना लेकर लोहे के चने चबवाये मैं तुझ को न छुऊंगा और न तुझे ऐ कुरूप चांदी जिस के लिए एक मनुष्य दूसरे की सेवा करता है। परन्तु तुच्छ सीसे जिस के देखने से आशा के बदले भय उत्पन्न होता है–

बचन रचन तजि और के, तोही पै बिस्वास।
उदासीन प्रेमी मनहिं, लखि तुव रंग उदास॥
औरन तजि तासों चुनत सीसक अब हम तोहि।
आनन्दघन करुनायतन, करहु अनन्दित मोहि॥

पुरश्री : (आप ही आप)

मिट्यौ सकल भ्रम भीति नसानी।
नसी निरासा जिय दुखदानी॥
मोह कंवल रुज दृग सों भाग्यौ।
संसय तजि मन आनन्द पाग्यौ॥
प्रेम! धीर धरु किन अकुलाई।
धरत सीवं तजि पगहि बढ़ाई॥
आनन्द नीर इतो हिय जलधर।
उमगि उमगि जनि बरस धीर धरा॥
यह सुख नदी उमड़ि जो आई।
मम घट घट नहिं सकत समाई॥
होइ न कहूं अनन्द अजीरन।
तासों धरु धीरज चंचल मन॥

वसन्त : देखैं तो यह क्या निकला? (सीसे के सन्दूक को खोल कर) वाह वाह, यह तो मेरी परम सुन्दरी पुरश्री का चित्र है! यह किस चितेरे की निपुणता है कि चित्र बोला ही चाहता है? क्या यह आंखैं सचमुच फिरती हैं या केवल मेरी आंखों की पुतलियों पर इन की परछाईं पड़ने से मुझे घूमती हुई दिखाई देती हैं। इधर देखिए तो दोनों ओष्ठ इस भांति से भिन्न हैं मानो मीठे प्यारे श्वासों के आने जाने का मार्ग है। ऐसे प्यारे साथियों के विरह का कारण ऐसी ही प्यारी वस्तु होनी चाहिए। इधर देखिये तो बालों की छबि खींचने में चित्रकार ने मकड़ी की चातुरी

को तुच्छ कर दिखलाया है और सोने के तारों का ऐसा जाल बिना है कि मनुष्य का चित्त पतंग की भांति उस में फंस जाय। पर वाह री आंखें! इन के बनाने के समय चित्रकार की दृष्टि किस भांति ठहरी? मेरी समझ में तो जब एक बन गई थी तो उस की दोनों आंखें इस एक के न्यौछावर हो जातीं और यह आंख बेजोड़ रह जाती। किन्तु सच पूछिए तो जितनी ही मेरी प्रशंसा की इस चित्र के सामने कुछ गिनती नहीं उतनी ही साक्षात् के सामने इस छबि की कुछ गणना नहीं। देखिए यह भाग्य का लेखाजोखा है।

(पढ़ता है)

जौ लखि छवि ऊपरी भुलाते। तौ यह दांव कबहुं नहिं पाते॥
तुम्हरी बुद्धि धीर नहिं छूटी। लेहु अबै रस सम्पत्ति लूटी॥
अब जिय चाह करौ जनि दूजी। भ्रमहु न जग इच्छा तुव पूजी॥
जौ तुम याहि भाग निज लेखौ। तौ मुरि निज प्यारी मुख देखौ॥
जीवन सरवस याहि बनाई। रहौ चूमि मुख कंठ लगाई॥
अब जौ प्यारी सुन्दरी तुव अनुशासन होय।
तौ हम चुम्बन लेहिं अरू निजहु देहिं भय खोय॥

(मुंह चूमता है)

कहं द्वै जन की होड़ मैं जीतत बाजी कोय।
तौ सब दिसि सों एक संग ताकी जय धुनि होय॥
सो कोलाहल सुनत ही तासु बुद्धि अकुलाय।
ठाढ़ी सोचत सांच ही जीत्यो मैं इत आय॥
तिमि सुन्दरी सन्देह यह मेरे हू जिय माहिं।
कै जो देखत मैं दृगन तौन सांच की नाहिं॥
सो मम भ्रम तुम करि दया बेगहि देहु मिटाय।
मम जयपत्र सकारि पुनि सुन्दरि मुहि अपनाय॥

पुरश्री : मेरे स्वामी बसन्त आप मुझे जैसी खड़ी हुई देखते हैं वैसे ही मैं हूं; यद्यपि केवल अपने लिए मेरे जी में यह अभिलाष नहीं है कि मैं अपनी वर्त्तमान अवस्था से बढ़ जाऊं। किन्तु आप के विचार से मेरा बस चलै तो मैं सौगुनी अच्छी हो जाऊं। रूप में सहस्र बार और धन में लक्षवार अधिक हो जाऊं, केवल इसलिए कि आप की दृष्टि में जंचूं। सम्भव है कि मैं गुण, सौन्दर्य लक्ष्मी और मित्रों में अत्यन्त बढ़ जाऊं तथापि इन सब अलभ्य पदार्थों के होते भी मेरी अवस्था यह है कि मैं एक निरी मूर्ख, बेसमझ और सीधी सादी छोकरी हूं; पर हां इस बात से तो प्रसन्न हूं कि मेरी अवस्था इतनी

अधिक अभी नहीं हुई है कि मैं कुछ सीख न सकूं और इस कारण से और भी प्रसन्न हूं कि इतनी कुंठित भी नहीं हो गई हूं कि सीखने के योग्य न रही हूं और सब से अधिक प्रसन्नता का कारण यह है कि मैं अपने भोले चित्त को आप को सौंपती हूं कि वह आप को अपना स्वामी, अपना नियन्ता, अपना अधिपति समझ कर जो आप कहें सो किया करें। मैं और जो कुछ मेरा है अब वह सब आप का हो चुका। अभी एक साइत हुई कि मैं इस राजभवन और अपने अनुचरों की स्वामिनी और अपने मन की रानी थी, और अभी इस क्षण यह घर, ये नौकर चाकर और मैं आप, सब आप के हो गए। मैं इन सभों को इस अंगूठी के साथ आप को सौंपती हूं। जब यह अंगूठी आप के पास न रहे, खो जाय या आप इसे किसी को दे देवें तो मैं तो समझूंगी कि आप के प्रेम में अंतर आ गया और फिर मुझे आप से उपालम्भ देने का पूरा स्वत्व प्राप्त होगा।

बसन्त : प्यारी, मेरी जिह्वा को सामर्थ्य नहीं कि तुम्हारे उत्तर में एक अक्षर भी निकालै, पर हां, मेरा रोम रोम तुम्हारी कृतज्ञता में जिह्वा बन रहा है और मेरी सुधि में ऐसी घबड़ाहट आ गई है जैसी कि प्रजाबन्द में उस समय दृष्टि पड़ती है जबकि वह अपने प्यारे राजा के मुख से कोई उत्तम व्याख्यान सुनकर प्रसन्न हो जाते हैं और वाह वाह करने और आशीष देने लगते हैं जबकि बहुत से शब्द जिन के कुछ अर्थ हो सकते हैं मिल कर सब व्यर्थ हो जाते हैं और सिवाय इस के कि उन से प्रसन्नता प्रकट हो और कोई तात्पर्य्य नहीं समझ में आता। परन्तु यह प्यारी अंगूठी मेरी उंगली से उसी समय जुदा होगी जबकि इस उंगली से सत्ता निकल जायगी और उस समय तुम निस्सन्देह समझ लेना कि बसन्त मर गया।

पुरश्री : मेरे स्वामी और मेरी स्वामिनी, अब तक हम लोग खड़े खड़े अपने मन के मनोरथ के पूर्ण होते देखा किए और अब हम लोगों की बारी है कि 'कल्याण हो' की ध्वनि मचावैं। 'कल्याण हो' ऐ मेरे स्वामी और मेरी स्वामिनी।

गिरीश : ऐ मेरे स्वामी बसन्त और मेरी सरल स्वामिनी, मेरी यही आसीस है कि आप के सारे मनोरथ पूरे हों क्योंकि मुझे निश्चय है कि आप मेरे हर्ष को तो बांट लेंगे ही नहीं, अतः मेरी यह प्रार्थना है कि जिस समय आप लोग परस्पर अपनी मनोभिलाष और प्रतिज्ञा पूरी करें उसी समय मेरा ब्याह भी कर दिया जाय।

बसन्त : मुझे तन और मन से स्वीकार है पर इस शर्त पर कि तुम अपने

लिए कोई स्त्री ठहरा लो।

गिरीश : मैं आप को धन्यवाद देता हूं कि आप ही के न्यौछावर में मेरा काम भी निकल आया, क्यौंकि ज्यौं ही आप की प्रेम दृष्टि राजकुमारी पर पड़ी, मेरे नेत्रों में भी उन की सहेली बस गई। उधर आप अनुरक्त हुए इधर मैं प्रेम के फन्दे में फंसा। इस में न आप को विलंब लगा न मुझे। आप के प्रारब्ध की परीक्षा सन्दूकों के चुनने पर थी वैसे ही मेरा भाग्य भी उन्हीं के साथ अटका हुआ था। तात्पर्य यह है कि मुझे इस सुन्दरी की इतनी सुश्रूषा करनी पड़ी कि शरीर से स्वेद निकल आया और अपनी प्रीति का निश्चय दिलाने के लिए इतनी सौगन्दें खानी पड़ीं कि तालू चटक गया तब कहीं, यदि वाक्‌दान कोई वस्तु है तो इन के मुख से यह वाक्य निकला कि जो तुम्हारे स्वामी का विवाह मेरी स्वामिनी से हो जायगा तो मैं भी तुम्हें ग्रहण करूंगी।

पुरश्री : नरश्री क्या यह बात सच है?

नरश्री : हां, सखी यदि आप की इच्छा के विरुद्ध न हो तो सच ही समझी जायगी।

बसन्त : और तुम गिरीश, धर्म्मपूर्वक यह विचार करते हो न?

गिरीश : धर्म्मावतार सब सच्चे जी से।

बसन्त : तुम्हारे ब्याह से हमारे समाज का आनन्द दूना हो उठैगा।

गिरीश : ये यह कौन आता है? अहा लवंग और उन की प्राणप्यारी! और हमारे पुराने वंशनगर के मित्र सलोने भी साथ हैं।

[लवंग, जसोदा और सलोने आते हैं]

बसन्त : अहा, लवंग और सलोने आए परन्तु मैं अपनी अवस्था में बिना अपनी प्यारी की आज्ञा के प्रसन्नता प्रगट करने का कब अधिकार रखता हूं। प्यारी पुरश्री यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मैं अपने सच्चे मित्रों और स्वदेशियों के आने पर प्रसन्नता प्रकट करूं।

पुरश्री : मेरे स्वामी, इस में मेरी परम प्रसन्नता है, ऐसे लोगों का भाग्य से आना होता है।

लवंग : मैं आप को धन्यवाद देता हूं, किन्तु सच पूछिए तो मेरी इच्छा आप से यहां भेंट करने की न थी परन्तु मार्ग में सलोने मित्र मिल गए और मुझे यहां लाने के विषय में इतना हठ किया कि मैं नहीं न कर सका और साथ आना ही पड़ा।

सलोने : जी हां, मैं इन को वस्तुतः खींच लाया पर इस का एक मुख्य कारण है। अनन्त महाशय ने आप को सलाम कहा है।

[वसन्त के हाथ में एक पत्र देता है]

बसन्त : इस से पहिले कि मैं उन के पत्र को खोलूं मुझे भगवान् के लिए इतना बता दो कि मेरे सुहृन्मित्र प्रसन्न तो हैं।

सलोने : देखने में तो वह पीड़ित नहीं हैं परन्तु आन्तरिक हों तो हों। और न अच्छे ही दृष्टि आते हैं किन्तु चित्त का हाल मैं नहीं कह सकता। अच्छा, उस पत्र से उन का वृत्तान्त आप को भलीभांति सूचित हो जायगा।

गिरीश : नरश्री अपने पाहुनों का सत्कार करो और उन का मन बहलाओ। सलोने नेक इधर ध्यान दीजिए। कहो तो वंशनगर का क्या समाचार है, सब सौदागरों के सिरताज हमारे सृहद अनन्त किस भांति हैं? हमारे पूर्ण मनोरथ होने का समाचार सुनकर तो वह फूले न समायंगे, हम लोग अपने समय के महावीर हैं क्योंकि सोने की खाल हमने ही जीती है।

सलोने : मेरी जान तो यदि तुम उस खाल को जीतते जिसे बसन्त हारे हैं तो अच्छा होता।

पुरश्री : कदाचित् पत्र में कोई बुरा समाचार है कि जिससे बसन्त के मुख की कान्ति बढ़ी जाती है। कोई प्रिय मित्र मर गया हो, नहीं तो कौन ऐसी बात है कि जिस से ऐसे धीर मनुष्य की अवस्था हीन हो जाय। ऐं! यह तो क्षण प्रति क्षण मुख की पांडुता बढ़ती जाती है। बसन्त, मुझे क्षमा कीजिएगा। मैं आप के शरीर का अर्द्धांग हूं, और इसलिए जो कुछ कि उस पत्र में लिखा है उस में से आधा हाल सुनने की मैं भी अधिकारी हूं!

बसन्त : ऐ मेरी प्यारी पुरश्री, इस पत्र में कई एक ऐसे दुःखदायी शब्द हैं कि जिन का वर्णन नहीं हो सकता। मेरी सुजान प्यारी तुम भलीभांति जानती हो कि जब मैंने तुम्हें अपना मन दिया था तो यह पहले ही कह दिया था कि जो, कुछ भी मेरी पूंजी है वह मेरा शरीर है अर्थात् मैं अपने कुल का कुलीन हूं। और इस में कोई बात मिथ्या न थी, परन्तु प्यारी यद्यपि मैंने अपनी क्षमता तुम पर स्पष्ट प्रकट कर दी तो भी यदि सच पूछो तो मैंने अभिमान किया क्योंकि जिस समय मैंने तुम से यह कहा कि मेरे पास कुछ नहीं है, मुझे यों कहना चाहिए था कि मेरी अवस्था उस से भी गई बीती है। खेद है कि मैंने केवल अपना मनोरथ पूरा करने के लिए अपने प्यारे मित्र को उसके परम शत्रु के पंजे में फंसा दिया। देखो यह पत्र वर्त्तमान है जिसे मेरे मित्र का शरीर समझना चाहिए और प्रति शब्द उस का

नया घाव जिससे रक्त टपक रहा है। पर क्यौं सलोने, क्या यह सत्य है कि उन का सारा काम बिगड़ गया? क्या एक भी ठीक न उतरा? ऐ त्रिपुल, मौक्षिक अंगदेश, नन्दन, बरबर और हिन्दुस्तान सब देशों के जहाजों में से एक भी व्यापारियों को निराश करने वाली चट्टानों ने अखंड न छोड़ा।

सलोने : महाराज, एक भी नहीं। तिस पर यह और आपूर्ति है कि यदि वह जैन को नकद रुपया देने का कहीं से प्रबन्ध भी करैं तो वह न लेगा। मेरी दृष्टि में तो ऐसा व्यक्ति मनुष्य की उन्नति तथा उस की अवनति का साथी अब तक नहीं आया! इसी सोच में वह प्रतिदिन सायं प्रातः मंडलेश्वर को जाकर घेरता है और कहता है कि यदि मेरे साथ न्याय न बरता जायगा तो इस राज्य के इस सिद्धांत पर कि वह प्रति वर्ण के लोगों को एक दृष्टि से देखता है बट्टा लग जायगा। बीस सौदागरों और कितने और बड़े बड़े नामी लोगों ने और मंडलेश्वर ने आप भी उसे समझाया पर उसने एक की भी न सुनी। अब बतलाइए क्या किया जाय? उस पर तो ईर्षा के मारे यही धुन सवार है कि बस जो कुछ होना था सो हो चुका अब तमस्सुक के प्रण के अनुसार मेरा विचार हो।

जसोदा : जब कि मैं उन के साथ थी मैंने उन्हें प्रायः दुर्बल और अक्रूर अपने स्वदेशियों से इस बात की सौगन्द खाते हुए सुना था कि यदि मुझे कोई ऋण के बीस गुना रुपये भी दे तो अनन्त के मांस के अतिरिक्त उस की ओर आंख उठाकर न देखूंगा और महाराज, मुझे निश्चय है कि यदि वहां के विचाराधीन कानून के अनुकूल उसे हठपूर्व्वक रोक न रक्खैंगे तो विचारे अनन्त के सिर पर बुरी बीतैगी।

पुरश्री : क्या वह आप के कोई प्यारे मित्र हैं जिन पर यह आपत्ति आई है।

बसन्त : (आह भर कर) यह वही मेरा सबसे प्यारा मित्र है जो उपकार करने में अपना जोड़ी नहीं रखता, उपकार करने में कभी नहीं थकता और शील का राजा है। इस समय मारवाड़ में वही अकेला एक मनुष्य है जिस में मारवाड़ के प्राचीन समय के लोगों की उत्तम बातैं और उच्च विचार पूरे पूरे पाये जाते हैं।

पुरश्री : उन्हें उस जैन का कितना देना है?

बसन्त : मेरे ही कारण छः हजार रुपये के ऋणी हो गए हैं।

पुरश्री : बस इतना ही? आप बारह सहस्र देकर तमस्सुक फेर लीजिए। यदि आवश्यकता हो तो बारह सहस्र के भी दूने कर डालिए और इस दूने के तिगुने, पर ऐसा कदापि न होने पावै कि बसन्त के कारण

उनके ऐसे अनुपम मित्र का एक रोम भी टेढ़ा हो। चलिये अभी मन्दिर में चलकर ब्याह की रीति कर लीजिए और इस के उपरान्त सीधे अपने मित्र के पास वंशनगर को चले जाइए; क्यौंकि जब तक आप का शोच दूर न हो लेगा, मुझे आप के साथ सोना धिक्कार है। उस छोटे ऋण के चुका देने के लिए उस का बीस गुना रुपया लेते जाइये और उसे देकर अपने मित्र को यहां साथ लेते आइये। इस बीच में मैं और मेरी सहेली नरश्री कुमारी और विधवा स्त्रियों की भांति अपना समय काटैंगी। आइये चलिये क्यौंकि आप को आज ही अपने ब्याह के दिन यहां से जाना है। अपने मित्रों से प्रसन्नतापूर्व्वक मिलिए और अपना मन विकसित रखिए। आप से मिलने में जितनी कठिनता होवैगी उतने ही अधिक आप मुझे प्यारे प्रतीत होंगे। परन्तु तनिक अपने दोस्त का पत्र तो सुनाइए।

वसन्त : (पढ़ता है) मेरे प्यारे बसन्त, सब जहाज नष्ट हो गए मेरे ऋणदाता निर्दयता से वर्त्तते हैं। मेरी अवस्था अत्यन्त ही नष्ट है और मेरी प्रतिज्ञा जैन के साथ टल गई और जो कि ऋण के चुका देने में सम्भव नहीं कि मैं जीता बचूं, इसलिए मैं सब हिसाब अपने और तुम्हारे बीच साफ समझूंगा कि मैं अपने मरने के समय तुम्हैं एक आंख देख लूं। परन्तु हर हालत से यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर है। यदि मेरा प्रेम तुम्हैं यहां तक न खींच ला सकै तो मेरे पत्र का कुछ ध्यान न करना।

पुरश्री : मेरे प्यारे सब काम को झटपट पूरा कर के एकबारगी चले ही जाओ।

बसन्त : जब तुमने प्रसन्नता से जाने की आज्ञा दे दी तो अब मुझे क्या विलम्ब है। परन्तु जब तक कि मैं लौट न आऊं मेरे लिए नींद हराम और सुख दुःख से अधम है।

●

तीसरा दृश्य

स्थान–वंशनगर की एक सड़क

[शैलाक्ष, सलारन, अनन्त और कारागार के प्रधान आते हैं]

शैलाक्ष : प्रधान, इससे सचेत रहो; मुझ से दया का नाम न लो। यही वह मूर्ख है जो लोगों को बिना ब्याज रुपए ऋण दिया करता था। प्रधान इससे सावधान रहो।

अनन्त : मेरे सुहृद शैलाक्ष कुछ तो मेरी सुन लो।

शैलाक्ष : मैं तमस्सुक के प्रणों को नहीं तोड़ने का, उस के विरुद्ध कुछ मत कहो। मैं इस बात की शपथ खा चुका हूं कि अपने तमस्सुक की शर्तों पर दृढ़ रहूंगा। तुम ही न इस मुकद्दमे के होने के पहिले मुझे कुत्ता कहा करते थे। अच्छा, मैं तो तुम्हारे कहने अनुसार कुत्ता हो ही चुका पर नेक मेरे पंजों से डरते रहना; मंडलेश्वर साहिब मेरा विचार करैंगे! मुझे तो ऐ दुष्ट प्रधान, तुझ पर आश्चर्य होता है कि तुझे क्या मूर्खता सूझी है जो इस की बातों में आकर इसे बेखटके इधर उधर लिये फिरता है।

अनन्त : भगवान् के वास्ते एक बात तो मेरी सुन लो।

शैलाक्ष : मुझे अपने तमस्सुक से काम है, मैं कदापि तुम्हारी बात न सुनूंगा; मुझे केवल अपने तमस्सुक से काम है; बस अब अधिक गिड़गिड़ाने से क्या लाभ। मैं कुछ ऐसा चित्त का दुर्बल अथवा आंखों का अन्धा थोड़े ही हूं जो सिर हिलाकर खेद करूं, आहें भरूं और आर्य्यों के समझाने बुझाने में आकर पिघल जाऊं। मेरे पीछे न आओ, मैं कदापि सुनने का नहीं, मुझे अपने तमस्सुक से काम है।

[शैलाक्ष जाता है]

सलारन : मनुष्य की आकृति में ऐसा पाषाण हृदय कुत्ता काहे को निकलैगा।

अनन्त : जाने दो, अब मैं उस के पीछे व्यर्थ गिड़गिड़ाता न फिरूंगा। वह मेरे प्राण लेने की चिन्ता में है और इस का कारण भी मैं भलीभांति जानता हूं। प्रायः मैंने बहुतेरे लोगों को जो मेरे पास आकर रोये

हैं उस के पंजे में छुड़ाया है और इसी कारण से वह मेरा प्राणघातक शत्रु हो रहा है।

सलारन : मुझे निश्चय है कि मंडलेश्वर उस की शर्त को कदापि स्थिर न रहने देंगे।

अनन्त : क्यों नहीं, मंडलेश्वर कानून के उद्देश्य को जिस से विदेशी वंशनगर में आकर बेखटके लेन देन करते हैं क्योंकर बदल सकते हैं। यदि अस्वीकार किया जाय तो यहां के राज्य का अपवाद है क्योंकि इस नगर का वाणिज्य और लाभ सब जाति वालों के मिलाप होने के कारण है। अच्छा तो अब तुम जाओ। जो दुःख और क्षतियां मैंने इधर उठाई हैं उन के कारण मेरी अवस्था ऐसी नष्ट हो गई है कि कदाचित् कल तक मेरे रक्त के प्यासे ऋणदाताओं के लिए मेरे शरीर में आध सेर मांस भी शेष न रहै। आओ प्रधान चलो। ईश्वर करै कहीं बसन्त आ जाय और मुझे अपना ऋण चुकाते हुए देख ले, फिर मेरे जी में कोई लालसा शेष न रहैगी।

[सब जाते हैं]

●

चौथा दृश्य

स्थान–विल्वमठ पुरश्री के घर का एक कमरा

[पुरश्री, लवंग, जसोदा और बालेसर आते हैं]

लवंग : प्यारी, यद्यपि आप के मुंह पर कहना सुश्रूषा है पर आप में ठीक देवताओं का सा सच्चा और पवित्र प्रेम पाया जाता है और इस का बड़ा प्रमाण यह है कि आप ने इस भांति अपने स्वामी का विरह सहन किया किन्तु यदि आप को विदित हो कि आप ने किस पर इतनी कृपा की है और वास्तव में कैसे सच्चे सभ्य को सहायता भेजी है और उस को मेरे स्वामी अर्थात् आप के स्वामी से कैसी प्रीति है तो आप को अपने इस कृत्य पर और साधारण कर्तव्यों की अपेक्षा कहीं बढ़ कर प्रसन्नता हो।

पुरश्री : मैं अच्छे काम कर के न आज तक पछताई हूं और न अब पछताऊंगी क्योंकि ऐसे मित्र जो हर क्षण मिले जुले रहते हैं और जिन के चित्त में एक दूसरे का समान प्रेम है मानो एक प्राण दो देह हैं उन की चाल ढाल रहन सहन और चित्त भी अवश्य ही एक-सा होगा तो मैं समझती हूं कि यह अनन्त जो मेरे स्वामी के अन्तरंग मित्र हैं उन्हीं के सदृश होंगे। यदि ऐसा है तो मैंने अपने स्वामी के चित्त को महा आपत्ति के पंजे से कैसे थोड़े व्यय में छुड़ा पाया। पर इस से तो मेरी ही प्रशंसा निकलती है, इसलिए अब इस प्रकरण को छोड़ कर दूसरी बातें सुनो। लवंग मैं अपने घर और गृहस्थी का सारा प्रबंध अपने स्वामी के लौट आने तक तुम्हारे आधीन करती हूं। रही मैं सो मैंने अपने मन में ईश्वर के सामने एक मन्नत मानी है कि नरश्री को साथ लेकर उस के स्वामी और अपने स्वामी के आने तक प्रार्थना करती और उस की ओर लौ लगाए रहूं। यहां से दो मील पर एक मठ है, उसी में जाकर हम लोग रहेंगी। मैं आशा करती हूं कि तुम मेरी इस प्रार्थना से जिसे अपनी प्रीति और कुछ अधिक आवश्यकता होने के कारण करती हूं अनंगीकार न करोगे।

लवंग : प्यारी, मैं तन मन से आप की आज्ञा का अनुगामी हूं।

पुरश्री : मेरे नौकर चाकर इस इच्छा को जान चुके हैं और वह तुम्हें और जसोदा को महाराज बसन्त और मेरे स्थानापन्न समझैंगे। अच्छा, अब मैं तुम लोगों से विदा होती हूं जब तक कि भगवान् तुम से फिर न मिलाए।

लवंग : भगवान आप को उच्च मनोरथ और उत्तम साहस दें।

जसोदा : मेरी आसीस है कि आप का आन्तरिक मनोरथ पूरा हो।

पुरश्री : मैं तुम्हारी इस अभिलाष का धन्यवाद देती हूं और तुम्हारे विषय में भी वैसा ही जी से चाहती हूं। जसोदा मेरा राम राम लो।

[जसोदा और लवंग जाते हैं]

हां बालेसर जैसा कि मैंने तुम्हें सदा सच्चा और धार्म्मिक पाया है वैसा ही मैं चाहती हूं कि अब भी पाऊं। इस पत्र को लो और जहां तक कि तुम्हारे पांव में बल हो शीघ्र पांडुपुर पहुंचने का प्रयत्न करो और इसे मेरे चचेरे भाई कविराज बलवन्त के हाथ में दो और देखो कि जो पत्र और वस्त्र वह तुम्हें दें उन्हें ईश्वर के वास्ते मन से अधिक तीव्र उस घाट पर जहां से वंशनगर को व्यापार का माल जाता है, लेकर आओ। बस अब चले जाओ, बातों में समय नष्ट न करो। मैं तुम से पहिले वहां पहुंच जाऊंगी।

बालेसर : बबुई, मैं जितना शीघ्र सम्भव होगा जाऊंगा।

पुरश्री : इधर आओ नरश्री मुझे अभी वह काम करना है जो तुम्हें अभी विदित नहीं है। हम तुम चलकर अपने स्वामी को देखैंगे और उन को इस का ध्यान भी न होगा।

नरश्री : हमैं भी वह देखैंगे या नहीं?

पुरश्री : हां हां परन्तु ऐसे भेष में कि उन्हें ध्यान न होगा कि वे वीरता के चिह्न जो स्त्रियों में नहीं होते हम में उपस्थित हैं। मैं प्रण करती हूं कि जब हम तुम युवा मनुष्यों की भांति वस्त्र इत्यादि पहिन कर तैयार हो जायंगे, उस समय मैं तुम से बढ़ कर सजीली जान पडूंगी और अपनी तलवार को खूब तिरछी बांधकर चलूंगी और बालक और युवा के शब्द के बीच का भारी शब्द बनाकर बोलूंगी और स्त्रियों की मंदगति छोड़ कर पुरुषों की भांति लम्बे पैर रक्खूंगी और एक अभिमानी नवयुवक व्यसनी पुरुष की भांति युद्ध इत्यादि का भी वर्णन करूंगी और झूठी बातें गढ़ गढ़ कर कहूंगी कि बड़ी प्रतिष्ठित स्त्रियां मुझ पर आसक्त हुईं पर मैंने उन्हें ऐसा कोरा उत्तर दिया कि नैराश्य से पीड़ित होकर मर गईं पर मेरा इस में क्या बस था

फिर मैं खेद प्रकट करूंगी और कहूंगी कि यद्यपि इस में मुझ पर कुछ दोष नहीं है किन्तु यदि वह मेरे इश्क में न मरतीं तो उत्तम था और इसी प्रकार के बीसों झूठ ऐसे बोलूंगी कि लोगों को इस बात का पक्का विश्वास हो जायगा कि मुझे पाठशाला छोड़े साल भर से अधिक न हुआ होगा। मुझे इन अभिमानी छोकरों के सहस्रों चुटकुले स्मरण हैं और इन्हीं में से अपना काम निकालूंगी। परन्तु आओ मैं तुम से अपना सब उपाय गाड़ी में जो बगीचे के फाटक पर खड़ी है सवार होकर वर्णन करूंगी। बस अब शीघ्र ही चलो क्योंकि हमें आज ही बीस मील समाप्त करना है।

[दोनों जाती हैं]

●

पांचवां दृश्य

स्थान–विल्वमठ–एक उद्यान

[गोप और जसोदा आते हैं]

गोप : हां बेशक–तुम जानती हो कि पिता के पापों का दंड उसके बच्चों को भोगना पड़ता है इसलिए मैं सच कहता हूं कि मुझे तुम्हारा अमंगल दृष्टि आता है। मैंने तुम से छलबल की बात आज तक नहीं की है और अब भी तुम से अपना विचार स्पष्ट कह दिया। नेक अपने मन को प्रसन्न रक्खो क्यौंकि मेरी सम्मति में तो तुम अपराधग्रस्त हो चुकीं। हां, एक उपाय तुम्हारे कल्याण का दृष्टि में आता है सो उस की भी आशा कुछ ऐसी वैसी है।

जसोदा : वह कौन सा उपाय है नेक बताना तो?

गोप : भाई! तुम यह समझो कि तुम अपने पिता से उत्पन्न नहीं हो अर्थात् तुम जैन की कन्या नहीं हो।

जसोदा : तौ तो सचमुच यह आशा ऐसी ही वैसी है क्यौंकि ऐसा करने में मुझे अपनी माता के अपराधों का दंड मिलैगा।

गोप : हां सच तो है, तब तो मुझे भय है कि तुम अपने माता पिता दोनों के निमित्त दंड पाओगी। हाय हाय, जब मैं तुम्हें उधर अर्थात् तुम्हारे पिता से बचाता हूं तो इधर खाई अर्थात् तुम्हारी माता दृष्टि आती हैं। अच्छा तो अब तुम दोनों ओर से गई।

जसोदा : मैं अपने स्वामी के द्वारा मुक्ति पाऊंगी वह मुझे आर्य्य धर्म्म में लाए हैं।

गोप : तौ तो प्रधान दोष उन पर है! हम लोग पहिले ही से आर्य्य धर्म्म के क्या न्यून मनुष्य हैं। परन्तु अच्छा जितने थे उतने का किसी भांति पूरा पड़ जाता था पर अब नये आर्य्यों के भरती होने से सूअर का दाम बढ़ जायगा। यदि हम सब के सब शूकर भक्षी बन जायंगे तो थोड़े दिनों में बहुत दाम देने से भी उस स्वादिष्ट मांस का एक टुकड़ा भी हाथ न आवैगा।

[लवंग आता है]

जसोदा : गोप, मैं तुम्हारी सब बातें अपने स्वामी से कहूंगी; देखो वह आते हैं।

लवंग : गोप, यदि तुम इस भांति मेरी स्त्री से परोक्ष में बात किया करोगे तो मुझ से कैसे देखा जायगा।

जसोदा : नहीं लवंग, तुम हम लोगों की ओर से सन्देह मत करो; मुझ से और गोप से कहासुनी हो रही है क्यौंकि वह मुझ से स्पष्ट कहता है कि मुझ को भगवान् न क्षमा करैगा क्यौंकि मैं जैन की पुत्री हूं और तुम्हारे विषय में कहता है कि तुम अपनी जाति के शुभचिन्तक नहीं हो क्यौंकि जैनियों को आर्य्य बनाकर सूअर के मांस का भाव बिगाड़ते हो।

लवंग : अबे जा, उन लोगों से भोजन की तैयारी के लिए कह दे।

गोप : साहिब, वह सब प्रस्तुत है क्यौंकि उन को भी तो पेट है।

लवंग : ईश्वर का कोप हो तुझ पर। तू क्या ही हंसोड़ है। अच्छा उन्हें थाली परोसने के लिए कह दे।

गोप : यह भी हो चुका है केवल आच्छादन करना शेष है।

लवंग : तो शीघ्र आच्छादित करो।

गोप : यह मेरा सामर्थ्य नहीं कि स्वामी के सामने आच्छादन करूं।

लवंग : फिर भी अपना ही राग गाये जाता है। क्या तू एक ही क्षण में अपना कुल हंसोड़पन खर्च कर डालैगा? मैं तुझ से विनय करता हूं कि मेरी सरल बातचीत के सीधे अर्थ समझ। जा अपने साथियों से कह दे कि थाली में मांस चुन कर ढंपना, छुरी कांटा इत्यादि रख दे। हम लोग भोजन को आते हैं।

गोप : महाराज, थाली तो परस दी जायगी और मांस भी लगा दिया जायगा पर बिना चुहल के खाना अलोना प्रतीत होगा। इस से इस का तार न तोड़िए।

लवंग : ईश्वर की शरण, इस दुष्ट में तो हंसोड़पन कूट कूट कर भरी है मानो इस के सिर में श्लेष की सेना पैंतरा बांधे हर समय उपस्थित है। मैं बहुतेरे दुष्टों को जानता हूं जो इस से अधिकार में कहीं बढ़ कर हैं परन्तु शब्दों के प्रयोग में अर्थ का सत्यानाश करते हैं। जसोदा तुम किस विचार में हो। भला प्यारी तुम अपनी सम्मति तो वर्णन करो कि तुम राजकुमार बसन्त की अर्द्धांगिनी को कैसा समझती हो?

जसोदा : उन की प्रशंसा अनिर्वचनीय है। मेरी जान में तो उचित होगा कि राजकुमार बसन्त को अब अपना जीवन निरी पवित्रता के साथ

बिताना चाहिए क्योंकि जो पदार्थ कि उन्हें अपनी स्त्री में मिला है वह ऐसा है कि मानों उन्हें पृथ्वी पर स्वर्ग का सुख जीते जी हाथ लगा और यदि वह इस का आदर न करें तो स्पष्ट है कि उन्हें स्वर्ग का सुख भी क्या उठैगा। मेरी समझ में तो यदि दो देवता आपस में कोई स्वर्गीय कौतुक करें और दो सांसारिक स्त्रियों की होड़ बदें और इन में से एक पुरश्री को अपनी ओर से बाजी में लगावें तो दूसरे को अपनी शर्त में एक स्त्री के साथ और भी बहुत कुछ बदना होगा। क्योंकि इस उजाड़ संसार में पुरश्री का सा दूसरा तो मिलना नहीं।

लवंग : जैसा कि राजकुमार बसन्त को स्त्री लब्ध हुई है वैसा ही मैं भी तुम्हें स्वामी मिला दूं।

जसोदा : सत्य बचन। परन्तु इस के विषय में भी तनिक मेरी सम्मति पूछ देखो?

लवंग : हां अभी पूछता हूं। पहिले चलो खाना खा लें।

जसोदा : नहीं, अभी मुझे पेट भर तुम अपनी प्रशंसा कर लेने दो भोजन के उपरान्त समाई न रहैगी।

लवंग : भगवान् के वास्ते यह कथा खाने के समय के लिए रहने दो। उस समय तुम मुझे कैसा ही कुछ कहोगी मैं उसे और पदार्थों के साथ पचा जाऊंगा।

जसोदा : बहुत अच्छा मैं आप की प्रशंसा की पोथी वहीं खोलूंगी।

[दोनों जाते हैं]

●

चौथा अंक

पहिला दृश्य

स्थान–वंशनगर राजद्वार

[मंडलेश्वर वंशनगर, प्रधान लोग, अनन्त, बसन्त, गिरीश, सलारन, सलोने और दूसरे लोग आते हैं]

मंडलेश्वर : अनन्त आ गए हैं?

अनन्त : धर्मावतार उपस्थित हूं।

मंडलेश्वर : मुझे तुम पर अत्यन्त शोच होता है क्योंकि तुम ऐसे दुष्ट कठोर वज्रहृदय वादी (मुद्दई) के उत्तर देने के लिए बुलाये गए हो, जिसे दया नाम को भी नहीं छू गई है।

अनन्त : मैं सुन चुका हूं कि महाराज ने उस के क्रूर बरताव के नम्र करने के प्रयत्न में कितना श्रम किया परन्तु उस पर किसी बात की सिद्धि नहीं होती और न मैं किसी उचित रीति से उस की शत्रुता की परिधि के बाहर जा सकता हूं। अतः मैं अपना संतोष उस के अनर्थ के प्रति प्रकट करता हूं और उस का अत्याचार सहने को सब प्रकार से प्रस्तुत हूं और कदापि मुख से आह न निकालूंगा।

मंडलेश्वर : कोई जाय और उस जैन को न्यायालय में उपस्थित करै।

सलोने : महाराज, वह पहिले ही से द्वार पर खड़ा है। वह देखिए आ पहुंचा।

[शैलाक्ष आता है]

मंडलेश्वर : सब लोग स्थान दो जिस में वह हमारे सम्मुख आकर खड़ा हो। शैलाक्ष, सारा संसार सोचता है और मैं भी ऐसा ही समझता हूं कि यह हठ तुम उसी क्षण तक स्थिर रक्खोगे जब तक कि उस के पूरे होने का समय न आ जायगा और सब लोगों का यह विचार है कि तुम जितनी अब प्रगट में कठोरता दिखला रहे हो उस की अपेक्षा कहीं अधिक खेद और दया का प्रकाश करोगे और जहां कि अभी तुम उस से प्रतिज्ञा भंग होने का दंड लेने पर प्रस्तुत हो (जो इस दीन व्यापारी के शरीर

का आध सेर मांस है) वहां उस समय तुम केवल इस दंड ही के छोड़ने पर अभिमत न हो जाओगे वरंच मनुष्य धर्म्म और शील का अनुकरण करके मूल ऋण में से आधा छोड़ दोगे। यदि उस की हानियों की ओर जो इधर थोड़ी देर में उस के ऊपर फट पड़ी है ध्यान दिया जाय तो वही इतने बड़े व्यापारी की कमर तोड़ देने के लिए बहुत है और कोई मनुष्य कैसा ही कठोर चित्त क्यों न हो और पत्थर का हृदय क्यों न रखता हो यहां तक कि कोल और भिल्ल भी जिन्होंने कभी शील का नाम नहीं सुना उस की दशा को देख कर अत्यन्त ही शोक करैंगे, तो ऐ जैन हम लोग आशा करते हैं कि तुम इस का उत्तर नम्रता पूर्व्वक दोगे।

शैलाक्ष : महाराज को अपने उद्देश्य से सूचित कर चुका हूं और मैंने अपने पवित्र दिन रविवार की शपथ खाई है कि जो कुछ मेरा दस्तावेज के अनुसार चाहिए वह भग्नप्रतिज्ञ होने के दंड के सहित लूंगा। यदि महाराज उस को दिलवाना अनंगीकार करैं तो इस का अपवाद महाराज के न्याय और महाराज के नगर की स्वतन्त्रता के सिर पर। महाराज मुझ से यही न पूछते हैं कि मैं इतना मृतमांस छः हजार रुपयों के बदले लेकर क्या करूंगा। इस का उत्तर मैं यही देता हूं कि मेरे मन की प्रसन्नता। बस अब महाराज को उत्तर मिला? यदि मेरे घर में किसी घूंस ने बहुत सिर उठा रक्खा हो और मैं उस के नष्ट करने के लिए बीस सहस्र मुद्रा व्यय कर डालूं तो मुझे कौन रोक सकता है। अब भी महाराज ने उत्तर पाया या नहीं? कितने लोगों को सूअर के मांस से घृणा होती है, कितने ऐसे हैं कि बिल्ली को देख कर आपे से बाहर हो जाते हैं, तो अब आप मुझ से उत्तर लीजिए कि जैसे इन बातों का कोई मूल कारण नहीं कहा जा सकता कि वह सूअर के मांस से क्यों दूर भागते हैं और यह बिल्ली सदृश दीन और सुखदायक जंतु से क्यों इतना घबराते हैं वैसे ही मैं भी इस का कोई कारण नहीं कह सकता और न कहूंगा। सिवाय इस के कि मेरे और उस के बीच एक पुरानी शत्रुता चली आती है और मुझे उस के स्वरूप से घृणा है जिस के कारण से मैं एक ऐसे विषय का जिस में मेरा इतना घाटा है, उद्योग करता हूं। कहिए अब तो उत्तर मिला?

बसन्त : ओ निर्दय यह बात जिस से तू अपने अत्याचार को उचित सिद्ध करता है कोई उत्तर नहीं है।

शैलाक्ष : मेरा कुछ तेरी प्रसन्नता के लिए उत्तर देना कर्त्तव्य थोड़े ही है।

बसन्त : क्या सब लोग ऐसे पशु को मार डालते हैं जिसे बुरा समझते हैं।

शैलाक्ष : संसार में कोई भी ऐसा मनुष्य है जो किसी जन्तु के मारने से जिस से वह घृणा करता हो, हाथ उठावै।

बसन्त : हर एक अपराध से पहिली बार घृणा नहीं उत्पन्न हो जाती।

शैलाक्ष : क्या तुम चाहते हो कि मैं सांप को दूसरी बार डसने का अवसर दूं।

अनन्त : भगवान् के निहोरे नेक विचारो तो कि तुम किससे बिवाद कर रहे हो। इस को मार्ग पर लाना तो ठीक वैसी ही बात है जैसा कि समुद्र के किनारे खड़े होकर तरंगों को आज्ञा देना कि तुम इतनी ऊंची मत उठो, या भेड़िए से पूछना कि उस ने बकरी के बच्चे को खा कर उस की मां को दुःख में क्यौं फंसाया, या पहाड़ी खजूर के वृक्षों को कहना कि वह अपनी ऊंची फुन्गियों को वायु के झोंके से न हिलने दें और न पत्तों की खड़खड़ाहट का शब्द होने दें, ऐसे ही तुम संसार के कठिन से कठिन काम कर लो। इस के पूर्व्व कि इस जैन के चित्त को (जिस से कठोरतर दूसरा पदार्थ न होगा) द्रव करने का यत्न करो। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूं कि न तो तुम उस से अब कुछ देने दिलाने की बातचीत करो और न इस विषय में अधिक चिन्ता करो वरंच थोड़े में भाग्य पर सन्तोष करके मुझे दंड भुगतने और इस जैन को अपना मनोरथ पूरा करने दो।

बसन्त : तेरे छः हजार रुपयों के बदले यह ले बारह तैयार हैं।

शैलाक्ष : यदि इन बारह हजार रुपयों का हरएक रुपया बारह भागों में बांट दिया जाय और हर एक भाग एक रुपये के बराबर हो तौ भी मैं उन की ओर आंख उठा कर न देखूं, मुझे केवल दस्तावेज के प्रण से काम है।

मंडलेश्वर : भला तू किसी पर दया नहीं करता तो तुझे दूसरों से क्या आशा होगी?

शैलाक्ष : जब मैंने कोई अपराध ही नहीं किया है तो फिर किस बात से डरूं? आप लोगों के पास कितने मोल लिये हुए दास और दासियां उपस्थित हैं जिन्हें आप गधों, कुत्तों और खच्चरों की भांति तुच्छ अवस्था में रखकर उन से सेवा कराते हैं और यह क्यौं? केवल इसलिए कि आप ने उन्हें मोल लिया है। यदि मैं आप से यह कहूं कि आप उन्हें स्वतन्त्र करके अपने कुल में व्याह कर दीजिए, या यह कि उन्हें बोझ के नीचे दबा हुआ पसीने से घुला घुला कर मारे क्यौं डालते हैं, उन्हें भी अपनी सदृश कोमल शैय्या पर सुलाइए और स्वादिष्ट भोजन खिलाइए तो इस के उत्तर में आप यही कहिएगा कि वह दास हमारे हैं, हम जो चाहैंगे करैंगे, तुम कौन? इसी भांति

मैं भी आप को उत्तर देता हूं कि इस आध सेर मांस का जो मैं इस से मांगता हूं बहुत मूल्य दिया गया है, वह मेरा माल है और मैं उसे अवश्य लूंगा। यदि आप दिलवाना अस्वीकार करैं तो आप के न्याय पर थुड़ी है। जाना गया कि वंशनगर के कानून में कुछ भी सार नहीं। मैं राजद्वार की आज्ञा सुनने के लिए उपस्थित हूं, कहिए मुझे मिलैगा या नहीं?

मंडलेश्वर : मुझे निज स्वत्व के अनुसार अधिकार है कि मुकद्दमे के दिन को टाल दूं। यदि बलवन्त नामी एक सुयोग्य वकील जिस की मैंने इस मुकद्दमे के विचार के लिए बुलाया है आज न आया तो मैं इस मुकद्दमे को टाल दूंगा।

सलारन : महाराज, बाहर उस वकील का एक मनुष्य खड़ा है, जो उस के पास से पत्र लेकर अभी पांडुपुर से चला आता है।

मंडलेश्वर : शीघ्र पत्र लाओ और दूत को भीतर बुलाओ।

बसन्त : अनन्त अपने चित्त को स्वस्थ रक्खो कैसे मनुष्य हो! साहस न हारो। पहिले इस के कि तुम्हारा एक बाल भी टेढ़ा हो मैं अपना मांस, त्वचा, अस्थि और जान प्राण वो धन उस जैन के अर्पण करूंगा।

अनन्त : गल्ले भर में मन्नत की दुर्बल भेड़ मैं ही हूं, मेरा ही मरना श्रेय है। कोमल फल सबके पहले पृथ्वी पर गिरता है तो मुझी को गिरने दो। तुम्हारे लिए इस से बढ़ कर कोई बात उचित न होगी कि मेरे पश्चात् मेरा जीवन चरित्र लिक्खो।

[नरश्री वकील के लेखक के भेस में आती है]

मंडलेश्वर : तुम पांडुपुर से बलवन्त के पास से आते हो?

नरश्री : जी महाराज वहीं से उन्हीं के पास से बलवन्त ने आप को प्रणाम कहा है।

[एक पत्र देती है]

बसन्त : क्यौं, तू ऐसे उत्साह से छुरी क्यौं तीक्ष्ण कर रहा है?

शैलाक्ष : उस दिवालिए के शरीर से दंड का मांस काटने के लिए।

गिरीश : अरे निर्दयी जैनी, तू अपनी जूती के तल्ले पर छुरी को क्यौं तेज करता है, तेरा पाषाण तुल्य हृदय तो प्रस्तुत ही है। पर कोई शस्त्र यहां तक कि बधिक की तलवार भी तेरी शत्रुता के वेग को नहीं पहुंच सकती। क्या तुझ पर किसी की विनती काम नहीं आती?

शैलाक्ष : नहीं, एक की भी नहीं जो तू अपने बुद्धि से गढ़ सकते हो।

गिरीश : हा! ओ कठोर कुत्ते, ईश्वर तेरा बुरा करै! यह केवल न्याय का दोष है जिस ने अब तक तुझे जीता रख छोड़ा है, तूने तो आज मेरे

धर्म्म में बट्टा लगा दिया क्योंकि तेरे लक्षणों को देख कर मुझे गोरक्ष के इस विचार को कि पशुओं की आत्मा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करती है, मानना पड़ा। तेरी हिंसक आत्मा एक भेड़िये की छाया में थी जो कितने मनुष्यों के जीव वध के लिये सूली चढ़ा दिया गया था। इस अवस्था को पहुंचने पर भी उस नारकी आत्मा को तोष न हुआ और वहां से भाग कर जिस समय तू अपनी माता के अपवित्र गर्भ में था तुझ में पैठ गई क्योंकि तेरा मनोरथ भी भेड़ियों की भांति घातक हिंसक है।

शैलाक्ष : जब तक कि तेरे धिक्कार में इतनी शक्ति न हो कि अनन्त की मुहर को मेरी दस्तावेज पर से मिटा दे सके तब तक इस विचार से क्या फल निकल सकता है। व्यर्थ को तू चिल्ला चिल्ला कर अपना ही कंठ फाड़ रहा है। ऐ नवयुवक, अपने सुधि की औषधि कर, कहीं ऐसा न हो कि तेरे सिर पर कोई आपत्ति आ जाय। क्या तुझे विदित नहीं कि मैं न्याय के लिए यहां खड़ा हूं?

मंडलेश्वर : बलवन्त अपने पत्र में इस न्याय सभा के लिए एक नवयुवक विद्वान वकील की सिफारिश करता है, वह कहां है?

नरश्री : वह समीप ही आप के उत्तर पाने की प्रत्याशा में खड़े हैं कि आप उन्हें विवाद करने की आज्ञा देंगे या नहीं।

मंडलेश्वर : अति प्रसन्नता से। आप दो चार महाशय जायं और उन का समादर करके सन्मान के साथ यहां ले आएं तब तक विचारसभा बलवन्त का पत्र सुनैगी।

[लेख को पढ़ता है]

श्रीमन्, मैंने महाराज का पत्र अस्वस्थ होने की अवस्था में पाया। परन्तु जिस समय आप का दूत पहुंचा उस समय मेरे मित्रों में से मालवा के एक युवा वकील बालेसर नामी मेरी भेंट करने को आए हुए थे। मैंने उन को जैन और अनन्त सौदागर के मुकद्दमे का सब ब्योरा समझा दिया। हम दोनों मनुष्यों ने मिल कर कई व्यवस्थाएं पलटकर देखीं। मैंने अपनी सम्मति उन से प्रकट कर दी है। अतः वह मेरी सम्मति लेकर जिसे वह अपनी योग्यता के बल से (जिसकी प्रशंसा मैं किसी मुंह से नहीं कर सकता) और सुधार लेंगे। मेरे निवेदन के अनुसार मेरे स्थानापन्न महाराज की सेवा में उपस्थित होते हैं। मैं प्रार्थना करता हूं कि महाराज उन की अल्प अवस्था का ध्यान न करके उन के आदर में कदापि न्यूनता न करैंगे क्योंकि मेरी दृष्टि में ऐसी थोड़ी अवस्था का पुरुष ऐसी पुष्कल बुद्धि के साथ आज

तक नहीं आया। मैं उन्हें महाराज की सेवा में अर्पण करता हूं, परीक्षा से उन की योग्यता का हाल भलीभांति खुल जायगा।

मंडलेश्वर : आप लोगों ने सुना कि प्रसिद्ध विद्वान बलवन्त ने क्या लिखा है और जान पड़ता है कि वकील महाशय भी वह आ रहे हैं।

[पुरश्री वकीलों की भांति वस्त्र पहने हुए आती है]

मंडलेश्वर : आइए, हाथ मिलाइए! आप ही वृद्ध बलवन्त के पास से आते हैं?

पुरश्री : महाराज।

मंडलेश्वर : मुझे आप के आने से बड़ी प्रसन्नता हुई, विराजिए। आप इस मुकद्दमे को जानते हैं जिस का इस समय विचारसभा में विचार हो रहा है?

पुरश्री : मैं उस के वृत्तान्त को भलीभांति जानने वाला हूं। वर्णन कीजिए कि इन लोगों में से कौन सौदागर है और कौन जैन?

मंडलेश्वर : अनन्त और वृद्ध शैलाक्ष दोनों सामने खड़े हो जाओ।

पुरश्री : तुम्हारा नाम शैलाक्ष है?

शैलाक्ष : हां मेरा नाम शैलाक्ष है।

पुरश्री : यह तुम ने विचित्र मुकद्दमा रच रक्खा है, परन्तु नियमानुसार वंशनगर का कानून तुम को उसके प्रयत्न से रोक नहीं सकता। और आप ही इन के पंजे में फंसे हैं, क्यौं साहिब? **(अनन्त से)**

अनन्त : जी हां, मुझी पर इन का लक्ष्य है।

पुरश्री : आप तमस्सुक लिखना स्वीकार करते हैं।

अनन्त : निस्सन्देह मैं स्वीकार करता हूं।

पुरश्री : तब तो अवश्य है कि जैन दया करे।

शैलाक्ष : मैं किस बात से दबकर ऐसा करूं यह तो कहिए?

पुरश्री : दया ऐसी वस्तु नहीं जिसे आग्रह की आवश्यकता हो। वह जलधारा की भांति नभ मंडल से पृथ्वीतल पर गिरती है, उस का दुहरा फल मिलता है अर्थात् पहले उस को जो करता है और दूसरे उस को जिसे उस का लाभ पहुंचता है। महानुभावों को यह अधिकतर शोभा देती है, मंडलेश्वरों को यह मुकुट से अधिकतर शोभित है। राजदंड केवल सांसारिक बल प्रकट करता है जो आतंक और तेज का चिह्न है और जिस से राजेश्वरों का भय लोगों के चित्त पर छा जाता है परन्तु दया का प्रभाव राजदंड के प्रभाव की अपेक्षा कहीं अधिक है, दया का वासस्थान राजेश्वरों का चित्त है, यह एक प्रधान महिमा ईश्वर की है। अतः संसार के राजेश्वर उसी समय देवतुल्य प्रतीत होते हैं जबकि वह न्याय के साथ दया का भी बरताव करते हैं। इसलिए ऐ शैलाक्ष यद्यपि तू न्याय ही न्याय पुकारता है किन्तु विचार

कर कि केवल न्याय ही के भरोसे पर हम में से कोई मरने के उपरान्त मुक्त होने की आशा नहीं कर सकता। हम ईश्वर से दया की प्रार्थना करते हैं तो चाहिए कि वही प्रार्थना हम को भी दया के काम सिखावै। मैंने इतना तेरे न्याय के आग्रह से हटाने के निमित्त से कहा पर यदि तू न मानैगा तो जैसे हो सकेगा वंशनगर की विचारशीला न्यायसभा तुझे इस सौदागर पर विनयपत्र दे देगा।

शैलाक्ष : मेरा किया मेरे सिर पर। मैं राजद्वार से अपने तमस्सुक के अनुसार दंड दिला पाने की प्रार्थना करता हूं।

पुरश्री : क्या वह रुपया चुका देने की क्षमता नहीं रखता।

बसन्त : हां, मैं राजद्वार में उन की सन्ती अभी दूना देने को उपस्थित हूं। यदि इस से भी उस का पेट न भरै तो मैं उस जमा का दस गुना दूंगा और यदि न दे सकूं तो दंड में अपना सिर अर्पण करूंगा। यदि इस पर भी वह न माने तो स्पष्ट है कि शत्रुता के आगे धर्म्म की दाल नहीं गलती। मैं प्रार्थना करता हूं कि आप अपने निज अधिकार से इस बार कानून का प्रतिबंध छोड़ दीजिए। एक बड़े भारी उपकार की अपेक्षा में थोड़ी सी अनीति स्वीकार कीजिए और हे मंडलेश्वर, अत्याचारी पिशाच की बुराई को रोकिए।

[मंडलेश्वर से]

पुरश्री : ऐसा न होना चाहिए। वंशनगर के कानून के अनुसार किसी को यह अधिकार नहीं है कि नीति को रोक सके। यह विचार दृष्टान्त की भीति पर लिखा जायगा और बहुत सी त्रुटियां इस के कारण राजा के कामों में आ पड़ेंगी। यह कदापि नहीं हो सकता।

शैलाक्ष : वाह वाह, मानो महात्मा विक्रम आप ही न्याय के लिए उतर कर आए हैं। वास्तव में आप को विक्रम ही कहना चाहिए। ऐ युवा बुद्धिमान न्यायकर्त्ता, मैं नहीं कह सकता कि मैं चित्त से आप का कितना समादर करता हूं।

पुरश्री : कृपाकर, नेक मुझे तमस्सुक तो देखने दो।

शैलाक्ष : लीजिए सुप्रतिष्ठ वकील महाशय, यह उपस्थित है।

पुरश्री : शैलाक्ष, तुम्हें तुम्हारे मूलधन का तिगुना मिल रहा है।

शैलाक्ष : शपथ, शपथ, मैं शपथ जो खा चुका हूं। क्या मैं झूठी शपथ खाने का पाप अपने माथे पर लूं? न कदापि नहीं यदि मुझे इस के बदले में वंशनगर का राज्य भी हाथ आए तो भी ऐसा न करूं!

पुरश्री : इस तमस्सुक की मिलती तो टल चुकी और इस के अनुसार विवेकतः जैन को अधिकार है कि सौदागर के हृदय के पास से आध सेर

मांस काट ले। परन्तु उस पर दयाकर और तिगुना रुपया लेकर मुझे तमस्सुक फाड़ डालने की आज्ञा दे।

शैलाक्ष : हां उस समय जबकि मैं लिखे अनुसार दंड दिला पाऊं। मुझे प्रतीत होता है कि आप एक योग्य न्यायी हैं, आप कानून से परिचित हैं और उस के तात्पर्य को भी ठीक समझते हैं, तो मैं आप को उसी की शपथ देता हूं जिस के आप पूरे आधार हैं कि आप आज्ञा सुनाने में विलम्ब न करें। मैं अपने प्राण की सौंगन्द खाकर कहता हूं कि मनुष्य की जिह्वा में इतना सामर्थ्य नहीं कि मेरा मनोरथ फेरै। मुझ को सिवाय तमस्सुक के प्राणों के और किसी बात से क्या प्रयोजन।

अनन्त : मैं भी चित्त से चाहता हूं कि न्यायकर्त्ता आज्ञा सुना दे।

पुरश्री : तो बस आप को छाती खोलकर प्रस्तुत रहना चाहिए।

शैलाक्ष : वाह रे योग्यता! वाह रे न्याय! आहा! क्या कहना है!

पुरश्री : क्योंकि कानून का अभिप्राय यही है कि प्रतिज्ञा भंग करने का दंड तमस्सुक के प्रणानुसार सब व्यवस्था में दिया जाना चाहिए, तो वह इस अवस्था में भी उचित है।

शैलाक्ष : बहुत ठीक, क्या कहना है! न्यायकर्त्ता को ऐसा ही बुद्धिमान और न्यायी होना चाहिए! यह अवस्था और यह बुद्धि!

पुरश्री : अब आप अपनी छाती खोल दीजिए।

शैलाक्ष : जी हां, छाती ही! यही तमस्सुक में लिखा है, है न मेरे सुजन न्यायकर्त्ता, हृदय के समीप ये ही शब्द लिखे हैं।

पुरश्री : ऐसा ही है, परन्तु बताओ कि मांस तोलने के लिए तराजू बटखरे रक्खे हैं?

शैलाक्ष : मैंने उन्हें ला रक्खा है।

पुरश्री : शैलाक्ष, अपनी ओर से कोई जर्राह भी बुला रक्खो कि उसका घाव बन्द कर दे, जिस में अधिक रक्त निकलने से कहीं वह मर न जाय।

शैलाक्ष : क्या यह तमस्सुक में लिखा है?

पुरश्री : नहीं लिखा तो नहीं परन्तु इस से क्या, इतनी भलाई यदि उस के साथ करोगे, तो तुम्हारी ही कीर्ति है।

शैलाक्ष : मैं नहीं करने का, तमस्सुक में इस का वर्णन नहीं है।

पुरश्री : अच्छा सौदागर साहिब, तो अब आप को जो कुछ किसी से कहना सुनना हो कह सुन लीजिए।

अनन्त : केवल दो बातें करनी हैं, नहीं तो मैं सब भांति उपस्थित और प्रस्तुत हूं। लाओ बसन्त, मुझे अपना हाथ दो, मैं तुम से बिदा होता हूं। तुम इस बात का कदापि खेद न करना कि मुझ पर यह आपत्ति

तुम्हारे कारण आई क्यौंकि इस समय पर भाग्य अपने नियम के विरुद्ध बहुत कृपालु जान पड़ती है। उस का सदा यह नियम देखने में आया है कि वह भाग्यहीन मनुष्य को उन की लक्ष्मी चले जाने के उपरान्त ठोकर खाने और दुरवस्था में दारिद्रय का दुःख उठाने के लिए छोड़ देती है किन्तु मुझे वह एक साथ इस जन्म भर के क्लेश से छुटकारा दिए देती है। अपनी सुशीला स्त्री से मेरा सलाम कहना और उन से मेरे मरने का हाल कह देना। जो स्नेह मुझे तुम्हारे साथ था उस का भी वर्णन करना। मेरे प्राण देने के ढंग को सराहना और जिस समय मेरी कहानी कह चुको तो उन से न्यायदृष्टि से पूछना कि किसी समय में बसन्त का भी कोई चाहने वाला था या नहीं। मेरे प्यारे, तुम इस बात का खेद न करो कि तुम्हारा मित्र संसार से उठा जाता है क्यौंकि निश्चय मानो कि उसे इस बात का नेक भी शोच नहीं कि वह तुम्हारे ऋण को अपने प्राण देकर चुकाता है क्यौंकि यदि जैन ने गहरा घाव लगाने में कमी न की तो मैं तुरन्त उस से उऋण हो जाऊंगा।

बसन्त : अनन्त मेरा ब्याह एक स्त्री के साथ हुआ है जिसे मैं अपने प्राण से अधिक प्रिय समझता हूं, परन्तु मेरा प्राण, मेरी स्त्री और सारा संसार तुम्हारे जीवन के सामने तुच्छ है, और तुम को इस दुष्ट राक्षस के पंजे से छुड़ाने के लिए मैं इन सब को खोने वरंच तुम पर से न्यौछावर करने को प्रस्तुत हूं।

पुरश्री : यदि तुम्हारी स्त्री इस स्थान पर उपस्थित होती तो तुम्हारे मुंह से अपने विषय में ऐसे शब्द सुनकर अवश्य अप्रसन्न होती।

गिरीश : मेरी एक स्त्री है, जिसे मैं धर्म्म से कहता हूं कि मैं प्यार करता हूं परन्तु यदि उस के स्वर्ग जाने से किसी देवता की सहायता मिल सकती, जो इस पापी जैन के चित्त को फेर देता तो मुझे उस से हाथ धोने में कुछ शोच न होता।

पुरश्री : यही कुशल है कि तुम उस की पीठ पीछें ऐसा कहते हो, नहीं तो न जाने आज कैसी आपत्ति मचती।

शैलाक्ष : (आप ही आप) इन आर्य्यपतियों की बातैं सुनो! मेरी बेटी का ब्याह तो यदि बरबंड के सदृश्य किसी व्यक्ति से हुआ होता तो मैं अधिक पसन्द करता, इस की अपेक्षा कि वह एक आर्य्य की स्त्री बनै। (चिल्लाकर) समय व्यर्थ जाता है। मैं प्रार्थना करता हूं कि आप विचार सुना दें।

पुरश्री : इस सौदागर के शरीर का आध सेर मांस तुम्हारा ही है, जिसे कि

कानून दिलाता है और राजसभा देती है।

शैलाक्ष : वाह रे न्यायी!

पुरश्री : और यह मांस तुम को उस की छाती से काटना चाहिए। कानून इस को उचित समझता है और न्यायसभा आज्ञा देती है।

शैलाक्ष : ऐ मेरे सुयोग्य न्यायकर्त्ता! इस का नाम विचार है। आओ, प्रस्तुत हो।

पुरश्री : थोड़ा ठहर जा, एक बात और शेष है। यह तमस्सुक तुझे रुधिर एक बूंद भी नहीं दिलाता, 'आध सेर मांस' यही शब्द स्पष्ट लिखे हैं। इसलिए अपनी प्रण प्राप्ति कर ले अर्थात् आध सेर मांस ले ले परन्तु यदि काटने के समय इस आर्य्य का एक बूंद रक्त भी गिराया तो वंशनगर के कानून के अनुसार तेरी सब संपत्ति और लक्ष्मी व सामग्री राज्य में लगा ली जायगी।

गिरीश : वाह रे विवेकी! सुन जैन—ऐ मेरे सुयोग्य न्यायी!

शैलाक्ष : क्या यह कानून में लिखा है?

पुरश्री : तुझे आप कानून दिखला दिया जायगा क्योंकि जितना तू न्याय न्याय पुकारता है उस से अधिक न्याय तेरे साथ बरता जायगा।

गिरीश : आहा! वाह रे न्याय! देख ज़ैनी कैसे विवेकी न्यायकर्त्ता हैं।

शैलाक्ष : अच्छा, मैं उस की प्रार्थना स्वीकार करता हूं—तमस्सुक का तिगुना देकर वह अपनी राह ले।

बसन्त : ले यह रुपये हैं।

पुरश्री : ठहरो, इस जैनी के साथ पूरा न्याय किया जायगा। थोड़ा धीरज धरो, शीघ्रता नहीं हैं। उसे दंड के अतिरिक्त और कुछ न दिया जाएगा।

गिरीश : ओ जैनी, देख तो कैसे धार्मिक और योग्य न्यायी हैं। वाह वाह!

पुरश्री : तो अब तू मांस काटने की प्रस्तुतियां कर, परन्तु सावधान, स्मरण रखना कि रक्त नाम को भी न निकलने पावे और न आध सेर मांस से न्यून वा अधिक कटे। यदि तूने ठीक आध सेर से थोड़ा सा भी न्यूनाधिक काटा यहां तक कि यदि उस में एक रत्ती के बीसवें भाग का भी अन्तर पड़ा, वरंच यदि तराजू की डांडी बीच से बाल बराबर भी इधर या उधर हटी तो तू जी से मारा जाएगा और तेरा सब धन और धान्य छीन लिया जाएगा।

गिरीश : वाह वाह! मानो महाराज विक्रम आप ही न्याय के लिए उतर आए हैं! अरे जैनी, देख महाराज विक्रम ही तो हैं! भला अधम, तू अब मेरे हाथ चढ़ा है।

पुरश्री : ओ जैनी, तू अब किस सोच विचार में पड़ा है? अपना दंड ग्रहण कर ले।

शैलाक्ष : अच्छा मुझे मेरा मूल दे दो मैं अपने घर जाऊं।

बसन्त : ले, ये रुपया उपस्थित है।

पुरश्री : यह भरी सभा में रुपये का लेना अस्वीकार कर चुका है। अब इसे न्याय और दंड के अतिरिक्त कुछ न मिलैगा।

गिरीश : विक्रम महाराज! सचमुच यह विक्रम ही तो हैं। ऐ जैनी, मैं तेरा धन्यवाद करता हूं कि तूने मुझे अच्छा शब्द बतला दिया।

शैलाक्ष : क्या मुझे मेरा मूलधन भी न मिलैगा?

पुरश्री : तुझे दंड के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलने का। इस से ऐ जैनी अपने जी पर खेलकर उसे वसूल कर ले।

शैलाक्ष : अच्छा मैंने उस राक्षस को सौंपा। अब मैं यहां कदापि न ठहरूंगा।

पुरश्री : ठहर ओ जैनी, तुझ पर कानून की एक और धारा है। वंशनगर के कानून में यह लिखा है कि यदि किसी परदेशी के विषय में यह सिद्ध हो कि उसने प्रकट या गुप्त रीति पर वंशनगर में किसी रहने वाले के वध करने की चेष्टा की तो वह प्रतिवादी जिस के विषय में ऐसा यत्न किया गया हो अपने प्रतिवादी की आधी सम्पत्ति पर अधिकार दिला पाने का दायी है और शेष आधा राजकोष में ग्रहण किया जायगा। अपराधी को मुक्त करने का केवल मंडलेश्वर को अधिकार है, उस में कोई दूसरा हस्तक्षेप नहीं कर सकता। तो जान, ओ जैनी कि इस समय तेरी अवस्था अत्यन्त दुर्बल है क्योंकि मुकद्दमा के विवरण से यह स्पष्ट है कि तूने जान बूझकर प्रतिवादी के प्राण लेने की चेष्टा की और इस भांति उस आपत्ति में, जिस का मैं ऊपर वर्णन कर चुका हूं, फंसा है। इसलिए तुझ को उचित है कि मंडलेश्वर के चरणों पर सिर रखकर दया की प्रार्थना कर।

गिरीश : सुन जैनी! मैं तुझे एक उपाय बताऊं; मंडलेश्वर से निवेदन कर कि तुझे आप फांसी लगाकर मर जाने की आज्ञा दें। परन्तु तेरी धन सम्पत्ति तो छीन ली जायगी अब तेरे पास इतना बचैगा कहां कि रस्सी मोल ले सके, इसलिए तुझ को राजा ही के व्यय से फांसी देनी पड़ैगी।

मंडलेश्वर : जिस में तुझे हमारे और अपने स्वभाव में अन्तर जान पड़ै। मैंने बेमांगे तेरा जी बचा दिया। अब रही तेरी सम्पत्ति सो उस में से आधी तो अनन्त की हो चुकी है और आधी राज्य की, जिस के पलटे में यदि तू दीनता प्रकाश करैगा तो दंड ले लिया जायगा।

पुरश्री : अर्थात् जितना राज्यांश है उस के बदले में, अनन्त के भाग से कुछ प्रयोजन नहीं।

शैलाक्ष : नहीं! मेरा प्राण और सब कुछ ले लीजिए, वह भी न क्षमा कीजिए। जबकि आप उस आधार को जिस पर मेरा घर खड़ा है लिए लेते हैं तो मेरे घर को पहले ले चुके, इस भांति जबकि आपने मेरे जीवन का आधार छीन लिया तो मानो मेरा प्राण पहले ले चुके।

पुरश्री : अनन्त तुम उसके साथ कितनी दया कर सकते हो।

गिरीश : भगवान् के वास्ते सिवाय एक रस्सी के जिस से वह फांसी लगाकर मर सके और कुछ व्यर्थ न देना।

अनन्त : मैं मंडलेश्वर और राजसभा से बिनती करता हूं कि उसके अर्धभाग के बदले का दंड मैं इस शर्त पर देने को प्रस्तुत हूं कि वह भाग शैलाक्ष मेरे पास धरोहर की भांति जमा रहने दे, जिस में उस के मरने पर जो मनुष्य हाल में उस की लड़की को ले भागा है उस को सौंप दूं। परन्तु इस के साथ दो प्रण हैं अर्थात् पहले तो वह इस बरताव के लिए आर्य्य हो जाय और दूसरे इस समय सभा में एक दानपत्र इस आशय का लिख दे कि उस के मरने पर उस की सारी सम्पत्ति उस के जामाता लवंग और उस की लड़की को मिलै।

मंडलेश्वर : उसे यह करना पड़ैगा, नहीं तो मैंने जो क्षमा की आज्ञा अभी दी है उसे काट देता हूं।

पुरश्री : क्यौं जैनी, तू इस पर प्रसन्न है, कह क्या कहता है?

शैलाक्ष : मैं प्रसन्न हूं।

पुरश्री : लेखक अभी एक दानपत्र लिक्खो।

शैलाक्ष : भगवान् के निहोरे मुझे यहां से जाने की आज्ञा दीजिए, मेरी बुरी दशा है। पांडुलिपि मेरे मकान पर भेज दीजिये मैं हस्ताक्षर कर दूंगा।

मंडलेश्वर : अच्छा जा, परन्तु हस्ताक्षर कर देना।

गिरीश : आर्य्य होने से तेरे दो धर्म्म बाप होंगे। कदाचित् मैं न्यायकर्त्ता होता तो दस और होते जिस में तुझे आर्य्य करने के लिए मन्दिर भेजने के बदले में सूली पर पहुंचा देते।

[शैलाक्ष जाता है]

मंडलेश्वर : महाशय, मैं प्रार्थना करता हूं कि आज आप मेरे साथ भोजन करैं।

पुरश्री : महाराज, मुझे क्षमा करैं, मुझे आज ही रात को पांडुपुर जाना है और यह अत्यन्त आवश्यक है कि मैं अभी चला जाऊं।

मंडलेश्वर : मैं खेद करता हूं कि आप को अवकाश नहीं है। अनन्त इनका भली भांति सत्कार करो क्यौंकि मेरी जान तुम पर इनका बड़ा उपकार है।

[मंडलेश्वर, बड़े बड़े प्रधान और उनके चाकर जाते हैं]

बसन्त : ऐ मेरे सुयोग्य उपकारी, आज मैं और मेरे मित्र आप के बुद्धि वैभव से आपत्ति से मुक्त हुए, जिस के बदले छः सहस्र मुद्रा जो जैन के पाने थे मैं बड़ी प्रसन्नता से आप की भेंट करता हूं क्यौंकि आपने हमारे निमित्त कष्ट सहन किया है।

अनन्त : और इस के अतिरिक्त हम लोग जन्म भर तन मन से आप के दास बने रहैंगे।

पुरश्री : जिस मनुष्य का चित्त अपने किए पर तुष्ट हुआ उसने अपनी सारी मजदूरी भरपाई और मेरे चित्त को इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि आप मेरे द्वारा मुक्त हुए, इस से मैं समझता हूं कि आप ने मुझ को सब कुछ दिया। मेरे चित्त में आज तक मिहनताना पाने का ध्यान नहीं हुआ है, क्यौंकि मुझे किराए के टट्टू बनने से घृणा है। कृपापूर्व्वक जब मेरा आप का कभी फिर साक्षात् हो तो मुझे स्मरण रखिएगा। ईश्वर आप की रक्षा करैं, अब मैं विदा होता हूं।

बसन्त : महाशय, मेरा धर्म्म है कि इस बारे में आप से फिर प्रार्थना करूं, कृपा करके कोई वस्तु हम लोगों के स्मरणार्थ मिहनताने करके नहीं वरंच एक स्मारक चिह्न की भांति स्वीकार कीजिये। मेरी प्रार्थना है कि आप मेरी दो बातैं स्वीकार करैं, एक तो यह है कि आप मेरी प्रार्थना को स्वीकार करैं और दूसरे मेरी धृष्टता को क्षमा करैं।

पुरश्री : आप मुझे अत्यन्त दबाते हैं, इसलिए अब अधिक अस्वीकार करना निश्शीलता है। अच्छा, एक तो मुझे आप अपने दस्ताने दें, मैं उन्हें आप की प्रसन्नता के लिए पहनूंगा और दूसरे आप के स्नेह के चिह्न में इस अंगूठी को लूंगा। हाथ न खींचिये, मैं और कुछ न लूंगा पर मुझे निश्चय है कि आप मेरे स्नेह के निहोरे इस के देने में अनंगीकार न करैंगे।

बसन्त : यह अंगूठी महाशय! खेद, यह तो एक अत्यन्त तुच्छ वस्तु है मुझे आप को देते लज्जा आती है।

पुरश्री : मैं इस को छोड़ और कुछ कदापि न लूंगा और मुख्य करके मेरा जी इस के लेने को बहुत ही चाहता है।

बसन्त : मैं इसके मोल लेने के ध्यान से यह बातचीत नहीं करता। इस में कुछ और ही भेद है। वंशनगर के राज्य में जो अंगूठी सबसे अधिक मूल्य की होगी, उसे मैं सूचना देकर मंगवाऊंगा और आप के अर्पण करूंगा पर केवल इस अंगूठी के लिए आप मुझे क्षमा करैं।

पुरश्री : बस महाशय बस, मैंने समझ लिया कि आप बातों के बड़े धनी

हैं। पहले तो आप ने मुझे भीख मांगना सिखलाया और अब यह ढंग बताते हैं कि भिखमंगे को किस भांति टालना चाहिए।

बसन्त : मेरे सुहृद, यह अंगूठी मुझे मेरी स्त्री ने दी थी और जिस समय कि उस ने इसे मेरी उंगली में पहनायी तो मुझ से इस बात की प्रतिज्ञा ले ली कि न तो मैं इसे कभी बेचूं, न किसी को दूं और न खोऊं।

पुरश्री : इस भांति के चुटकुले प्रायः बहाना करनेवालों के पास गढ़े गढ़ाये रहते हैं। यदि आप की स्त्री पागल न होगी तो वह इस बात के कह लेने पर कि मैंने आप के साथ इस अंगूठी की लागत से कितना बढ़ कर सुलूक किया। इस के दे डालने पर आप से सदा के लिए शत्रुता कदापि न ठान लेगी। अच्छा मेरा प्रणाम लीजिये।

[पुरश्री और नरश्री जाती है]

अनन्त : मेरे सुहृद बसन्त अंगूठी उन्हें दे दो। इस समय उन के उपकार और मेरी प्रीति को अपनी स्त्री की आज्ञा से बढ़ कर समझो।

बसन्त : जाओ गिरीश, दौड़ कर उन तक पहुंचो, यह अंगूठी उन को भेंट करो और यदि बन पड़े तो उन्हें किसी भांति अनन्त के घर पर लाओ, बस अब चले ही जाओ देर न करो! **(गिरीश जाता है)** आओ हम तुम भी वहीं चलैं, कल बड़े तड़के हम दोनों विल्वमठ की ओर चलैंगे, आओ अनन्त।

[दोनों जाते हैं]

●

दूसरा दृश्य

स्थान–वंशनगर की एक सड़क

[पुरश्री और नरश्री आती हैं]

पुरश्री : जैन के घर का पता लगा कर उससे झटपट इस पांडुलिपि पर हस्ताक्षर करा लो। हम लोग आज ही रात को चलते होंगे, जिस में अपने पति से एक दिन पहले घर पहुंच रहें। लवंग इस लिपि को देख कर अत्यन्त प्रसन्न होगा।

[गिरीश आता है]

गिरीश : महाराज बड़ी बात हुई कि आप मिल गए। मेरे मालिक बसन्त ने अन्ततः : सोच समझ कर वह अंगूठी आप की सेवा में भेजी है और प्रार्थना की है कि आज आप उन्हीं के साथ भोजन करैं।

पुरश्री : मैं असमर्थ हूं, हां उनकी अंगूठी मैंने सिर आंखों से स्वीकार की। तुम मेरी ओर से जाकर विनती कर देना। अब तुम इतनी कृपा और करो कि मेरे लेखक को शैलाक्ष का घर दिखला दो।

गिरीश : मैं प्रस्तुत हूं।

नरश्री : (**पुरश्री से**) महाशय मैं आप से कुछ विनय किया चाहता हूं। (**अलग से जा कर कहती हैं**) देखिये, मैं भी अपने पति की अंगूठी लेने का यत्न करती हूं। मुझ से उन्होंने शपथ खाई थी कि मैं उसे जन्म भर अपने से पृथक् न करूंगा।

पुरश्री : अवश्य, चूकियो मत, हम लोगों को अच्छा अवसर हाथ आयगा। यह लोग शपथ खायंगे कि हमने अंगूठी पुरुषों को दी है परन्तु हम लोग उन की एक न मानैंगी और आप सौगन्द खाकर उन्हें झूठा बना लेंगी। बस अब चली ही जाव, तुम जानती हो जहां मैं ठहरी रहूंगी।

नरश्री : आइये महाशय, मुझे, वह घर बतला दीजिये।

[दोनों जाते हैं]

●

पांचवां अंक

पहिला दृश्य

स्थान–विल्वमठ, पुरश्री के घर का प्रवेशद्वार

[लवंग और जसोदा आते हैं]

लवंग : आहा! चांदनी क्या आनन्द दिखा रही है! मेरे जान ऐसी ही रात में जबकि वायु इतना मन्द चल रहा थां कि वृक्षों के पत्तों का शब्द तक सुनाई न देता था। त्रिविक्रम दुर्ग की भीत पर चढ़ कर कामिनी की राह ताकता हुआ, जो यवनपुर के खेमे में थी, हृदय से ठंडी सांस निकाल रहा था।

जसोदा : ऐसी ही रात में कादम्बिनी ओस पड़ी हुई घास पर डर डर कर कदम रखती थी कि यकायक सिंह की पर्छाईं सामने देख कर, बेचारी भय से भाग गई।

लवंग : ऐसी ही रात में जयलक्ष्मी समुद्र के किनारे खड़ी होकर छड़ी से अपने प्यारे को कामपुर लौट आने के लिए संकेत करती थी।

जसोदा : ऐसी ही रात में मालिनी ने जड़ी बूटियों को जंगल में एकत्र किया था, जिन के प्रभाव से बूढ़ा पुरुष जवान हो गया।

लवंग : ऐसी ही रात में जसोदा अपने समृद्ध पिता के घर से निकल भागी और एक दरिद्र प्रेमी के साथ वंशनगर से विल्वमठ को चली आई।

जसोदा : ऐसी ही रात में लवंग ने उस से चित्त से प्रेम करने की सौगँन्द खाई और निर्वाह का प्रण कर के उस का मन छीन लिया परन्तु एक भी सच्चे न निकले।

लवंग : ऐसी ही रात में कामिनी जसोदा ने दुष्टता से अपनी प्रेमी पर दोष लगाया और उस ने कुछ न कहा।

जसोदा : क्या कहूं, मैं तो तुम को बात ही बात में बेबात कर देती यदि कोई आता न होता। देखो मुझे किसी के पैर की आहट जान पड़ती है।

[तूफानी आता है]

लवंग : रात के ऐसे सन्नाटे में कौन इतना शीघ्र चला आता है!

तूफानी : मैं हूं, आप का एक मित्र।

लवंग : ऐं मित्र? कैसे मित्र? भला मित्र, कृपा कर के अपना नाम तो बताओ?

तूफानी : मेरा नाम तूफानी है। मैं यह समाचार लाया हूं कि मेरी स्वामिनी आज मुंह अंधेरे विल्वमठ में पहुंच जायंगी। वह मन्दिरों में घुटने के बल विवाह मंगल होने की प्रार्थना कर रही हैं।

लवंग : उन के साथ और कौन आता है?

तूफानी : कोई नहीं, केवल वह आप एक जोगिन के भेष में और उन की सहेली। पर यह तो कहिये कि हमारे स्वामी अभी तक लौट आए या नहीं।

लवंग : न वह आए हैं न कुछ उन का हाल विदित हुआ है। पर आओ जसोदा हम तुम भीतर चलकर घर के स्वामी के शिष्टाचार का प्रबन्ध कर रक्खें।

[गोप आता है]

गोप : धूतू धूतू पिपि पिपि धूतू धूतू!

लवंग : कौन पुकारता है?

गोप : धूतू धूतू! तुम जानते हो कि लवंग महाशय और उन की स्त्री कहां हैं? धूतू धूतू!

लवंग : अरे कान न फोड़े डाल, इधर आ।

गोप : धूतू धूतू! किधर? किधर?

लवंग : यहां।

गोप : उन से कह दो कि मेरे स्वामी के पास से एक दूत आया है जिस की तुरुही मंगल समाचारों से भरी हुई है, वह सबेरा होते होते यहां पहुंच जायंगे।

लवंग : प्यारी आओ, घर में चल कर उन के आने की राह देखैं, या अच्छा यहीं बैठी रहो, भीतर जाने की कौन सी आवश्यकता है। भाई तूफानी, नेक भीतर जाकर लोगों से जना दो कि तुम्हारी स्वामिनी आती हैं और अपने साथ गवैयों को बाहर बुलाते लाओ।

[तूफानी जाता है]

इस बुरुज पर चांदनी कैसी छिटक रही! आओ हम तुम यहीं बैठ कर गाना सुनैं। एक तो सन्नाटा मैदान और दूसरे रात, यह दोनों राग का आनन्द दूना बढ़ा देते हैं। बैठो जसोदा, देखो तो आकाश क्या शोभा दिखला रहा है। यह प्रतीत होता है कि मानो उस में हजारों सोने के कुंकुमे लटकते हैं। जितने वह दृष्टि आते हैं इन में से छोटे

से छोटे की चाल से भी देवताओं के राग का सा शब्द आता है। मानो वह उन के शब्द के सात सुर मिलाते हैं। ऐसा ही सुरीलापन मनुष्य के निःशब्द आत्मा में भी है परन्तु वह इस भौतिक वस्त्र को, जो नष्ट हो जानेवाला है, पहने है। इसलिए हम उसके मीठे राग को सुन नहीं सकते।

[गाने बजाने वाले आते हैं]

इधर आओ और कोई राग ऐसा छेड़ो कि तानसेन भी नींद से चौंक उठे और जब तुम्हारे मीठे सुरों का आलाप तुम्हारी स्वामिनी के कान तक पहुंचै तो वह भी विवश होकर घर की ओर दौड़ी आवैं।

जसोदा : मैं तो जिस समय अच्छा राग सुनती हूं सब सुध बुध दूर भाग जाती है।

[लोग गाते हैं]

लवंग : इसका कारण यह है कि तुम अपना ध्यान जमाती और उस पर सोचती हो। तुम ने देखा होगा कि नए सीधे बछड़े जिन्हें किसी ने हाथ तक न लगाया हो, आपस में क्या क्या कुलेलें करते, छलांगें मारते और हिनहिनाते हैं जिस से उनके रुधिर की गर्मी जानी जाती है। परन्तु यदि संयोग से उन के सामने तुरूही या किसी दूसरे प्रकार का बाजा बजाया जाय तो वह शीघ्र ही सब के सब ठिठक कर खड़े हो जायंगे और राग के प्रभाव से कुछ देर के लिए उन की घबड़ाहट दूर हो जायगी। एक कवि का कथन ठीक है कि तानसेन के गाने का प्रभाव वृक्ष, पत्थर, जल पर भी होता था क्यौंकि कोई वस्तु ऐसी कठोर और भयानक नहीं जिस की प्रकृति-स्वभाव को अधिक नहीं तो थोड़ी ही देर के लिए राग बदल न देता हो। जिस मनुष्य को गाने का आनन्द नहीं और जिस के जी पर सुरीले शब्द का प्रभाव नहीं होता उस से अत्याचार, छल और चोरी इत्यादि जो कुछ न हो सब थोड़ा है क्यौंकि ऐसे मनुष्य का चित्त नरक से अधिक अन्धा और भ्रष्ट और बुरा होता है और वह कदापि विश्वास के योग्य नहीं होता। तुम ध्यान देकर गाना सुनो।

[पुरश्री और नरश्री कुछ दूर पर चली आती हैं]

पुरश्री : वह प्रकाश जो सामने दृष्टि पड़ता है मेरे ही दालान में हो रहा है। देखो तो एक छोटे से दीपक का प्रकाश कितनी दूर तक फैला हुआ है। इसी भांति संसार में शुभकर्म्म चमकता है।

नरश्री : जब चांदनी थी तो यह प्रकाश जान नहीं पड़ता था।

पुरश्री : इसी भांति बड़ा तेज अपने सामने छोटे तेज को दबा लेता है। किसी कवि ने कितना ठीक कहा है–दिये (दीपकों) की तो प्रकट में चमक है, पर दिये (दान) का प्रकाश परलोक में भी है। राजा की अनुपस्थिति

में उस के प्रतिनिधि ही की प्रतिष्ठा राजा के समान होती हैं परन्तु उस के सामने जैसे नदी की समुद्र के सामने कुछ गिनती नहीं उस का भी कोई मान नहीं होता। ऐं देखो, कहीं से गाने का शब्द आता है!

नरश्री : सखी, यह आप ही के महल में गाना हो रहा है।

पुरश्री : इस में सन्देह नहीं कि हर वस्तु के लिए एक नियत काल है और उसी समय वह भली जान पड़ती है। मेरी सम्मति में इस समय गाना दिन की अपेक्षा अधिक मनोहर होता है।

नरश्री : सखी, यह आनन्द एकान्त के कारण से प्राप्त हुआ है।

पुरश्री : यदि कोई कान ही न दे तो कौवे का शब्द वैसा ही कोमल और मधुर है जैसा कोयल का और मेरी सम्मति में दिन को जबकि बत्तक कांव कांव कर रही हों, बुलबुल हजार दास्तां का चहचहाना कोलाहल से बुरा है। कितनी वस्तुओं की सुन्दरता और उत्तमता समय ही पर ज़ानी जाती है। बस बन्द करो, चन्द्रमा समुद्र के साथ सोने को गया और अभी उस की आंख नहीं खुलने की।

[गाना बंद हो गया]

लवंग : यदि मेरे कानों ने त्रुटि न की तो यह शब्द पुरश्री का है!

पुरश्री : मेरा शब्द तो इस समय मानो अन्धे के लिए लकड़ी हो गया।

लवंग : ऐ मान्य सखी, आप के कुशलपूर्व्वक लौट आने पर धन्यवाद देता हूं।

पुरश्री : हम लोग अपने अपने स्वामी की कुशलता की प्रार्थना करती थीं और हम आशा करती हैं कि हमारी प्रार्थना स्वीकार हुई। वह लोग आए?

लवंग : इस समय तक तो नहीं आए हैं परन्तु उन के पास से अभी एक दूत समाचार लाया है कि वह लोग निकट ही हैं।

पुरश्री : नरश्री, भीतर जाकर नौकरों से कह दो कि वह हमारे बाहर जाने के विषय में किसी से कुछ न कहें, लवंग तुम भी ध्यान रखना और तुम भी स्मरण रखना जसोदा।

[तुरुही की ध्वानि सुनाई देती है]

लवंग : आप के पति आन पहुंचे, मेरे कान में उन की तुरुही का शब्द आता है। हम लोग लुतरे नहीं हैं, आप तनिक भय न कीजिये।

पुरश्री : आज के सबेरे की दशा तो कुछ पीड़ित सी जान पड़ती है क्योंकि उस के मुंह पर नियम से अधिक पियराई छा रही है जैसा कि सूर्य्यास्त के समय दृष्टि आती है।

[बसन्त, अनन्त, गिरीश और उन के नौकर चाकर आते हैं]

बसन्त : यदि सूर्य्यास्त होने पर आप घूंघट उलटकर निकल आएं तो हम को उस के अस्त होने की कुछ चिन्ता न हो।

पुरश्री : ईश्वर करे मुख की कान्ति आप को प्रकाशित कर सकै परन्तु मेरी गति में चमक न आए क्यौंकि चमक मटक छिछोरेपन का चिह्न है जिस का परिणाम यह होता है कि अन्त को स्वामी के चित्त में अपनी स्त्री की ओर से एक चमक आ जाती है। इसलिए ईश्वर मुझ को इस आपत्ति से बचाये। आप का जाना हम लोगों को शुभंकर हो।

बसन्त : प्यारी, मैं तुझे धन्यवाद देता हूं, पर इस समय तुम मेरे मित्र के आने पर प्रसन्नता प्रकट करो। यही अनन्त हैं जिन का मैं अन्तःकरण से अत्यन्त उपकृत हूं।

पुरश्री : इस में कोई सन्देह है, आप को अवश्य उपकार मानना चाहिए क्यौंकि, जहां तक मैंने सुना है उन्होंने आप के साथ बड़ा उपकार किया है।

अनन्त : आप लोग इसे कहने से मुझे व्यर्थ लज्जित करते हैं। मैंने तो जो कुछ सेवा की होगी उस से कहीं अधिक भर पाया।

पुरश्री : महाशय, आप के पधारने से हमारे घर की शोभा और हम लोगों की प्रसन्नता दूनी हुई, परन्तु मुख से कहना बनावट है और मैं अपने आन्तरिक हर्ष को बनावट की आवश्यकता नहीं समझती।

[गिरीश और नरश्री पृथक् बात करते जान पड़ते हैं]

गिरीश : शपथ है अपने प्राण की तुम मुझ पर झूठा दोष लगाती हो, मैंने सचमुच उसे न्यायकर्त्ता के लेखक को दिया।

पुरश्री : वाह वाह, आते ही झगड़ा होने लगा! यह क्या बात है?

गिरीश : एक सोने के छल्ले के लिए, एक टके की मुंदरी के लिये जो आप ने दी थी और जिस पर यह वाक्य खुदा था जैसा प्रायः बिसातियों की छुरियों पर लिखा होता है–'मुझ से स्नेह रक्खो और कभी जुदा न हो'।

नरश्री : तुम लिखने और मूल्य का क्या कहते हो। क्या तुमने लेने के समय शपथ नहीं खाई थी कि मैं उसे आमरण अपनी उंगली में रक्खूंगा और वह मेरे साथ समाधि में जायगी? यदि मेरा कुछ ध्यान न था तो भला अपनी कठिन सौंगन्दों का तो ध्यान करते। हंह! न्यायी के लेखक को दिया! मैं भलीभांति जानती हूं कि जिस लेखक को तुम ने दिया है, उस के मुंह पर डाढ़ी कभी न निकलैगी।

गिरीश : क्यौं नहीं, जब वह पूर्ण युवा होगा तो अवश्य निकलैगी।

नरश्री : हां, यदि स्त्री पुरुष हो सकती हो।

गिरीश : शपथ भगवान् की, मैंने उसे एक लड़के को दिया, एक मझले कद के छोकरे को जो तुमसे ऊंचा न था। यही विचारपति का लेखक था। उसने ऐसी मीठी मीठी बातैं कर के अंगूठी पारितोषिक में मांगी कि मैं अनंगीकार न कर सका और उस को सौंपते ही बनी।

पुरश्री : सुनो साहिब, मैं स्पष्ट कहती हूं कि इस विषय में सब दोष तुम पर है कि एक लड़के की बातों में आकर अपनी स्त्री का दिया हुआ पहला चिह्न उसे दे डाला और वह वस्तु, जिस पर तुमने अपनी उंगली में पहनने के समय सौगन्द की बौछार मचा दी थी और प्रतिज्ञा के ढेर लगा दिए थे, ऐसे सहज में दे डाली। मैंने भी अपने प्यारे स्वामी को एक अंगूठी दी है और उनसे शपथ ले ली है कि उसे कभी जुदा न करैं। यह देखिए यहां उपस्थित हैं। परन्तु उनकी संती मैं शपथ खा सकती हूं कि यदि कोई उन्हैं कुबेर का भंडार भी अर्पण करै तो वह उसे अपनी उंगली से न उतारैं, दे डालना तो दूर है। तात्पर्य यह कि गिरीश तुम ने अपनी स्त्री को व्यर्थ इतना बड़ा दुःख दिया। यदि मैं उस के स्थानापन्न होती तो इस समय क्रोध के मारे पागल हो जाती।

बसन्त : (आप ही आप) इस समय उत्तम कोई उपाय नहीं कि मैं अपना बायां हाथ काट डालूं और शपथ खा लूं कि जहां तक बस चला रक्षा की परन्तु अन्त को जब हाथ कट गया तो उसी के साथ अंगूठी भी गई।

गिरीश : मेरे स्वामी बसन्त ने अपनी अंगूठी विचाराधीश को उस की प्रार्थना पर दे दी और निस्सन्देह उस ने काम भी ऐसा ही किया था। इस पर उस के लेखक ने लिखाई की सन्ती मेरी अंगूठी मांगी और अभाग्य यह कि उसे और उस के स्वामी दोनों को इस बात का आग्रह हुआ कि सिवाय उन अंगूठियों के और कोई वस्तु हाथ से न छुवैंगे।

पुरश्री : क्यौं साहिब, आप ने कौन सी अंगूठी दी? वह तो काहे को दी होगी जो आप ने मुझसे पाई थी।

बसन्त : यहि मुझे झूठ बोलकर अपने अपराध को दूना कर देना स्वीकार हो तो हां निस्सन्देह अस्वीकार करूं परन्तु तुम देखती हो कि मेरी उंगली में अंगूठी नहीं है, वह जाती रही।

नरश्री : ऐसे ही आप का निर्दय चित्त भी स्नेह से शून्य है। शपथ भगवान् की, जब तक आप मेरी अंगूठी मेरे सामने लाकर न रखिएगा, मैं

आप के साथ अंक में सोना पाप समझूंगी।

नरश्री : और मैं भी जब तक अपनी अंगूठी देख न लूंगी आप से बात न करूंगी।

बसन्त : मेरी प्यारी पुरश्री, यदि तुम्हें विदित हो कि मैंने अंगूठी किसे दी, किस के लिए क्यों दी, और कैसी निर्वशता से दी जब कि वह पुरुष सिवा उस अंगूठी के दूसरी वस्तु के लेने पर प्रसन्न ही नहीं होता था तो तुम्हारा क्रोध इतना न रह जाय।

पुरश्री : यदि आप को अंगूठी का गौरव विदित होता, या आप ने उस के देने वाली को आधा भी दिया होता, या अपनी बात का कि मैं सदा अंगूठी प्राण सदृश रक्खूंगा नेक भी विचार किया होता तो आप उसे कभी अपने से जुदा न करते। भला कौन ऐसा मूर्ख होगा कि आप से निर्लज्जता के साथ एक रीति की वस्तु को मांगे जाता, यदि आप ने कुछ भी चित्त से उस के न देने का यत्न किया होता। नरश्री का विचार मुझे यथार्थ प्रतीत होता है, मैं शपथ खा सकती हूं कि आप ने अंगूठी अवश्य किसी स्त्री को दी।

बसन्त : प्यारी, मैं अपनी प्रतिष्ठा, अपने प्राण की शपथ खाकर कहता हूं कि मैंने उसे किसी स्त्री को नहीं दिया वरंच एक वकील को, जिस ने छः हजार रुपया लेना अस्वीकार किया और केवल यह अंगूठी मांगी। फिर भी मैंने निवेदन किया और उसे अप्रसन्न होकर चले जाने दिया यद्यपि यह वह पुरुष था जिस ने मेरें प्यारे मित्र की जान बचाई थी। मेरी प्यारी, तुम ही बतलाओ कि मैं क्या करता? मेंरे शील ने सहन न किया कि ऐसे उपकारी को अप्रसन्न करूं, मुझे बड़ी लज्जा परदे पड़ी और स्वभाव इस बात को सह न सका कि मैं अपनी मर्यादा में कृतघ्नता का धब्बा लगाऊं। अन्त को मुझे विवश होकर अंगूठी उस के पीछे भेज देनी पड़ी। मेरी प्यारी, मेरा अपराध क्षमा करो। शपथ है यदि तुम वहां होती तो अंगूठी को मुझ से छीन कर उस योग्य वकील को सौंप देती।

पुरश्री : अच्छा, अब उस वकील की ओर से सचेत रहना और उस को मेरे घर के निकट कदापि न फटकने देना क्यौंकि जिस वस्तु से मुझ को प्रीति थी और आप ने मेरे निहोरे सदा अपने पास रखने की शपथ खाई थी वह उस के हाथ में आ गई तो मैं भी आप की भांति उदारता पर कमर बांधूंगी और जो कुछ वह मुझ से मांगैगा उसके स्वीकार करने से मुंह ने मोड़ंगी। पहिचान तो मैं उस को लूंगी ही, इस में किसी भांति का सन्देह नहीं। अब आप को उचित है कि

कभी रात के समय घर से बाहर न जायं और आठ पहर मेरी रक्षा करते रहें। यदि आप ने मुझे किसी दिन अकेला छोड़ा तो शपथ है अपने लज्जा की, जिस पर अब-तक किसी पुरुष की परछाई नहीं पड़ी है, मैं उस वकील को अपने पास सुला लूंगी।

नरश्री : और मैं उसके लेखक को, इसलिए सावधान कभी मुझ को मेरे भरोसे पर छोड़ कर न जाना।

गिरीश : अच्छा, जैसा तुम्हारा जी चाहे करो, पर उस अवस्था में उसे मेरे पंजे से बचाए रहना नहीं तो लेखक साहब की लेखनी पर आपत्ति आ जायगी।

अनन्त : मैं ही अभागा इन झगड़ों का कारण हूं।

पुरश्री : आप न उदास हूजिए, आप के आने की मुझे बड़ी प्रसन्नता है।

बसन्त : पुरश्री, इस बार मेरा अपराध जो निरी निर्वशता की अवस्था में हुआ क्षमा कर दो और जब मैं इन सब मित्रों के सामने तुम से प्रतिज्ञा करता हूं वरंच तुम्हारी आंखों की जिन में मेरा प्रतिबिम्ब दृष्टि पड़ता है, शपथ कर कहता हूं कि...

पुरश्री : देखिये, नेक आप लोग इस बात को विचारिये, वह मेरे दो नेत्रों में अपना दुहरा प्रतिबिम्ब देखते हैं यानी हर नेत्र में एक। इसलिए आप अपनी दुहरी सूरत की शपथ खाइये तो हां विश्वास हो।

बसन्त : अच्छा, थोड़ा मेरी सुन लो। इस अपराध को क्षमा करो और अब मैं अपने जीवन की सौगन्द खाता हूं कि अब फिर कभी तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा से भ्रष्ट न हूंगा।

अनन्त : मैंने एक बार रुपयों के बदले अपना शरीर इन के लिए धरोहर रक्खा था और यदि वह मनुष्य, जिस ने आप के स्वामी की अंगूठी ली, न होता तो यह अब तक कभी का नष्ट हो गया होता। अब मैं इस बार अपने प्राण को जमानत में दे कर के प्रतिज्ञा करता हूं कि आप के स्वामी फिर कभी जानबूझकर अपना वचन न तोड़ैंगे।

पुरश्री : तो मैं आप को उनका जामिन समझूंगी। अच्छा उन्हें यह अंगूठी दीजिए और शपथ ले लीजिए कि इस को पहली से अधिक सावधानी के साथ रक्खैं।

अनन्त : लो बसन्त इस को लो और शपथ खाओ।

बसन्त : शपथ भगवान की, यह वही अंगूठी है, जो मैंने उस वकील को दी थी।

पुरश्री : और मैंने भी तो उसी से पाई। बसन्त मुझे क्षमा करना क्योंकि इसी अंगूठी के स्वत्व से वह मेरे साथ आकर सोया था।

नरश्री : और मेरे सुहृद गिरीश आप भी मेरा अपराध क्षमा करैं। क्योंकि वही मझलाकद वकील का लेखक इस अंगूठी के बदले कल रात को मेरे साथ सोया हुआ था।

गिरीश : एं, यह तो मानो भरी बरसात में खेत को कुएं के पानी से सींचना है। क्या हम लोगों में कोई दोष पाया जो हमारी स्त्रियों ने हमें अपना भंड़आ बनाया।

पुरश्री : इतनी असभ्यता से मत बको। आप लोग चकित हो गए। लीजिये यह पत्र पांडुपुर से बलवन्त के पास से आया है इसे अवकाश के समय पढ़िएगा, उस से आप को विदित होगा कि पुरश्री वकील थी और नरश्री उसकी लेखक। लवंग उपस्थित हैं वह साक्षी ही देंगे कि ज्यौंही आप सिधारे मैं भी उसी क्षण चल दी और अभी चली आती हूं यहां तक कि घर में पैर नहीं रक्खा। अनन्त महाराज आप का आगमन मंगल, मैं आप को वह समाचार सुनाती हूं जिस को आप को स्वप्न में भी ध्यान न होगा। इस पत्र की मुहर तोड़कर पढ़िए। इस में आप देखिएगा कि आप के तीन जहाज अनमोल माल से लदे हुए घाट (बन्दरगाह) में आ गए हैं। परन्तु मैं आप को यह न बतलाऊंगी कि मेरे हाथ यह पत्र क्यौंकर लगा।

अनन्त : मेरे मुख से तो शब्द नहीं निकलता।

बसन्त : आप ही वकील थीं और मैंने पहचाना तक नहीं।

गिरीश : आप ही वह लेखक हैं जो मुझे जोरू का भंड़आ बनाया चाहती हैं।

नरश्री : जी हां, पर वह लेखक जिस की इच्छा कभी ऐसा करने की नहीं परन्तु हां उस अवस्था में कि वह स्त्री से पुरुष बन सकै।

बसन्त : मेरे सुहृद वकील, अब आप को मेरे साथ सोना होगा और जब मैं न रहूं उस समय मेरी स्त्री के साथ सोइए।

अनन्त : बबुई आप ने जीवन और उस की सामग्री दोनों मुझे दी, क्योंकि इस पत्र से विदित हुआ कि वास्तव में मेरे जहाज कुशलता के साथ बन्दरगाह में आ गए।

पुरश्री : लवंग, मेरे लेखक के पास आप के लिए भी कुछ सौगात प्रस्तुत है।

नरश्री : और मैं आप को बिना लिखाई लिए सौंपती हूं, लीजिए यह उस धनी जैनी ने आप को और जसोदा को एक दानपत्र अपनी सारी सम्पत्ति का लिख दिया है, जिस के आप लोग उस के मरने पर उत्तराधिकारी होंगे।

लवंग : महाशय जी, यह मानो भूखों के सामने मोहनभोग का ढेर लगा देना है।

पुरश्री : सबेरा हो गया। अब तक मेरी जान में आप लोगों का इन सब बातों के विषय (में) पूरा तोष नहीं हुआ। इसलिए उचित होगा कि भीतर चलकर जो जो सन्देह हों उन के विषय में मुझ से प्रश्न कीजिये और ब्योरेवार वृत्तान्त सुनिये।

गिरीश : बहुत ठीक...।

है जब तक मेरे दम में दम डरूंगा हर घड़ी हर दम।
रहेगा रात दिन खटका नरश्री की अंगूठी का।

(सब जाते हैं)

[अंगरेजी के प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर के मर्चेंट ऑफ वेनिस का भाषानुवाद। भारतेन्दु ने यह अनुवाद बंगला अनुवाद की मदद से किया था। कहा जाता है कि भारतेन्दु इस नाटक का अनुवाद पूरा न कर सके थे, कछ अंश बाकी रह गया था, तभी उनकी मृत्यु हो गई। बाकी अंश का अनुवाद भारतेन्दु के मृत्योपरांत पं. रामशंकर व्यास ने किया। संपा.]

इति

●

कर्पूर मंजरी

(सट्टक)

सन 1882 ई.

कर्पूर मंजरी

[सट्टक]

दोहा :

भरित नेह नव नीर नित, बरसत सुरस अथोर।
जयति अपूरब घन कोऊ, लखि नाचत मन मोर॥

[सूत्रधार आता है]

सूत्रधार : **(घूम कर)** हैं! क्या हमारे नट लोग गाने बजाने लगे? यह देखो, कोई सखी कपड़े चुनती है, कोई माला गूंधती है, कोई परदे बांधती है; कोई चन्दन घिसती है; यह देखो बंसी निकली, यह बीन की खोल उतरी, यह तीन मृदंग मिलाये गए। यह मंजीरा झनका, यह धुरपद गाया गया। **(कुछ ठहर कर)** किसी को बुला कर पूछैं तो **(नेपथ्य की ओर देख कर)** अरे कोई है?

[पारिपार्श्वक आता है]

पारिपार्श्वक : कहो, क्या आज्ञा है?

सूत्रधार : **(सोच कर)** क्या खेलने की तैयारी हुई?

पारिपार्श्वक : हां, आज सट्टक न खेलना है।

सूत्रधार : किस का बनाया?

पारिपार्श्वक : राज्य की शोभा के साथ अंगों की शोभा का; और राजाओं में बड़े दानी का अनुवाद किया।

सूत्रधार : **(विचार कर)** यह तो कोई कूट सा मालूम पड़ता है **(प्रकट)** हां हां, राजशेखर का और हरिश्चन्द्र का।

पारिपार्श्वक : हां, उन्हीं का।

सूत्रधार : ठीक है, सट्टक में यद्यपि विष्कम्भक प्रवेशक नहीं होते, तो भी यह नाटकों में अच्छा होता है। **(सोच कर)** तो भला कवि ने इस को संस्कृत ही में क्यौं न बनाया, प्राकृत में क्यौं बनाया?

पारिपार्श्वक : आप ने क्या यह नहीं सुना है?

जामैं रस कछु होत है, पढ़त ताहि सब कोय।
बात अनूठी चाहिए, भाषा कोऊ होय॥

और फिर

कठिन संस्कृत अति मधुर, भाषा सरस सुनाय।
पुरुष नारि अन्तर सरिस, इन में बीज लखाय॥

सूत्रधार : तो क्या उस कवि ने अपना कुछ वर्णन नहीं किया?

पारिपार्श्वक : क्यौं नहीं, उस समय में कवियों के चन्द्रमा अपराजित ही ने उस का बड़ा बखान किया है।

निरभर बालक राज कवि, आदि अनेक कबीस।
जाके सिखए तें भए, अति प्रसिद्ध अवनीस॥
धवल करत चारहु दिसा, जाको सुजस अमन्द।
सो शेखर कबि जग विदित, निज कुल कैरव चन्द॥

सूत्रधार : पर भला, आज तुम को किसने खेलने की आज्ञा दी है?

पारिपार्श्वक : अवन्ती देश के राजा चारुधान की बेटी उसी कवि की प्यारी स्त्री ने, और यह भी जान रक्खो कि इस सट्टक में कुमार चन्द्रपाल कुन्तल देश की राजकुमारी को ब्याहैगा। तो अब चलौं अपने अपने स्वांग सजैं। देखो तुम्हारा बड़ा भई देर से राजा की रानी का भेष धर कर परदे के आड़ में खड़ा है।

[दोनों जाते हैं]

पहिला अंक

स्थान–राजभवन

[राजा, रानी, विदूषक और दरबारी लोग दिखाई पड़ते हैं]

राजा : प्यारी, तुम्हें बसन्त के आने की बधाई है। देखो अब पान बहुत नहीं खाया जाता, न सिर में तेल देकर चोटी कस के गूंथी जाती है। वैसे ही चोली भी कस के नहीं बांधी जाती, न केसर का तिलक दिया जा सकता है, इसी से प्रकट है कि बसन्त ने अपने बल से सरदी को अब जीत लिया।

रानी : महाराज! आप को भी बधाई है, देखिये, कामी जन चन्दन लगाने और फूलों की माला पहिरने लगे, और दोहर पाएंते ते रक्खी रहती है, तौ भी अब ओढ़ने की नौबत नहीं आती।

[नेपथ्य में दो बैतालिक गाते हैं]

जै पूरब दिसि कामिनी कन्त।
चम्पावति नगरी सुख समंत॥
खेलत जीत्यौ जिन राढ़ देश।
मोहत अनंग लखि जासु भेस॥
क्रीड़ा मृग जाको सारदूल।
तन बरन कान्ति मनु हेम फूल॥
सब अंग मनोहर महाराज।
यह सुखद होइ रितुराज साज॥

मन्द मन्द लै सिरिस सुगंधहि सरस पवन यह आवै।
करि संचार मलय पर्व्वत पैं बिरहिन ताप बढ़ावै॥
कामिनि जन के बसन उड़ावत काम धुजा फहरावै।
जीवन प्रान दान सो बितरत वायु सबन मन भावै॥1॥
देखहु लहि रितुराजहि उपवन फूली चारु चमेली।
लपट रहीं सहकारन सों बहु मधुर माधवी बेली॥

फूले बर बसन्त बन बन मैं कहुं मालती नवेली।
तापैं मदमाते से मधुकर गूंजत मधुरस रेली॥2॥

राजा : प्यारी, हम लोग तो आपस में बसन्त की बधाई एक दूसरे को देते ही थे अब इन दोनों कांचनचन्द्र और रत्नचन्द्र बन्दियों ने हम दोनों को बधाई दी। अब तुम इस बसन्तोत्सव की ओर दृष्टि करो। देखो, कोइल कैसे पंचम सुर में बोलती है, हवा में झोंके से लता कैसी नाच रही हैं। तरून स्त्रियों के जी में कैसा इस का उत्साह छा रहा है और सारी पृथ्वी इस बसन्त की वायु से कैसी सुहानी हो रही है।

रानी : महाराज! बन्दी ने जैसा कहा है, हवा वैसी ही बह रही है। देखिये, यह पवन लंका के कनगूरों की पंगति में यद्यपि कैसा चंचल है पर अगस्त मुनि के आश्रम में उन के भय से धीरे चलता है। इस के झोंके से चन्दन कपूर कंकोल और केले के पत्ते कैसे झोंका खा रहे हैं। जंगलों में जहां तहां सांप नाचते हैं और ताम्रपर्णी नदी की लहरों को यह स्पर्श करता है तो उन्हें दूना कर देता है।

देखिए, कोइल मानो कामदेव की आज्ञा से इस चैत के त्योहार में पुकार रही है कि तरुणियों, झूठा मान छोड़ो, अपने प्यारे को प्यार की चितवन से देखो, और दौड़ दौड़ के प्रीतम को गले लगाओ। यह चार दिन की जवानी तो बहती नदी है फिर यह दिन कहां और यह समय कहां?

विदूषक : अरे कोई मुझे भी पूछो, मैं भी बड़ा पंडित हूं। जब मैंने अपना मकान बनाया था तो हजारों गदहों पर लाद लाद कर पोथियां नेव में भरवाई गई थीं और हमारे ससुर जनम भर हमारे यहां पोथी ही ढोते ढोते मरे, काले अक्षर दूसरों को तो कामधेनु हैं पर हम को भैंस है।

विचक्षणा : इसी से तो तुम्हारा नाम लबार पांड़े है।

विदूषक : **(क्रोध से)** हत तेरी की! दाई माई कुटनी लुच्ची मूर्ख! अब हम ऐसे हो गए कि मजदूरिनैं भी हमैं हंसै।

विचक्षणा : तुम्हारी माई कुटनी है! तभी तुम ऐसे सपूत हुए। तुम से तो वे भाट अच्छे जो अभी गीत गा गए हैं। तुम्हें इतनी भी समझ नहीं है कि कुछ बनाओ और गाओ। यह सेखी और तीन काने।

विदूषक : अब हम इन के सामने गावैंगे, इन का मुंह है कि हमारी कविता सुनैं। हां अगर हमारे दोस्त महाराज कुछ कहैं तो अलबत्ते गाऊं।

राजा : हां हां, मित्र पढ़ो, हम सुनते हैं।

(विदूषक लाठी पर तमूरा बजा कर गाता है)

आयो आयो बसन्त आयो आयो बसन्त।
बन में महुआ टेसू फुलन्त॥

नाचत है मोर अनेक भांति,
मनु भैंसा का पड़वा फूलफालि।
बेला फूले बन बीच बीच,
मानो दही जमायो सींच सींच।
वहि चलत भयो है मन्द पौन,
मनु गदहा को छान्यो पैर।

तारीफ और वाह वाह करते जाइये नहीं तो न गाया जायगा। देखिये संगीत साहित्य दोनों एक ही साथ करना मेरा काम है।

[गाता है]

गेंदा फूले जैसे पकौरि।
लड्डू से फले फल बौरि बौरि।
खेतन में फूले भात दाल।
घर में फूले हम कुल के पाल।
आयो आयो वसन्त आयो आयो बसन्त॥
हम बसन्त, राजा वसन्त, रानी बसन्त, यह दाई भी बसन्त॥

[सब लोग हंसते हैं]

राजा : भला इन की कविता तो हो चुकी; अब बिचक्षणे! तुम भी कुछ पढ़ो।

विदूषक : हां, हां, हमारी बोली पर हंसती है तो यह पढ़े। बड़ी बोलने वाली इस को सिवाय टेंटें करने के और आता क्या है। क्या ऐसी बदमाश स्त्री राजा के महल में रहने के योग्य है? यह रात दिन महारानी का गहना चुरा कर अपने मित्रों को दिया करती है और इस पर हमारे काव्य पर हंसती है सच है बन्दर अदरक का स्वाद क्या जानै! हमारे काव्य पर रीझने वाले महाराज हैं। तू क्या रीझैगी, अब देखते न हैं, तू कैसा काव्य पढ़ती है।

रानी : हां हां, सखी विचक्षणे! हम लोगों के आगे तो तूने अपना बनाया काव्य कई बेर पढ़ा है, आज महाराज के सामने भी तो पढ़, क्योंकि विद्या वही जिस की सभा में परीक्षा ली जाय और सोना वही जो कसौटी पर चढै और शस्त्र वही जो मैदान में निकलै।

विचक्षणा : महारानी जी की जो आज्ञा।

[पढ़ती है]

फूलैंगे पलास बन आगि सी लगाइ कूर,
कोकिल कुहकि कल सबद सुनावैगो॥
त्यौंही सखी लोक सबै गावैगो धमार धीर,
हरन अबीर बीर सब ही उड़ावैगो॥

सावधान होहु री वियोगिनी सम्हारि तन,
अतन तनकही मैं तापन तें तावैगो॥
धीरज नसावत बढ़ावत विरह काम,
कहर मचावत बसन्त अब आवैगो॥

राजा : वाह वाह! सचमुच विचक्षणा बड़ी ही चतुर है और कविता समुद्र के पार हो गई है। यह तो सब कवियों की राजा होने योग्य है।

रानी : (हंस कर) इस में कुछ सन्देह है। हमारी सखी सब कवियों की सिरजात तो हुई।

विदूषक : (क्रोध से) तो महारानी, स्पष्ट क्यौं नहीं कहतीं कि यह दासी विचक्षणा बहुत अच्छी है और कपिंजल ब्राह्मण बहुत निकम्मा है।

विचक्षणा : हैं हैं! एक बारगी इतने लाल पीले हो गए। जो जैसा है उस का गुण तो उस के काव्य ही सें प्रकट हो गया। तुम्हारे काव्य की उपमा तो ठीक ऐसी है जैसे लम्बस्तनी के गले में मोती की माला, बड़े पेटवाली को कामदार कुरती, सिर मुंडी को फूलों की चोटी और कानी को काजल।

विदूषक : सच है, और तुम्हारी कविता ऐसी है जैसे सफेद फर्श पर गोबर का चोंथ, सोने की सिकड़ी में लोहे की घंटी और दरियाई की अंगिया में मूंज की बखिया।

विचक्षणा : खफा मत हो, अपनी ओर देखो, आप आप ही हो। एक अक्षर नहीं जानते तिस पर भी हीरा तौलते हो, और हम सब पढ़ लिख कर भी अब तक कपास ही तौलती हैं।

विदूषक : बकबक किए ही जायगी तो तेरा दाहिना और बायां युधिष्ठिर का बड़ा भाई उखाड़ लेंगे।

विचक्षणा : और तुम भी जो टें-टें किए ही जाओगे तो तुम्हारी भी स्वर्ग काट के एक ओर के पोंछ की अनुप्रास मूड़ देंगे और लिखने की सामग्री मुंह में पोत कर पान के मसाले का टीका लगा देंगे।

राजा : मित्र! इस के मुंह मत लगो, यह कविताई में बड़ी पक्की है।

विदूषक : (क्रोध से) तो साफ साफ क्यौं नहीं कहते कि हरिश्चन्द्र और पद्माकर इस के आगे कुछ नहीं हैं।

[क्रोध कर के इधर उधर घूमता है]

विचक्षणा : चल, उसी खूंटी पर लटक जिस पर मेरा लहंगा रक्खा है।

विदूषक : (क्रोध कर और सिर हिला के) और तू भी वहां जा जहां मेरी बुड्ढी मां के दांत गए। छिः! हम भी बड़े बड़े दरबार से निकाले गए पर ऐसी अंधेर नगरी और चौपट राजा कहीं नहीं। यहां चरणामृत और

शराब एक ही बरतन में भरे जाते हैं।

विचक्षणा : भगवान करै इस दरबार से तुझे वह मिलै जो महादेव जी के सिर पर हैं और तुझे वह शास्त्र पढ़ाया जाय जो कांटों का मर्दन करता है।

विदूषक : लौंड़िया फिर टें टें किए ही जाती है। खजाना लूट लूट के खाली कर दिया। इस पर भी मोढ़े पर बैठने वाली और गलियों में मारी मारी फिरने वाली, हम कुलीन ब्राह्मणों के मुंह लगती है। जा तुझ को सर्व्वदा वहीं फांकना पड़ै जो महादेव जी अंग में पोतते हैं और तेरे हाथ सदा वही लगै जिस में धरम बंधता है।

विचक्षणा : तेरे इस बोलने पर तो ऐसा जी चाहता है कि पान के बदले चरनदास जी से तेरा मुंह लाल कर दूं। फिट।

विदूषक : **(बड़े क्रोध से ऊंचे स्वर से)** ऐसे दरबार को दूर ही से नमस्कार करना चाहिए जहां लौंड़िया पंडितों के मुंह आवैं। यदि हमैं इसी उचक्की की बात सहनी हों तो हम बसुन्धरा नाम की अपनी ब्राह्मणी ही की न चरनसेवा करैं जो अच्छा अच्छा और गर्म गर्म खाने को खिलावै। **(ऐसा कहता हुआ क्रोध से चला जाता है। सब लोग हंसते हैं)**

रानी : महाराज कपिंजल बिना सभा ऐसी हो गई जैसे बिना काजल का शृंगार।

[नेपथ्य में]

नहीं नहीं हम नहीं आवैंगे। विचक्षणा को खसम और राजा को मुसाहब कोई दूसरा खोज लो या आज से हमारा काम वही गलितयौवना और चिपटे नाक-कान वाली करैगी।

विचक्षणा : महारानी! आप के आग्रह से यह कपिंजल और भी अकड़ा जाता है जैसे सन की गांठ भिगाने से उलटी कड़ी होती है। उस को जाने दीजिये, इधर देखिये, यह गंवारिनों के गीतों और चांचर से मोहित सूर्य्य यद्यपि धीरे चलता है तौ भी अब कितना पास आ गया है।

[विदूषक घबड़ाया आता है]

विदूषक : आसन! आसन!!

राजा : क्यौं?

विदूषक : भैरवानन्द जी आते हैं।

राजा : क्या वही भैरवानन्द जो आजकल के बड़े प्रसिद्ध सिद्ध हैं।

विदूषक : हां, हां।

(भैरवानन्द आते हैं)

भैरवानन्द : जन्त्र में मन्त्र, न ज्ञान न ध्यान, न जोग न भोग, केवल गुरु का

प्रसाद, पीने को मदिरा औ खाने को मांस, सोने को स्त्री, मसान का बास, लाख लाख दासी, सब कड़े कड़े अंग सेवा में हाजिर रहैं, पीये मद्य भंग, भिच्छा का भोजन औ चमड़े का बिछौना, लंका पलंका सातों दीप नवों खंड गौना, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, पीर, पैगम्बर, जोगी जती सती, बीर महाबीर, हनुमान, रावन अहिरावन अकाश-पताल जहां बांधूं तहां रहै! जो जो कहूं सो सो करै। मेरी भक्ति गुरु की शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरोवाच, दोहाई पशुपति नाथ की, दोहाई कामाक्षा की, दोहाई गोरखनाथ की।

राजा : महाराज! प्रणाम!!

भैरवानन्द : राजा! विष्णु और ब्रह्मा तप करते करते थक थक गए पर सिद्धि मद्य और स्त्री ही में है। यह महादेवजी ही ने जाना है सो वह कापालिकों के परम कुलगुरु शिव तेरा कल्याण करैं।

राजा : महाराज, आसन पर बिराजिये।

भैरवानन्द : हम रमते लोगों को बैठने से क्या काम? तब भी तेरी खातिर से बैठते हैं। **(बैठता है)**—बोल, क्या दिखावैं?

राजा : महाराज! कुछ आश्चर्य दिखाइए।

भैरवानन्द : क्या आश्चर्य दिखलावैं।

सूरज बांधूं चन्दर बांधूं बांधूं अगिन पताल।
सेस समुन्दर इन्दर बांधूं औ बांधूं जम काल॥
जच्छ रच्छ देवन की कन्या बल से लाऊं बांध।
राजा इन्दर का राज डोलाऊं तो मैं सच्चा साध॥

नहीं तो जोगड़ा। और क्या।

राजा : **(विदूषक के कान में)** मित्र, तुम ने कहीं कोई बड़ी सुन्दर स्त्री देखी हो तो बुलवावैं?

विदूषक : **(स्मरण कर के)** हां! दक्षिण देश में विदर्भ नामक नगर है। वहां मैंने एक लड़की बड़ी सुन्दर देखी थी, वही बुलाई जाय।

भैरवानन्द : बोल! बुलाई जाय?

राजा : हां! महाराज! पूर्णमासी का चन्द्रमा पृथ्वी पर उतारा जाय।

भैरवानन्द : **[ध्यान करता है।]**

[पर्दे के भीतर से खिंची हुई की भांति एक सुन्दर स्त्री आती है और सब लोग बड़ा ही आश्चर्य करते हैं]

राजा : **(आश्चर्य से)** अहाहा! जैसे रूप का खजाना खुल गया। नेत्र कृतार्थ हो गए। यह रूप, यह जोबन, यह चितवन, यह भोलापन, कुछ कहा नहीं जाता। मालूम होता है कि यह नहाकर बाल सुखा रही थी।

उसी समय पकड़ आई है, अहा! धन्य है इस का रूप!!! इस की चितवन कलेजे में से चित्त को जोरा जोरी निकाले लेती है। इस की सहज शोभा इस समय कैसी भली मालूम पड़ती है! अहा! इस के कपड़े से जो पानी की बूंदें टपकती हैं! वह ऐसी मालूम होती हैं मानों भावी वियोग के भय से वस्त्र रोते हैं। काजल आंखों से धो जाने से नेत्र कैसे सुहाने हो रहे हैं और बहुत देर तक पानी में रहने से कुछ लाल भी हो गए हैं, बाल हाथों में लिए हैं उस से पानी की बूंदें ऐसी टपकती हैं मानो चन्द्रमा का अमृत पी जाने से दो कमलों ने नागिनी को ऐसा दबाया है कि उन के पोंछ से अमृत बहा जाता है। भींगे वस्त्र से छोटे छोटे इस के कठोर कुच अपनी ऊंचाई और श्यामताई से यद्यपि प्रत्यक्ष हो रहे हैं तौ भी यह उन्हें बांह से छिपाना चाहती है, और वैसे ही गोरी गोरी जांघें इस के चिपके हुए भीगे वस्त्र ये यद्यपि चमकती हैं तौ भी यह उन को दबाये देती है, वरंच इसी अंग उघरने से यह लजाकर सकपकानी सी भी हो रही है, और योगबल से खिंच आने से जो कुछ डर गई है इस से और भी चौकन्नी हो होकर भूले हुए मृगछौने की भांति अपने चंचल नेत्र नचाती है।

स्त्री : **[सकपकानी सी हो कर एक एक को देखती है, आप ही आप]** यह कौन पुरुष है जिस का देह गम्भीर और मधुर छबि का मानो पुंज है? निश्चय यह कोई महाराज हैं और यह भी महादेव के अंग में पार्वती की भांति! निश्चय इस की प्यारी महारानी हैं, और यह कोई बड़ा जोगी है। हो न हो यह सब इसी का खेल है। **(विचार कर के)** यद्यपि यह एक स्त्री के बगल में बैठा है तो भी मुझे ऐसी गहरी और तीखी दृष्टि से क्यौं देखता है।

(राजा की ओर देखती है)

राजा : **(विदूषक के कान में)** मित्र! अभी जो इस ने कानों को छूने वाली चंचल चितवन से मुझे देखा तो ऐसा मालूम हुआ कि मानो मुझ पर किसी ने अमृत की पिचकारी चलाई वा कपूर बरसाया वा चांदनी से एक साथ नहला दिया या मोती का बुक्का छिड़क दिया।

विदूषक : सच्च है, अहाहा! वाह रे, इस के रूप में छवि! इस की कमर एक लड़का भी अपनी मुट्ठी में पकड़ सकता है, और नेत्र की चंचलता देख कर पुरुष क्या स्त्री भी मोह जाती हैं। देखो यद्यपि इस ने स्नान के हेतु गहना उतार दिया है तौ भी कैसी सुहानी दिखाई पड़ती है। सच्च है, सुन्दर रूप को तो गहना ऐसा है जैसा निर्मल जल को काई।

राजा : ठीक है, इस की छवि तो आप ही कुन्दन की निन्दा करती है तो गहने से इसे क्या? इस का दुबला शरीर काम की परतंचा उतारी हुई कमान है, और इस के गोरे गोरे गोल गालों में कनफूल की परछाहीं ऐसी दिखाती है जैसे चांदी की थाली में भरे हुए मजीठ के रंग में चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब! इस के कर्णावलम्बी नेत्र मेरे मन को अपनी ओर खींचे ही लेते हैं।

विदूषक : (हंस कर) जाना जाना! बहुत बड़ाई मत करो।

राजा : (हंस कर) मित्र! हम कुछ झूठ नहीं कहते। तुम्हीं देखो, यह बिना आभूषण भी अपने गुणों से भूषित है। जो स्त्रियां ऐसी सुन्दर हैं उन पर पुरुष को आसक्त कराने में कामदेव को अपना धनुष नहीं चढ़ाना पड़ता। देखो, इस की चितवन में मिठास के साथ स्नेह भी झलकता है। इस के कान में नीले कमल के फूल झूलते हुए ऐसे सुहाते हैं मानो चन्द्रमा में से दोनों ओर से कलंक निकला जाता है।

रानी : अजी कपिंजल! इन से पूछो तो यह कौन हैं या मैं ही पूछती हूं। (स्त्री से) सुन्दरी, यहां आओ, मेरे पास बैठो और कहो, तुम कौन हो?

राजा : आसन दो।

विदूषक : यह मैंने अपना दुपट्टा बिछा दिया है। बिराजो।

[स्त्री बैठती है]

हां, अब कहो।

स्त्री : कुन्तल देश में जो विदर्भ नगर है, वहां की प्रजा का बल्लभ, बल्लभराज नामक राजा है।

रानी : (आप ही आप) वह तो मेरा मौसा है।

स्त्री : उस की रानी का नाम शशिप्रभा है।

रानी : (आप ही आप) और यही तो मेरी मौसी का भी नाम है।

स्त्री : (आंख नीची कर के) मैं उन्हीं की बेटी हूं।

रानी : (आप ही आप) सच है, बिना शशिप्रभा के और ऐसी सुन्दर लड़की किस की होगी? सीप बिना मोती और कहां हो? (प्रकट) तो क्या कर्पूर मंजरी तू ही है?

(स्त्री लाज से सिर झुका कर चुप रह जाती है)

रानी : तो आओ आओ बहिन मिल तो लें।

[कर्पूर मंजरी को गले लगा कर मिलती है]

कर्पूर मंजरी : बहिन, यह आज हमारी पहली भेंट है।

रानी : भैरवानन्दजी की कृपा से कर्पूर मंजरी का देखना हमैं बड़ा ही अलभ्य लाभ हुआ। अब यह पन्द्रह दिन तक यहीं रहै! फिर आप जोगबल से पहुंचा दीजिएगा।

भैरवानन्द : महारानी की जो इच्छा।

विदूषक : मित्र! अब हम तुम दो ही मनुष्य यहां बेगाने, निकले, क्यौंकि ये दोनों तो बहिन ही हैं और भैरवानन्दजी इन दोनों के मिलाने वाले ठहरे! यह सरस्वती की दूसरी कुटनी भी एक प्रकार की रानी ही ठहरी। गए हम।

रानी : विचक्षणा! अपनी बड़ी बहन सुलक्षणा से कह कि भैरवानन्दजी की पूजा कर के उन को यथायोग्य स्थान दे।

विचक्षणा : जो आज्ञा।

रानी : महाराज! अब हम महल में जाते हैं, क्यौंकि बहिन को अभी कपड़ा पहराना और सिंगार करना है।

राजा : इस को सिंगारना तो मानो चम्पे के थाल में कस्तूरी भरना है। पर सांझ हो चुकी है अब हम भी तौ चलते हैं।

[नेपथ्य में दो बैतालिक गाते हैं]

[राग गौरी]

पहला बैतालिक : भई सह सांझ सबन सुखदाई।
मानिक गोलक सम दिन मनि मनु संपुट दियो छिपाई॥
अलसानी दृग मूंदि मूंदि कै कमल लता मन भाई।
पंच्छी निज निज चले बसेरन गावत काम बधाई॥

[राग पूरबी]

दूसरा बैतालिक : देखो बीत चल्यो दिन प्यारे,
आइ गई रतियां हो रामा।
दीपक बरे निकस चले तारे हो,
हिलत नहीं पतियां हो रामा॥
दासिन महलन सेज बिछाई हो,
मान मई मतिया हो रामा।
काम छोड़ि घर फिरै सबै नर हो,
लगीं तिय छतियां हो रामा॥

[जवनिका गिरती है]

[पहिला अंक समाप्त हुआ]

दूसरा अंक

स्थान—राजभवन

[राजा और प्रतिहारी आते हैं]

प्रतिहारी : इधर महाराज इधर!

राजा : **(कुछ चल कर सोच से)** हा! उस समय वह यद्यपि कुच नितम्ब भार से तनिक भी न हिली, परन्तु त्रिबली के तरंग भय श्वास से चंचल थे और गला तिरछा था, मुखचन्द्र हिलने से वेणी ने कंचुकी का आलिंगन किया था। सो छबि तो भुलाये भी नहीं भूलती।

प्रतिहारी : **(आप ही आप)** क्या अब तक वही गेंद वही चौगान! अच्छा देखो, हम इन का चित्त वसन्त के वर्णन से लुभाते हैं। **(प्रत्यक्ष)** महाराज! इधर देखिये, कोकिल के कंठ खोलनेवाले भ्रमरों की झंकार में माधुर्य्य उत्पन्न करनेवाले और बिरहियों के चित्त पंचम स्वर से घूर्णित करने वाले चैत के दिन अब कुछ बड़े होने लगे।

राजा : **(सुन कर अनुराग से)** सच्च है, तभी न लावन्य जल से पूरित अनेक विलास हास से छके सब की सुन्दरता जीतने वाले, उस के नील कमल से नेत्रों को स्मरण कर के शृंगार को जगाते हुए कामदेव ने वियोगियों पर यह कठिन धनु कान तक तानकर तीर चढ़ाया है। **(पागल की भांति)** हा! वह हरिननयनी मानो चित्त में घूमती है। उस के गुण नहीं भूलते; सेज पर मानो सोई हुई है, और मेरे साथ ही साथ चलती है; प्रति शब्द में मानो बोलती है, और काव्यों से मानो मूर्तिमान प्रकट होती है। हा! जिस को उस ने नेत्र भर के नहीं देखा है जब वे वसन्त ऋतु के पंचम गान से मरे जाते हैं तो जिन्हें उस ने पूर्ण दृष्टि से देखा है, उन्हें तो तिलांजुलि ही देना योग्य है। हाय! उस के दूध के धोये सफेद कोए में काली भंवरे सी पुतली कैसी शोभित हैं, जिन की पुष्टि के साथ ही कामदेव भी हृदय में प्रविष्ट हो जाता है। **(विचार कर के)** प्यारे मित्र ने क्यौं देरी लगाई।

[विचक्षणा और विदूषक आते हैं]

विदूषक : तो विचक्षणा, तुम सच कहती हो न?

विचक्षणा : हां हां सच है। वाह! सच नहीं क्या झूठ कहैंगे।

विदूषक : हम को तुम्हारी बात का विश्वास इस से नहीं आता कि तुम बड़ी हंसोड़ हो।

विचक्षण : वाह! हंसी की जगह हंसी होती है। काम की बात में हंसी कैसी?

विदूषक : **(राजा को देख कर)** अहा! प्यारे मित्र, यह बैठे हैं! हा! बिना हंस के मानस, बिना मद के हाथी, तुषार के कमल, दिन के दीपक और प्रातःकाल के पूर्णचन्द्र की भांति महाराज कैसे तनछीन मनमलीन हो रहे हैं?

दोनों : **(सामने जा कर)** महाराज की जय हो।

राजा : कहो मित्र, तुम्हें विचक्षणा कहां मिली?

विदूषक : महाराज! आज विचक्षणा मुझ से मित्रता करने आई थी। इन्हीं बातों में तो इतनी देर लगी।

राजा : क्यौं, विचक्षणा तुम से क्यौं मित्रता करैगी?

विदूषक : क्यौंकि आज यह किसी बड़े प्यारे मनुष्य की पत्री हाथ में लिये है।

राजा : और भला यह केवड़ा कहां से आया?

विचक्षणा : केवड़े ही के पत्र पर पत्री लिखी है।

राजा : वसन्त ऋतु में केवड़ा कहां से आया?

विचक्षणा : भैरवानन्दजी ने अपने मन्त्र के प्रभाव से महारानी के महल के सामने एक लाठी को केवड़े का पेड़ बना दिया। महारानी ने भी आज हिंडोल नर्तनी चतुर्थी के पर्व्व से उन्हीं पत्तों से महादेवजी की पूजा की, और दो पत्ता अपनी छोटी बहिन कर्पूर मंजरी को दिया। उस ने एक पत्ता मंगला गौरी को चढ़ाया, और दूसरे पत्ते की पुड़िया यह आप को भेंट है जिस में कस्तूरी के अक्षरों से छन्द लिक्खे हैं।

[पत्र राजा को देती है]

राजा : **(खोल कर पढ़ता है)**

जिमि कपूर के हंस सों, हंसी धोखा खाय।
तिमि हम तुम सों नेह करि, रहे हाय पछिताय॥

(इस को बारम्बार पढ़ कर) अहा! यह वही मदन के रसायन अक्षर हैं।

विचक्षणा : महाराज! दूसरा छन्द मैंने अपनी प्यारी सख़ी की दशा में बना के लिखा है; उसे भी पढ़िये।

राजा : (पढ़ता है)
बिरह अनल दहकत नित छाती।
दुखद उसास बढ़त दिन राती॥
गिरत आंसु संग सखि कर चूरी।
तृन सम जियन आस भई झूरी॥

विचक्षणा : और अब मेरी बहिन ने जो उस का हाल लिक्खा है वह पढ़िये।

राजा : (पढ़ता है)
तुम बिन तासु उसास गुरु, भये हार के तार।
तन चन्दन तपि जात हैं, बिरह अनल संचार॥
तन पीरो दिन चन्द सम, निस दिन रोअत जात।
कबहुं न ताको मुख कमल, मृदु मुसकनि बिकसात॥

राजा : (लम्बी सांस ले कर) भला कविता में तो यह तुम्हारी बहिन ही है। इस का क्या कहना है!

विदूषक : महाराज! विचक्षणा पृथ्वी की सरस्वती और इस की बहिन त्रैलोक्य की सरस्वती, भला इस का क्या पूछना है, पर हम भी अपने मित्र के सामने कुछ पढ़ना चाहते हैं।
जब सों देखी मृगनयनि, भूल्यो भोजन पान।
निसदिन जिय चिन्तन वहै, रुचत और नहिं आन॥
मलय पवन तापत तनहिं, फूल माल न सुहात।
चंदन लेप उसीर रस, उलटो जारत गात॥
हार धार तरवार से, सूरज सों बढ़ि चन्द।
सबहीं सुख दुखमय भयो, परे प्रान हूं मंद॥

राजा : प्रान न मन्द होंगे, अभी थोड़ी ही देर में लड्डू से जिला दिये जायंगे। अब यह कहो कि रनिवास में फिर क्या क्या हुआ?

विदूषक : विचक्षणा, कहो न क्या क्या हुआ?

विचक्षणा : महाराज! स्नान कराया, वस्त्र पहिनाया, तिलक लगाया, आभूषण साजे और मना कर प्रसन्न किया।

राजा : कैसे?

विचक्षणा : गोरे तन कुमकुम सुरंग, प्रथम न्हवाई बाल।

राजा : सो तो जनु कंचन तप्यौ, होत पीत सौं लाल॥

विचक्षणा : इन्द्रनीलमणि पैंजनी, ताहि दई पहिराय।

राजा : कमल कली जुग घेरि कै, अलि मनु बैठे आय॥

विचक्षणा : सजी हरित सारी सरिस, जुगल जंघ कहं घेरि।

राजा : सो मनु कदली पात निज, खंभन लपट्यौ फेरि॥

विचक्षणा : पहिराई मनि किंकिनी, छीन सुकटि तट लाय।
राजा : सो सिंगार मंडप बंधी, बंदनमाल सुहाय॥
विचक्षणा : गोरे कर कारी चुरी, चुनि पहिराई हाथ।
राजा : सों सांपिन लपटी मनहुं, चन्दन साखा साथ॥
विचक्षणा : निज कर सों बांधन लगी, चोली तब वह बाल।
राजा : सो मनु खींचत तीर भट, तरकस से तेहि काल॥
विचक्षणा : लाल कंचुकी में उगे, जोबन जुगल लखात।
राजा : सो मानिक संपुट बने, मन चोरी हित गात॥
विचक्षणा : बड़े बड़े मुक्तान सों, गल अति सोभा देत।
राजा : तारागन आए मनौ, निज पति ससि के हेत॥
विचक्षणा : करनफूल जुग करन में, अतिहि करत प्रकास।
राजा : मनु ससि लै द्वै कुमुदिनी, बैठ्यौ उतरि अकास॥
विचक्षणा : बाला के जुग कान में, बाला सोभा देत।
राजा : स्रवत अमृत ससि दुंहु तरफ, पियत मकर करि हेत॥
विचक्षणा : जिअ-रंजन खंजन दृगनि, अंजन दियो बनाय।
राजा : मनहु सान फेर्‌यौ मदन, जुगल बान निज लाय॥
विचक्षणा : चोटी गुंथी पाटी सरस, करि कै बांधे केस।
राजा : मनहु सिंगार इकत्र ह्वै, बंध्यो यार के वेस॥
विचक्षणा : बहुरि उढ़ाई ओढ़नी, अतर सुबास बसाय।
राजा : फूल लता लपटी किरिन, रवि ससि की मनुआय॥
विचक्षणा : एहि विधि सो भूषित करी, भूषण बसन बनाय।
राजा : काम बाग झालरि लई, मनु वसन्त ऋतु पाय॥
विदूषक : महाराज! मैं सच कहता हूं।

दृग काजर लहि हृदय वह, मनिमय हारन पाय।
कंचन किंकिनि सों सुभग, ता जुग जंघ सुहाय॥

राजा : **(उसकी बात का अनादर कर के)**
छिः! दृग पग पोंछन को लिये भूषन पायंदाज।

विदूषक : (क्रोध से) वाह! हम तो गहिने का वर्णन करते हैं और आप उस की निन्दा करते हैं।

अति सुन्दर हूं कामिनी, बिनु भूषन न सुहाय।
फूल बिना चम्पक लता, केहि भावत मन भाय॥

राजा : (हंस कर) मूढ़।
बिनु भूषण ही सोहही, चतुर नारि करि भाव।
चहिअत नहिं अंगूर को, मिश्री मधुर मिलाव॥

विचक्षणा : महाराज ठीक है, जो नेत्र कान को छूये लेते हैं उन में अंजन क्या, और जो मुख चन्द्रमा की भी निन्दा करता है उस को तिलक क्यों? वैसे ही यद्यपि रूप के समुद्र से शरीर में काई से गहनों की कौन आवश्यकता है, पर यह केवल लोक की चाल है, फूली हुई पीत चमेली को किस ने गहिने से साजा है?

राजा : कपिंजल सुनो, गहिना और कपड़ा तो नाचने वालियों का भूषण है। रूप वही है जो सहज ही चित्त चुरावै। सुभाव ही स्त्री की शोभा है, और गुण ही उस का भूषण है। रसिक लोग कभी ऊपर की बनावट नहीं देखते।

विचक्षणा : महाराज! मैं रानी की आज्ञा से केवल उस की सेवा ही नहीं करती। कर्पूर मंजरी को मेरे प्रेम से मुझ पर विश्वास भी है। इसी से मैं भी उसे बहुत चाहती हूं और आप से सच निवेदन करती हूं कि वह निस्सन्देह विरह से बहुत ही दुखी है। क्योंकि

मदन दहन दहकत हिये, हाथ धर्‍यौ नहिं जात।
कर सों ससि की ओट कै, बितवत सों नित रात॥

मैं तो इतना ही कहे जाती हूं बाकी सब कपिंजल कहेगा।

[जाती है]

राजा : कहो मित्र, और कौन काम है?

विदूषक : आज हिंडोल चतुर्थी के दिन रानी और कर्पूर मंजरी झूला झूलने आवैंगी और महाराज इसी केले के कुंज में छिप कर देखैंगे। यही काम है। **(कुछ सोच कर)** अहा! महारानी बड़ी चतुर हैं तौ भी हमने कैसा छकाया। पुरानी बिल्ली को भी दूध के बदले मट्ठा पिलाया।

राजा : मित्र, तुम्हारे बिना और कौन हमारा काम ऐसा जी लगा के करै! समुद्र को चन्द्रमा के सिवाय और कौन बढ़ा सकता है?

दोनों केले के कुंज में जाते हैं।

विदूषक : मित्र, इस ऊंचे चबूतरे पर बैठो।

राजा : अच्छा।

[दोनों बैठते हैं]

विदूषक : कहो पूर्णिमा का चन्द्र दिखाई पड़ा?

[एक ओर हाथ से दिखाता है]

राजा : **[दिख कर के]** अहा! यह तो सचमुच प्यारी का मुखचन्द्र दिखाई पड़ा।

गयो जगत रमनी गरब, पर्‍यो मन्द नभ चन्द।
सकुचि कमल जल मैं दुरे, भई कुमुद छबि मन्द॥
झूलनि मैं किंकिन बजन, अंचल पट फहरान।
को जोहत मोहत नहीं, प्यारी छबि इहि आन॥

विदूषक : आप सूत्रधार थे। इस से आप ने बहुत थोड़े में कहा। हम भाष्यकार हैं, इस से हम विस्तारपूर्व्वक कहते हैं।

फूली फूलबेली सी नवेली अलबेली बधू,
झूलत अकेली काम केली सी बढ़ति है।
कहै पद्माकर झमंकी की झकोरन, सों,
चारों ओर सोर किंकिनीन को कढ़ति है॥
उर उचकाई मचकीन की मचामच सो,
लंकहि लचाय चाय चौगुनी चढ़ति है।
रति बिपरीत की पुनीत परिपाटी सुतौ,
हौंसनि हिंडोरे की सुपाटी मैं पढ़ति है॥
गाइहौं मलारै और जनाइहौं हिये मैं छबि,
छाइहौं छिगुनि कुंज कुंजही के कौरै मैं।
कहै पद्माकर पियाइहौं पियाला मुख,
मुख सों मिलाइहौं सुगन्ध के झकौरे मैं॥
नेह सरसाइहौं सिखाइहौं जो सासन मैं,
पाइहौं परी सो सुख मैन के मरोरै मैं।
उर उरझाइहौं हिए सों हिए लाइहौं,
झुलाइहौं कबैंधों प्रानप्यारी को हिंडोरे मैं॥
रहसि रहसि हंसि हंसि के हिंडोरे चढ़ी,
लेत खरी पेंगे छबि छाजैं उसकन मैं।
उड़त दूकूल उघरत भुज मूल बढ़ी,
सुखमा अतूल केस फूलन खसन मैं॥
बोझल स्वै देखि देखि भए अनिमेख लाल,
रीझत विसुर श्रम सीकर मसन मैं।
ज्यौं ज्यौं, लचि लचि लंक लचकत भावती की,
त्यौं त्यौं पिअ प्यायो गहै आंगुरी दसन मैं॥
झूलत पाट की डोरी गहे,
पटुली पर बैठन ज्यों उकुरू की।
देवजू दै मचकी कटि बाजत,
किंकिनि केहर गोल उरू की॥
सीखन के विपरीत मनों
ऋतु पावस ही चटसार सुरू की॥
खोंटी पटैं उचटैं तिय चोटी
चमोटी लगै मानो काम गुरु की॥

भूलति ना वह झूलनि बाल की,
फूलनि भाल की लाल पटी की॥
देव कहै लटकै कटि चंचल
चोली दृगंचल चाल नटी की॥
अंचल की फहरान हिए,
रहि जान पयोधर पीन तटी की॥
किंकिनि की झमकानि झुलावनी,
झूकनि सो झूकि जानि कटी की॥

राजा : हाय हाय! कर्पूर मंजरी झूले से क्यौं उतरी? झूला क्या खाली हुआ, हमारे मन के साथ देखने वालों के नेत्र भी खाली हुए।

विदूषक : क्या बिलजी की भांति चमक कर छिप गई?

राजा : नहीं, वरन् छलावे की भांति दिखाई पड़ी और फिर अन्तर्धान हो गई।

[स्मरण करके]

गोरी सो रंग उमंग भर्‌यो चित्त,
अंग अनंग को मंत्र जगाए।
काजर रेख खुभी दृग मैं दोउ,
भौंहन काम कमान चढ़ाए॥
आवनि बोलनि डोलनी ताकी,
चढ़ी चित में अति चोप बढ़ाए।
सुन्दर रूप सो नैनन में बस्यो,
भूलत नाहिनै क्यौं हूं भुलाए॥

विदूषक : मित्र, यही पन्ने का कुंज है, यहां बैठ के आप आसरा देखिए, अब सांझ भी हुआ चाहती है।

[दोनों बैठते हैं]

राजा : मित्र, अब तो उस का बिरह बहुत ही तपाता है।

विदूषक : तो हमारी लाठी पकड़े दम भर बैठे रहो। तब तक ठंडाई की तैयारी लावैं। (कुछ आगे बढ़ कर) वाह! क्या विचक्षणा यहीं आती है?

राजा : ज्यौं ज्यौं संकेत का समय पास आता है, त्यौं त्यौं उत्कंठा कैसी बढ़ती जाती है!

[लम्बी सांस लेकर]

ससि सम मुख दृग कुमुद से, कर पद कमल समान।
चम्पा सो तन तदपि वह, दाहत मोहि सुजान॥

विदूषक : अहा! विचक्षणा तो ठंडाई लिये ही आती है।

[विचक्षणा आती है]

विचक्षणा : अहा! प्यारी सखी को बिरह का ताप कैसा सता रहा है!

विदूषक : (पास जा कर) यह क्या है?

विचक्षणा : ठंडाई।

विदूषक : किस के लिए?

विचक्षणा : प्यारी सखी के वास्ते।

विदूषक : तो आधी हम को दो।

विचक्षणा : क्यौं?

विदूषक : महाराज के वास्ते?

विचक्षणा : कारण?

विदूषक : ''कर्पूर मंजरी के वास्ते'' कारण।

विचक्षणा : तुम क्या नहीं जानते महाराज का वियोग?

विदूषक : तो तुम क्या नहीं जानती कर्पूर मंजरी का वियोग?

[दोनों हंसते हैं]

विचक्षणा : तो महाराज कहां हैं?

विदूषक : तुम्हारी आज्ञानुसार पन्ने के कुंज में।

विचक्षणा : तो तुम भी वहां जाके बैठो! दम भर में ठंडाई के बदले दोनों को दर्शन ही से तरावट पहुंच जायगी।

विदूषक : तो वहां जाओ जहां से फिर न बहुरो।

[विचक्षणा को ढकेलता है। दोनों आपस में धक्का मुक्की करते हैं]

विचक्षणा : छोड़ो छोड़ो! रानी की आज्ञानुसार कर्पूर मंजरी आती होगी।

विदूषक : रानी जी की क्या आज्ञा है?

विचक्षणा : महारानी ने तीन पेड़ लगाये हैं?

विदूषक : किस के?

विचक्षणा : कुरवक, तिलक और अशोक के।

विदूषक : फिर?

विचक्षणा : महारानी ने कहा कि सुन्दर स्त्रियों के आलिंगन से कुरवक देखने से तिलक और पैर के छूने से अशोक फूलता है। इस से तुम जा कर मेरे कहे अनुसार सब काम अभी करो। सो वह आती होगी।

विदूषक : तो पन्ने के कुंज से प्यारे मित्र को ला कर इन तमालों की आड़ में बैठावें।

[राजा को ला कर तमाल के पास बैठता है]

विदूषक : मित्र सावधान होकर अपने मन रूपी समुद्र के चन्द्रमा को देखो।

राजा : (देखता है)

[सजी सजाई कर्पूर मंजरी आती है]

कर्पूर मंजरी : कहां है विचक्षणा?

विचक्षणा : (पास जा कर) सखी, रानी की आज्ञा पूरी करो।

राजा : मित्र, कौन सी आज्ञा?

विदूषक : घबराओ मत? चुपचाप बैठे बैठे देखा करो।

विचक्षणा : यह कुरवक का पेड़ है।

[कर्पूर मंजरी आलिंगन करती है]

राजा : **करत अलिंगन ही अहो, कुरवक तरु इक साथ।**
फूल्यो उमगि अनन्द सों, परसि पियारी हाथ॥

विदूषक : मित्र, यह अद्भुत इन्द्रजाल देखो, जिस से छोटा सा कुरवक का पेड़ कैसा एक साथ फूल उठा! सच है, दोहद के ऐसे ही विचित्र गुण होते हैं।

विचक्षणा : और सखी, यह तिलक का पेड़ है।

[कर्पूर मंजरी देर तक उसी की ओर देखती है]

राजा : **अहा, काजर भीनी काम निधि दीठि तिरीछी पाय।**
भर्यो मंजरिन तिलक तरु, मनहु रोम उलहाय॥

विचक्षणा : सखी, अब इस अशोक की पारी है।

[कर्पूर मंजरी वृक्ष को लात मारती है]

विचक्षणा : **नूपुर बाजत पद कमल, परसत पुरत अशोक।**
फूल्यौ तजि सब लोक निज, प्रगटि कुसुम कल थोक॥

विदूषक : मित्र, महारानी ने यह दोहद आप ही क्यौं न दिया। आप इस का कारण कुछ कह सकते हैं?

राजा : तुम्हीं जानो।

विदूषक : मैं कहूं पर जो आप रूठ न जायं?

राजा : भला, इस में रूठने की कौन बात है? निस्सन्देह जो जी में आवै कह डालो।

विदूषक : **जदपि उतै रूपादि गुन, सुन्दर मुख तन केस।**
पै इत जोबन नृपति की, महिमा मिली विसेस॥

राजा : **जदपि इतै जोवन नवल, मधुर लरकई चारु।**
पै उत चतुराई अधिक, प्रगटन रस ब्यौहारु॥

विदूषक : सच है जवानी और चतुराई में बड़ा बीच है।

[नेपथ्य में बैतालिक गाते हैं]

मन भावनि भई सांझ सुहाई।
दीपक प्रकट कमल सकुचाने प्रफुलित कुमुदिनि निसि ढिग आई॥

ससि प्रकाश पसरित तारागण उगन लगे नभ में अकुलाई।
साजत सेज सबै जुवती जन पीतम हित हिय हेत बढ़ाई॥
फूले रैन फूल बागन में सीतल पौन चली सुखदाई।
गौरी राग सरस सुर सब मिलि गावत कामिनि काम बधाई॥

राजा : मित्र, देखो सन्ध्या हुई।

विदूषक : तभी न बन्दियों ने सांझ के गीत गाए।

कर्पूर मंजरी : सखी, अंधेरा होने लगा, अब चलो।

विचक्षणा : हां, चलना चाहिए।

[जवनिका गिरती है]

[दूसरा अंक समाप्त]

तीसरा अंक

स्थान–राजभवन

[राजा और विदूषक आते हैं]

राजा : **(स्मरण कर के)** उस की मधुर छबि के आगे नया चन्द्रमा, चम्पे की कली, हलदी की गांठ, तपाया सोना और केसर के फूल कुछ नहीं हैं, पन्ने के हार और मालती की माला से शोभित उस का कंठ जी से नहीं भूलता और उस के कर्णावलम्बी नेत्र मेरे जी में अब भी खटकते हैं।

विदूषक : मित्र, स्त्री जाति की भांति तुम क्यौं व्यर्थ बकते हो?

राजा : मित्र, स्वप्न में हम ने ऐसा मनुष्य-रत्न देखा है।

विदूषक : कैसा?

राजा : मैंने देखा है कि कमलवदनी हंसती हुई मेरी सेज के पास आकर नीलकमल घुमाकर मुझे मारने चाहती है और जब मैंने उस का अंचल पकड़ा है तो वह चंचल नेत्रों को नचाकर, अंचल छुड़ा कर भाग गई और मेरी नींद भी खुल गई।

विदूषक : **(आप ही आप)** तो कुछ हम भी कहैं। **(प्रकट)** मित्र, मैंने भी एक सपना देखा है।

राजा : **(आशा से)** हां मित्र, कहो, कहो।

विदूषक : हम ने देखा है कि देवगंगा के सोते में सोते सोते हम महादेव जी के सिर पर खेलने वाली नदी में जा पहुंचे हैं और फिर शरद ऋतु के मेघों ने हम को पेट भर के पीया है और तब हम हवा के घोड़े पर आकाश की सैर करते फिरते हैं।

राजा : **(आश्चर्य से)** हां, फिर?

विदूषक : फिर उसी मेघ में गुब्बारे की भांति बैठे बैठे ताम्रपर्णी नदी में पहुंचे हैं और जब सूर्य्य चित्रा नक्षत्र में गए तब समुद्र के ऊपर जाके वह मेघ बड़ी बड़ी बूंद से बरसने लगा और एक सीप ने मुंह खोल

कर हमैं भली भांति पीया है और उस के पेट में जाते ही हम छःमाशे के मोती हो गए।

राजा : (आश्चर्य से) फिर?

विदूषक : फिर हम समुद्र की लहरों से टक्कर लड़े और सैकड़ों सीपों में घूमते फिरे। अन्त में घिस घिसा कर सुन्दर गोल मटोल चमकीले मोती बन गए और हम को पूर्व्व जन्म का स्मरण ज्यौं का त्यौं बना रहा।

राजा : (आश्चर्य से) फिर क्या हुआ?

विदूषक : फिर समुद्र से वह सीप निकाल कर फाड़ी गई तब हम एक दाने से चौंसठ हो कर बाहर निकले और लाख अशरफी पर एक सेठ के हाथ बिके और जब उस ने उन मोतियों को बिंधवाया तो हम को बड़ी पीड़ा हुई।

राजा : (आश्चर्य से) हां तब?

विदूषक : फिर उस सेठ ने दस दस छोटे मोतियों के बीच में हमें पिरोकर एक माला बनाई, तब हमारा दाम करोड़ों अशरफी से भी बढ़ गया और सोने के डिब्बे में रख के सागरदत्त सेठ ने पंजाब देश में कर्णउझ नगर के राजा श्री बज्रायुध के हाथ हमें बेच डाला।

राजा : (घबड़ा कर) फिर क्या हुआ?

विदूषक : फिर उस की रानी के सुन्दर गले में थोड़ी देर तक हम झूला झूलते रहे, पर जब राजा ने उस का आलिंगन किया तो कठोर स्तन के धक्कों से पिस कर हम ऐसे चिल्लाये कि नींद खुल गई।

राजा : (हंसता है) समझा, यह तुम हमारा परिहास करते हो।

विदूषक : परिहास नहीं, ठीक कहते हैं। राज्य से छूटा हुआ राजा, कुटुम्ब में फांसी बालरंडा, भूखा गरीब ब्राह्मण, और विरह से पागल प्रेमी लोग प्रेम के ही लड्डू से भूख बुझा लेते हैं। भला मित्र, हम यह पूछते हैं कि यह सब किस का प्रभाव है?

राजा : प्रेम का।

विदूषक : भला रानी से इतना स्नेह होते भी कर्पूर मंजरी पर इतना प्रेम क्यौं करते हो और फिर रानी रूप आदिक में किस से कमती हैं?

राजा : यह मत कहो। किसी किसी मनुष्य से ऐसी प्रेम की गांठ बंध जाती है कि उस में रूप कारण नहीं होता। ऐसे प्रेम में रूप और गुण तो केवल चवाइयों के मुंह बन्द करने के काम आता है।

विदूषक : तो प्रेम नाम आप के मत से किस का?

राजा : नवयौवन वाले स्त्री पुरुषों के परस्पर अनेक मनोरथों से उत्पन्न सहज चित्त के विकार को प्रेम कहते हैं।

विदूषक : और उस में गुण क्या क्या हैं?

राजा : परस्पर सहज स्नेह, अनुराग के उमंगों का बढ़ना, अनेक रसों का अनुभव, संयोग का विशेष सुख, संगीत, साहित्य और सुख की सामग्री मात्र को सुहाना कर देना और स्वर्ग का पृथ्वी पर अनुभव करना।

विदूषक : और वह जाना कैसे जाता है?

राजा : लगावट की दृष्टि, नेत्रों का चंचल और चोर होना, अंग अंग के अनेक भाव और मुख की आकृति से।

विदूषक : हमारी जान में चित्त में जो विहार के उत्साह होते हैं उसी का नाम प्रेम है। और, उस को रूप नहीं है तो भी मनुष्य में प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है। जहां कामदेव का इन्द्रजाल यह प्रेम स्थिर है वहां आभूषण और द्रव्य से क्या?

राजा : [हंस कर] इस को द्रव्य और आभूषण ही की पड़ी रहती है। अरे!

कहा अभूषन कह बसन, का अनेक सिंगार।
तिय तन सो कछु और ही; जो मोहत संसार॥
खंजनमद गञ्जन करन; जग रंजन जे आहिं।
मदन लुकंजन सरिस दृग, कह अंजन तिन माहिं॥
धन कुल की मरजाद कछु, प्रेमपंथ नहिं होत।
राव रंक सब एक से, लगत प्रनय रस सोत॥
धनिक बधू जो छबि लहत; बेदी रतन जराय।
ग्राम बधूटी हूं सुई, कुंकुम तिलक लगाय॥
''अनियारे तीखे दृगनि, किती न तरुनि जहान।
यह चितवनि कछु और ही, जिहिं बस होत सुजान''॥

विदूषक : यह ठीक है, पर लड़कई में जो रूप रहता है जवानी के सौन्दर्य से उस से कोई सम्बन्ध नहीं। यह क्यौं?

राजा : हमारे जान में जन्म देनेवाला विधि दूसरा है और उन्नत कुच उत्पन्न करनेवाला दूसरा है। सुन्दरता से भरा अंग, कर्णावलम्बी नेत्र, हारशोभी स्तन, क्षीण मध्य देश और गोल नितम्ब यही पांच अंग कामदेव के मुख्य सहायक होते हैं।

[नेपथ्य में]

हाय! इस ठंडे घर में भी कर्पूर मंजरी पसीने से तर हुई जाती हैं। इस से इसे पंखा झलैं। सखी कुरंगिके! यह हिम उपचार तो तुम कमल की लता को और भी मुरझा देगा।

कमलनाल विषजाल सम, हार भार अहि भोग।
मलय प्रलय जल अनल मोहि, वायु आयु हर रोग॥

विदूषक : प्यारे मित्र ने सुना! तो अब इस अमृत के प्याले की उपेक्षा कब तक करोगे, चलो धूप से सूखती कमलिनी, बिना पानी की केसर की क्यारी, बालक के हाथ में रोली की पुतली, हरिने के सींग में फंसी हुई चन्दन की डाल और अनाड़ी के हाथ पड़ी मोती की सी कर्पूर मंजरी की दशा है इस से चलकर शीघ्र ही उस को प्राणदान दो। लो न तुम्हारा सपना तो सच्च हुआ। चलो काम की पताका उड़ाओ, मदनमन्त्र के हुंकार के साथ ही स्वेद का अभिषेक भी होय। चलो इसी खिड़की से चलें।

(खिड़की की ओर चलना नाट्य करते हैं)

[भीतरी परदा उठता है और एक घर में कुरंगिका और कर्पूर मंजरी बैठी दिखाई देती हैं]

कर्पूर मंजरी : **(राजा को देख कर घबड़ा के)** अहा! क्या पूर्णिमा का चन्द्र आकाश से उतर आया या भगवान् शिवजी ने रति की अधीनता पर प्रसन्न होकर फिर से कामदेव को जिला दिया, या वही छलिया आता है जिस ने चित्त चुरा कर ऐसा धोखा दिया। सखी! यह कुछ इन्द्रजाल तो नहीं है।

विदूषक : **[राजा को दिखा कर]** हां, सचमुच यह इन्द्रजाल का तमाशा है।

[कर्पूर मंजरी लाज से सिर नीचे कर लेती है]

कुरंगिका : सखी, महाराज खड़े हैं और तू आदर करने को नहीं उठती?

[कर्पूर मंजरी उठा चाहती है]

राजा : बस बस, प्यारी, तुम अपने कोमल अंगों को क्यौं दुःख देती हो, जहां की तहां बैठी रहो।

कुच नितम्ब के भार सों, लचि न जाय कटि छीन।
रहो रहो, बैठी रहो, करौ न आज नवीन॥

विदूषक : हाय हाय! कर्पूर मंजरी को बड़ा पसीना हो रहा है। अच्छा पंखा झलैं। **[अपने दुपट्टे से पंखा झलता हुआ जान बूझ कर दिया बुझा देता है]**। हहहह! बड़ा आनन्द हुआ। दिया गुल पगड़ी गायब। अब बड़ा आनन्द होगा। महाराज! देखिये कुछ अन्धेर न हो।

राजा : तो सब लोग छत पर चलैं। आओ प्यारी तुम हमारा हाथ पकड़ लो और अपनी मन्द चाल से हंसों को लजाओ **(स्पर्श सुख नाट्य कर के)** अहा! तुम्हारे अंग से छू जाते ही कदम्ब की भांति हमारा अंग पुष्पित हो गया।

[सब लोग चलना दिखाते हैं]

[नेपथ्य में प्रथम बैतालिक]

नव ससि उदय होइ सुखदायक।
कुमकुम मुख मंडित तिय मुख सम,
देखहु उग्यो जामिनी नायक॥
अरुन दिसा प्राची रंग राची,
तरुन करुन बिरही जन घायक।
रजनी लखि सजनी अनंग अब, तजत किरिन
मिस तकि तकि सायक॥
पत्ररन्ध्र तें छनि छनि आवत,
चांदनि रस सिंगार की वायक।
तारागन प्रगटित नभ मंडल,
ससि राजा के संग जनु पायक॥
बिहरत तरुनि संजोगिन सों मिलि,
लहि सब सुख रसिकन के लायक।
प्रफुलित कुमुद देखि सरवर मह,
गावत काम बधाई गायक॥

[नेपथ्य में चन्द्रमा का प्रकाश होता है]

विदूषक : कनकचन्द्र गा चुका अब माणिकचन्द्र गावै।

[नेपथ्य में दूसरा बैतालिक गाता है]

रैन संजोगिन कों सुखदाई।
तजत मानिनी मान चन्द लखि,
दूती तिन कहं चलत लिवाई॥
कोमल सेज तमोल फूल मधु,
सुखद साज सब धरे सजाई।
बिहरहिं कामिनि कामी जन संग,
लूटहिं सुख पीतम ढिग पाई॥

विदूषक : दिसावधू चन्दन तिलक, नभ सरवर को हंस।
काम कंद सम नभ उदित, यह ससि जगत प्रसंस॥

कुरंगिका : चंद उदय लखि कै मदन, कानन लों धनु तानि।
जीत्यौ जग जुव जन सबैं, निसि निज अति बल जानि॥
(कर्पूर मंजरी से) सखी अब तेरा बनाया चन्द्रमा का वर्णन महाराज को सुनाती हूं।

कर्पूर मंजरी : (लजा नाट्य करती है)

कुरंगिका : ससि अति सुन्दर ताहि कहुं दृष्टि नाहि लगि जाय।
तातें दैव कलंक मिस, दियौ दिठौना लाय॥

राजा : वाह वाह! जैसा छन्द वैसे ही बनानेवाले। फिर क्या पूछना है, कोमल मुख से जो अक्षर निकलैंगे वह क्यों न कोमल होंगे? पर—

सिर दै कस्तूरी तिलक, सब विधि ससि छबि धारि।
तुमहू तौ मन मन कुमुद, विकसावति सुकुमारि॥

[चन्द्रमा की ओर]

तजौ गरब अब चन्द तुम, भूलौ मत मन माहिं।
क्रोध हंसनि भ्रूभंग छबि, तुम मैं सपनेहु नाहिं॥

[नेपथ्य में कोलाहल]

राजा : यह क्या कोलाहल है?

कर्पूर मंजरी : **(भय से)** कुरंगिके! देखौ तो यह क्या है?

[कुरंगिका बाहर होकर आती है]

विदूषक : जान पड़ता है कि यह सब बात रानी ने जान ली।

कुरंगिका : हां ठीक है महारानी हम लोगों को पकड़ने यहां आती हैं। वही कोलाहल है।

कर्पूर मंजरी : (डर कर) तो हम लोग अब इस सुरंग की राह से महल में जाते हैं जिस में महारानी महाराज के साथ हमैं न देखैं।

[सब जाना चाहते हैं]

[जवनिका गिरती है]

[तीसरा अंक समाप्त]

चौथा अंक

[राजा और विदूषक आते हैं]

राजा : अहा! ग्रीष्म ऋतु भी कैसी भयानक होती है! इस ऋतु में दो बातैं अत्यन्त असह्य हैं–एक तो दिन की प्रचंड धूप, दूसरे प्यारे मनुष्य का वियोग।

विदूषक : संसार में दो प्रकार के मनुष्य होते हैं–एक सुखी, एक दुखी। हम अच्छे न सुखी न दुखी, न संयोगी न वियोगी।

[नेपथ्य में मैना बोलती है]

तो तेरा सिर टूट बेल सा क्यौं नहीं गिर पड़ता?

राजा : मित्र, खिलवाड़िन मैना क्या कहती है, सुनो।

विदूषक : (क्रोध से) अच्छा दुष्ट दासी, देख अभी तुझ को पकड़ कर मरोड़ डालते हैं।

[नेपथ्य में मैना बोलती है]

हां हां, निपूते जो हमैं पर न होते तू सब करता।

राजा : (देख कर) क्या मैना उड़ गई? (विदूषक से) कामी जनों की प्यारी इस गरमी की ऋतु में जब निशारूपी मैना जल्दी से उड़ जाती है तो यह मैना क्यौं न उड़े? क्यौं न हो, वा संयोगियों को तो ग्रीष्म भी सुखद ही है। दो पहर तक ठंडे चन्दन का लेप, तीसरे पहर महीन गीले कपड़े, फुहारैं, खसखाने और सांझ को जल विहार और हिम से ठंडी की हुई मदिरा और पिछली रात ठंडी हवा में विहार इत्यादि इस ऋतु में भी सुख के सभी साज हैं, पर जो करनेवाला हो।

विदूषक : ऐसा नहीं, मुंह भर के पान, पानी से फूली हुई सुपारी और कपूर की धूर और मीठा मीठा भोजन ही गरमी में सुखद होता है।

राजा : छिः इस गरमी में भी तुझे पान और मीठे भोजन की पड़ी है। गरमी में तो वायु के संयोग से जल, हिम में रखने से मदिरा, चन्दनलेप करने से स्त्री, सुन्दर कंठ पाकर फूल और पंचम स्वर से पूरित हो कर वंशी–यही पांच वस्तु ठंडी हैं तथा सिरीस के फूल के गहने,

बेला की चोटी, मोतियों के हार, चम्पे की चम्पाकली, नेवारी के गजरे, जल भरी कुमुद की बिना डोरे की माला और हाथ में कमलनाल के कंकण यही सुन्दरियों को रत्नाभरण के बदले योग्य शृंगार हैं।

विदूषक : हम तो यही कहैंगे कि दो पहर को चन्दन लगाये, सांझ को नहाये, मन्दवायु से कान का फूल हिलाने वाली स्त्री ही गरमी में सुखद होती है।

राजा : **(याद कर के)** देखो, जिन के प्यारे पास हैं उन को गरमी के बड़े-बड़े दिन एक क्षण से बीतते हैं, पर जो अपने प्यारे से दूर पड़े हैं उन को तो ये दिन पहाड़ से भी बड़े हो जाते हैं। **(विदूषक से)** मित्र, कुछ उसी की बात कहो।

विदूषक : हां मित्र, सुनो, बहुत अच्छी अच्छी बात कहैंगे। जब से कर्पूर मंजरी को गुप्त घर की सुरंग के दरवाजे पर महारानी ने देख लिया है तब से सुरंग का मुंह बन्द कर के अनंगसेना, कलिंगसेना, वसन्तसेना और विभ्रमसेना नामक चार सखियों को नंगी तलवार लेकर, पूरब में, अनंगलेखा, चन्दनलेखा, चित्रलेखा, मृगांकलेखा और विभ्रमलेखा इन पांच सखियों को धनुष देकर, दक्षिण में, कुन्दनमाला, चन्दनमाला, कुबलयमाला, कांचनमाला, वकुलमाला, मंगलमाला और माणिक्यमाला इन सात सखियों को चोखे भाले देकर, पश्चिम दरवाजे पर अनंगकेलि, कर्पूरकेलि, कंदर्पकेलि और सुन्दरकेलि—इन चार सखियों को खंग देकर उत्तर की ओर पहरे के वास्ते रक्खा है। और भी हजारों हथियारबन्द सखी चारों ओर फिरा करती हैं, और मदिरावती, केलिवती, कल्लोलवती, तरंगवती और तम्बूलवती, ये पांच सोने की छड़ी हाथ में लेकर उस सेना की रक्षा करती हैं।

राजा : वाह रे ठाट बाट! महारानी सचमुच अपने महारानीपन पर आ गईं।

विदूषक : मित्र, महारानी के यहां से सारंगिका नाम की सखी कुछ कहने को आती है।

[सारंगिका आती है]

सारंगिका : महाराज की जय हो। महाराज! महारानी ने निवेदन किया है कि आज वटसावित्री का उत्सव होगा सो महाराज छत पर से देखैं।

राजा : महारानी की जो आज्ञा।

[सारंगिका जाती है। राजा और विदूषक छत पर चढ़ना नाट्य करते हैं]

विदूषक : देखिये देखिये, मोतियों के गहने से लदी हुई नृत्य में वस्त्र फहराने वाली स्त्रियां हीरे के नगीने से जलकणों से कैसा परस्पर खेल रही

हैं, इधर विचित्र प्रबंध से घूमनेवाली, फिरकी की भांति नाचनेवाली और सम पर पांव रखनेवाली स्त्रियां कैसा परस्पर नाच रही हैं, कोई मंडल बांधकर पंक्ति से, कोई दूसरी का हाथ पकड़ कर और कोई अकेली ही नाचती है। नृत्य के श्रमश्वास से कुचों पर हार कम्पित हो कर देखनेवालों के नेत्र और मन को जबर्दस्ती अपनी ओर खींचते हैं। सब देश की स्त्रियों के स्वांग बन कर कुछ स्त्रियां अलग ही कौतुक कर रही हैं। यह देखिये, जिस ने भीलनी का स्वांग लिया है वह कैसी निर्ल्लज्ज और मत्तचेष्टा करती है? वैसे ही जो गंवारिन बनी है वह अपनी सहज सीधी और भोली चितवन से अलग चित्त चुराती है; कोई गाती है, कोई हंसती है, कोई नकल करती है–सब अपने अपने रंग में मस्त हैं।

[सारंगिका आती है]

सारंगिका : **(आप ही आप)** अहा! महाराज तो छत पर पन्ने के बंगले में बैठे हैं। **(प्रकट)** महाराज की जय हो। महाराज! महारानी कहती हैं कि हम सांझ को महाराज का ब्याह करैंगे।

विदूषक : ह हा ह हा! वाह! क्या अच्छी बे समय की रागिनी छेड़ी गई है।

राजा : सारंगिके! सविस्तर कहो। तुम्हारी बात हमारी समझ में नहीं आती है।

सारंगिका : विगत चतुर्दशी को महारानी ने मानिक्य की गौरी बनाकर भैरवानन्दजी के हाथ से प्रतिष्ठा कराई थी, सो जब महारानी ने भैरवानन्दजी से कहा कि आप कुछ गुरुदक्षिणा मांगिए तब उन्होंने कहा–"ऐसी गुरुदक्षिणा दो जिस में महाराज का कल्याण भी हो और वे प्रसन्न भी हों, अर्थात् लाट देश के राजा चन्द्रसेन की कन्या घनसारमंजरी को ज्योतिषियों ने बताया कि जिस से इस का विवाह होगा वह चक्रवर्ती होगा। उस का महाराज से विवाह कर दो–यही हमें गुरुदक्षिणा दो।" महरानी ने भी स्वीकार किया और इसी हेतु मुझे आप के पास भेजा है।

विदूषक : वाह वाह! सिर पर सांप और काबुल में वैद्य! आज ब्याह और लाट देश में घनसारमंजरी।

राजा : इस से क्या! भैरवानन्द के प्रभाव से सब निकट है।

सारंगिका : महाराज, आम की बारी वाले चामुंडा के मन्दिर में महारानी और भैरवानन्दजी आप का ब्याह करैंगे। सो आप यहां से कहीं मत टलियेगा।

[जाती है]

राजा : यह सब भैरवानन्दजी का प्रभाव है।

विदूषक : सच है, चन्द्र बिना चक्रकान्तमणि को और कौन द्रवावै?

(एक ओर बगीचे और मन्दिर का दृश्य)

[भैरवानन्द आते हैं]

भैरवानन्द : इस वट के मूल में सुरंग के दरवाजे पर चामुंडा की मूर्ति है तो यहीं ठहरैं। **(हाथ जोड़ कर)** कल्पान्त महाश्मशान रूपी क्रीड़ा मन्दिर में ब्रह्मा की खोपड़ी के कटोरे में राक्षसों का उष्ण रुधिर रूपी मद्यपान करने वाली कराली काली को नमस्कार है। **[आगे बढ़कर]** अभी तक कर्पूर मंजरी नहीं आई?

[सुरंग का मुंह खुलता है और उस में से कर्पूर मंजरी निकलती है]

कर्पूर मंजरी : महाराज, प्रणाम करती हूं।

भैरवानन्द : योग्य वर पाओ! आओ, यहां बैठो।

[कर्पूर मंजरी बैठती है]

भैरवानन्द : अब तक रानी नहीं आई?

[रानी आती हैं]

रानी : **(आगे देख कर)** अरे यही चामुंडा है? और कर्पूर मंजरी भी बैठी है। **(भैरवानन्द से)** महाराज, ब्याह की सामग्री ले आवैं?

भैरवानन्द : हां रानी।

[रानी आगे बढ़ती है]

भैरवानन्द : **(हंस कर)** यह खोजने गई है कि हमारे पहरे में से कर्पूर मंजरी कैसे चली आई? तो अच्छा बेटा कर्पूर मंजरी तुम सुरंग की राह से जाकर अपनी जगह पर बैठो, जब रानी देख लैं तब चली आना।

कर्पूर मंजरी : जो आज्ञा।

[उसी भांति जाती है]

रानी : **(आगे एक घर में झांक कर)** अरे कर्पूर मंजरी तो यही है। वह कोई दूसरी होगी, बेटी कर्पूर मंजरी जी कैसा है?

(नेपथ्य में) सिर में कुछ दर्द है।

रानी : तो चलैं **(आगे बढ़ कर)** लाओ जल्दी तैयारी करो।

[कर्पूर मंजरी सुरंग की राह से आकर अपनी जगह पर बैठती है]

रानी : **(देख कर)** अरे! यहां भी कर्पूर मंजरी!

भैरवानन्द : बेटा विभ्रमलेखे! ब्याह की सामग्री ले आई?

रानी : हां लाई सही, पर कर्पूर मंजरी के लायक आभूषण लाना भूल गई।

भैरवानन्द : तो जाओ जल्दी ले आओ।

रानी : जो आज्ञा।

[आगे बढ़ कर उसी घर की ओर जाती है]

भैरवानन्द : बेटी कर्पूर मंजरी फिर वैसा ही करो।

कर्पूर मंजरी : जो आज्ञा।

[वैसे ही जाती है]

रानी : (उसी घर के दरवाजे से झांक कर) आहा! मैं निस्सन्देह ठगी गई, (प्रकट) अरे ब्याह की सामग्री लाओ।

[कर्पूर मंजरी वैसे ही आती है। फिर भैरवानन्द के पास आकर और कर्पूर मंजरी को देख कर]

यह क्या चरित्र है! हा! हमारी चेष्टा इस योगीश्वर ने ध्यान से सब जानी होगी।

भैरवानन्द : रानी! बैठो, महाराज भी आते होंगे।

[राजा और विदूषक ऊपर से उतरते हैं और कुरंगिका आती है]

भैरवानन्द : महाराज बिराजिये।

[सब बैठते हैं]

रानी : (कर्पूर मंजरी को देख कर) यह कामदेव की मूर्तिमान शक्ति वा शृंगार की साक्षात् लता है, वा सिमटी हुई चन्द्रमा की चांदनी है, वा हीरे की पुतली है, वा वसन्त ऋतु की मूल कला है, जिस को इस ने एक बार देखा उस के चित्तरूपी देश में कामदेव का निष्कंटक राज हुआ।

विदूषक : (धीरे से) वाह रे जल्दी। अरे अब तो क्षण भर में गोद ही में आई जाती है। अब क्या बक बक लगाये हो, कोई सुनैगा तो क्या कहैगा?

रानी : (कुरंगिका से) तुम महाराज को गहिना पहिनाओ और सुरंगिका घनसारमंजरी को।

[दोनों सखियां वैसा ही करती हैं]

भैरवानन्द : उपाध्याय को बुलाओ।

रानी : महाराज का पुरोहित आर्य्य कपिंजल बैठा ही है। फिर किस की देर है?

विदूषक : हां हां, हम तो तैयार ही हैं। मित्र, हम गठबन्धन करते हैं, तुम कर्पूर मंजरी का हाथ पकड़ो और कर्पूर मंजरी, तुम महाराज को पकड़ो।

[झूठ मूठ के अशुद्ध मन्त्र पढ़ता है और वैदिकों की चेष्टा करता है]

भैरवानन्द : तुम निरे वही हो कर्पूर मंजरी का घनसारमंजरी नाम हुआ।

राजा : (कर्पूर मंजरी का हाथ पकड़ कर आप ही आप) आहा! इस के कोमल कर स्पर्श से कदम्ब और केवड़े की भांति मेरा शरीर एक साथ रोमांचित हो गया।

विदूषक : अग्नि प्रगटाओ और लावा का होम करौ।

[राजा और कर्पूर मंजरी अग्नि की फेरी करते हैं। कर्पूर मंजरी धुएं से मुंह फेरना नाट्य करती है]

रानी : अब विवाह हो गया, हम जाते हैं।

[जाती है]

भैरवानन्द : विवाह की आचार्य्य दक्षिणा दीजिए।

राजा : (**विदूषक से**) हां मित्र! सौ गांव तुम को दिया।

विदूषक : स्वस्ति स्वस्ति।

[उठ कर बगल बजा कर नाचता है]

भैरवानन्द : महाराज, कहिये और क्या होय?

राजा : (**हाथ जोड़ कर**) महाराज! अब क्या बाकी है?

कुन्तल नृपकन्या मिली, चक्रवर्ति पद साथ।
सब पूरे मनकाज मम, तुव पद बल ऋषिनाथ॥

तब भी भरतवाक्य सत्य हो।

उन्नत चित्त ह्वै आर्य्य परस्पर प्रीति बढ़ावैं।
कपट नेह तजि सहज सत्य व्यौहार चलावैं॥
जवन संसरगजात दोस गन इन सौं छूटैं।
सबै सुपथ पथ चलै नितही सुख सम्पति लूटैं॥
तजि विविध देव रति कर्म्म मति एक भक्ति पथ सब गहैं।
हिय भोगवती सम गुप्त हरिप्रेम धार नित ही बहै॥

।इति।

●

[राजशेखर कवि की प्राकृत रचना 'कर्पूर मंजरी' का छायानुवाद]

संवाद

सबै जात गोपाल की

सन 1873 ई.

सबै जात गोपाल की

[एक पंडितजी और एक क्षत्री आते हैं]

क्षत्री : महाराज, देखिए बड़ा अन्धेर हो गया कि ब्राह्मणों ने व्यवस्था दे दी कि कायस्थ भी क्षत्री हैं कहिए अब कैसे कैसे काम चलैगा।

पंडित : क्यौं इस में दोष क्या हुआ? "सबै जात गोपाल की" और फिर यह तो हिन्दुओं का शास्त्र पनसारी की दूकान है और अक्षर कल्प वृक्ष है। इस में तो सब जात की उत्तमता निकल सकती है पर दक्षिणा आप को बाएं हाथ से रख देनी पड़ैगी। फिर क्या है फिर तो "सबै जात गोपाल की।"

क्षत्री : भला महाराज जो चमार कुछ बनना चाहै तो उस को भी आप बना दीजिएगा।

पंडित : क्या बनना चाहै?

क्षत्री : कहिए ब्राह्मण।

पंडित : हां, चमार तो ब्राह्मण हईं हैं 'इस में क्या सन्देह है?' ईश्वर के चर्म्म से इन की उत्पत्ति है। इन को यम दंड नहीं होता। चर्म्म का अर्थ ढाल है, इस से ये दंड रोक लेते हैं। चमार में तीन अक्षर हैं—'च' चारों वेद, 'म' महाभारत 'र' रामायण जो इन तीनों को पढ़ावै वह चमार। पद्मपुराण में लिखा है इन चर्म्मकारों ने एक बेर बड़ा यज्ञ किया था, उसी यज्ञ में से चर्म्मण्वती निकली है। अब कर्म्म भ्रष्ट होने से अन्त्यज हो गए हैं नहीं तो हैं असिल में ब्राह्मण, देखो रैदास इन में कैसे भक्त हुए हैं लाओ दक्षिणा लाओ 'सबै जात...'।

क्षत्री : और डोम।

पंडित : डोम तो ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों कुल के हैं। विश्वामित्र—वशिष्ठ वंश के ब्राह्मण डोम हैं और हरिश्चन्द्र और वेणु वंश के क्षत्रिय डोम हैं। इस में क्या पूछना है। लाओ दक्षिणा 'सबै जा'।

क्षत्री : और कृपा निधान! मुसलमान।

पंडित : मीयां तो चारों वर्णों में हैं। वाल्मीकि रामायण में लिक्खा है जो वर्ण

रामायण पढ़े मीयां हो जाय।

पठन द्विजो वाग् ऋषभत्वमीयात्।
स्यात क्षत्रियो भूमिपतित्वमीयात्॥

अल्लहोपनिषद् में इन की बड़ी महिमा लिक्खी है। द्वारका में दो भांति के ब्राह्मण थे जिन को बलदेवजी (मुशली) मानते थे, उन का नाम मुशलि मान्य हुआ और जिन्हें श्रीकृष्ण मानते थे उनका नाम कृष्णमान्य हुआ। अब इन दोनों का अपभ्रंश मुसलमान और कृस्तान हो गया।

क्षत्री : तो क्या आप के मत से कृस्तान भी ब्राह्मण हैं?

पंडित : हई हैं। इस में क्या पूछना है—ईशावास्य उपनिषद् में लिखा है कि सब जगत ईसाई है।

क्षत्री : और जैनी?

पंडित : बड़े भारी ब्राह्मण हैं। 'अर्हन्नित्यपि जैनशासनरताः' जैन इन का नाम तब से पड़ा जब से राजा अलर्क की सभा में इन्हें कोई जै न कर सका।

क्षत्री : और बौद्ध?

पंडित : बुद्धि वाले अर्थात् ब्राह्मण।

क्षत्री : और धोबी।

पंडित : अच्छे खासे ब्राह्मण। जयदेव के जमाने तक धोबी ब्राह्मण होते थे। 'धोई कविः क्षमापतिः'। ये शीतला के रज से हुए हैं इस से इन का नाम रजक पड़ा।

क्षत्री : और कलवार?

पंडित : क्षत्रिय हैं। शुद्ध शब्द कुलवर है। भट्टी कवि इसी जाति में था।

क्षत्री : और महाराजजी कुम्हार।

पंडित : ब्राह्मण। घटखर्प्पर कवि था।

क्षत्री : और हां, हां वैश्या।

पंडित : क्षत्री यानी—रामजनी, और कुछ बनियानी अर्थात् वैश्या।

क्षत्री : अहीर।

पंडित : वैश्य-नन्दादिकों के बालकों का द्विजाति संस्कार होता था। "कुरु द्विजाति संस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकं"—भागवत में लिक्खा है।

क्षत्री : भुइंहार।

पंडित : ब्राह्मण।

क्षत्री : दूसर।

पंडित : ब्राह्मण। भृगुवंश के, ज्वालाप्रसाद पंडित का शास्त्रार्थ पढ़ लीजिए।

क्षत्री : जाट।

पंडित : जाठर क्षत्रिय।

क्षत्री : और कोल।

पंडित : कौल ब्राह्मण।

क्षत्री : धरिकार।

पंडित : क्षत्रिय। शुद्ध शब्द धैर्य्यकार है।

क्षत्री : और कुनबी और भर और पासी।

पंडित : तीनों ब्राह्मण वंश में हैं। भरद्वाज से भर, कण्व से कुनबी, पराशर से पासी।

क्षत्री : भला महाराज नीचों को तो आप ने उत्तम बना दिया। अब कहिए उत्तमों को भी नीच बना सकते हैं?

पंडित : ऊंच नीच क्या, सब ब्रह्म है। आप दक्षिणा दिए चलिए, सब कुछ होता चलैगा। सबै जात...'।

क्षत्री : दक्षिणा मैं दूंगा भला आप इस विषय में भी कुछ परीक्षा दीजिए।

पंडित : पूछिए मैं अवश्य कहूंगा।

क्षत्री : कहिए अगरवाले और खत्री।

पंडित : दोनों बढ़ई हैं, जो बढ़िया अगर चन्दन का काम बनाते थे उन की संज्ञा अगरवाले हुई और जो खाट बीनते थे वे खत्री हुए वा खेत अगोरने वाले खत्री कहलाए।

क्षत्री : और महाराज नागर गुजराती।

पंडित : संपेरे औ तेली। नाग पकड़ने से नागर और गुल जलाने से गुजराती।

क्षत्री : और महाराज भुंइहार और भाटिये और रोड़े।

पंडित : तीनों शूद्र। भूजा से भुंइहार, भट्टी रखने वाले भाटिये, रोड़ा ढोने वाले रोड़े।

क्षत्री : (हाथ जोड़ कर) महाराज, आप धन्य हौ—लक्ष्मी वा सरस्वती जो चाहैं सो करैं। चलिए दक्षिणा लीजिए।

पंडित : चलौं इस सब का फल तो यही था।

[दोनों गए]

[हरिश्चन्द्र मैगजीन, 6 नवम्बर, 1873 के अंक में प्रकाशित]

वसन्त पूजा

सन 1874 ई.

वसन्त पूजा

[यजमान और सर्व्वभट्ट और मुद्रं भट्ट आते हैं]

यजमान : महाराज इसका नाम वसन्त पूजा क्यों है?

सर्वभट्ट : महाराज, इस में वसन्तों की वसन्त ही में पूजा करते हैं; विशेषतः हम लोग पूरे वसन्त नन्दन हैं क्योंकि तौकी बाई को बाईस रुपये मिलैं। मियां खिलौना को पन्दरह, लाट साहब को नजर भी पन्द्रही की असरफी, बड़े डॉक्टर और वकीलों को फीस भी इतना ही, वीनकारों को दस, कवियों को पांच, चपरासियों को दो, कथा पर एक, पंडितों का ईमान बिगड़वाई आठ आना पर हम को दुअन्नी, कठ सरैया की माला और बेलकठा, सेती के चन्दन घंस मेरे ललुआ॥

मुद्रंभट्ट : सत्यं, सत्यं, हम चिल्लाने में किसी से कम नहीं। शास्त्र भी हमारा सर्व्वोपरि वेद, उस पर यह दशा॥

यजमान : अच्छा आज कोई इस समय के अनुसार संहिता पढ़िये तो हमं विशेष दक्षिणा दें॥

सर्वभट्ट : तर आरम्भ करा मुद्रंभट्ट॥

मुद्रंभट्ट : हंआं भी ह्मणतो सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः॥

सर्वभट्ट : अं आं, सहताक्षः नेत्रं कुत्रास्ति॥

मुद्रंभट्ट : स्वकार्य्यदर्शने—मा भवतु प्रजादर्शने सहस्रपात् (रेलादिना) सभूमिं सर्व्वतो वृत्वाअत्यतिष्ठद्दशांगुलं॥

सर्वभट्ट : हां हां, अत्यतिष्ठत्सार्द्धत्रिहस्तं वासप्तवितस्तकं॥

मुद्रंभट्ट : पुरीष एवेदं सर्व्वं यद्भूतंयच्च भाव्यं॥

सर्वभट्ट : उतमद्यत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति॥

यजमान : सहस्र शीर्षा का अध्याय तो हमैं भी यह याद है। यह मत पढ़िये दूसरा चरखा निकालिये॥

मुद्रंभट्ट : तर ते नमः म्हणा॥

सर्वभट्ट : हां—राज्ञेनमः वणिजेनमः गौरायचनमस्ताम्रायचनमः हूणायचनमः कपिर्द्दिने नमोनमः॥

मुद्रंभट्ट : नमश्श्वभ्यश्श्वपतिभ्यच्चयोनमोकनमः॥

यजमान : हमैं यह नमोनमो नहीं सुहाती॥

सर्वभट्ट : तर देवता म्हणा—गौरो देवता हनुमान् देवता जाम्बुवान् देवता चन्द्रमा देवता।

मुद्रंभट्ट : पूषा देवता मूशा देवता ईसा देवता झूठा देवता मीठा देवता गो देवता के भक्षको देवता॥

सर्वभट्ट : अकला देवता स्वार्थो देवता धोखा देवता जोषा देवता कोरा देवता शिष्टाचारो देवता॥

मुद्रंभट्ट : लाटो देवता जज्जो देवता मजिस्टरो देवता पुलिस देवता डॉक्टरो देवता॥

सर्वभट्ट : बंगला देवता सड़को देवता रेलो देवता तारो देवता धूआंकसो देवता॥

मुद्रंभट्ट : कोतवालो देवता थानेदारो देवता नाजिरो देवता कांस्टिबलो देवता देव ताकत का हौअः॥

सर्वभट्ट : ईशाव्वासमिदं सर्व्व यत्किंचित् जगत्यां जगत्॥

मुद्रंभट्ट : माधुवाता ऋतायते मधुक्षरन्ति सिन्धवः माध्वीर्नस्सन्त्वोषधीः। मधुम्हणजे मद्य॥

सर्वभट्ट : सलामश्चते बंदगीचते घूसश्चते चन्दाचते अड्रेसश्चते बालश्चते बलश्चते राज्यंचते पाटंचते कलाकौशल्यंचते स्वच्छन्द विहारश्चते लक्ष्मीचते विद्याचते॥

मुद्रंभट्ट : रिसेप्शनश्चते—इल्युमिनेशनश्चते टैक्सश्च चुंगीचते जमाचते जुर्मानाचते॥

सर्वभट्ट : बैतलमालश्चते रसूमश्चते स्टाम्पश्चते नजरश्चते डालीश्चते इनामश्चते॥

मुद्रंभट्ट : रेलतार का किराया च ते अंगरेजी सौदे का दामश्चते रुईचते अनचते॥

सर्वभट्ट : एकाचते बलंचते तनमनधन सर्व्वस्वंयचते भवतु॥

मुद्रंभट्ट : मूर्खताचमे कायरत्वंचमे धक्काचमे गरदनियाचमे हंसीचमे॥

सर्वभट्ट : भ्रष्टताचमे आजादीचमे इंग्लिसाइज्डत्वचमे बीएचमे एमएचमे॥

मुद्रंभट्ट : गर्व्वचमे कमेटीचमे चुंगी कमिश्नरीचमे आनरेरी मेजिस्ट्रेटीचमे॥

सर्वभट्ट : खानाचमे टिकट्चमे मद्यंचमे होटलंचमे लेक्चरचमे॥

मुद्रंभट्ट : स्टारअवइंडियाचमे कौंसिलमेंबरत्वंचमे उपाधिचमे॥

सर्वभट्ट : दरबार में कुरसीचमे मुलाकातचमे आनरचमे प्रतिष्ठाचमे॥

मुद्रंभट्ट : फूल्सकेप्चमे हाफसिविलाइजेडत्वंचमे जितत्वमन्धत्वंचमे बूटचमे शिफारशेन कल्पन्ताम्॥

यजमान : लीजिये महाराज दक्षिणा। कान की मैल सब निकल गई अब नींद आती है बस धता॥

दोनों : आ हा हा, इस गला फाड़ने का फल तो यही था, लाइये लाइये॥

[सब जाते हैं]

['हरिश्चन्द्र मैगजीन', अप्रैल-मई 1874 ई. के अंक में प्रकाशित]

ज्ञाति विवेकिनी सभा

सन 1876 ई.

ज्ञाति विवेकिनी सभा

[विपिनराम शास्त्री सभा के सब पंडितों से बोले]

'हे सभा के विराजमान पंडितों, आज हम ने आप सबको इसलिए बुलाया है कि आप सब महात्मा हमारी इस विनती को सुनो और उस पर ध्यान दो। वह हमारी विनती यह है कि हमारे पुश्तैनी यजमान गड़ेरिये लोग जो परम सुशील और सत्कर्म लवलीन हैं इन्हें किसी वर्ण में दाखिल करें। अरे भाइयो, यह बड़े सोच की बात कि हमारे जीते जी यह हमारे जन्म के यजमान जो सब प्रकार से हम को मानते जानते हैं नीच के नीचे बने रहें तो हमारी जिन्दगी को धिक्कार है। कोई वर्ष ऐसा नहीं होता कि इन विचारों से दस-बीस भेड़ा-बकरा और कमरी आसनादि वस्तु और सीधा-पैसा न मिलता होय। विचारे बड़े भक्तिमान और ब्रह्मण्य होते हैं। इसलिए हमने इन के मूल पुरुष का निर्णय और वर्ण व्यवस्था लिखी है। हम को आशा है कि आप सब हमारी सम्मति से मेल करेंगे! क्योंकि आज की हमारी कल की तुम्हारी। अभी चार दिन ही की बात है कि निवासीराम कायस्थ की गढ़ंत पर कैसा लम्बा चौड़ा दस्तखत हम ने कर दिया। और हम क्या आप सबने ही कर दिया है। रह गई पांडित्य सो उसे आज कल्ह कौन पूछता है गिनती में नाम अधिक होने चाहिए।

मैंने कलिपुराण का आकाश खंड और निघंट पुराण का पाताल खंड देखा तो मुझे अत्यन्त खेद भया कि यह हमारे यजमान खासे अच्छे क्षत्री अब कालवशात् शूद्र कहलाते हैं। अब देखिए इन के नामार्थ ही से क्षत्रियत्व पाया जाता है। गढ़ारि अर्थात् गढ़ जो किला है उस के अरि, तोड़ने वाले, यह काम सिवाय क्षत्री के दूसरे का नहीं है। यदि इसे गूढ़ारि का अपभ्रंश समझें तो यह शब्द भी क्षत्रियत्व का सूचक है। गूढ़ मत्स्य का नाम है तिनका अरि अर्थ लें तो यह भी ठीक है क्योंकि जल-स्थल सब का आखेट करना क्षत्रियों का काम है। सब अर्थ अनुमान मात्र हैं--मुख्य इनका नाम गरुड़ार्य्य अर्थात् गरुड़ के वंशी या गरुड़ के भाई जो अरुण हैं उन के वंश में उत्पन्न। इसी से जो पंडित लोग इन का नाम गरलारि अनुमान करते हैं। सो भी ठीक है क्योंकि गरलारि जो मरकत अथवा गरुड़ मणि है सो गरुड़ मणि है सो गरुड़ जी की कृपा से पूर्व्वकाल में इन के यहां बहुत थे और इन के सर्प नहीं काटता

था और ये सर्पविष-निवारण में बड़े कुशल थे। इसी से गरुड़ार्य्य कहलाते थे, अब गड़रिया कहलाने लगे हैं।

'इन की पूर्व्वकालिक प्रशस्तता और कुलीनता का वृत्तान्त तो आकाश खंड ही कहे देता है कि इन का मूल पुरुष उत्तम क्षत्री वर्ण था। यद्यपि इस अवस्था में सब प्रकार से हीन दीन हो गए हैं तथापि बहुत से क्षत्रियत्व के चिह्न इन में पाए जाते हैं। पहिले जब इन के पुरखे लोग समर भूमि में जुड़ते थे और लड़ने के लिए व्यूह रचना करते थे तो अपने योद्धाओं के चेतने और सावधान करने के लिए संस्कृत में यह बोली बोलते थे। मत्तोहि मत्तोहि दृढं दृढ़ं। अर्थात् मतवाले हो गए हो, संभलो चौकस रहो! सो इस वाक्य के अपभ्रंश का लेश अब भी इन लोगों में पाया जाता है। देखो जब ये भेड़ी और बकरियों को डांटने लगते हैं तो 'द्रहि द्रहि मतवाही मतवाही' कहने लगते हैं तो इन के क्षत्री होने में भला कौन सन्देह कर सकता है। क्षत्री का परम धर्म्म वीरता, शूरता, निर्भयता और प्रजापालन है सो इन में सहज ही प्राप्त है। सावन भादों की अंधेरी रात में जंगलों के बीच सिंह के समान गरजते हैं और अपनी प्रजा भेड़ी बकरी को बड़े भारी शत्रु वृक से बचाते हैं। शिकारी ऐसे होते हैं कि शश प्रभृति वन-जन्तुओं को दंडों से पीट लेते हैं। बड़े बड़े वेगवान आदेशकारी श्वान इन की सेवा करते और इन की छाग मेषमय सेना की रक्षा में उद्यत रहते हैं और दुःख सुख की सहनशीलता इन्हीं के बांटे पड़ी हैं। जेठ की धूप और सावन भादों की वर्षा और पूस माघ की तुषार के दुःख को सहकर न खेदित होना इन्हीं का काम है। जैसे इन के पुरखे लोग पूर्व्वकाल में बाणों से विद्ध होना पर रण में पीछे को पांव नहीं देते थे ऐसे ही जब इन के पांव में भदई कुश का डाभा तीव्र चुभ जाता है तो ये उस असह्य व्यथा को सहकर आगे ही बढ़ते हैं और धरती को सुधारने में तो इन क़ी प्रत्यक्ष महिमा है कि जिस खेत में दो तीन रात ये गरुड़वंशी़ नृपति छागमयी. सेना को लेकर निवास करते हैं उस खेत के किसान को ऋद्धि सिद्धि से पूर्ण कर देते हैं फिर वह भूमि सबल और विकार रहित हो जाती है और मोटे अनाजों की कौन कहे उसमें गोधूम और इक्षुदंड अपरिमित उत्पन्न होता है तो इन से बढ़ कर भूमिपाल और प्रजारक्षक कौन होगा? और यज्ञ करना क्षत्रियों का मुख्य धर्म्म है सो इन में भली भांति पाया जाता है। शरत्कालीन और चैत्र मासिक नवरात्र में अच्छे हृष्ट पुष्ट छाग मेषों के बलि प्रदान से भद्रकाली और योगिनीगण को तृप्त करते हैं और जब इन के यहां लोमकर्तनोत्सव होता है तो उस समय सब भाई बिरादर इकट्ठे होकर खान पान के साथ परम आनन्द मनाते हैं। व्यवहार कुशल ऐसे होते हैं कि इन की सेना की कोई वस्तु व्यर्थ नहीं जाती। यहां तक कि मल, मूत्र, मांस, चाम, लोम उचित मूल्य से सब बिकता है और वैरीहन्ता ऐसे हैं कि सब से बड़े भारी शत्रु को पहिले ही इन्होंने मार डाला है। जैसे कहावत प्रसिद्ध है कि गड़रिया अपनी रिस को मन ही

में मार डालता है। यदि ऐसे नीतिज्ञ होते हैं कि मेष छाग की शक्ति के अनुसार हल्की लकड़ी से उन की ताड़ना करते हैं। वृक्ष और नदी से बढ़ कर परोपकारी साधू कोई नहीं होता सो वहीं इन का रात दिन निवास रहता है। इसलिए ये गरुड़ार्य्य सदैव सज्जनों की संगति में रहते हैं। मनोरंजन तन्त्र में लिखा है कि पूर्व्व काल में यज्ञार्थ संचित पशुओं को राक्षस लोग उठा ले जाते थे। तब उन की रक्षा का संभार ऋषियों ने इन गरुड़वंशी क्षत्रियों को सौंपा तो इन्होंने राक्षसों को जीत कर यज्ञ पशुओं की रक्षा की तभी से छागमेष की रक्षा इन के कुल में चली आती है।

''मैं अति प्रसन्न हुआ कि आप सबने सम्मति से एकता करके मेरी बात रख ली है और तन्त्र के इन प्रामाणिक वचनों को सच्चा किया।

मेषचारणसंसक्ताः छागपालनतत्पराः।
बभूवुः क्षत्रियादेवि स्वाचारप्रतिवर्जनात्॥
कलौपंचसहस्राब्दे किंचिदूनेगतैसति।
क्षत्रियत्वंगमिष्यति ब्राह्मणानांव्यवस्थया॥

[तदनन्तर गरुड़वंशियों के सम्मुख होकर]

हे गरुड़वंशियों, आज इस सभा के ब्राह्मणों ने तुम्हारे पुनः अपने क्षत्रिय पद के ग्रहण और धारण करने की अभिलाषा को पूर्ण किया। अब सब दक्षिणा लाओ, हम सब पंडित जन आपस में बांट लैं और तुम्हारे क्षत्री बनने के कागद पर दस्तखत कर दें।''

[कलऊ गड़ेरिया दक्षिणा देता है पंडित लोग लेते हैं]

कलऊ : सब महरजवन से मोरी इहै बिनती हौ कि किछु कहा कराना हौ तवन पक्का पाढ़ा कर दिहः। हां महरज्जा जिहमा कोऊ दोषै न।

विपिनराम : दोखै का सारे?

कलऊ : अरे इहै कि धरम सास्तरवा में होइ तौने एहिमा लिखिहः।

विपिनराम : अरे सरवा धरमसास्तर फास्तर का नाम त लेई ताइ तोप कै काम चलाउ सास्तर का परमान ढूंढ़ै सरऊ तौ तोहार कतहूं पता न लागी। अरे फिर आज काल धरमसास्तर को पूछत को है।

कलऊ : अरे महरज्जा, पोथी पुरान के अश्लोक फश्लोक लिख दीहा इहै और का महरज्जा तोहार परजा हौं।

विपिनराम : अरे सरवा परजा का नांव मत लेइ। अस कहु कि हम क्षत्री हई।

कलऊ : अच्छा महरज्जा, हम क्षत्री हई तोहरे सबके पायन परत हई।

विपिनराम : अच्छा चिरंजू चिरंजू सुखी रहा। अच्छा कलऊ, तुम दोऊ प्रानी एक विरहा गाइ कै सुनाइ दो तौ हम सब विदा होहिं।

कलऊ : बहुत अच्छा महरज्जा। (अपनी स्त्री से) आउरे पवरी धीरह।

[दोनों स्त्री पुरुष मिल कर नाचते गाते हैं]

आउ मोरी जानी सकल रसखानी।
धरि कंध बहियां नाचु मनमानी॥
मैं भैलों छतरि तु धन छतरानी।
अब सब छुटि गैरे कुल कै रे कानी॥
धन धन बम्हना लै पोथिया पुरानी।
जिन दियो छतरी बनाई जगजानी॥

[सब का प्रस्थान भया]

['कविवचनसुधा' के 11 दिसम्बर, 1876 ई. के अंक में प्रकाशित]

संडभंडयोः संवादः

सन 1878 ई.

संडभंडयोः संवादः

संडः : कः कोत्र भोः? (आप यहां कौन?)

भंडः : अहमरिम भंडाचार्य्यः। (मैं हूं भण्डाचार्य्य।)

संडः : कुतो भवान्? (कहां से आ रहे हैं)

भंडः : अहं अनादियवनसमाघित उत्थितः। (मैं अनादि कब्रिस्तान से उठा हूं)

संडः : विशेषः। (विशेषता यह है।)

भंडः : कः अभिप्रायः? (क्या मतलब?)

संडः : तर्हितु भवान् वसन्त एवं। (तब तो आप वसन्त ही हैं।)

भंडः : अत्र कः संदेहः केवलं वसन्तौ, वसन्तवन्दनः। (इस में सन्देह क्या? खालिस वसन्त हूं; वसन्तनन्दन हूं।)

संडः : मधुनन्दगो वा माधवनन्दनो वा? (चैत्रनन्दन या वैशाखनन्दन?)

भंडः : आः किमामाक्षिपसि! नाहं मधोः कैटभांग्रजस्य नन्दनः! अहं तु हिन्दू पदवाच्य अतएव माधवनन्दनः। (ओहः आक्षेप क्यों करता है? मैं मधुकैटभ के बड़े भाई का बेटा नहीं हूं। मैं हिन्दू नामधारी हूं अतः माधवनन्दन हूं।)

संडः : तर्हितु सुस्वागतं ते। आगच्छ माधवनन्दन। (तब आप का स्वागत है। आइए माधवनन्दन जी!)

भंडः : हंत, प्रणामं करोमि। (हा हंत। प्रणाम करता हूं।)

संडः : आस्यतां स्थीयतांच। (आइए, विराजिए!)

भंडः : हं, हं, हं, हं, भवानेव तिष्ठतु। (हः हः हः आप भी बैठिए।)

संडः : नायं कालो व्यर्थशिष्टाचारस्य, तत् स्थीयतां, इदमासनं (यह व्यर्थ शिष्टाचार का समय नहीं है अतः बैठिए। यह आसन है।)

भंडः : इदमासनमास्ये। (मैं इस आसन पर बैठता हूं।)

[उभावुपनिशतः] [दोनों बैठते हैं]

संडः : किमर्थ निर्गतोसि? (किसलिए निकले हैं?)

भंडः : कुतः जननीजठरकुहर पिटरात् गृहाद्वा। (कहां से? घर से या माता की गर्भ गठरी से?)

संडः : पूर्ववस्तु निर्गत एवं विभासि, परतः पृच्छामि। (गर्भ गठरी से ही निकले जान पड़ते हो; पहला प्रश्न फिर पूछता हूं—किसलिए निकले हो!)

भंडः : होलिका रमणार्थ। (होली खेलने के लिए।)

संडः : हहा! अस्मिन् घोरतरसमयेपि भवादृशा होलिका रमणमनुमोदयति न जानासिनायं समयो होलिकारमणस्य? भारतवर्षधने विदेशगते, क्षुत् चामपीड़िते जनपदे, किं होलिकारमणेन? (वाह! ऐसे कठिन समय भी आप जैसे लोग होली खेलने का समर्थन करते हैं यह नहीं जानते कि यह समय होली खेलने का नहीं। भारतवर्ष का धन विदेश जाने से जनता भूख प्यास से पीड़ित है। यह क्या होली खेलने का समय है?

भंडः : अस्मादृशां गृहे सर्वदैव होलिका, नाहं लोकरोदनं श्रृणोमि। लोकास्तु सर्वदैव रोदनशीलाः। (हम जैसों के घर सदा होली हैं मैं लोगों को रोना नहीं सुनता। लोग तो हमेशा रोते ही रहते हैं।)

संडः : तर्हि भवान् ढुंढावंशजातः। (जो आप ढुंढ़ा के वंश से उत्पन्न हुए हैं?)

भंडः : नाहं ढुंढिराजः। (मैं ढुंढ़िराज नहीं हूं।)

संडः : नहि भो, मया उच्यते तर्हितु ढुंढ़ावंशजातः? (नहीं जी, मैंने तो यह पूछा कि क्या आप ढुंढ़ा के कुल में पैदा हुए हैं?)

भंडः : नाहं जयपुरी। (मैं जयपुरी नहीं हूं।)

संडः : कः कथयति है कि आप जयपुरी, दिल्लीपुरी, गोरक्षपुरी, गिरिर्भारतीति? (कौन कहता है कि आप जयपुरी, दिल्लीपुरी, गोरखपुरी, गिरि, भारती हैं?)

भंडः : तर्हि न बुद्धो मया ढुंढ़ाशब्दार्थः। (तब तो मैंने ढुंढ़ा शब्द का अर्थ नहीं समझा।)

संडः : ढुंढ़ानाम्न्या राक्षस्या एव होलिकापर्व। (ढुंढा नाम की राक्षसी का ही यह होलिका पर्व्व है।)

भंडः : आः! पुनरपि मामाक्षिपसि राक्षसवंशकलंकेन! मधुनन्दनःमेवोक्त नाहं मधुवंशीय, माधवनंदनोहं। (ओह, फिर राक्षस वंश का कलंक लगा कर मुझ पर आरोप करता है। मैंने मधुनन्दन कहा; मैं मधुवंशी नहीं हूं, माधवनन्दन हूं।)

संडः : भवतु, केन साकं रस्यसे होलिकाक्रीडः। (अच्छा, किस के साथ होली खेलैंगे?)

भंडः : यो मिलिष्यतिःउदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकं। (जो भी मिल जायगा, विश्व परिवार है उदार वृत्त वालों का।)

संडः : कया सामग्रया भवान् रिरंसुः? (किस चीज से आप होली खेलैंगे?)

भंडः : धवलधूरिरक्तपौडरश्यामपंकपीतागरुआदिद्रव्यैः। अन्तरंच गुलालश्च चोवा चन्दनमेव च। अबीरः पिचकारी चेति वाक्यात्। (सफेद धूल,

लाल पाउडर, काले कीचड़, पीले अगुरु आदि चीजों से और चोवा चन्दन से भी। अबीर पिचकारी आदि वाक्यों से।)

संडः : अधुना, भारते तादृक, कीर्तिकार्तारो न संति, धवलधूलिः कुत आगमिष्यति? (आजकल भारत में वैसे कीर्तिशाली नहीं रह गए हैं, सफेद धूल कहां से आएगी?)

भंडः : न ज्ञात भवता? चुंगीरचित राज मार्गतः। (आप को मालूम नहीं? चुंगी रचित शाही सड़क से।)

संडः : भवतु राजमार्गतो, देवमार्गतो वा, किन्तु धवलधूलिः कुतरस्तत्र निरंतरसेककर्मप्राचुर्यात? (शाही सड़क हो या देवताओं की सड़क परन्तु बराबर बहुत छिड़काव होने से वहां धूल कहां?)

भंडः : आः। यथार्थनामन्। नास्ति धूल्यभावः? भारतेतु प्रायः सर्वेषामेव धूर्तनेत्रैप्रक्षेपिता धूमिर्मिलियष्यति। (हे अन्वर्थनाम। धूल की कमी नहीं हैं। भारत में प्रायः सभी की आंखों में धूर्तों द्वारा झोंकी गई धूल मिलैगी।)

संडः : तर्हि रक्तपौडरंकुतः मेडिकलहालात्? (तब लाल पाउडर कहां से आएगा? क्या मेडिकल हाल से?)

भंडः : न बुद्धं भो भवाता, रक्त पौडरं नाम अबीरः रक्तंच तत् पौडरंचेति समासः। (आप नहीं जानते, लाल पाउडर का नाम अबीर है। लाल है जो पाउडर यह समास हुआ।)

संडः : रक्तं, पौडरं चेति किं वस्तुद्वयं? (लाल और पाउडर क्या दो वस्तुएं हैं?)

भंडः : हा? कीदृशो भवानाल्पज्ञः! नहि नहि, भो अन्यवर्णावछेदक रक्त वर्णावच्छिन्नः पौडर, नाम विशिष्टजातिबोधकः स्वाभाविकधर्मवान् तत्वरुपश्चूर्णविशेषः। (आप भी कितने घोंघा है। नहीं नहीं, दूसरे रंगों को पृथक् करने वाले लाल रंग से युक्त एक विशिष्ट वस्तु का बोधक सहज गुण वाले चूर्ण का नाम पाउडर है।)

संडः : हंहो बुद्धं भवान् वैयाकरण नैयायिकश्च। (हां अब समझा, आप वैयाकरण भी हैं और नैयायिक भी)।

भंडः : सत्यमेव, यत्र शाद्बिकास्तत्रतार्किका इति हि प्रसिद्धिः। (सच है, यह तो प्रसिद्ध ही है कि जहां शब्द शास्त्री वहां तर्क शास्त्री!)

संडः : भवतु रक्तपौडरं कुतः आनेष्यसि, आर्याणां शिरसि तदभावत्? (अच्छा लाल पाउडर लाइयेगा कहां से आर्य्यों के सिर पर तो रह नहीं गया है)

भंडः : हहहह, रक्त रजसोपि दारिद्रयं मम नारीभंडस्य! विशेषतः कुसुमाकरे ऋतो? (अहाहा, मेरे नरीभंड के लिये रक्त रज का भी अभाव है,

खासकर वसन्त ऋतु में।)

संडः : ज्ञातं परन्तु श्यामपकं कि जयचन्द्रादारम्भ्य आर्य्यकुलानार्थ–विग्रहमूलजनकानोमुखात्, भारत ललनाया अश्रुपूर्णान्नेत्राद्वा? (समझा, परन्तु क्या जयचन्द से शुरू कर आर्य्य वंश के लिए अनर्थ और विग्रह की जड़ के जन्मदाताओं के मुंह से या नारियों के आंसू भरे नेत्रों से काला कीचड़ लाइयेगा।)

भंडः : नहि, गंधविक्रेतुर्हट्टपण्यात्। (नहीं, इत्रफरोशों के बाजार से)

संडः : अगरुजंकुत, आर्य्याणं मुख कांति समूहात? (अगुरु कहां से लाइयेगा? क्या आर्यों के मुख की कान्ति से?)

भंडः : पांचलात्काश्मीरात्। अस्माकं तु सर्व्वत्रैव गतिः, यतः कुतश्चिद् गृहीत्वा क्रीडिष्यामि। (पंजाब से काश्मीर से! हम लोगों की गति सभी जगह है अतः कहीं से भी लालकर खेलूंगा।)

संडः : क्रीड निश्चिंतो भवान् कुत्रास्माकं देश चिंतातुराणां क्रीडाभिरुचि? (आप ब्रेफिक्र खेलिये हम जैसे देश की चिन्ता से ग्रस्त लोगों को खेल का क्या शौक?)

भंडः : भवंतस्तु व्यर्थ देशचिंतातुराः भवच्चिंत्तया किं भविष्यति? (आप व्यर्थ ही देश की चिन्ता से व्याकुल हैं, आप के चिन्ता करने से क्या क्या होगा?)

सुखं क्रीड, रमस्व, खेल, कूदखेलम् याति, पुनः क्व युवतयः रोदनेन न किमपि भविता (सुख से खेलिए कूदिए। फिर यौवन कहां? रोने से क्या होता है।) भारतंतु होलिकाया मेव गंता। अत्रतु जमघंटो-धूलिखेल एवावशिष्यति, तन्मारय अनंतांगलराजधानीशिखरोपरि पोलिटिकल चिन्ता समूहं। (भारत की होली झोंक जायेगा। यहां तो जमघंट छल का खेल ही बच रहैगा या चिन्ता रह जायेगी भारत में अगणित अंगरेजी की राजधानी की चोटी पर बैठे हुए राजनीतिज्ञों के पास।)

संडः : मित्र, परम अयमुत्साहः, किंमूलः इति जानासि वा त्वं? (मित्र, उत्साह तो तुम्हारा खूब है परन्तु क्या इस का कारण भी जानते हो।)

भंडः : नहि, लोके तु शिष्टाचार एवं सर्व्वकर्म्मप्रधानो मन्यते, अतः स एव मूलं भविता अथवापश्यचाधुनिकं विद्यार्थिनं। (नहीं, दुनिया के सभी कामों में शिष्टाचार ही प्रधान माना जाता है अतः वही कारण होगा या देख लो आजकल के विद्यार्थियों को।)

संडः : भवतु तथैव करोमि। (अच्छा, ऐसा ही करूंगा।)

[विद्यार्थी,खंड 1, सं. 8 फाल्गुन सं. 1935 में प्रकाशित]

श्री रामलीला

अतिरोचक गद्य और पद्य में श्रीराम जी की बाललीला

प्रकाशन वर्ष सन 1904 ई.

श्री रामलीला

पद

हरि लीला सब बिधि सुखदाई।
कहत सुनत देखत जिय आनत देति भगति अधिकाई।
याही सों हरिचन्द करत स्तुति नित हरि चरित बड़ाई॥1॥

गद्य

आहा! भगवान की लीला भी कैसी दिव्य और धन्य पदार्थ है कि कलिमल ग्रसित जीवों को सहज ही प्रभु की ओर झुका देती है और कैसा भी विषयी जीव क्यौं न हो दो घड़ी तो परमेश्वर के रंग में रंग ही देती है। विशेष कर के धन्य हम लोगों के भाग्य कि श्रीमान् महाराज काशिराज भक्त शिरोमणि की कृपा से सब लीला बिधिपूर्व्वक देखने में आती है। पहले मंगलाचरण होकर रावण का जन्म होता है, फिर देवगण की स्तुति और बैकुण्ठ और क्षीरसागर की झांकी से नेत्र कृतार्थ होते हैं। फिर तो आनन्द का समुद्र श्री रामजन्म का महोत्सव है जो देखने ही से सम्बन्ध रखता है कहने की बात नहीं है।

कवित्त

राम के जनम मांहि आनन्द उछाह जौन
सोई दरसायो ऐसी लीला परकासी है।
तैसे ही भवन दशरथ राज रानी आदि
तैसो ही अनन्द भयो दुख निसि नासी है॥
सोहिलो बधाई द्विज दान गान बाजे बजैं
रंग फूल दृष्टि चाल तैसी निकासी है।
कलिजुग त्रेता कियो नर सब देव कीन्हें
आजु कासीराज जू अजुध्या कीनी कासी है॥2॥

फिर श्री रामचन्द्र की बाललीला, मुण्डन, कर्णबेध, जनेऊ, शिकार खेलना आदि

ज्यौं का त्यौं होता है देखने से मनुष्य भव दुख मूल से खोता है। फिर विश्वामित्र आते हैं। संग में श्रीराम जी को सानुज ले जाते हैं। मार्ग में ताड़िका सुबाहु का वध और फिर चरण रेणु से अहिल्या का तारना। आहा! धन्य प्रभु के पदपद्म जिस के स्पर्श से कहीं मनुष्य पारस होता है, देवता बनता है, कहीं पत्थर तरता है। इस प्रभु की दीन दयाल पर श्री मन्महाराज की उक्ति।

दोहा

हम जानी तुम देर जो, लावत तारन माहिं।
पाहन हू तें कठिन गुनि, मो हिय आवत नाहिं॥3॥
तारन मैं मो दीन के, लावत प्रभुत कित बार।
कुलिस रेख तुव चरनहू, जो मम पाप पहार॥4॥

कवि की उक्ति

मो ऐसो को तारिबो, सहज न दीनदयाल।
आहन पाहन वज्रहू, सो हम कठिन कृपाल॥5॥
परम मुक्तिहू सों फलद, तुअ पद पदुम मुरारि।
यहै जतावन हेत तुम, तारी गौतम नारि॥6॥
एहो दीनदयाल यह, अति अचरज की बात।
तो पद सरस समुद्र लहि, पाहन हूं तरि जात॥7॥
कहा पखानंहू ते कठिन, मो हियरो रघुबीर।
जो मम तारन मैं परी, प्रभु पर इतनी भीर॥8॥
प्रभु उदार पद परसि जड़, पाहनहूं तरि जाय।
हम चैतन्य कहाइ क्यौं, तरत न परत लखाय॥9॥
अति कठोर निज हिय कियो, पाहन सों हम हाल।
जामैं कबहूं मम सिरहू, पद रज देहि दयाल॥10॥
हमहूं कछु लघु सिल न जो, सहजहिं दीनी तार।
लगि है इत कछु बार प्रभु, हम तो पाप पहारा॥11॥

फिर श्री रामचन्द्रजी सानुज जनक नगर देखने जाते हैं। पुरनारियों के मन नैन देखते ही लुभाते हैं।

कवित्त

कोऊ कहै यहै रघुराज के कुंअर दोऊ
कोऊ ठाढ़ी एक टक देखैं रूप घर मैं।
कोऊ खिरकीनी कोऊ हाट बाट धाई फिरै
बावरी ह्वै पूछै गए कौन सी डगर मैं॥

हरीशचन्द्र झूमैं मतवारी दृग मारौ कोऊ,
जकी सी थकी सी कोऊ खरी एकै थर मैं।
लहर चढ़ी सी कोऊ जहर मढ़ी सी भई
कहर पड़ी है आजु जनक सहर मैं॥12॥

फिर श्रीरामजी फुलवारी में फूल लेने जाते हैं। उस समय फुलवारी की रचना, कुंजों की बनावट कल के भौंरों का नाचना, और चिड़ियों का चहकना यह सब देखने ही के योग्य है।

इतने में एक सखी जो कुंजों में गई तो वहां रामरूप देख कर बावली हो गई। जब वहां से लौट कर आई तो और सखियां पूछने लगीं।

कवित्त

कहा भयो कैसी है बतावै किन देह दसा,
छन ही में काहे बुधि सबही नसानी सी।
अबहीं तो हंसति हंसति गई कुंजन मैं
कह तित देख्यौ जासों ह्वै रही हिरानी सी॥
हरीचन्द काहू कछु पढ़ि कियो टोना
लागी ऊपरी बलाय कै रही है बिख सानी सी।
आनन्द समानी सी जगत सों भुलानी सी
लुभानी सी दिवानी सी सकानी सी बिकानी सी॥13॥

यह सुन कर वह सखी उत्तर देती है।

सवैया

जाहु न जाहु न कुंजन मैं उत
नांहि तौ नाहक लाजहि खोलि हौ।
देखि जौ लैहो कुमारन को अबहीं
झट लोक की लीकहि छोलि हो॥
भूलि है देह दसा सगरी हरिचन्द कछू
को कछू मुख़ बोलि हौ।
लागि हैं लोग तमासे हहा
बलि बावरी सी ह्वै बजारन डोलि हौ॥14॥

कवित्त

जाहु न सयानी उत बिरछन मांहि
कोऊ कहा जानै कहा दोय झलक अमन्द है।

देखत ही मोहि मन जात नसै सुधि बुधि
रोम रोम छकै ऐसो रूप सुख कन्द है।
हरीचन्द देवता है सिद्ध है छलावा है सहाबा है
कि रत्न है कि कीनो दृष्टि बन्द है।
जादू है कि जन्त्र है कि मन्त्र है कि तन्त्र है
कि तेज है कि तारा है कि रवि है कि चन्द है॥15॥

वहां से दूसरे दिन श्री रामचन्द्र धनुषयज्ञ में आते हैं और उनका सुन्दर रूप देख कर नर नारी सब यही मानते हैं।

कवित्त

आए हैं सबन मन भाए रघुराज दोऊ
जिन्हैं देख धीर नाहिं हिअ मांहि धरि जाय।
जनक दुलारी जोग दूलह सखी हैं एई
ईस करै राउ आज प्रनहिं बिसरि जाय॥
हरीचन्द चाहै जौन होइ एई सिअ बरैं
जो जो होई बाधक विधाता करै मरि जाय।
चाटि जाहिं धुन याहि अबहिं निगोरो
बटपारो दई मारो धनु आग लगै जरि जाय॥16॥

जब धुनष के पास श्रीरामजी जाते हैं तब जानकीजी अपने चित्त में कहती हैं।

सवैया

मो मन मैं निहचै सजनी यह तातहु ते प्रन मेरी महा है।
सुन्दर स्याम सुजान सिरोमनि मो हिअ मैं रमि राम रहा है॥
रीत पतिव्रत राखि चुकी मुख भाखि चुकी अपुनो दुलहा है।
चाप निगोड़ो अबै जरि जाहु चढ़ो तो कहा न चढ़ौ तो कहा है॥17॥

लोगों को चिन्तित देख श्री रामचन्द्रजी धनुष के पास जाते हैं और उठा कर दो टुकड़े कर के पृथ्वी पर डाल देते हैं। बाजे और गीत के साथ जय जय की धुन आकाश तक छा जाती है।

कवित्त

जनक निरासा दुष्ट नृपन की आसा
पुरजन की उदासी सोक रनिवास मनु के
वीरन के गरब गरुर भरपूर सब
भ्रममद आदि मुनि कौसिक के तनु के॥

'हरीचन्द' भय देव मन के पुहुमि भार
विकल विचार सबै पुरनार जनु के।
संका मिथिलेस की सिया के उर सूल सबै
तोरि डारे रामचन्द्र साधै हर धनु के॥18॥

धुनष टूटते ही जगत जननी श्री जानकीजी जयमाल ले कर भगवान को पहिनाने चलीं, उस की शोभा कैसे कही जाय।

कवित्त

चन्दन की डारन मैं कुसुमित लता कैधौं
पोखराज माखन मैं नव-रत्न जाल है।
चन्द्र की मरीचिन मैं इन्द्रधनु सोहैं कै
कनक जुग कामी मधि रसन रसाल है॥
'हरीचन्द' जुगुल मृनाल मैं कुमुद बेलि
मूंगा की छरी मैं हार गूथ्यौ हरि लाल है।
कैंधौं जुग हंस एकै मुक्तमाल लीने कै
सिया जू करन मांह चारु जयमाल है॥19॥

सवैया

टूटत ही धनु के मिलि मंगल
गाइ उठीं सगरी पुरबाला।
लै चलीं सीतहि राम के पास
सबै मिलि मन्द मराल की चाला॥
देखत ही पिय हो 'हरिचन्द'
महा मुद पूरित गात रसाला।
प्यारी ने आपुने प्रेम के जाल सी
प्यार के कण्ठ दई जयमाला॥20॥

बस चारों ओर आनन्द ही आनन्द हो गया। फिर अयोध्या से बरात आई। यहां जनकपुर में सब ब्याह की तैयारी हुई। वैसी ही मंडप की रचना वैसा ही सब सामान॥

श्री रामचन्द्र दूलह बनकर चारों भाई बड़ी शोभा से ब्याहने चले। नार्ग में पुर बनिता उन को देख कर आपुस में कहने लगीं।

कवित्त

एई अहैं दसरथ नन्द सुखकन्द तारी
गौतम की नारी इनहीं मारी राछसनि।

कौशला के प्यार अति सुन्दर दुलारे सिया
रूप रिझवारे प्रेमी जनक प्रान धनि॥
सुन्दर सरूप नैन बांके मद छाके 'हरिचन्द'
घुंघराली लटैं लटकैं अही सी बनि।
कहा सबै उझकि बिलोकौ बार बार देखो
नजरि न ल़ागै नैन भरि कै निहारौ जनि॥21॥

सवैया

एई हैं गौतम नारि के तारक कौसिक के मख के रखवारे।
कौसला नन्दन नैन-अनन्दन एई हैं प्रान जुड़ावन-हारे॥
प्रेमिन के सुखदेव महा 'हरिचन्द' के प्रानहुं ते अति प्यारे।
राजदुलारी सिया जू के दूलह एई हैं राघव राज दुलारे॥22॥

मण्डप में पहुंच कर सब लोग यथास्थान बैठे। महाराज जनक ने यथा विधि कन्यादान दिया। जै जै धुनि से पृथ्वी आकाश पूर्ण हो गया।

सवैया

बेदन की बिधि सों मिथिलेस करी सब ब्याह की रीति सुहाई।
मन्त्र पढ़ैं 'हरिचन्द' सबै द्विज गावत मंगल देव मनाई॥
हाथ मैं हाथ के मेलत ही सब बोलि उठे मिलि लोग लुगाई।
जोरी जियो दुलहा दुलही की बधाई बधाई बधाई बधाई॥23॥
मौर लसैं उत मौरी इतै उपमा इकहू नहिं जातु लही है।
केसरी बागो बनो दोउ के इत चन्द्रिका चारु उतै कुलही है॥
मेंहदी पान महावर सों 'हरिचन्द' महा सुखमा उलही है।
लेहु सबै द्रग को फल देखहु दूलह रामसिया दुलही है॥24॥
विधि सो जब ब्याह भयो दोउ को मनि मण्डप मंगल चांवर भे।
मिथिलेस कुमारी भई दुलही नव दूलह सुन्दर सांवर भे॥
हरिचन्द महान अनन्द बढ़्यो दोउ मोद भरे जब भांवर भे।
तिनसों जग मैं कछु नाहिं बनी जे न ऐसी बनी पैं निछावर भे॥25॥

फिर जेवनार हुई! सब लोग भोजन को बैठे। स्त्रियां ढोल मंजीरा लेकर गाली गाने लगीं।

सुन्दर श्याम राम अभिरामहिं गारी का कहि दीजै जू।
अगुन समुन के अनगन गुनगन कैसे कै गनि लीजै जू॥

मायापति माया प्रगटावन कहत प्रगट स्रुति चारी।
जो पति पितु सिसु दोउसु मैं व्याप्त ताहि लगै का गारी॥
माता पिता को होत न निरनय जात न जानो जाई।
जाके जिय जैसी रुचि उपजै तैसिय कहत बनाई॥
अज के दसरथ सुनै रहे किमि दसरथ के अज जाये।
भूमिसुता पति भूमिनाथ सुत दोउ आप सोहाये॥
धन्य धन्य कौसिल्या रानी जिन तुम स्रे सुत जायो।
माता पिता सों बरन बिलच्छन श्याम सरूप सोहोयो।।
कैकै की जो सुता कैकेई ताको सुकृत अपारा।
भरतहि पर अति ही रुचि जाकी को कहि पावै पारा॥
नाम सुमित्रा परम पवित्रा चारु चरित्रा रानी।
अतिहि विचित्रा एक साथ जेहि द्वै सन्तति प्रगटानी॥
अति विचित्र तुम चारहु भाई कोउ सांवर कोउ गोरे।
परी छांह कै औरहि कारन जिय नहिं आवत मोरे॥
कौसलेस मिथिलेस दुहुन में कहौ जनक को प्यारे।
कौसल्यासुत कौसलपतिसुत दुहूं एक को न्यारे॥
चरु सों प्रगटे कै राजा सों यह मोहि देहु बताई।
हम जानी नृप बृद्ध जानि कछु द्विज गन करी सहाई॥
तुमरे कुल को चाल अलौकिक बरनि कछु नहिं जाई।
भागीरथी धाइ सागर सों मिलि अनन्द बढ़ाई॥
सूर बंस गुरु कुलहि चलायो छत्री सबहि कहाहीं।
असमंजस को बंस तुम्हारो राघव संसय नाहीं॥
कहलौं कहौं कहत नहि आवै तुमरे गुन गन भारी।
चिरजीवो दुलहा अरु दुलहिन हरीचन्द बलिहारी॥26॥

फिर आनन्द से बारात बिदा होकर घर आई। रानियों ने दुलहा दुलहिन को परछन करके उतारा। महाराज दशरथ ने सब का यथा योग्य आदर सत्कार किया। अब हम भी श्री जनक लली नव दुलही की आरती करके बालकाण्ड की लीला पूर्ण करते हैं।

आरति कीजै जनक लली की।
राम मधुप मन कमल कली की॥
रामचन्द्र मुख चन्द चकोरी।
अन्तर सांवर बाहर गोरी॥
सकल सुमंगल मुकल फली की॥

पिय दृग मृग जुग बन्धन डोरी।
पीय प्रेम रस रासि किसोरी॥
पिय मन गति विश्राम थली की।
रूप रासि गुननिधि जग स्वामिनि॥
प्रेम प्रबीन राम अभिरामिनि।
सरबस यन 'हरिचन्द' अली की॥27॥

अब अयोध्याकांड की लीला प्रारम्भ हुई करुण रस का समुद्र उमड़ चला। श्री रामचन्द्रजी के वनबास का कैकेयी ने वर मांगा, भगवान वन सिधारे, राजा दशरथ ने प्राण त्यागा।

दोहा

बिनु प्रीतम तृन सम तज्यौ, तन राखी निज टेक।
हारे अरु सब प्रेम पथ, जीते दसरथ एक॥28॥

नगर में चारों ओर श्री रामजी का बिरह छा गया जहां सुनिए लोग यही कहते थे।

पद

राम बिनु पुर बसिए केहि हेत।
धिक निकेत करुणानिकेत बिनु का सुख इत बसि लेत॥
देत साथ किन चलि हरि को उत जियत बादि बनि प्रेम।
'हरीचन्द' उठि चलु अबहुं बन रे अचेत चित चेत॥29॥
रामचन्द्र बिनु अवध अंधेरो।
कछु न सुहात सियाबर बिनु मोहि राज पाट घर घेरो॥
अति दुख होत राजमन्दिर लखि सूनो सांझ सबेरो।
डूबत अवध बिरह सागर मैं का आवै बनि बेरो॥
पसु पंछी हरि बिनु उदास सब मनु दुख कियो बसेरो।
'हरीचन्द' करुनानिधि केसव दै दरसन दिन फेरो॥30॥
राम बिनु वादहि बीतत सासैं।
धिक सुत पितु परिवार राम बिनु जे हरि पद रति नासैं॥
धिक अब पुर बसिवो गर डारें झूठ मोह की फासैं।
'हरीचन्द' तित चलु जित हरि-मुख-चन्द-मरीचि प्रकासै॥31॥
राम बिनु अवध जाइ का करिए।
रघुबर विनु जीवन सों तौ यह भल जौ पहिलेहि मरिए॥

क्यौं उत नाहक जाइ दुसह बिरहानल मैं नित जरिए।
'हरीचन्द' वन बसि नित हरि मुख देखत जगहि बिसरिए॥33॥
राम बिन सब जग लागत सूनो।
देखत कनक भवन बिनु सिय पिय होत दुसह दुख दूनो॥
लागत घोर मसानहुं सों बढ़ि, रघुपुर राम बिहूनो।
कवि हरिचन्द जन्म जीवन सब धिक धिक सियबर ऊनो॥33॥
जीवन जो रामहि संग बीतै।
बिनु हरि-पद-रति और बादि सब जनम गंवावत रीतै॥
नगर नारि धन धाम काम सब धिक धिक बिमुख जौन सिय पीतै।
'हरीचन्द' चलु चित्रकूट भजु भव मृग बाधक चीतै॥34॥

फिर भरतजी अयोध्या आए और श्री रामचन्द्रजी को फेर लाने को वन गए। वहां उन की मिलन रहन बोलन सब मानो प्रेम की खराद थी। वास्तव में जो भरतजी ने किया सो करना बहुत कठिन है। जब श्री रामचन्द्रजी न फिरे तब पांवरी लेकर भरतजी अयोध्या लौट आए। पादुका को राज पर बैठा कर आप नन्दिग्राम में वनचर्य्या से रहने लगे। यहां भरतजी की आरती करके अयोध्या कांड की लीला पूर्ण हुई।

आरती

आरति आरति हरन भरत की। सीय राम पट पंकज रत की॥
धर्म्म धुरंधर धीर बीर बर। राम सीय जस सौरभ मधुकर।
सील सनेह निवाह निरत की॥
परम प्रीति पथ प्रगट लखावन। निज गुन गन जस अघ बिद्रावन।
परछत पीय प्रेम सूरत की॥
बुद्धि विवेक ज्ञान गुन इक रस। रामानुज सन्तन के सरबस।
'हरीचन्द' प्रभुविषय विरत की॥

[रामलीला का प्रकाशन खड्गविलास प्रेस से सन 1904 ई. में हुआ था]

चरितावली

सन 1871 से 1880 ई.

सं. 1928 से सं. 1937 वि. तक लिखी
गई तथा विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित
जीवनियों का संग्रह

विक्रम

इस के पूर्व्व कि हम विक्रमादित्य का कुछ चरित्र लिक्खैं हम को श्रीयुत बूलर साहब का धन्यवाद करना चाहिए, जिन्होंने विक्रमांकचरित्र नामक ग्रन्थ खोज कर प्रकाश किया। यह श्रीहर्षचरित्र के चाल का एक दूसरा ग्रन्थ है, जो अब प्रकाश हुआ। यह ग्रन्थ विल्हण कवि का है और अनेक छन्दों में अठारह सर्ग में लिखा हुआ है। इस के सत्रह सर्गों में विक्रमादित्य का चरित्र और अठारहवें सर्ग में कवि ने अपना वर्णन किया है। प्रसिद्ध है कि चौरपंचाशिका इसी विल्हण की बनाई हुई है। कहते हैं कि गुजरात के राजा वैरीसिंह की बेटी चन्द्रलेखा वा शशिकला को विल्हण पढ़ाता था और उस ने उस से गन्धर्व विवाह भी किया था। जब राजा ने इस बात से क्रुद्ध होकर विल्हण को फांसी की आज्ञा दिया, रास्ते में इसने चौरपंचाशिका बनाई, जिससे प्रसन्न होकर राजा ने फांसी के बदले अपनी कन्या की बांह उसके गले में डाली। इन कथाओं पर हमारा कुछ ऐसा विश्वास नहीं, क्योंकि इस ग्रन्थ में विल्हण ने इन बातों की कहीं चर्चा नहीं की है। विल्हण अपना हाल यों लिखता है–कश्मीर के देश में जिहलम और सिन्ध के मुहाने पर प्रवरपुर नाम का बड़ा सुन्दर नगर था। अनन्त देव वहां का बड़ा प्रतापी और धार्मिक राजा था, जिस की रानी का नाम सुभटा था। उस रानी का भाई क्षितिपत्ति भोज के समान कवियों का गुणग्राहक और बड़ा विष्णुभक्त था। अनन्त का बेटा कलश हुआ और कलश के पुत्र हर्षदेव और विजयमल्ल थे। प्रवरपुर के पास ही विजयवन में खीनमुख नाम का एक गांव था, जहां कुशिक गोत्र के ब्राह्मण बसते थे, जिन को गोपादित्य मध्य देश से बड़े आदर से लाया था। उन ब्राह्मणों में मुक्तिकलश सब से मुख्य था और उस को राज्य कलश और राज्य कलश को ज्येष्ठ कलश पुत्र हुआ। ज्येष्ठ कलश को इष्टराम, विल्हण आनन्द तीन पुत्र थे। विल्हण व्याकरण और काव्य अच्छी तरह पढ़ा था और श्री वृन्दावन में बहुत दिन तक उसने काल बिताया और फिर कन्नौज, प्रयाग, बनारस और अयोध्या में फिरता रहा और फिर कुछ दिन दाहाल के राज्य में, कुछ दिन धार

में और कुछ दिन गुजरात में रहकर अपनी कविता से लोगों को प्रसन्न करता रहा। जब यह दक्षिण में चोल देश में गया, तो वहां के राजा से इस को विद्यापति की पदवी मिली। उस की माता का नाम नागादेवी था। कर्ण के दरबार में गंगाधर कवि के मुकाबिले में रामजी के चरित्र में काव्य बनाया। यह अपने ग्रन्थ में लिखता है कि किसी कारण से वह राजा भोज से न मिल सका। विक्रमांक चरित्र उस ने अपने बुढ़ापे में बनाया। विदित रहे कि विल्हण ईसवी ग्यारहवें शतक के मध्य और अन्त भाग में हुआ है, क्योंकि विक्रमादित्य ने (जिस के दरबार का यह पंडित था) सन 1076 से 1127 तक राज्य किया था। विल्हण की कविता में कई बातें विशेष जानने के योग्य हैं, जैसा उस ने कादम्बरी का अपने ग्रन्थ में वर्णन किया है, जिस से स्पष्ट जाना जाता है कि बाण कवि विल्हण के पहिले हुआ है और उस के समय में भी बाण की कविता का माधुर्य भारतवर्ष में फैला हुआ था। फारसी (शिकस्त) के चाल के कोई अक्षर विल्हण के समय में कश्मीर में लिखे जाते थे, क्योंकि उस ने कश्मीर के वर्णन में लिखा है कि वहां कायस्थ लोग अपने लिखावट की जाल से किसी को ठग नहीं सकते थे। विल्हण गुजरातियों से बहुत नाराज था, क्योंकि वह लिखता है कि गुजराती राक्षसी बोली बोलते हैं और लांघ नहीं बांधते और मैले होते हैं। विल्हण के बाप ने महाभाष्य पर कोई तिलक किया था, परन्तु अब वह नहीं मिलता। विल्हण की कविता वैदर्भी और ओज और प्रसाद गुण से पूर्ण है। कविता से जहां कवि के और गुण प्रकट होते हैं वहां साथ ही उस का अभिमान उद्दण्डता और परिहास का स्वभाव भी पाया जाता है।[1]

इसी कवि ने विक्रमादित्य का चरित्र अठारह सर्गों में कहा है। इस समय हम इस बात का झगड़ा नहीं ले बैठते कि विक्रम कितने भए और किस किस समय में भए। यहां पर हम केवल उस विक्रम का चरित्र वर्णन करते हैं जो दक्षिण देश में राज्य करता था, कल्याण जिस की राजधानी थी और विक्रमादित्य जिस का नाम था। हमारे पाठक लोगों को यह जानकर बड़ा आश्चर्य होगा कि यह वह विक्रम नहीं है जिस का सम्वत चलता है और न इस विक्रमादित्य के हुए 1941 वर्ष हुए।

इस विक्रमादित्य का जन्म चालुक्य[2] नामक क्षत्रीवंश में हुआ था। विल्हण लिखता है कि ब्रह्मा एक बेर अंजुली में जल लेकर अर्घ देना चाहते थे कि इन्द्र अपनी विपत्ति कहने लगा, जिस से ब्रह्मा ने अपनी अंजुली का जल गिरा दिया और उसी से चालुक्य नामक क्षत्रियों का कुल उत्पन्न हुआ। हारीत और मानव्य इस वंश के पूर्व्व पुरुष थे और पहले से ये लोग अयोध्या के राजाओं के अधिकार में अयोध्याजी

---

[1] विल्हण को यह स्फुट श्लोक मिला है, जिस से उसका अभिमान स्पष्ट प्रगट होता है–
वासः शुभ्रमृतुर्वसन्तसमयः पुष्पंशरन्मल्लिका।
धानुष्कः कुसुमायुधः परिमलः कस्तूरिकाऽस्त्रंवनुः॥
वाणीतर्वरसोज्वला प्रियतमा श्यामावयो यौवनं।
देवोमाधवएवपंचमलया गीतिर्कविविल्हणः॥

[2] 'बूंदी राजवंश वर्णन' में देखिए।

में बसते थे। श्रीरामचन्द्र के समय में भी ये लोग उन की सेवा में उपस्थित थे। फिर इन लोगों ने दक्षिण में अधिकार आरम्भ किया और धीरे धीरे वहां के राजा हो गए। काल पाकर श्री तैलप नामक इस वंश में एक राजा हुआ। इस ने सन 973 से 997 तक राज्य किया। इस ने हिन्दुस्तान के बहुत से राजाओं को मार कर अपना अधिकार बढ़ाया। श्रीयुत बूलर साहब लिखते हैं मुंज को इसी ने मारा था और मालवा पर इस ने बड़े धूमधाम से चढ़ाव किया था। उस के पीछे सत्याश्रय राजा हुआ, जिस ने ग्यारह वर्ष अर्थात् सन 1008 तक राज्य किया। इसी का नामान्तर सत्यश्री था। इस के पीछे जय सिंह राजा हुआ, जिस ने सन 1040 तक राज्य किया। इस के पीछे आहव मल्लदेव राजा हुआ। इसी का नामान्तर त्रिभुवनमल्ल और त्रैलोक्यमल्ल था। इस ने पंवारों[1] के देश मालव की राजधानी धारानगरी पर चढ़ाई किया। करनाटक, कुन्तक और डाहल देश में इस का निज राज्य था, पर चोल, केरल और द्रविड़ देश इस ने जीत के अपने राज्य में मिला लिया था। विल्हण लिखता है कि अद्भुत कथा और दशरूप काव्य में इस राज्य का बहुत सा वर्णन है। इस को पुत्र नहीं होता था इस से इस ने महादेवजी की घर ही में बड़ी आराधना की और काल पाकर सोमदेव, विक्रमादित्य और जयसिंह तीन पुत्र हुए। विक्रम के शरीर में छोटेपन ही से शूरता इत्यादिक उत्तम गुण झलकते थे। जब यह जवान हुआ, तो पहिले इस ने बंगाले पर चढ़ाव किया और कामरूप जीता। समुद्र पार होकर सिंहल पर[2] इस ने चढ़ाव किया और द्राविड़ और चोलों की राजधानी कांची तीन बेर लूटा। जब वह सिंहल जीतकर लौटा, तो गोदावरी के पास सुना कि तुंगभद्रा के किनारे पिता ने देह त्याग किया। यह उसी समय घर गया और इस का बड़ा भाई सोमदेव राजा हुआ। विल्हण लिखता है कि सोमदेव बड़ा मदोन्मत्त हो गया था और इन्दुमित्र नामक एक बुरा राजा उसको सहायता को मिल गया, इस से विक्रम ने इस का संग छोड़ा। इसी को चालुक्य कहते हैं। दिया और कोंकण का राजा जयकेश इस से मिलकर दक्षिण में बहुत से देश जीते और अपना अपना अलग राज स्थापन किया। उस समय इस का छोटा भाई

---

1. ''बूंदी राजवंश वर्णन'' और बाबू रामचरित सिंह संगृहीत ''नृप वंशावली'' और ''राजस्थान'' में देखिये।
2. सिंहल के इतिहास में बंगाल का पहला हाल इतना लिखा है कि सिंहबाहु नाम एक बंगाले का राजा था। उस का बड़ा बेटा विजय सिंह प्रजाओं को पीड़ा देने के कारण जब देश से निकाला गया, तो सात सौ आदमियों के साथ जहाज में चढ़कर निकला। अनेक प्रकार के कष्ट सहने के उपरान्त सिंहल में जा पहुंचा और वहां के लोगों को जीत कर उन का राजा बन गया। विजय सिंह के मरने के बाद उस का भतीजा पांडुवास जो बंगाल में रहता था सिंहलद्वीप के सिंहासन पर बैठा। यह सिंहलद्वीप के राजाओं में पहला राजा था। सिंहवंश के राजा होने के कारण इस टापू का नाम सिंहलद्वीप हुआ। जिस साल बुद्धदेव का परलोक हुआ था उसी साल विजय सिंह सिंहल में पहुंचा। यह साफ जान पड़ता है कि 500 बरस ईसवी सन के पहले बंगाले में आर्य्यवंश के लोगों का अधिकार बहुत बढ़ा था, क्यौंकि उन लोगों ने भी समुद्र की राह से जहाज पर चढ़ कर दूर दूर के देशों को जीता था।

जयसिंह भी इस के साथ था। द्रविड़ देश के राजा ने अपनी कन्या देकर इस से मैत्री की और जब वह राजा मर गया तो विक्रम ने उस के बेटे अर्थात् अपने साले को बड़े धूमधाम से गद्दी पर बैठाया। और फिर गांगकुंडपुर होता हुआ तुंगभद्रा के किनारे आकर रहा। जब चेंगों के राजा राजिक ने इस के साले को जीत लिया था तब यह बड़ी धूमधाम से उससे लड़ने को गया था। कहते हैं कि राजिक इस के बड़े भाई सोमदेव का मित्र था, इससे राजिक की ओर से सोमदेव भी लड़ने को आया था। यह लड़ाई बड़ी तैयारी से हुई और सोमदेव अन्त में पकड़ा गया। राजिक भागा और विक्रमादित्य अपने बाप की गद्दी पर बैठा। काहाट के राजा की कन्या ने स्वयंवर किया था, जिस में विक्रमादित्य भी गया था। विल्हण ने यहां पर राजाओं के स्वाभाविक अभिमान और काम की चेष्टा के वर्णन में बहुत ही अच्छी स्वभावोक्ति दिखाई है और 'पारसीक तैल' के नाम से आतशबाजी के भांति की किसी वस्तु का वर्णन किया है। स्वयंवर में विल्हण ने नीचे लिखे हुए राजाओं का वर्णन किया है, जिस से प्रगट होता है कि इतने राजा उस समय अलग अलग वर्त्तमान और अच्छी दशा में थे, यथा अयोध्या, चन्देरी, कान्यकुब्ज (अरजुन के कुल का राजा), चम्बल के तट का देश, कालिंजर, गोपाचल, मालव, गुजरात, मन्दराचल के सनीप का पांड्यदेश और चोल। कन्या ने जयमाल विक्रमादित्य के गले में डाली और धूमधाम से इस का विवाह हुआ।

इस राजा के बहुत से ऐश्वर्य्य और बिहार वर्णन के पीछे विल्हण लिखता है कि एक दिन विक्रम ने दूत के मुख से सुना कि उस का छोटा भाई बागी हो गया है और चेंगों जीतने के पीछे विक्रम ने जो उसे देश और सेना दी थी उस पर सन्तोष न करके बहुत से सिपाही नौकर रख के सारे दक्षिण में लूटमार करता फिरता है और द्रविड़ के राजा (शायद विक्रम का साला) ने उसे बहुत ही बहकाया है और छोटे छोटे बहुत से उपद्रवी राजा उस से मिल गए हैं। यह सुन कर बहुत पछताया और सेना लेकर बाहर निकला। जब भाई की सेना के पास इसका डेरा पहुंचा, तो इस ने दूतों के और पत्रों के द्वारा उस को बहुत समझाया, पर वह न माना और अन्त में विक्रम से हारकर कहीं दूर जा रहा। विक्रम फिर सुख से राज्य करने लगा। एक बेर कांची पर फिर चढ़ा था, क्यौंकि वहां का राजा इस से फिर गया था। कवि ने विक्रम के स्वाभाविक बहुत से गुण लिखे हैं, जिन में उदारता का बहुत ही सविशेष वर्णन है। इस ने इक्यावन वर्ष राज्य किया था।

ऊपर के लिखे अनुसार लोगों को विक्रम का जीवनवृत्त विदित होगा। कवि ने उस में जो जो सद्गुण लिखे हैं, वह उस में रहे हों, पर अपने दो भाइयों को उस ने जीता और बड़े भाई को कैद करके आप गद्दी पर बैठा, इस से उस के चरित्र में हम को थोड़ा सन्देह होता है। क्यौंकि जब उस के बड़े भाई के जीतने का कवि वर्णन करेगा, तो उस दोष के छिपाने के वास्ते उस के उस भाई को बुरा लिखें, इस में क्या सन्देह है। जो कुछ हो, विक्रम एक बड़ा राजा और गुणग्राही मनुष्य हो गया है और यह पंडितों के आदर ही का फल है कि उस का सम्पूर्ण वर्णन आज हम पाठकों को सुनाते हैं।

कालिदास

यह सब वार्ता केवल बंगदेशियों की है। पश्चिम प्रदेशीय पंडित लोग भारतवर्षीय कवियों में कालिदास को सर्वोच्चासन देते हैं। बम्बई के प्रसिद्ध पंडित भाऊदाजी ने केवल कालिदास की कविता ही नहीं पढ़ी वरन् बहुत परिश्रम करके प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ और ताम्रपत्रों से उन का जीवनवृत्तान्त संग्रह की। हम ने भी उनके ग्रन्थ से कई एक बातें ग्रहण किया है।

कालिदास विख्यात महाराजा विक्रम के नवरत्नों में थे। इसके[1] अतिरिक्त उनके जीवन की और कोई प्रामाणिक बात लोग नहीं जानते। बंगदेश के कई अभिमानी पंडितों ने कालिदास को लम्पट ठहरा कर उन के नाम से हास्यरस की कविताओं का प्रचार किया। पाठशाला के युवा ब्राह्मण थोड़ा सा मुग्धबोध व्याकरण पढ़ के इन श्लोकों का अभ्यास करके धनिक लोगों का मनोरंजन करते हैं और इसी प्रकार धनी लोगों से प्रति वर्ष कुछ पाते हैं। यथार्थ में तो यह सब कविता कालिदास की नहीं हैं, परन्तु नवीन कवियों की बनाई हुई है। 'प्रफुल्लित ज्ञान नेत्र' नामक पद्यमय पुस्तक वंगभाषा में मुद्रित हुई है। इस ग्रन्थ में लोगों ने मिथ्या कल्पना करके कालिदास में ऊपर लिखा हुआ दोष ठहराया है। इसी प्रकार से इन दिनों अंगरेजी भूमिका सहित एक रघुवंश की सटीक पोथी मुद्रित हुई है। इस में भी लोगों ने मिथ्या कल्पना किया है। कालिदास ने कोई भी ग्रन्थ में अपना वृत्तान्त कुछ भी नहीं लिखा है, केवल इतना ही प्रकट किया है।

धन्वन्तरिः क्षपणकोमरसिंहशंकुः वेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः।
ख्वातोबराहमिहिरोनृपतेःसभायांरत्नानिवैवररुचिर्नवविक्रमस्य॥

केवल इतना ही परिचय नवरत्नों का लिखा है। अभिज्ञानशाकुन्तल ग्रन्थकर्ता

---

1. राजा लक्ष्मण सिंह रघुवंश के उल्था में यौं लिखते हैं—"कालिदास नाम के कई कवि हुए हैं। उन में दो मुख्य गिने जाते हैं—एक वह जो राजा वीर विक्रमाजीत की सभा के नौरत्नों में था, दूसरा जो राजा भोज के समय में हुआ। इन में भी पंडित लोग पहले को दूसरे से श्रेष्ठ मानते हैं और उसी के रचे हुए रघुवंश, कुमारसम्भव, मेघदूत, ऋतुसंहार इत्यादि काव्य और शाकुन्तल नाटक, विक्रमोर्वसी त्रोटक और और अच्छे अच्छे ग्रन्थ समझे गएं हैं।

के इतने ही परिचय से सन्तुष्ट न रह के और और संस्कृत ग्रन्थों से इस विषय का अनुसंधान करना उचित है। प्रायः 500 वर्ष हुए कि कोलाचल मल्लिनाथ सूरि ने कालिदास कृत काव्यों की टीका की है। उन्हों ने यह टीका दक्षिणावरनाथ की टीका देख कर बनाई। परन्तु वह अब दुष्प्राप्य है। भाषातत्त्ववित् लासेन साहब ने यह लिखा है कि कालिदास ईस्वी दो सम्वत में समुद्र गुप्त की सभा में वर्त्तमान थे। लासेन ने एक पत्थर देखा था, जिस पर यह लिखा था कि 'समुद्र गुप्त कवि बन्धु काव्य प्रिय' और इसी से वह अनुमान करते हैं कि कविश्रेष्ठ कालिदास उन के सभासद थे। बेन्टली ने एशियाटिक नामक पत्रिका में भोज प्रबन्ध का फरासीसी अनुवाद और 'आईने अकबरी' को देख कर लिखा है कि भोज राजा के राज्य के 800 वर्ष पश्चात् विक्रमादित्य के सभा में कालिदास वर्त्तमान थे, परन्तु यह बात कदापि नहीं हो सकती। बेन्टली ने स्वीय ग्रन्थों में कई एक ऐसी अशुद्ध बातें लिखी हैं जिन के पढ़ने से बोध होता है कि वह हिन्दुओं का इतिहास कुछ भी नहीं जानते।

कर्नेल विलफोर्ड, प्रिंसेप और एलफिनस्टन ने लिखा है कि कालिदास प्रायः 1400 वर्ष पूर्व्व वर्त्तमान थे।

भोज प्रबन्ध के प्रमाणानुसार गुजरात, मालव और दक्षिण के पंडित कहते हैं कि कालिदास सन 1100 ईस्वी में भोज राजा के सभासद थे। उज्जैन के राजसिंहासन पर कई विक्रमादित्य और भोजराज नामक राजा बैठे, परन्तु सब से अन्त के भोज राजा तो सम्वत 1100 ईस्वी में राज्य करते थे। और इस से बोध होता है कि अन्त के विक्रम ही को भोजराज कहते हैं और उन्हीं की नवरत्न की सभा थी। हम ने स्वयं 'भोजप्रबन्ध' पाठ करके देखा है कि उस में यह लिखा है कि मालव देशान्तर्गत धारानगराधिप भोज सिन्धुल के पुत्र के भ्रातृपुत्र थे। भोज के बाल्यावस्था में उन के पिता का परलोक हुआ तो उन के पितृव्य मुंज राजपद पर अभिषिक्त हुए और भोज ने उन के मन्त्री बनकर बहुत विद्या उपार्जन किया और इसी प्रकार भोज दिन प्रतिदिन विख्यात होने लगे तो मुंज के मन में यह शंका हुई कि अब लोग हम को पदच्युत करैंगे और यह विचार करने लगे कि किसी प्रकार से भोज का प्राणनाश करूं। इसी हेतु मुंज ने वत्सराज राजा को बुला कर अपना दुष्ट विचार प्रकाशित किया और कहा कि भोज को शीघ्र ही अरण्य में ले जाकर इस का प्राणनाश करो। परन्तु इस राजा ने भोज को तो छिपा रक्खा और पशु के रक्त से भरे हुए खड्ग को राजा मुंज के पास भेज दिया। इस को देख कर उन्होंने सानन्द चित्त से पूछा कि भोज ने मानव लीला समाप्त किया? यह सुन वत्स राजा ने एक पत्र पर लिख दिया कि—"मान्धाता, जो भोज क्या, एक समय नृप कुल का शिरोमणि था अब परलोक में है। रावणारि रामचन्द्र जिन्होंने समुद्र में सेतु बांधा था वह कहां हैं? और बहुत से महोदय गण और राजा युधिष्ठिर ने स्वर्णारोहण किया है, परन्तु पृथ्वी उन के साथ नहीं गई। पर आप के साथ पृथ्वी अवश्य रसातल को जायगी।" इस पत्र के पढ़ते

ही मुंज का शरीर रोमांचित हुआ और भोज के लिए अत्यन्त व्याकुल हुए। परन्तु जब उन्होंने सुना कि भोज जीता है, तो उन का वत्सराज से शीघ्र बुलवा कर धारानगर के राजसिंहासन पर बैठाया और आप ईश्वराराधन के निमित्त अरण्य में प्रवेश किया। भोज ने पितृसिंहासन पा के बहुत से पंडितों को अपनी सभा में बुलाया। हम को भोज प्रबन्ध में कालिदास के सहित नीचे लिखे हुए पंडितों के नाम मिले हैं–

कर्पूर, कलिंग, कामदेव, कोकिल, श्रीदचन्द्र, गोपालदेव, जयदेव, तारेचन्द्र, दामोदर, सामनाथ, धनपाल, वाण, भवभूति, भास्कर, मयूर, मल्लिनाथ, महेश्वर, माघ, मुचकुन्द, रामचन्द्र, रामेश्वर, भक्त, हरिवंश, विद्याविनोद, विश्वबसु, विष्णुकवि, शंकर, सामदेव, शुक, सीता, सोम, सुबन्धु इत्यादि।

सीता अवश्य किसी स्त्री का नाम है और इसी से बोध होता है कि स्त्रीशिक्षा उस समय प्रचलित थी। तो हम नहीं समझते कि हम लोगों के स्वदेशीय अब इस को क्यौं बुरा समझ के अपने देश की उन्नति नहीं होने देते। देखिए, अमेरिका में स्त्रीशिक्षा कैसी प्रचलित है और जो लोग एक समय अत्यन्त मूर्ख अवस्था में थे अब यूरप के लोगों को भी दबा लिया चाहते हैं, तो यह देख कर हे हिन्दुस्तानियो! क्या तुम को थोड़ी भी लज्जा नहीं आती?

पंडित शेषगिरि शास्त्री ने लिखा है कि बल्लालसेन ने 120 ईस्वी में भोजप्रबन्ध बनाया। इस से बोध होता है कि वे भोजराज के विद्योत्साही और उन के सम्मान के वृद्धि के हेतु कालिदास, भवभूति इत्यादि कवियों को केवल अनुमान ही से भोजराज का सभासद ठहराया है। भोजचरित में इन सब कवियों के नाम मिलते हैं इसलिए भोजप्रबन्ध को कैसे प्रामाणिक ग्रन्थ कहैं? इसी भोजराज ने चम्पू रामायण, सरस्वती कण्ठाभरण, अमरटीका, राजवार्तिक, पातंजलिटीका और चारुचार्य्य इत्यादि बहुत से ग्रन्थ मिलते हैं, परन्तु कालिदास, भवभूति आदि कवियों के नाम इन में से एक भी ग्रन्थ में नहीं लिखे हैं। विश्वगुणादर्शक ग्रन्थकार वेदान्ताचार्य्य कालिदास श्रीहर्ष और भवभूति एक समय भोजराज के सभा में वर्त्तमान थे, जैसा लिखा भी है।

माघश्वोरो मयूरो मुररिपुरेपरो भारविः सारविद्यः।
श्री हर्षः कालिदासः कविरथ भवभूत्यादयो भोजराजः॥

इस में वे भी भोजप्रबन्धप्रणोता बल्लाल के न्याय महाभ्रम में पतित हुए हैं, क्यौंकि श्रीहर्ष, कालिदास और भवभूत एक काल में वर्त्तमान नहीं थे। इस विषय में बहुत से प्रमाण भी हैं।

भारतवर्ष के बहुत से राजाओं का नाम विक्रमादित्य था। उज्जयिनी के अधीश्वर विक्रमादित्य जो 57 ख्री. पू. में राज्य करते थे और जिन्होंने 'सम्वत' स्थापन किया है तो अब हम लोगों को देखना चाहिए कि कालिदास इस विक्रम की सभा में उपस्थित थे वा नहीं। हम्बोल्ट लिखते हैं कि कविवर होरेस और वर्जिल कालिदास के समकालिक

थे। इस बात को बहुत से यूरोपीय पंडितों ने स्वीकार किया है। कर्नेल टॉड ने अपने राजस्थान के इतिहास में लिखा है कि "जब तक हिन्दू साहित्य वर्त्तमान रहैगा तब तक लोग भोज प्रमार और उन के नवरत्नों को न भूलैंगे।" परन्तु यह ठहराना बहुत कठिन है कि वह गुण पंडित तीन भोजराजों में से किस भोजराज की नवरत्न की सभा थी। कर्नेल टॉड ने यह निरूपण किया है—प्रथम भोजराज सम्वत 631 में, द्वितीय 721 में और तृतीय भोजराज सम्वत 1100 में वर्त्तमान थे। 'सिंहासनबत्तीसी', 'बेतालपच्चीसी' और 'विक्रमचरित्र' आदि ग्रन्थों में महाराज विक्रमादित्य की बहुत सी अलौकिक कथा भरी हुई हैं, इसी कारण इन में कोई सत्य इतिहास नहीं मिल सकता। मेरुतुंग कृत 'प्रबन्ध चिन्तामणि' और राजशेखरकृत 'चतुर्विंशाति प्रबन्ध' में लिखा है कि महाराजा विक्रमादित्य अति शूर वीर और महाबल पराक्रान्त नृपति थे। परन्तु उन में नवरत्न और कालिदास आदि कवियों का कुछ भी वृत्तान्त नहीं लिखा है।

जैन ग्रन्थों में लिखा है कि सिद्धसेन नामक जैन पुरोहित विक्रमादित्य के उपदेष्टा थे। परन्तु हम नहीं कह सकते कि यह बात कहां तक शुद्ध है। और एक जैन लेखक कहते हैं कि 723 सम्वत में भोजराज के राज्य में बहुत से लोग उज्जयिनी नगर में जा बसे थे। यह और वृद्धभोज दोनों जैनमतावलम्बी थे। ये वृत्तान्त जैन ग्रंथों से ज्ञात होते हैं और संस्कृत ग्रन्थों में ये सब प्रमाण नहीं मिलते। वृद्धभोज मनोतुंग सूरि के शिष्य थे। मनोतुंग और बाण, मयूर भट्ट के समकालिक जैनाचार्य्य थे। बाणकृत हर्षचरित पढ़ने से ज्ञात होता है कि उन्होंने सन 700 ईस्वी में श्रीकंठाधिपति हर्षवर्द्धन के साथ भेंट किया था। यही कान्यकुब्जाधिपति हर्षवर्द्धन शिलादित्य थे और इन्हीं की सभा में हियांग-सियांग नामक चैनिक परिव्राजक बुलाए गए थे। बाण कवि ने हियांग-सियांग के ग्रन्थ को पाठ कर के अपना ग्रन्थ बनाया। हर्षवर्द्धन के साथ चैनिकाचार्य्य के भेंट का वृत्तान्त हर्षचरित्र में 'यवन प्रोक्त पुराण' नामक ग्रन्थ से लिया गया है।

महर्षि कण्व ने अपने 'कथा सरित्सागर' के 18वें अध्याय में नरवाहन दत्त को विक्रमादित्य का उपन्यास कहा है। उस में लिखा है कि विक्रमादित्य सन 500 ईस्वी में राज्य करते थे। नरवाहन दत्त जैन ग्रन्थ, कथा सरित् सागर और मत्स्यपुराण के मतानुसार शतानिक के पौत्र थे। नासिक में एक पत्थर की चट्टान मिली है जिस पर विक्रमादित्य का नाम लिखा है और उन को नाभाग, नहुष, जन्मेजय, ययाति और बलराम के नाईं योद्धा वर्णन किया है। पाठक जनों को देखना उचित है कि एक विक्रमादित्य के इतिहास में कितनी गड़बड़ है। लोगों में जो केवल एक ही विक्रमादित्य प्रसिद्ध हैं, इस समय के भारतवर्षीय इतिहासों में कई एक विक्रमादित्यों के नाम मिले हैं। परन्तु हम को उस विक्रमादित्य का इतिहास ज्ञात होना आवश्यक है जिस से हम लोगों का सन्देह दूर हो और यह जान पड़ै कि नवरत्नों के अमूल्यरत्न कवि चक्रचूड़ामणि कालिदास का विक्रमादित्य से कुछ सम्बन्ध है वा नहीं।

श्री देवकृत विक्रमचरित में लिखा है कि विक्रमादित्य तीर्थंकर वर्द्धमान के नाश होने के 470 वर्ष परे उज्जयिनी में राज्य करते थे और इन्होंने ही सम्वत स्थापन किया है, परन्तु इस ग्रन्थ में कालिदास का नाम भी नहीं लिखा है।

पंडित तारानाथ तर्कवाचस्पति कहते हैं कि महाकवि कालिदास ने 'रघुवंश', 'कुमारसम्भव' और 'मेघदूत' बनाने के अनन्तर 3068 कलिगताब्द में 'ज्योतिर्विदाभरण' नामक कलाज्ञान शास्त्र बनाया। मेघदूत प्रकाशक बाबू प्राणनाथ पंडित महाशय ने भी इस बात को अपनी भूमिका में लिखा है, परन्तु यह किसी का ग्रन्थ नहीं दृष्टि पड़ता कि 'ज्योतिर्विदाभरण' रघुकार कालिदास रचित है। तर्कवाचस्पति महाशय के मत को सहायता देने के निमित्त 'ज्योतिर्विदाभरण' के कतिपय श्लोकों का अनुवाद करके नीचे लिखते हैं, जैसा कालिदास ने लिखा।

मैंने इस प्रफुल्लकर ग्रन्थ को भारतवर्षान्तरगत मालव देश में (जिस में 280 नगर हैं) राजा विक्रमादित्य के राज्य के समय रचा है॥7॥

शंकु, वररुचि, गणि, अंशुदत्त, जिष्णु, त्रिलोचन हरि, घटखर्पर, अमर सिंह और और बहुत से कवियों ने उन के सभा को सुशोभित किया था॥8॥

सत्य, वराहमिहिर, अतिसेन, श्रीवादरायणी, भनिथ्व, कुमार सिंह और कई एक महाशय ज्योतिषशास्त्र के अध्यापक थे॥9॥

धन्वन्तरि, क्षपणक, अमर सिंह, शंकु, बैतालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास और वराहमिहिर और वररुचि, ये सब महाशय विक्रम के नवरत्न थे॥10॥

विक्रम की सभा में 800 छोटे छोटे राजा और उनके महासभा में 16 वाग्मी, 10 ज्योतिषी, 6 वैद्य और 16 वेद-पारंग पंडित उपस्थित रहते थे॥11॥

कोई कहते हैं कि यह कवि, मालवा के हर्ष विक्रमादित्य के समय, हजरत ईसा की छठवीं सदी में था। उस राजा की राजधानी उज्जैन नगरी थी। इसी कारण कालिदास भी वहां रहा था। राजा विक्रम की सभा में नौ रत्न थे, उन में से एक कालिदास था। कहते हैं कि लड़कपन में इस ने कुछ भी नहीं पढ़ा लिखा, केवल एक स्त्री के कारण इसे यह अनमोल विद्या का धन हाथ लगा। इस की कथा यौं प्रसिद्ध है कि राजा शारदानन्द की लड़की विद्योत्तमा बड़ी पंडिता थी। उस ने यह प्रतिज्ञा की कि जो मुझे शास्त्रार्थ में जीतैगा, उसी को ब्याहूंगी। उस राजकुमारी के रूप, यौवन, विद्या की प्रशंसा सुनकर दूर दूर से पंडित आते थे पर शास्त्रार्थ के समय उस से सब हार जाते थे। जब पंडितों ने देखा कि यह लड़की किसी तरह वश में नहीं आती और सब को हरा देती है, तो मन में अत्यन्त लज्जित होकर सबने पक्का किया कि किसी ढब विद्योत्तमा का विवाह किसी ऐसे मूर्ख के साथ करावैं, जिस में वह जनम भर अपने घमंड पर पछताती रहे। निदान वे लोग मूर्ख के खोज में निकले। जाते जाते देखा कि एक आदमी पेड़ के ऊपर जिस टहनी के ऊपर बैठा है, उसी को जड़ से काट रहा है। पंडितों ने उसे महा मूर्ख समझ कर बड़ी आवभगत से

नीचे बुलाया और कहा कि चलो हम तुम्हारा ब्याह राजा की लड़की से करा देवैं। पर खबरदार राजा की सभा में मुंह से कुछ भी बात न कहो, जो बात करनी हो इशारों में कहियो। निदान जब वह राजा की सभा में पहुंचा, जितने पंडित वहां बैठे थे, सब ने उठ कर उस की पूजा की, ऊंची जगह बैठने को दी और विद्योत्तमा से यौं निवेदन किया कि ये बृहस्पति के समान विद्वान् हमारे गुरु आप के ब्याहने को आए हैं। परन्तु इन्होंने तप के लिए मौन साधन किया है। जो कुछ आप को शास्त्रार्थ करना हो, इशारों से कीजिए। निदान उस राजकुमारी ने इस आशय से, कि ईश्वर एक है, एक उंगली उठाई। मूर्ख ने यह समझकर कि धमकाने के लिए उंगली दिखा कर आंख फोड़ देने का इशारा करती है, उस ने अपनी दो उंगलियां दिखलाईं। पंडितों ने उन दो उंगलियों के ऐसे अर्थ निकाले कि उस राजकुमारी को हार माननी पड़ी और विवाह भी उसी दम हो गया। रात के समय जब दोनों का एकान्त हुआ, किसी तरफ से एक ऊंट चिल्ला उठा। राजकन्या ने पूछा कि यह क्या शोर है, मूर्ख तो कोई भी शब्द शुद्ध नहीं बोल सकता था, कह उठा उट्र चिल्लाता है और जब राजकुमारी ने दुहरा कर पूछा तो, उट्र की जगह उस्ट्र कहने लगा, पर शुद्ध उष्ट्र का उच्चारण न कर सका। तब तो विद्योत्तमा को पंडितों की दगाबाजी मालूम हुई और अपने धोखा खाने पर पछताकर फूट फूट कर रोने लगी। वह मूर्ख भी अपने मन में बड़ा लज्जित हुआ। पहिले तो चाहा कि जान ही दे डालूं पर सोच समझ कर घर से निकल विद्या उपार्जन में परिश्रम करने लगा और थोड़े ही दिनों में ऐसा पंडित हो गया, जिस का नाम आज तक चला जाता है। जब वह मूर्ख पंडित होकर घर में आया, तो जैसा आनन्द विद्योत्तमा के मन को हुआ, लिखने से बाहर है। सच है, परिश्रम से सब कुछ हो सकता है।

कालिदास के समय घटखर्पर, वररुचि आदि और भी कवि थे। कालिदास ने काव्य, नाटकादि अनेक ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे हैं। इन की काव्यरचना बहुत सादी, मधुर और विषयानुसारिणी है। अंगरेज लोग कालिदास को अपने शेक्सपियर के सदृश उपमा देते हैं। इस के समय में भवभूति नामक एक कवि था। कहते हैं कि उस की विद्या कालिदास से अधिक थी। परन्तु कवित्वशक्ति कालिदास की सी न थी। भवभूति कालिदास के श्रेष्ठत्व को मानता था।

कालिदास सारस्वत ब्राह्मण था। उस को आखेट आदि खेलों की बड़ी चाह थी और उस ने अपने ग्रन्थ में इस का वर्णन किया है कि मनुष्य के शरीर पर ऐसे खेलों से क्या क्या उपकारी परिणाम होते हैं।

विक्रमादित्य ने उस को कश्मीर का राजा बनाया और यह राज्य उस ने चार बरस नौ महीने किया।

कालिदास उज्जैन में रहता था, परन्तु उस की जन्मभूमि कश्मीर थी। देशान्तर होने पर स्त्री के वियोग से जो जो दुःख उस ने पाए, उस का बखान मेघदूत काव्य

में लिखा है। कालिदास बड़ा चतुर पुरुष था, उस की चतुराई की बहुत सी कहानियां हैं और वे सब मनोरंजन हैं, यथा उन में से कई एक ये हैं।

1. भोजराजा को कवित्व पर बड़ी प्रीति थी। जो कोई नया कवि उस के पास आता और कविताचातुर्य्य बताता, तो उस को वह अच्छा पारितोषिक देता, और चाहता तो अपनी सभा में भी रखता। इस प्रकार से यह कविमंडल बहुत बढ़ गया। उस में कई कवि तो ऐसे थे कि वे एक बार कोई नया श्लोक सुन लेते, तो उसे कंठ कर सकते थे। जब कोई मनुष्य राजा के पास आकर नया श्लोक सुनाता था, तो कहने लगते थे, कि यह तो हमारा पहिले ही से जाना हुआ है और तुरन्त पढ़ कर सुना देते थे।

एक दिन कालिदास के पास एक कवि ने आकर कहा कि महाराज, आप यदि राजा के पास ले चलैं और कुछ धन दिला देवैं, तो मुझ पर आप का बड़ा उपकार होगा। जो मैं कोई नया श्लोक बनाकर राजसभा में सुनाऊं, तो उस का नूतनत्व मान्य होना कठिन है इसलिए कोई युक्ति बताइए।

कालिदास ने कहा कि तुम श्लोक में ऐसा कहो कि राजा से मुझ को रत्नों का हार लेना है, और जो कुछ मैं कहता हूं, सो यहां के कई पंडितों को भी मालूम होगा। इस पर यदि पंडित लोग कहैं कि यह श्लोक पुराना है, तो तुम को रत्नों का हार मिल जायगा, नहीं नये श्लोक का अच्छा पारितोषक मिलैगा।

उस कवि ने कालिदास की बताई हुई युक्ति को मानकर वैसा ही श्लोक बनाया और जब उस को राजसभा में पढ़ा, तो कविमंडल चुपचाप हो रहा और उस कवि को बहुत सा धन मिला।

2. एक समय कालिदास के पास एक मूढ़ ब्राह्मण आया और कहने लगा कि कविराज मैं अति दरिद्री हूं और मुझ में कुछ गुण भी नहीं है, मुझ पर आप कुछ उपकार करैं तो भला होगा।

कालिदास ने कहा, अच्छा हम एक दिन तुम को राजा के पास ले चलैंगे, आगे तुम्हारा प्रारब्ध। परन्तु रीति है कि जब राजा के दर्शन निमित्त जाते हैं, तो कुछ भेंट ले जाया करते हैं[1] इसलिए मैं जो ये सांटे के चार टुकड़े देता हू सो ले चलो। ब्राह्मण घर लौटा और उन सांटे के टुकड़ों को उस ने धोती में लपेट रक्खा। यह देख किसी ठग ने उस के बिन जाने उन टुकड़ों को निकाल लिया और उन के बदले लकड़ी के उतने ही टुकड़े बांध दिए।

राजा के दर्शनों को चलने के समय ब्राह्मण ने सांटे के टुकड़ों को नहीं देखा। जब सभा में पहुंचा तब यह काष्ठ की भेंट राजा को अर्पण की। राजा उस को देखते

---

[1] राजा कन्या ज्योतिषी, वैद गुरु सुर सिद्ध।
भरे हाथ इन पै गए, शेष कार्य सब सिद्ध॥

ही बहुत क्रोधित हुआ। उस समय कालिदास पास ही था। उस ने कहा, महाराज, इस ब्राह्मण ने अपनी दरिद्ररूपी लकड़ी आप के पास ला कर रक्खी है इसलिए कि उस को जला कर इस ब्राह्मण को आप सुखी करें! यह बात कवि के मुख से सुनते ही राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उस ब्राह्मण को बहुत धन दिया।

३. एक समय राजा भोज कालिदास को साथ ले वनक्रीड़ा के हेतु अरण्य को गए, और घूमते घूमते थके मांदे हो, एक नदी के किनारे जा बैठे। इस नदी में पत्थर बहुत थे, उन पर पानी गिरने से बड़ा शब्द होता था। उस समय राजा ने कालिदास से विनोद कर के पूछा कि कविराज यह नदी क्यों रोती है? कालिदास ने उत्तर दिया कि महाराज वह छोटे ही पन में अपने मैके से ससुराल को जाती है।

कालिदास के प्रसिद्ध ग्रन्थ शकुन्तला, विक्रमोर्वशी, मालविक्रमाग्निमित्र और मेघदूत हैं। शकुन्तला बहुत वर्णनीय ग्रन्थ है। उस का उल्था यूरप में सब देशों की भाषाओं में हो गया है।

एक समय कविवर कालिदास अपने मकान में बैठ कर अपने प्रिय पुत्र को अध्ययन कराता था, उसी समय क्षत्रिय कुलभूषण शकारि विक्रमादित्य संयोग से आ गए। कविवर कालिदास ने महाराज को देख प्रिय पुत्र को पढ़ाना छोड़ कर शिष्टाचार की रीति से महाराज का आदर मान किया। जब क्षत्रिय कुलभूषण राजा विक्रमादित्य ने पढ़ाने की प्रार्थना की तब फिर अध्ययन कराना प्रारम्भ किया। उस समय कविवर कालिदास अपने प्रिय पुत्र को यही पढ़ाता था कि राजा अपने देश ही में मान पाता है और विद्वान् का मान सब स्थानों में होता है। महाराज इस प्रकार की शिक्षा को सुन कर अपने मन में कुतर्क करने लगे कि कविराज कालिदास ऐसा अभिमानी पंडित है कि मेरे ही सामने पंडितों की बड़ाई करता है और राजाओं को वा धनवानों को वा मुझे नीचा देखता है। मैं पंडितों का विशेष आदर मान करता हूं और जो मेरे वा राजाओं के वा धनवानों के यहां पंडितों का आदर नहीं, तो कहां हो सकता है। ऐसा कुतर्क करते हुए अपने घर पर गए। महाराज विक्रमादित्य ने कविवर कालिदास को जो धन सम्पत्ति दी थी उस को हर लेने के लिए मन्त्री को आज्ञा दी। मन्त्री ने वैसा ही किया जैसा महाराज ने कहा था। कविवर कालिदास की जीविका जब हर ली गई तब दुःखी होकर अपने बाल बच्चों के साथ अनेक देशों में भटकता अन्त में करनाटक देश में पहुंचा। करनाटक देशाधिपति बड़ा पंडित और गुणग्राहक था। उस के पास जाकर कविवर कालिदास ने अपनी कविताशक्ति दिखाई, तो उस पर करनाटक देशाधिपति ने अति प्रसन्न होकर बहुत सा धन और भूमि देकर उस को अपने राज्य में रक्खा। कविवर कालिदास राजा के सम्मान पाकर उस देश में रहकर प्रति दिन राजसभा में जाने लगा। वहां राजा के सिंहासन के पास ऊंचे आसन पर बैठ सब राजकाजों में उत्तम सलाह देने लगा और अनेक प्रकार की कविताओं से

सभासदों के मन की कली खिलाता हुआ सुख से रहने लगा। जब से कविवर कालिदास को विक्रमादित्य ने छोड़ा तब से वे बड़े शोकसागर में डूबे थे। नवरत्नों में कविवर कालिदास ही अनमोल रत्न था। इस के सिवाय जब राजा को राजकाज के कामों से फुरसत मिलती थी तब केवल कविराज कालिदास ही की अद्‌भुत कविताओं को सुन कर राजा का मन प्रफुल्लित होता था। इसलिए ऐसे गुणी मनुष्य के बिना राजा का सब वस्तुओं से मन उदास होने लगा। फिर राजा ने कविराज कालिदास का पता लगाने के लिए सब देशों में दूतों को भेजा। जब कहीं पता न लगा तब राजा आप ही भेष बदल कर खोजने के लिए निकले। कई देशों में घूमते फिरते जब करनाटक देश में गए उस समय उन्हें पथव्यय के लिए एक हीरा जड़ी हुई अंगूठी को छोड़ और कुछ नहीं था। उस अंगूठी को बेंचने के लिए ये किसी जौहरी की दुकान पर गए। रत्नपारखी ने ऐसे दरिद्र के हाथ में ऐसी अनमोल रत्नजड़ित अंगूठी को देख कर मन में चोर समझा और कोतवाल के पास भेजा। कोतवाल राजसभा में ले गया। वे चारों ओर देखते भालते जो आगे बढ़े तो कविवर कालिदास को देखा और कहा, महाराज मैंने जैसा किया वैसा ही फल पाया। कविवर कालिदास उठ कर राजा को अंक में लगा कर करनाटक देशाधिपति से परिचय करा और सब ब्यौरा कह कर राजा वीर विक्रमादित्य के साथ चला आया।

पर इन कथाओं से भी वही झंझट पाई जाती है और कविवर कालिदास का समय ठीक निश्चय होना कठिन है।

कोई कोई कहते हैं कि कविवर कालिदास की सहायता से एक ब्राह्मण ने राजा भोज से एक श्लोक पर अनेक रुपया इस चतुराई से लिया था।

उज्जैन नगरी में राजा भोज ऐसा विद्यारसिक और गुणज्ञ और दानशील था कि विद्या की वृद्धि के प्रयोजन से उस ने यह नियम प्रचलित किया था कि जो कोई नवीन आशय का श्लोक बना के लावै, तो उस को लाख रुपये देवैं। इस बात को सुन के देश देशान्तर के पंडित लोग नये आशय के श्लोक बना के लाते थे, परन्तु उसकी सभा में चार ऐसे पंडित थे कि एक को एक बार, दूसरे को दो बार, तीसरे को तीन बार और चौथे को चार बार सुनने से नया श्लोक कंठस्थ हो जाता था। सो जब कोई परदेशी पंडित राजा की सभा में नवीन आशय का श्लोक बना के लाता तो वह राजा के सम्मुख पढ़ के सुनाता था। उस समय राजा अपने पंडितों से पूछता था कि वह श्लोक नया है वा पुराना। तब वह मनुष्य जिस को कि एक बार के सुनने से कंठस्थ होने का अभ्यास था कहता कि यह पुराने आशय का श्लोक है और आप भी पढ़ के सुना देता था। इस के अनन्तर वह मनुष्य जिस को दो बार सुनने से कंठ हो जाता था पढ़ के सुनाता और इसी प्रकार वह मनुष्य जिस को तीन बार और वह भी जिस को चार बार के सुनने से कंठस्थ होने का अभ्यास था,

क्रम से सब राजा को कंठाग्र सुना देते। इस कारण परदेशी विद्वान् अपने प्रयोजन से रहित हो जाते थे और इस बात की चर्चा देश देशान्तर में फैली। सो एक विद्वान् ऐसा देश काल में चतुर और बुद्धिमान था कि उस के बनाए हुए आशय को इन चार मनुष्यों को भी अंगीकार करना पड़ा कि यह नवीन आशय है और वह श्लोक यही है।

श्लोक

राजन् श्रीभोजराज त्रिभुवनविजयी धार्मिकस्ते पिताऽभूत।
पित्रा तेन गृहीता नवनवतिमिता रत्नकोटिर्मदीया॥
तां त्वं देहि त्वदीयैस्सकल बुधवरैर्ज्ञायते वृत्तमेत-
न्नोचेज्जानंतितेवैनवकृतमथवा देहि लक्षं ततो मे॥1॥

हे राजा भोज, तीनों लोक के जीतनेवाले, तुम्हारे पिता बड़े धर्मिष्ट हुए हैं। उन्होंने मुझ से निन्यानबे करोड़ रत्न लिया है सो मुझे आप दीजिए और इस वृत्तान्त को तुम्हारे सभासद विद्वान् जानते होंगे, उन से पूछ लीजिए। जो वह कहैं कि यह आशय केवल नवीन कविता मात्र है, तो अपने प्रण के अनुसार एक लाख रुपया मुझे दीजिए। इस आशय को सुन कर चारों विद्वानों ने विचारांश किया कि जो इस को पुराना आशय ठहरावैं, तो महाराज को निन्यानबे करोड़ द्रव्य देना पड़ता है और नवीन कहने में केवल एक लाख। सो उन चारों ने क्रम से यही कहा कि पृथ्वीनाथ, यह नवीन आशय का श्लोक है। इस पर राजा ने उस विद्वान् को लाख रुपया दिया।

श्री रामानुज स्वामी

दक्षिण में पूर्व्व सागर के पश्चिम तट से बारह कोस दूर तोंडीर देश में भूतपुरी नामक नगरी है। यहां हारीत गोत्र के केशव नामक एक ब्राह्मण रहते थे। यह सन्तानहीन होने के कारण बहुत दुःखी रहा करते। एक बार चन्द्रग्रहण में पुत्रप्राप्ति के हेतु इन्होंने यज्ञ भी किया था। कहते हैं स्वप्न में शेषजी ने दर्शन देकर इन को आज्ञा किया कि हम तुम्हारे घर में अवतार लेंगे तदनुसार श्री रामानुजाचार्य्य का केशव के घर चैत्र सुदी 5 को जन्म हुआ। लक्ष्मण आर्य्य और रामानुज यह दो नाम इन का रक्खा गया। सोलहवें बरस रक्षकांबा नामक एक स्त्री के साथ इन का विवाह हुआ। विवाह के पीछे केशवजी मर गए। तब रामानुज स्वामी विद्या पढ़ने को कांचीपुर गए और वहां यादव नामक प्रसिद्ध पंडित के पास विद्या पढ़ने लगे। जिन दिनों स्वामी वहां विद्या पढ़ते थे उन्हीं दिनों में कांचीपुर के राजा की कन्या को ब्रह्मपिशाच की बाधा हुई। रामानुज स्वामी ने अपना पैर छुला कर उस की पिशाचबाधा दूर कर दी। इससे प्रसन्न होकर राजा ने उन को बहुत सा द्रव्य दिया। उसी काल में स्वामी के मौसा गोविन्द नामक एक बड़े पंडित यादव पंडित से शास्त्रार्थ करने आए और रामानुज स्वामी का और इन का मतविषयक एक विश्वास होने से दोनों में अत्यन्त प्रीति हुई। यादव पंडित जो वास्तव में मायावादी थे गोविन्द पंडित और स्वामी से वाद में बार बार पराभूत होने से इस कुविचार में फंसे कि किसी भांति स्वामी के प्राण हरण किए जाने चाहिए। इसी वास्ते प्रगट में बहुत स्नेह दिखला कर स्वामी को साथ लेकर यात्रा के बहाने से प्रयाग की ओर चले। मार्ग में गोंड़ा के जंगल में गोविन्द पंडित ने स्वामी से यादव की सब कुप्रवृत्ति कह दिया। स्वामी भयभीत होकर जंगल में छिपे। वहां उस जंगल के देवता नारायण हस्तिगिरिनाथ ने लक्ष्मी समेत व्याधमिथुन बन कर दर्शन दिया और अपनी रक्षा में उन को कांचीपुर ले आए।

इसी समय रंगपुर में यामुनाचार्य्य नामक एक त्रिदंडी संन्यासी थे। उन को सर्वलक्षणसम्पन्न एक शिष्य करने की इच्छा हुई। उन्होंने अपने चेलों को चारों ओर भेजा कि एक सर्वगुणसंयुक्त लड़का खोज लाओ। उन शिष्यों ने आचार्य्य से जा कर रामानुज स्वामी का कुल गुण विद्या आदि का वर्णन किया।

गोविन्द पंडित इस समय कालहस्ति नगर में आ बसे और वहां एक शिव स्थापन करके अध्यापन कराने लगे। यादव भी प्रयाग से कांची फिर आए और स्वामी का दैवी प्रभाव देख कर शिष्यों के द्वारा उन से मैत्री करके रहने लगे।

यामुनाचार्य्य रामानुज स्वामी को देखने के हेतु कांचीपुर चले और मार्ग में हस्तिगिरि नारायण के दर्शन के हेतु और अपने शिष्य कांचीपूर्ण से मिलने को हस्तिपुर में ठहरे। संयोग से रामानुज स्वामी आदि शिष्यों के साथ यादव पंडित भी हस्तिगिरिनाथ के दर्शन को आए थे। वहां कांचीपूर्ण ने आचार्य्य से स्वामी का परिचय कराया और आचार्य्य इन को देख कर बहुत प्रसन्न हुए और कुछ दिन के पीछे सब लोग अपने अपने नगर गए। एक दिन रामानुज स्वामी अपने गुरु यादव पंडित को तेल लगाते थे। उसी समय 'कप्यास्य' इस श्रुति का अर्थ यादव ने कुछ अशुद्ध किया, इस से स्वामी को बड़ा कष्ट हुआ और शास्त्रार्थ में स्वामी ने यादव को परास्त किया। इस से यादव ने क्रोधित होकर स्वामी को निकाल दिया। स्वामी वहां से हस्तिगिरि चले आए और कांचीपूर्ण के उपदेश से हस्तिगिरिनाथ वरदराज नारायण की सेवा करने लगे।

यह वृत्तान्त सुन कर यामुनाचार्य्य ने अपने शिष्य पूर्णाचार्य्य को अपने बनाए स्तोत्र देकर हस्तिगिरि भेजा। एक दिन बरदराज स्वामी के सामने पूर्णाचार्य्य वह सब स्तोत्र पढ़ रहे थे कि रामानुज स्वामी ने सुन कर और उन की भक्तिपूर्ण रचना से प्रसन्न होकर पूर्णाचार्य्य से पूछा कि यह स्तोत्र किस के बनाए हैं। पूर्णाचार्य्य ने कहा कि यह सब स्तोत्र यामुनाचार्य्य के बनाए हैं और वे आप के दर्शन की बड़ी इच्छा रखते हैं। पूर्णाचार्य्य के उपदेश से रामानुज स्वामी यामुनाचार्य्य से मिलने रंगपुर चले और मार्ग में महापूर्णाचार्य्य से मिलाप हुआ। स्वामी का आना सुन कर यामुनाचार्य्य भी आगे से उन को लेने चले, किन्तु कावेरी के किनारे पहुंच कर शरीर छोड़ दिया। स्वामी भी शीघ्रता से वहां पहुंचे, तो देखा कि आचार्य्य ने शरीर छोड़ दिया है, परन्तु तीन अंगुली उठाए हुए हैं। स्वामी ने आचार्य्य का आशय समझ कर [अर्थात् 1. बौधायन मतानुसार ब्रह्मसूत्रादि का भाष्य बनाना, 2. दिल्ली के तत्सामयिक बादशाह से श्रीराममूर्त्ति का उद्धार करना और 3. दिग्विजय पूर्व्वक विशिष्टाद्वैत मत का प्रचार] प्रतिज्ञा किया कि हम आप की इच्छा पूर्ण करैंगे, जो सुन कर सुखपूर्व्वक आचार्य्य बैकुंठ धाम गए और स्वामी भी कांची फिर आए। एक बेर कांचीपूर्ण के घर स्वामी भोजन करने गए थे, तब कांचीपूर्ण ने स्वमत विषयक उन को अनेक उपदेश किया और कहा कि आप रंगपुर जाकर पूर्णाचार्य्य से सब ग्रन्थ पढ़िए।

स्वामी उन के उपदेशानुसार रंगपत्तन आए और विधिपूर्व्वक पंच संस्कार[1] दीक्षित होकर संस्कृत और द्राविड़ भाषा के ग्रन्थ सरहस्य पूर्णाचार्य्य से पढ़े। कुछ काल पीछे

---

[1] दो.–ऊर्ध पुंड, मुद्रा बहुरि, माला, मन्त्र, विचार।
संस्कार ए वैष्णवी, धर्म्म कर्म्म को सार॥1॥

एक कुएं में से जल निकालते समय पूर्णाचार्य्य की स्त्री से और स्वामी की स्त्री से कुछ कलह हो गई, इस से स्वामी रक्षकाम्बा से उदास हो गए। एक यही नहीं, अनेक समय में रक्षकाम्बा के खरतर स्वभाव का परिचय मिलने से स्वामी का जी उस की ओर से खिंच गया था, इस से स्वामी ने उन को नैहर भेज दिया और आप भी सब धन गृह आदि का त्याग कर के त्रिदंड संन्यास ग्रहण किया। कांचीपूर्ण ने इस पर अति प्रसन्न होकर 'यतिराज' की स्वामी को पदवी दिया।

कुछ दिन पीछे स्वामी के भांजे दाशरथि और अनन्तभट्ट के पुत्र कूरनाथ यह दोनों आकर कांची रहने लगे और स्वामी से विद्या पढ़ने लगे। एक समय यादव पंडित कांची आए और शंख चक्र से स्वामी का कलेवर चिन्हित देख कर बड़ा आक्षेप किया। इस पर स्वामी की इच्छा से कूरनाथ ने शास्त्रार्थ पूर्व्वक स्वमत स्थापन कर के यादव को निरुत्तर किया। यादव पंडित ने भी ज्ञान पाकर त्रिदंड ग्रहणपूर्व्वक गृहस्थाश्रम का परित्याग किया और दीक्षित होकर गोविन्ददास यह नाम पाया। इन्हीं गोविन्ददास ने 'यतिधर्म्म समुच्चय' नामक ग्रन्थ बनाया है।

कुछ काल के पीछे यामुनाचार्य्य के पुत्र वररंग स्वामी रामानुज को लेने को हस्तिगिरि आए। यहां उन्होंने नाटकों का अभिनय दिखला कर श्रीवरदराज को मांगा और वहां से रामानुज स्वामी को लाकर रंगनाथजी को समर्पण किया, जिस से स्वामी अब रंगनाथजी की सेवा का अधिकार और उस सम्प्रदाय का आचार्य्यत्व दोनों के अधिकारी हुए।

उसी समय में स्वामी के ममेरे भाई वेंकट गोविन्द पंडित से, जो कि बड़े शैव थे, वेंकटगिरि के निवासी श्री शैलपूर्ण नामक वैष्णव यति से बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ, जिस में गोविन्द पंडित ने पराजय पाकर श्री शैलपूर्ण का शिष्यत्व अंगीकार किया।

कुछ दिन पीछे पूर्णाचार्य्य के उपदेश से स्वामी रामानुज अठारह बेर गोष्ठीपुर में गोष्ठीपूर्णाचार्य्य से तत्त्व पूछने की इच्छा से गए और यद्यपि पहिले उन्होंने बहुत आनाकानी की पर अन्त में सब रहस्य स्वामी को उपदेश किया किन्तु यह कह दिया था कि यह किसी को बतलाना मत।

स्वामी रामानुज मन्त्री का रहस्य पाकर ऐसे परितुष्ट हुए कि अनेक लोगों से उन्होंने दयापूर्व्वक वह रहस्य कहा। जब गोष्ठीपूर्णाचार्य्य को यह बात मालूम हुई, तब उन्होंने स्वामी को बुलाकर पूछा कि "जो गुरु की आज्ञा उल्लंघन करै उस की क्या गति होती है?" स्वामी ने उत्तर दिया 'नर्क'। तब गुरु ने पूछा कि फिर तुम ने हमारी आज्ञा उल्लंघन कर के रहस्य क्यौं लोगों से कहा। इस पर स्वामी ने अपने दयापरवश उदार स्वभाव से निर्भय होकर उत्तर दिया–

"पतिष्ये एक एवाहं नरके गुरुपातकात्।
सर्वे गच्छन्तु भवतां कृपया परमं पदम्॥"

अर्थात् आप की ही आज्ञा टालने से मैं एक नरक में पड़ूं किन्तु और लोग जिन से हम ने रहस्य का उपदेश किया है वे आप की दया से परम पद पावें।

गुरु उन के इस उदार वाक्य से ऐसे प्रसन्न हुए कि 'मन्नाथ' अर्थात् हमारे भी स्वामी, उन का नाम रक्खा और वरदान दिया कि आज से यह वैष्णव सिद्धान्त रामानुज सिद्धान्त से प्रचलित होगा और संसार में तुम आचार्य्य रूप से प्रसिद्ध होगे।

कुछ काल पीछे स्वामी के भांजे दाशरथि स्वामी की आज्ञा से पूर्णाचार्य्य की बेटी के ससुराल में उस का कामकाज सम्हालने को रहने लगे। वहां एक वैष्णव श्रुतियों का कुछ विरुद्ध अर्थ करता था। उस से शास्त्रार्थ कर के उस को उन्होंने स्वामी के पास दीक्षित होने को भेज दिया और वह वैष्णव दास नाम पाकर इस मत का एक मुख्य पंडित हुआ।

इस सम्प्रदाय में मालाधर नामक एक बड़े पंडित थे। शठकोपाचार्य्य कृत सहस्रगीतिका स्वामी ने उन से व्याख्यान सुना। ऐसे ही अनेक वयोवृद्ध और ज्ञानवृद्धों से स्वमत का अनेक सिद्धान्त स्वामी ने लिया। वरंच अपने पुत्र सुन्दरबाहु को मालाधर ही से दीक्षित कराया।

रंगजी ठाकुर का आभूषण एक बार चोर लोग चुरा ले गए थे और उन लोगों को इस दोष से कारागार हुआ था। वे चोर स्वामी से बड़ा द्वेष रखते थे। इस से उन लोगों ने स्वामी के अंगसेवकों को घूस देकर इन के भोजन में विष मिला दिया। किन्तु परमेश्वर ने यह सब वृत्त अनुभव द्वारा स्वामी को बतला दिया, इस से उन की रक्षा हुई।

यज्ञमूर्त्ति नामक एक वेदान्त का बड़ा भारी संन्यासी पंडित था। वह दिग्विजय करता हुआ रंगनगर में स्वामी से शास्त्रार्थ करने आया। स्वामी ने अठारह दिन पर्य्यन्त उस से शास्त्रार्थ कर के उस को परास्त किया और उस से प्रायश्चित करा के उस को फिर से शिखा सूत्र धारण कराया। देवराज, देवमन्नाथ और मन्नाथ यह तीन नाम उस पंडित के रक्खे गए और वह एक बड़े मठ का स्वामी नियत हुआ। इस पंडित ने ज्ञानसार और प्रमेयसार नामक द्रविड़ में वैष्णव मत के दो बड़े सुन्दर ग्रन्थ बनाए हैं।

एक समय पुण्यनगर से अनन्ताचार्य्य बहुत से वैष्णवों के साथ स्वामी के दर्शन को आए। स्वामी ने उन को वेंकटगिरि की सेवा का अधिकार दिया। तब वे वेंकटगिरि गए और वहां वृन्दावन बना कर रहने लगे। इन्होंने वेंकटनाथ स्वामी का 'रामानुज' 'लक्ष्मण' इत्यादि नाम रक्खा है।

स्वामी इसके पश्चात् देशाटन करने को निकले और वेंकटगिरि होते हुए उत्तर की यात्रा को चले। मार्ग में दिल्ली में त्रिविक्रमाचार्य्य से भेंट किया। वहां से बदरीनाथादि होते हुए लौट कर अष्ट सहस्र गांव में आए। वहां वरदाचार्य्य और यज्ञेश नामक अपने दो शिष्यों को मठाधिपति नियुक्त किया। वहां से हस्तगिरि आए और पूर्णाचार्य्यादि से मिल कर कापिल तीर्थ को गए। वहां कुछ दिन तक रहे और देश के राजा बिट्ठलदेव

को शिष्य किया। इस राजा बिट्ठलदेव ने तोंडीर मंडलादिक अनेक गांव स्वामी को भेंट किए। वहां से वृषाचलादि स्थानों में अपना माहात्म्य प्रकाश करते हुए रंगनगर स्वामी लौट आए।

स्वामी के मामा के पुत्र गोविन्दपंडित को विराग में ऐसी रुचि हुई कि स्वामी ने बहुत कहा परन्तु उन्होंने गृहस्थाश्रम स्वीकार नहीं किया। तब स्वामी ने उन को सन्यास दिया।

एक बार केवल कूरेश को साथ लेकर स्वामी शारदापीठ गए क्यौंकि यहां विशिष्टाद्वैत[1] मत का मूल ग्रन्थ बौधायन कृत ब्रह्मसूत्र वृत्ति की पुस्तक थी। जिस को देखकर स्वामी को तदनुसार भाष्य बनाना बहुत आवश्यक था। शारदापीठ के सब पंडितों को स्वामी ने शास्त्रार्थ में पराजित किया। जब वहां से लौटे तो बौधायन वृत्ति की पुस्तक स्वामी के साथ थी। किन्तु शारदापीठ के पंडितों ने द्वेष करके रात को डांका डाला और वह पुस्तक लूट ले गए। स्वामी को इस से बड़ा दुःख हुआ। तब कुरेश ने कहा कि आप इतना दुःख क्यौं सहते हैं। एक बार मैंने आद्योपान्त उस पुस्तक को देखा है, इस से उस के प्रति अक्षर मुझ को कंठाग्र हैं। मैं सब आप को लिख दूंगा। तदनुसार एकश्रुतिधर कुरेश ने बौधायन सूत्र वृत्ति सब स्वामी को लिख दी। इसी वृत्ति के अनुसार स्वामी ने वेदान्त सूत्र पर श्रीभाष्य, वेदान्तदीप, वेदान्तसार, वेदार्थसंग्रह और गीताभाष्यादि ग्रन्थ बनाए।

इन ग्रन्थों के बनाने के पीछे बहुत से शिष्यों को साथ लेकर स्वामी दिग्विजय करने निकले। क्रम से चोलमंडल, पांड्यमंडल, कुरुक इत्यादि देशों में जाकर वहां के पंडितों को शास्त्रार्थ में जीत कर उन को वैष्णव धर्म से दीक्षित किया और कुरंग देश के राजा को दीक्षित करके केरल देश के पंडितों को जीता। वहां से क्रम से द्वारिका, मथुरा, शालिग्राम, काशी, अयोध्या, बदरिकाश्रम, नैमिषारण्य और श्रीवृन्दावन आदि तीर्थों में होते हुए फिर से शारदापीठ गए। वहां सरस्वती ने प्रत्यक्ष होकर 'कप्यास्य' इस श्रुति का तात्पर्य पूछा। स्वामी ने जो अर्थ कहा इस से प्रसन्न होकर सरस्वती ने श्री भाष्य अपने सिर पर चढ़ा कर स्वामी को दिया और उन का दोनों हाथ पकड़ कर 'भाष्यकार' नाम से पुकारा। इस के अनन्तर स्वामी ने वहां के पंडितों को शास्त्रार्थ में पराजित कर के पुरुषोत्तम क्षेत्र गमन किया। वहां जा कर देखा कि बौद्ध और कापालिक लोग पुरुषोत्तम की सेवा में नियुक्त हैं। स्वामी ने उन को जीत कर वैष्णवगण को सेवा में नियुक्त किया और वहां रामानुज मठ बना कर रहने लगे। स्वामी की

---

[1] दो. कहहि एक अद्वैतमत, दुतिय द्वैत मत जान।
त्रितिय विशिष्टाद्वैत है, ता मधि तीन प्रमान ॥1॥
प्रगट लोक मत लोक मैं, दुतिय वेदमत जान।
तृतिय संतमत करत जिहि, हरिजन अधिक प्रमान ॥2॥

इच्छा थी कि पंचरात्र के विधि से जगन्नाथजी की सेवा हो परन्तु पंडे लोग अपने मन से सब काम करते थे और श्री जगन्नाथजी भी इसी से प्रसन्न थे। क्यौंकि जब स्वामीजी ने इस बात में आग्रह किया, तो एक रात देवगण ने स्वामी को सोते हुए उठा कर कूर्म्मक्षेत्र में रख दिया। जाग कर स्वामी ने यह चरित्र देखा और भगवदिच्छा मुख्य समझ कर फिर इस विषय में आग्रह न किया।

कुछ दिन कूर्म्मांचल रहकर स्वामी सिंहाचल, अहोबलक्षेत्र, गरुड़ाचलादि तीर्थों में गए और वहां से फिर वेंकटगिरि जा कर वहां के शैवों को शास्त्रार्थ में परास्त किया।

कुछ काल पीछे कूरेश को व्यास पराशर के अंश के दो पुत्र एक साथ उत्पन्न हुए। स्वामी ने एक का नाम पराशर और दूसरे का व्यास वा श्री रामदेशिक रक्खा। इन्हीं पराशर को रंगेश ने अपुत्र होने के कारण गोद लेकर बड़े धूमधाम से विवाह किया था। गोविन्द को भी कालान्तर में पुत्र हुआ, तो स्वामी ने परांकुश उस का नाम रक्खा।

मथुरा के एक धनिक धनुर्दास को उस की भार्या हेमांगना समेत स्वामी ने वैष्णव दीक्षा दी। यह धनुर्दासम ऐसा उत्तम वैष्णव हुआ है कि रंगनाथजी के उत्सव में स्वामी एक बार उस को मित्र की भांति पकड़े हुए थे और इस पर जब लोगों ने पूछा तो स्वामी ने उस की वैष्णवता की बड़ी स्तुति की।

उसी समय में चोलदेश का एक बड़ा भारी शैव राजा कृमिकंठ हुआ था, जिस ने चित्रकूट तक विजय किया था। इस ने एक बार शास्त्रार्थ के हेतु प्रार्थनापूर्व्वक स्वामी को बुलाया। स्वामी उस के यहां जाते थे कि मार्ग में चेलाचलाम्बा और उस के पति को दीक्षित किया। और बहुत से बौद्धों को शास्त्रार्थ में जय किया। इसी प्रकार कुछ दिन भक्तनगर में रहे। वहां स्वप्न देखने से इन्होंने यादवाचल जाकर वहां छिपी हुई भगवन्मूर्त्ति को निकाला और शके 1012 में उस मूर्त्ति को यादवाचल में प्रतिष्ठित किया।

एक बार स्वामी को खबर मिली की दिल्ली के राजा के घर में रामप्रिय नामक एक नारायण की मूर्त्ति है। स्वामी यह सुनकर दिल्ली गए और वहां कुछ दिन रह कर राजा से वह मूर्त्ति ले आए। कहते हैं कि दिल्ली के राजा की बेटी उस भगवद्विग्रह पर ऐसी आसक्त थी कि भक्ति प्रभाव से आज तक नारायण की मूर्त्ति उस के पास तथा यादवाचल में वर्त्तमान है।

इसके पीछे विष्णुचित्त की बेटी गोदा को स्वामी ने उपदेश दिया। इन के 74 शिष्य बड़े प्रसिद्ध हुए हैं। इन में भी आन्ध्रपूर्ण की बड़ी महिमा है।

इस प्रकार स्वामी रामानुज आचार्य्य एक सौ बीस वर्ष पृथ्वी पर रहे और चारों ओर वैष्णव सम्प्रदाय का प्रचार कर के सब शिष्यों को भगवद्भक्ति का उपदेश कर के माघ सुदी 10 को परमधाम पधारे। इन के पीछे रंगनाथजी के मन्दिर को अधिकार

पराशर को मिला और दाशरथि, पूर्णाचार्य्य, गोविन्द और कुरुक ये चार मतशाखा प्रवर्त्तक हुए।

इस सम्प्रदाय के मुख्य बड़े बड़े लोग शठकोपाचार्य, रंगेश, वेंकटेश, वरद, वकुलाभरण, सुन्दर, यामुनाचार्य्य, वररंग, पूर्णाचार्य्य, गोष्ठीपूर्ण, मासभद्र, माधवदास का सार, भक्तिसार, फणिकृष्ण, कुलशेखर भट्टनाथ, पद्मराज और अनन्ताचार्य्य आदिक हैं।

दानपत्रादिकों से और दक्षिण राजाओं के घर के लेखों से निश्चय होता है कि ईस्वी सन 1010 वा इस के आसपास किसी सम्वत में स्वामी का जन्म हुआ था और द्वादश शताब्दी के पूरे पूरे भोग में ये वर्त्तमान थे।

इन का मत विशिष्टाद्वैत है और उपास्यदेव साकार ब्रह्मनारायण हैं। ये भुजा पर तप्त शंक चक्र की छाप देते हैं। हिन्दुस्तान के सब प्रान्त में इस मत के लोग मिलते हैं और बहुत बड़े बड़े पंडित इस मत में हुए हैं। बड़गल और तिंगल ये दो शाखा इस मत की बहुत प्रसिद्ध हैं। पीछे तो रामानन्द आदि अनेक शाखा इस की हुई हैं। इन के सम्प्रदाय के वैष्णव श्री वैष्णव कहलाते हैं।

श्रीशंकराचार्य्य

इन्दीवरदलश्याममिन्दिरानन्दकन्दलम्।
वन्दारुजनमन्दारं वन्देऽहं यदुनन्दनम्॥

धन्य वह ईश्वर है जो अपनी सृष्टि में अनेक अद्भुत शक्ति के मनुष्यों को उत्पन्न करता है और उन के द्वारा लोगों की पहिली चाल चलन को बदल देता है। फिर कुछ काल के अनन्तर दूसरे को उत्पन्न करता हुआ उस से भी वैसा ही कराता है, इसी प्रकार से अपने सृष्टि क्रम को निरन्तर चलाता है।

देखो कुछ न्यूनाधिक 1100 वर्ष हुए इस सारे भारतवर्ष में बौद्ध मत फैल गया था और लोग उसी मत पर चलते थे और जो उस मत को स्वीकार करने में अप्रसन्न थे उन को अनेक प्रकार के क्लेश सहने पड़ते थे। प्रायः कन्याकुमारी अन्तरीप से चीन देश तक और ब्रह्मा के देश से ईरान तक जहां देखो बौद्धमत के मनुष्य देख पड़ते थे। फाहियान और ह्वानसांग जो चीन देश से यात्रा के लिए यहां आए थे और जिन के सं. 399 और 640 ईस्वी निश्चित किए गए हैं, अपने ग्रन्थ में उस समय का भारतवर्ष का वृत्तान्त लिखते हैं कि बौद्धधर्म्म की बड़ी उन्नति है, राजाओं ने बौद्ध भिक्षुकों को गांव, बाग, घर, बिहार बनाने के लिए दे दिए हैं और उन में श्रमण लोग सुख से बास करते हैं। मांस खाने का बड़ा निषेध किया गया है, कोई यज्ञ योग करने नहीं पाते, न देवी के सामने बलिदान कर सकते हैं, और पटने में जिसे पाटलिपुत्र भी कहते हैं शाक्यमुनि बुद्ध का बड़ा उत्सव होता है और प्रायः बड़े बड़े नगरों में स्तूप[1] और बिहार देख पड़ते हैं।

---

[1] 'गोरखपुर दर्पण' में एक लेख यों लिखा है–

भागलपुर के निकट एक पत्थर की लाट है जिस पर पुराने अक्षर खुदे हुए हैं। उन अक्षरों को प्रिंसेप साहिब ने बनारस में पढ़ा था। सहिया गांव परगने सलेमपुर मंझौली में है। वहां एक पुराना मन्दिर है, जिस के बीच एक बुद्ध की मूत्ति वर्त्तमान है और कहाव जो सलेमपुर से छह मील पश्चिम है उस गांव में एक लाट 24 फुट ऊंची गड़ी है और उस पर छह फुट लम्बे 16 कोने के कलश पर एक बुद्ध की मूर्त्ति स्थापित है। उस पर जो पुराने अक्षर अंकित हैं उन का उल्था आगे लिखा जाता है–

ह्वान्सांग लिखता है कि बौद्धमत केवल भारतवर्ष ही में फैला न था परन्तु तूरान और काबुल में भी सौ से अधिक विहार बने थे और इन दिनों में गजनी, काबुल इत्यादि पश्चिम के देश इसी भारतवर्ष के राजाओं के अधीन थे। सब मिल के अस्सी राजा गिने जाते थे। जालन्धर से गंगासागर तक और हिमालय से महानदी तक देश कन्नौज के बौद्ध राज हर्षवर्धन के अधीन थे और मगध देश में बौद्ध राजा राज करते थे।

इस से यह न समझना चाहिए कि भारतवर्ष में वैदिक मत लुप्त हो गया था। बहुत से ऐसे ऐसे देश दक्षिण में और काशी, कुरुक्षेत्र, काश्मीर इत्यादि उत्तर में थे जहां वैदिक मत के लोग रहते थे और यज्ञ योगादिक सब अपने कर्म्म करते थे।

जब इस प्रकार से बौद्धमत भारतवर्ष में फैल गया, ईश्वर ने सोचा कि अब वैदिक मत डूबने पर है, जो इस की सहायता न करैंगे तो इस का चलना कठिन है। द्रविड़ देश में जो अब मन्दराज हाते में है चिदम्बरपुर में द्राविड़ ब्राह्मण के कुल में सर्व्वज्ञ नामक तपस्वी का जन्म हुआ। उस की स्त्री का नाम कामाक्षी था और वे दोनों चिदंबरेश्वर की जो आकाशलिंग करके दक्षिण देश में प्रसिद्ध है, सेवा करने लगे और एक कन्या उन को हुई उस का नाम विशिष्टा रक्खा। आठवें वर्ष उस कन्या का विवाह विश्वजित ब्राह्मण से कर दिया और वह विशिष्टा भी सर्व्व काल अपने मां बाप के सदृश उसी महादेव की सेवा करती थी। उस का पति विश्वजित उस को छोड़कर जंगल में तप करने को गया, परन्तु विशिष्टा ने महादेव की सेवा नहीं त्यागी। ईश्वर उस से प्रसन्न हुआ और उस को एक लड़का उत्पन्न हुआ, जिस का नाम शंकराचार्य्य रक्खा। पुराण और तन्त्रों में शंकराचार्य्य को शिव का अवतार लिखा है और इन के प्रतिवादी वैष्णव लोग भी इनको शिव का अवतार होने में कुछ विवाद नहीं करते। इनकी उत्पत्ति का समय अभी तक ठीक ठीक नहीं ज्ञात हुआ परन्तु, शिष्य परम्परा से जो आचार्य्य के अनन्तर अभी तक चली आती है, जान

→ मूल

यस्योपस्थानभूमिर्नृपतिशतशिरः पातवातावधूता।
गुप्तानां वंशजत्य प्रविसृतयशसत्तस्य सर्वोत्तमर्द्धेः॥
राज्ये शक्रोपमस्य क्षितिपशतपतेः स्कन्दगुप्तस्य शान्तेः।
वर्षे त्रिंशद्दद शैकोत्तरक्शततमे ज्येष्ठमासि प्रपन्ने॥1॥
ख्यातेऽस्मिन् ग्रामरत्नेककुभरति जनैस्साधुसंसर्गपूत।
पुत्रोयस्सोमिलस्य प्रचुरगुणनिधेर्भाट्टसोमो महार्त्थः॥
तत्सूनूरुद्रसोमः प्रथुलमतियशाव्याघ्र इत्यन्यसंज्ञाः।
मद्रस्तस्यात्मजोऽभूद्विज गुरुययतिषु प्रायशः प्रतिमान्यः॥2॥
पुण्यस्कंधं स चक्रे जगद्रिटमखिलं संसरद्वीक्ष्य भीतो।
श्रेयोर्त्थं भूतभूत्यै पथि नियमवता मर्हतामादिकर्त्तॄन्॥
पच्चेन्द्रानूस्थापयित्वा धरणिधरमयान्सन्निखाततततोऽयं।
शैलस्तम्भः सुचारुः गिरिवर शिखराग्रोपमः कीर्त्तिकर्त्ता॥3॥ →

पड़ता है कि कुछ न्यूनाधिक एक हजार वर्ष हुए। डॉक्टर डाकवेल साहब अपने ग्रन्थों में 900 वर्ष लिखते हैं, और पंडित जयनारायण तर्क-पञ्चानन 1200 वर्ष के निकट अनुमान करते हैं।

उस नगर के निवासी ब्राह्मणों ने इन के ज़ात कर्म्मादिक संस्कार किए और तीसरे वर्ष में चौल और पांचवें में यज्ञोपवीत किया। तब से श्री शंकराचार्य्यजी ने आठवें वर्ष तक सकल विद्या का पूर्ण अभ्यास किया और सब विद्या में पारंगत हुए और शिष्यों को भी विद्या सिखलाई। आठवें वर्ष में श्रीगोविन्द योगीन्द्र के उपदेश से संन्यासाश्रम स्वीकार किया और इन के मुख्य शिष्य बारह थे, जिन के नाम पद्मपद, हस्तामलक, समित्पाणि, चिद्विलास, ज्ञानकन्द, विष्णुगुप्त, शुद्धकीर्ति, भानुमरीचि, कृष्णदर्शन, बुद्धिवृद्धि, विरंचपाद, अनन्तानन्दगिरि थे। इन के समय में पचास से अधिक मत प्रचलित थे, उन में जो जो कुछ मुख्य मत थे उन के नाम ये हैं। शैव, वैष्णव, सौर, गाणपत्य, शाक्त, कापालिक, कौल, पांचरात्र, भागवत, बौद्ध, जैन, चार्वाक इत्यादि। इन सब मत वालों के आचार्य्यों को उन्होंने शास्त्रार्थ में जीत लिया और उन सब को अपना शिष्य किया।

तब आचार्य्यजी काशी में गए और मध्याह्न के समय मणिकर्णिका पर स्नान करते थे, इत ने में श्रीव्यासजी बूढ़े ब्राह्मण का भेष लेकर वहां आए और शंकराचार्य्य से पूछा कि मैंने सुना है कि आप ने ब्रह्मसूत्र में बहुत परिश्रम किया है। आचार्य्य ने उत्तर दिया, हां, जहां तुम्हारी इच्छा हो वहां पूछो। व्यासजी ने एक स्थल में पूछा, आचार्य्यजी ने उस का यथार्थ उत्तर दिया। इस पर व्यासजी फिर कुछ विवाद करने लगे। आचार्य्यजी को क्रोध आया और अपने पद्मपाद नामक शिष्य से कहा कि इस बूढ़े ब्राह्मण को बाहर निकाल दो, तब शिष्य ने यह श्लोक पढ़ा।

शङ्करः शङ्करः साक्षात् व्यासो नारायणः स्वयम्।
तयोर्विवादे सम्प्राप्ते किङ्करः किङ्करिष्यति॥

→ उल्था—राजा रुकन्दगुप्त जिस के प्रस्थान के समय अर्थात् जब वह अपने मन्दिर से बाहर निकलता था सैकड़ों राजाओं के सिर के मुकुट उस के चरणों पर झुकते थे। बड़ा यशस्वी और प्रचुर रत्न से युक्त था। उस के स्वर्ग वास करने से 321 वर्ष के अनन्तर ज्येष्ठ महीने में राजा सोमिल का बेटा भट्टिसोम उस का बेटा रुद्रसोम, जिस का व्याघ्र भी नाम है, उस का बेटा मद्रसोम, जिस की भक्ति ब्राह्मण गुरु और संन्यासियों में अधिक थी, जगत् का संस्करण अर्थात् दिन दिन नाश अवलोकन करके बहुत भययुक्त हुआ। और उस से अपनी और अपनी प्रजा की रक्षा के लिए ककुम ग्राम में जिस को अब कहांव कहते हैं और जिस में साधु जन अधिक बसते थे, जिन के रहने से वह पवित्र गिना जाता था, एक यज्ञ किया। उस यज्ञ में पांच इन्द्र पहाड़ों के बराबर अर्थात् पांच स्तम्भ पर इन्द्र की मूर्त्ति बना कर स्थापित की। वह (1) कहांव में (2) भागलपुर में (3) सारण में (4) बेतिया के राज्य में (5) तराई में अब भी कई फुट के लम्बे गड़े हुए खड़े मौजूद हैं और उन के सिवाय एक और स्तम्भ स्थापन किया, जो उस की कीर्ति को प्रकाश करता है।

आचार्य्यजी ने यह सुनकर कहा जो सचमुच यह बूढ़ा ब्राह्मण व्यास होगा, तो अवश्य हमारे उत्तर पर सन्तुष्ट हो के प्रत्यक्ष दर्शन देगा। व्यासजी यह सुनकर आप प्रत्यक्ष हुए और आचार्य्यजी से कहा कि मैं तुम्हारी परीक्षा लेने के वास्ते आया था। तुम तो शिव के अवतार हो तुम को कौन जीतने वाला है। फिर व्यास ने आचार्य्य को वर दिया और ब्रह्मा को बुलाकर इन की आयु बढ़ा दी। तब से आचार्य्य का प्रताप द्विगुणित बढ़ गया। कुछ समय के अनन्तर आचार्य्यजी रुद्रपुर में गए। वहां भट्टपाद, जिसे कुमारिल कहते हैं और जिस ने मीमांसा तन्त्र वार्तिक नामक एक बड़ा भारी ग्रन्थ बनाया है, तुषाग्नि में बैठा था। आचार्य्यजी ने उस से भेंट कर के बाद में भिक्षा मांगी, परन्तु भट्टपाद ने कहा कि मैं अब शरीर दग्ध होने के कारण तुम्हारे साथ शास्त्रार्थ करने में असमर्थ हूं। मेरा बहनोई मंडनमिश्र, जो हस्तिनापुर से आग्नेय दिशा में विजिलबिन्दु नाम नगर में रहता है, तुम से शास्त्रार्थ करैगा और उस से तुम्हारा गर्व शान्त हो जायगा।

आचार्य्यजी यह वचन सुनकर वहां गए और लोगों से मंडनमिश्र के घर का ठिकाना पूछा। लोगों ने उत्तर दिया कि जहां तोते और मैंने शास्त्रार्थ करते हैं वही मंडनमिश्र का घर है। शंकराचार्य्यजी ने सोचा कि जो मैं दरवाजे से जाता हूं तो मुझे बहुत काल लगेगा, इसलिए मन्त्र के बल से आकाशमार्ग से उस के घर में उतरे। कोई कहते हैं कि उस के घर के पीछे एक लम्बा ताड़ का पेड़ था उस पर चढ़कर घर में गए। उस समय मंडनमिश्र श्राद्ध करता था। इन को देखते ही बहुत क्रुद्ध हो गया क्यौंकि ये संन्यासी थे और उसने संन्यास का खंडन किया था और कहा, 'कुतो मुण्डी'। आचार्य्यजी ने उत्तर दिया, 'आगलान्मुंडी'। मंडन ने कहा–'सुरापीता'। शंकरजी ने कहा–'साहिश्वेता' इत्यादि दोनों के संवाद हुए। मिश्रजी श्राद्ध समाप्त अनन्तर आचार्य्य से शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त हुए और उस की स्त्री सरस वाणी, जिसे सरस्वती का साक्षात् अवतार कहते थे, मध्यस्थ हुई। दोनों से सौ दिन तक शास्त्रार्थ हुआ। अन्त में मंडनमिश्र का पराजय हुआ और संन्यासाश्रम को स्वीकार किया। पुराण में मंडनमिश्र को ब्रह्मा का अवतार लिखा है।

जब मंडनमिश्र संन्यास लेने लगे उस के पहिले ही सरसवाणी अपना पूर्व्व शरीर छोड़ कर ब्रह्मलोक को जाने लगी। शंकराचार्य ने वनदुर्गा मन्त्र में आकर्षण किया और कहा कि मुझ से शास्त्रार्थ करके चले जाओ। उस ने कहा मैंने वैधव्य के भय से अपने पति के संन्यास के पहले ही पृथ्वी को त्याग किया। अब पृथ्वी पर नहीं आ सकती, क्यौंकर तुम से शास्त्रार्थ करूं। आचार्य ने उत्तर दिया कि आकाश में भूमि से छः हाथ दूरी पर खड़ी होके मुझ से शास्त्रार्थ कर। उस ने आचार्य के कहने के अनुसार शास्त्रार्थ किया, अन्त में हार गई, तब उस ने सोचा कि यह संन्यासी है इस को कामशास्त्र नहीं आता होगा इस में जो पूछैंगे तो उत्तर नहीं दे सकैगा। फिर सरसवाणी ने कहा कि कामशास्त्र में विवाद करो। शंकराचार्य्य इस वचन को

सुनकर चुप हो गए और कहा कि छः महीने के अनन्तर तुम से इसी शास्त्र में विवाद करूंगा।

तब शंकराचार्य्य अमृतपुर में गए। वहां का राजा मर गया था। इस का नाम अमरु करके प्रसिद्ध था। उस का शरीर जलाने के लिए चिता पर रक्खा था इतने में शंकराचार्य्य ने अपने शरीर से प्राण निकाल कर परकायप्रवेश विद्या के बल से उस राजा के मृत शरीर में प्रवेश किया और शिष्यों ने आचार्य्य का शरीर एक पहाड़ की गुफा में रक्खा। कहीं लिखा है इस राजा की सौ रानी थीं उन में जो बड़ी थी उस ने देखा कि पति की चेष्टा पहले ऐसी नहीं है केवल पहला शरीर मात्र वही है और इस की आत्मा किसी योगी की जान पड़ती है नहीं तो इतना चातुर्य्य इस में कहां से होता। रानी ने आज्ञा दी कि जहां कहीं मृत शरीर मिले उसी क्षण उस को जला दो। राजदूतों ने आचार्य्य का शरीर गुफा में पाया और उस को जलाने के लिए चिता पर रक्खा और आग लगा दी। आचार्य्य के शिष्यों ने देख कर राजा की स्तुति की। उस का अभिप्राय यही था कि राजा, तू शंकराचार्य्य है दूसरा कोई नहीं। उसी क्षण राजा के शरीर से प्राण ने निकल कर उस चिता पर रक्खे हुए शरीर में प्रवेश किया और अग्नि शान्त होने के लिए नृसिंह की स्तुति की। नृसिंह ने प्रसन्न हो के वर दिया। वहां से सरस्वती के पास आए और उस को जीत लिया और उस को साथ लेकर शृंगपुर में आए, जिस को अब शृंगेरी कहते हैं और जो तुंगभद्रा के तीर पर है। उसी स्थल पर सरस्वती की स्थापना की और भारती सम्प्रदाय की शिष्य परम्परा करने की रीति स्थापन की।

शंकराचार्य्य की गुरुपरम्परा इस प्रकार से लिखी है। पहिले नारायण, फिर ब्रह्मा, वशिष्ठ, शक्ति, पराशर, व्यास, सुक, गौड़पाद, गोविन्द योगीन्द्र, श्री शंकरचार्य्य। इन के 12 मुख्य शिष्य हुए उन के नाम पहिले लिख आए हैं।

शृंगेरी में 12 बरस रहकर कांचीपुर में गए। वहां कामाक्षा देवी की स्थापना की और कांची का नगर बसाया और विष्णुकांची में वरदराज विष्णु का और शिवकांची में शिव का मन्दिर बनवाया और अवताम्रपर्णी नदी के तीर पर रहने वाले लोगों को शिष्य किया। प्रायः सब भारतवर्ष में इन की शिष्यशाखा फैली।

श्री शंकराचार्य्यजी ने व्यास सूत्र पर अद्वैत भाष्य और दस महोपनिषदों और गीता पर भी भाष्य बनाए और कई एक ग्रन्थ बनाए हैं वे सब अब तक मिलते हैं। इन का मत यह था कि इस प्रपंच में ब्रह्म को छोड़ कर जो कुछ दिखाई देता है सब मिथ्या है, सब ब्रह्म रूप है, और ईश्वर और जीव एक ही है इत्यादि, उन के ग्रन्थों को देखने से जान पड़ता है। इसी लिए किसी मत को जिस में ईश्वर की सत्ता मानी जाती है सर्व्वथा खंडन नहीं किया। नास्तिक मत को छोड़ कर सब मतों को स्थापन किया और 32 बरस के वय में परलोक को चले गए। शक्ति संगम तन्त्रादिक ग्रन्थों में तो 16 ही वर्ष लिखे हैं परन्तु शंकर विजयादि ग्रन्थों से ज्ञात हुआ कि जो

ऊपर संख्या लिखी है ठीक है क्योंकि इतना कृत्य इत ने थोड़े समय में नहीं हो सकता। इन की कीर्ति अब तक इस भारतवर्ष में चली जाती है और प्रायः यहां के लोग भी इसी मत पर चलते हैं।

मैंने शंकराचार्य्य का जीवनवृत्तान्त बहुत संक्षेप से लिखा है। यदि इस में कहीं शीघ्रता के हेतु भूल हो तो पढ़ने वाले उस पर क्षमा करैं क्योंकि शास्त्र में लिखा है कि भ्रान्ति पुरुष का धर्म्म है।

महाकवि श्री जयदेवजी[1]

जयदेवजी की कविता का अमृत पान करके तृप्त, चकित, मोहित और घूर्णित कौन नहीं होता और किस देश में कौन सा ऐसा विद्वान् है जो कुछ भी संस्कृत जानता हो और जयदेवजी की काव्यमाधुरी का प्रेमी न हो। जयदेवजी का यह अभिमान कि अंगूर और ऊख की मिठास उन की कविता के आगे फीकी है बहुत सत्य है। इस मिठाई को न पुरानी होने का भय है न चींटी का डर है, मिठाई है, पर नमकीन है यह नई बात है। सुनने पढ़ने की बात है पर गूंगे का गुड़ है। निर्जन में जंगल पहाड़ में जहां बैठने को बिछौना भी न हो वहां गीतगोविन्द सब आनन्द सामग्री देता है, और जहां कोई मित्ररसिक भक्तप्रेमी न हो वहां यह सब कुछ बन कर साथ रहता है। जहां गीतगोविन्द है वहीं वैष्णव गोष्ठी है, वहीं रसिक समाज है, वहीं वृन्दावन है, वहीं प्रेमसरोवर है। वहीं भाव समुद्र है, वहीं गोलोक है और वहीं प्रत्यक्ष ब्रह्मानन्द है। पर यह भी कोई जानता है कि इस परब्रह्म रस प्रेमसर्वस्व शृङ्गार समुद्र के जनक जयदेवजी कहां हुए? कोई नहीं जानता और न इस की खोज करता। प्रोफ़ेसर लैसेन ने लैटिन भाषा में और पूना के प्रिन्सिपल आरनल्ड साहब ने अंगरेज़ी में गीतगोविन्द का अनुवाद किया, परन्तु कवि का जीवनचरित्र कुछ न लिखा।

केवल इतना ही लिख दिया कि सन 1150 के लगभग जयदेव उत्पन्न हुए थे। किन्तु धन्य हैं बाबू रजनीकांत गुप्त कि जिन्होंने पहिले पहल इस विषय में हाथ डाला और 'जयदेवचरित्र' नामक एक छोटा सा ग्रन्थ इस विषय पर लिखा। यद्यपि समयनिर्णय में और जीवनचरित्र में हमारे उन के मत में अनेक अनैक्य है तथापि उन के ग्रन्थ से हम को अनेक सहायता मिली है, यह मुक्त कंठ से स्वीकार करना होगा और इस में कोई संशय नहीं कि उन्हीं के ग्रन्थ ने हमारी रुचि को इस विषय के लिखने पर प्रबल किया है।

वीरभूमि से प्रायः दस कोस दक्षिण[2] अजयनद के उत्तर किन्दुबिल्व[3] गांव में

---

[1] चन्द्रिका अभिनव किरणावली खंड 6 संख्या 10 अप्रैल सन 1879 में पूर्वार्ध छपा।

[2] अजयनद भागीरथी का करद है। यह भागलपुर ज़िला के दक्षिण से निकल कर सौंताल परगने के दक्षिण भाग के दक्षिण की ओर और फिर वर्द्धमान और वीरभूमि के ज़िले के बीच में से पश्चिम की ओर बह कर कटवा के पास भागीरथी से मिला है। (ज. च. बंगदेश विवरण)।

[3] किन्दुबिल्व वीरभूमि के मुख्य नगर सूरी से नौ कोस है। यहां श्री राधा दामोदरजी की मूर्त्ति प्रतिष्ठित है। वैष्णवों का यह भी एक पवित्र क्षेत्र है।

श्रीजयदेवजी ने जन्म ग्रहण किया था।

सम्भव है कि कन्नौज से आए हुए ब्राह्मणों में से जयदेवजी का वंश भी हो। इन के पिता का नाम भोजदेव और माता का नाम रामादेवी था[1]। इन्होंने किस समय अपने आविर्भाव से धरातल को भूषित किया था यह अब तक नहीं ज्ञात हुआ। श्रीयुक्त सनातन गोस्वामी ने लिखा है कि बंगाधिपति महाराज लक्ष्मणसेन की सभा में जयदेवजी विद्यमान थे। अनेक लोगों का यही मत है और इस मत को पोषण करने को लोग कहते हैं कि लक्ष्मणसेन के द्वार पर एक पत्थर खुदा हुआ लगा था, जिस पर यह श्लोक लिखा हुआ था, ''गोवर्द्धनश्चशरणो जयदेव उमापतिः। कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च॥''

श्रीसनातन गोस्वामी के इस लेख पर अब तीन बातों का निर्णय करना आवश्यक हुआ। प्रथम यह कि लक्ष्मणसेन का काल क्या है। दूसरे यह कि यह लक्ष्मणसेन वही है जो बंगाले का प्रसिद्ध लक्ष्मणसेन है कि दूसरा है। तीसरे यह कि यह बात श्रद्धेय है कि नहीं कि जयदेवजी लक्ष्मणसेन की सभा में थे।

प्रसिद्ध इतिहास लेखक मिनहाजिउद्दीन ने तबकाते नासिरी में लिखा है कि जब बख्तियार, खिलजी ने बंगाल फ़तह किया तब लछमनिया नाम का राजा बंगाले में राज करता था। इन के मत से लछमनिया बंगदेश का अन्तिम राजा था। किन्तु बंगदेश के इतिहास से स्पष्ट है कि लछमनिया नाम का कोई भी राजा बंगाले में नहीं हुआ। लोग अनुमान करते हैं कि बल्लालसेन के पुत्र लक्ष्मणसेन के माधवसेन और केशवसेन 'लाक्ष्मणेय' इस शब्द के अपभ्रंश से लछमनिया लिखा है।

राजशाही के जिले से मेटकाफ साहब को एक पत्थर पर खोदी हुई प्रशस्ति मिली है। यह प्रशस्ति विजयसेन राजा के समय में प्रद्युम्नेश्वर महादेव के मन्दिर निर्माण के वर्णन में उमापतिधर की बनाई हुई है। डॉक्टर राजेन्द्र लाल मित्र के मत से इस की संस्कृत की रचना प्रणाली नवम वा दशम वा एकादश शताब्दी की है। शोच की बात है कि इस प्रशस्ति में सम्वत नहीं दिया है, नहीं तो जयदेवजी के समय निरूपण में इतनी कठिनाई न पड़ती। इस में हेमन्तसेन, सुमन्तसेन और वीरसेन यही तीन नाम विजयसेन के पूर्व्वपुरुषों के दिये हैं, जिससे प्रगट होता है कि वीर सेन ही वंशस्थापनकर्त्ता है। विजयसेन के विषय में यह लिखा है कि उस ने कामरूप और कुरुमंडल (मद्रास और पुरी के बीच का देश) जय किया था और पश्चिम जय करने को नौका पर गंगा के तट में सेना भेजी थी। तवारीखों में इन राजाओं का नाम कहीं नहीं है। कहते हैं आईने अकबरी का सुखसेन (बल्लालसेन का पिता) विजयसेन का नामान्तर है, क्योंकि बाकरगंज की प्रस्तरलिपि में जो चार नाम हैं वे विजयसेन, बल्लालसेन,

---

1. बम्बई की छपी हुई पुस्तक में राधा देवी जो इन की माता का नाम लिखा है वह असंगत है। हां, वामादेवी और रामादेवी यह दोनों पाठ अनेक हस्तलिखित पुस्तकों में मिलते हैं। बंगला में र और व में केवल एक बिन्दु के भेद होने के कारण यह भ्रम उपस्थित हुआ है।

लक्ष्मणसेन और केशवसेन इस क्रम से हैं। बल्लालसेन बड़ा पंडित था और दानसागर और वेदार्थ स्मृति संग्रह इत्यादि ग्रन्थ उस के कारण बने। कुलीनों की प्रथा भी बल्लालसेन की स्थापित है। उस के पुत्र लक्ष्मणसेन के काल में भी संस्कृत विद्या की बड़ी उन्नति थी। भट्ट नारायण (वेणी संहार के कवि) के वंश में धनंजय के पुत्र हलायुध पंडित उस के दानाध्यक्ष थे, जिन्होंने ब्राह्मण सर्व्वस्व बनाया और इन के दूसरे भाई पशुपति भी बड़े स्मार्त आन्हिककार थे। कहते हैं कि गौड़ का नगर बल्लालसेन ने बसाया था, परन्तु लक्ष्मणसेन के काल से उस का नाम लक्ष्मणावती (लखनौती) हुआ। लक्ष्मणसेन के पुत्र माधवसेन और केशवसेन थे। राजावली में इन के पीछे सुसेन वा शूरसेन और लिखा है और मुसलमान लेखकों ने नौजीव (नवद्वीप?), नारायण, लखमन और लखमनिया ये चार नाम और लिखे हैं वरंच एक अशोकसेन भी लिखा है किन्तु इन सबों का ठीक पता नहीं। मुसलमानों के मत से लखमनिया अन्तिम राजा है, जिस ने 80 वर्ष राज्य किया और बख्तियार के काल में जिस ने राज्य छोड़ा। यह गर्भ ही से राजा था। तो नाम का क्रम वीरसेन से लछमनिया तक एक प्रकार ठीक हो गया, किन्तु इन का समय निर्णय अब भी न हुआ, क्यौंकि किसी दानपत्र में सम्वत नहीं है। दानसागर के बनने का समय समय प्रकाश के अनुसार 1019 शके (1097 ई.) है। इससे बल्लालसेन का राजत्व ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त तक अनुमान होता है और यह आईने अकबरी के समय से भी मेल खाता है। बल्लालसेन ने 1066 में राज्य आरम्भ किया था। तो अब सेनवंश का क्रम यौं लिक्खा जा सकता है।

वीरसेन	...
सामन्तसेन	...
हेमन्तसेन	...
विजयसेन वा सुखसेन	...
बल्लालसेन	1066
लक्ष्मणसेन	1101
माधवसेन	1121
केशवसेन	1122
लछमनिया	1123

बल्लालसेन का समय 1066 ई. समय प्रकाश के अनुसार है। यदि इस को प्रमाण न मानैं और फारसी लेखकों के अनुसार लछमनिया के पहले नारायण इत्यादि और राजाओं को भी मानैं तो बल्लालसेन और भी पीछे जा पड़ैगे। तो अब जयदेवजी लक्ष्मणसेन की सभा में थे कि नहीं यह विचारना चाहिए। हमारी बुद्धि से नहीं थे। इसके कई दृढ़ प्रमाण हैं। प्रथम तो यह कि उमापतिधर जिसने विजयसेन की प्रशस्ति बनाई है वह जयदेवजी का समसामयिक था। तो यदि यह मान लें कि जयदेव उमापति गोवर्द्धनादिक सब सौ बरस से विशेष जिये हैं तब यह हो सकता है कि ये विजयसेन

और लक्ष्मण दोनों की सभा में थे। दूसरे चन्द कवि ने जिस का जन्म 1150 सन के पास है अपने रायसा में प्राचीन कवियों की गणना में जयदेव को लिखा है।[1] तो सौ डेढ़ सौ वर्ष पूर्व्व हुए बिना जयदेवजी की कविता का चन्द के समय तक जगत् में आदरणीय होना असम्भव है। गोवर्द्धन ने अपनी सप्तशती में 'सेनकुल तिलक भूपति' इतना ही लिक्खा, नाम कुछ न दिया, किन्तु उस की टीका में 'प्रवरसेन नामा इति' लिखा है। अब यदि प्रवरसेन, हेमन्तसेन या विजयसेन का नामान्तर मान लिया जाय और यह भी मान लिया जाय कि जयदेवजी की कविता बहुत जल्दी संसार में फैल गई थी और समय प्रकाश का बल्लाल का समय भी प्रमाण किया जाय तो यह अनुमान हो सकता है कि विजयसेन के समय में वा उस से कुछ ही पूर्व्व सन 1025 से 1050 तक में किसी वर्ष में जयदेवजी का प्राकट्य है और ऐसा ही मानने से अनेक विद्वानों की एकवाक्यता भी होती है। यहां पर समय विषयक जटिल और नीरस निर्णय जो बंगला और अंगरेजी ग्रन्थों में है वह न लिख कर सार लिख दिया है। इस से 'जयदेव चरित' इत्यादि बंगला ग्रन्थों में जो जयदेवजी का समय तेरहवीं वा चौदहवीं शताब्दी लिखा है वह अप्रमाण होकर यह निश्चय हुआ कि जयदेवजी ग्यारहवीं शताब्दी के आदि में उत्पन्न हुए हैं।

जयदेवजी की बाल्यावस्था का सविशेष वर्णन कुछ नहीं मिलता। अत्यन्त छोटी अवस्था में यह मातृपितृविहीन हो गए थे, यह अनुमान होता है। क्योंकि विष्णुस्वामि चरितामृत के अनुसार श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र में इन्होंने उसी सम्प्रदाय के किसी पंडित से पढ़ी थी। इनके विवाह का वर्णन और भी अद्भुत है। एक ब्राह्मण ने अनपत्य होने के कारण जगन्नाथ देव की बड़ी आराधना कर के एक कन्यारत्न लाभ किया था। इस कन्या का नाम पद्मावती था। जब यह कन्या विवाह योग्य हुई तो जगन्नाथजी ने स्वप्न में उस के पिता को आज्ञा किया कि हमारा भक्त जयदेव नामक एक ब्राह्मण अमुक वृक्ष के नीचे निवास करता है, उस को तुम अपनी कन्या दो। ब्राह्मण कन्या

---

1. भुजंगप्रयात– प्रथमं भुजंगी सुधारी ग्रहंनं। जिनैं नाम एकं अनेकं कहंनं॥
दुती लभ्भयं देवतां जीवतेसं। जिनैं विस्व राष्यौ बलमन्त्र सेसं॥
चवं वेद बंभं हरी कित्ति भाषी। जिनैं धर्म्म साधर्म्म संसार साषी॥
तृती भारथी व्यास भारत्थ भाष्यौ। जिनैं उत्त पारत्थ सारत्थ साष्यौ॥
चवं सुक्खदेवं परीषत्त पायं। जिनैं उद्ध-यौ श्रब्ब कुर्वस रायं॥
नलै रूप पंचम्म श्रीहर्ष सारं। नलैराय कंठं दिय नै सद्ध हारं॥
छठं कालिदासं छ भाषा सुबद्धं। जिनैं बागवानी सुबानी सुबद्धं॥
कियो कालिका मुक्ख वासं सुसुद्धं। जिनैं सेत बंध्योति भोज प्रबद्धं॥
सते डंडमाली उलाली कवितं। जिनैं बुद्धि तारंग गांगा सरितं॥
जयदेव अट्ठं कवी कव्विरायं। जिनैं केवबं कित्ति गोविन्द गायं॥
गुरं सब्ब कब्बी लहू चन्द कब्बी। जिनैं दर्सियं देवि सा अंग हब्बी॥
कवी कित्तिकित्ति उकत्ती सुदिक्खो। तिनैं कोउ चिष्टोकवीचन्द भक्खो॥

को लेकर जयदेवजी के पास गया। यद्यपि जयदेवजी ने अपनी अनिच्छा प्रकाश किया तथापि देवादेशानुसार ब्राह्मण उस कन्या को उन के पास छोड़ कर चला आया। जयदेवजी ने जब उस कन्या से पूछा कि तुम्हारी क्या इच्छा है तो पद्मावती ने उत्तर दिया कि आज तक हम पिता की आज्ञा में थे, अब आप की दासी हैं। ग्रहण कीजिए वा परित्याग कीजिए मैं आप का दासत्व न छोडूंगी। जयदेवजी ने उस कन्या के मुख से यह सुनकर प्रसन्न होकर उस का पाणिग्रहण किया। अनेक लोगों का मत है कि जयदेवजी ने पूर्व्व में एक विवाह किया था। उस स्त्री की मृत्यु के पीछे उदास होकर पुरुषोत्तमक्षेत्र में रहते थे। पद्मावती उनकी दूसरी स्त्री थी। इन्हीं पद्मावती के समय, संसार में आदरणीय कविता रत्न का निकष गीतगोविन्द काव्य जयदेवजी ने बनाया।

गीतगोविन्द के सिवा जयदेवजी की और कोई कविता नहीं मिलती। प्रसन्नराघव, पक्षधरी, चन्द्रालोक और सीताविहार काव्य विदर्भ नगर वासी कौडिन्य गोत्रोद्भव महादेव पंडित के पुत्र दूसरे जयदेवजी के बनाए हैं, जिनका काव्य में पीयूषवर्ष और न्याय में पक्षधर उपनाम था। वरंच अनेक विद्वानों का मत है कि तीन जयदेव हुए हैं, यथा गीतगोविन्दकार, प्रसन्नराघवकार और चन्द्रालोककार, जिनका नामान्तर पीयूषवर्ष है।

पद्मावती के पाणिग्रहण के पीछे जयदेवजी अपने स्थापित इष्टदेव की सेवा निर्वाहार्य द्रव्य एकत्र करने की इच्छा से वा तीर्थाटन और धर्म्मोपदेश की इच्छा से निज देश छोड़ कर बाहर निकले। श्रीवृन्दावन की यात्रा करके जयपुर वा जयनगर होते हुए जयदेवजी मार्ग में चले जाते थे कि डाकुओं ने धन के लोभ से उन पर आक्रमण किया और केवल धन ही नहीं लिया, वरंच उनके हाथ पैर भी काट लिये। कहते हैं कि किसी धार्मिक राजा के कुछ भृत्य लोग उसी मार्ग से जाते थे। उन लोगों ने जयदेवजी की यह दशा देखा और अपने राज्य में उनको उठा ले गए। वहां औषध इत्यादि से कुछ इन का शरीर स्वस्थ हुआ। इसी अवसर में चोर भी उस नगर में आए और साधु वेश में उस नगर के राजा के यहां उतरे। तब राजा के घर में जयदेवजी का बड़ा मान था और दान धर्म्म इन्हीं के द्वारा होता था। जयदेवजी ने इन साधु वेशधारी चोरों को अच्छी तरह पहचान लिया और यदि वे चाहते तो भलीभांति अपना बदला चुका लेते, परन्तु उनके सहज उदार और दयालु चित्त में इस बात का ध्यान तक न आया, वरंच दानादिक देकर उनका बड़ा आदर किया। विदा के समय भी उनको बड़े सत्कार से अच्छी बिदाई देकर बिदा किया और राजा के दो नौकर साथ कर दिए कि अपनी सरहद तक उनको पहुंचा आवैं। मार्ग में राजा के अनुचर ने उन चोरों से पूछा कि इन साधूजी ने और लोगों से विशेष आप का आदर क्यों किया। इस पर उन चांडाल चोरों ने यह उत्तर दिया कि जयदेवजी पहिले एक राजा के यहां रहते थे, इन्होंने कुछ ऐसा दुष्कर्म किया कि राजा ने हम लोगों को इन के प्राण हरने की आज्ञा दिया, किन्तु दया परवश होकर हम लोगों ने इन के प्राण नहीं लिए, केवल हाथ पैर काट के छोड़ दिया। इसी बात के छिपाने के हेतु

जयदेव ने हम लोगों का इतना आदर किया। कहते हैं कि मनुष्यों की आधारभूता पृथ्वी इस अनर्थ मिथ्याप्रवाद को न सह सकी और द्विधा विदीर्ण हो गई। वे चोर सब उसी पृथ्वीगर्त में डूब गए और परमेश्वर के अनुग्रह से जयदेवजी के भी हाथ पैर फिर से यथावत् हो गए। अनुचरों के द्वारा यह वृत्तान्त सुन कर और जयदेवजी से पूर्व्ववृत्ति जानकर राजा अत्यन्त ही चमत्कृत हुआ। आश्चर्य घटना अविश्वासी विद्वानों का मत है कि जयदेवजी ऐसे सहृदय थे कि उनके सहज स्वभाव पर रीझ कर लोगों ने यह गल्प कल्पित कर ली है।

तदनन्तर जयदेवजी ने अपनी पत्नी पद्मावती को भी वहीं बुला लिया। कहते हैं कि एक बेर उस राजा की रानी ने ईर्षावश पद्मावती की परीक्षा करने को उस से कह दिया कि जयदेवजी मर गए। उस समय जयदेवजी राजा के साथ कहीं बाहर गए थे। पतिप्राणा पद्मावती ने यह सुनते ही प्राण परित्याग कर दिया। जब जयदेवजी आए और उन्होंने यह चरित देखा तो श्रीकृष्ण नाम सुना कर उस को पुनर्जीवन दिया, किन्तु उस ने उठकर कहा कि अब आप हम को आज्ञा दीजिए, हमारा इसी में कल्याण है कि हम आप के सामने परमधाम जायं, और तदनुसार उसने फिर शरीर नहीं रक्खा। जयदेवजी इससे उदास होकर अपनी जन्मभूमि केंदुली ग्राम में चले आए और फिर यावत् जीवन वहीं रहे।

श्री जयदेवजी के गीतगोविन्द के जोड़ पर गीतगिरीश नामक एक काव्य बना है, किन्तु जो बात इस में है वह उस में सपने में भी नहीं है।

गीतगोविन्द के अनेक टीकाकार भी हुए हैं, यथा उदय, जो खास गोवर्द्धनाचार्य्य का शिष्य था और जयदेवजी से भी कुछ पढ़ा था। एक टीका उस की बनाई है और पीछे से अनेक टीका बनी हैं। उदयन का टीका जयदेवजी के समय में बन चुकी थी और इस में भी कोई सन्देह नहीं कि गीतगोविन्द जयदेवजी के जीवन काल ही से सारे संसार में प्रचलित हो गया था। गीतगोविन्द दक्षिण में बहुत गाया जाता है और बालाजी में सीढ़ियों पर द्राविड़ लिपि में खुदा हुआ है। श्री वल्लभाचार्य्य सम्प्रदाय में इस का विशेष भाव है, वरंच आचार्य्य के पुत्र गोसाईं बिट्ठलनाथजी की इस के प्रथम अष्टपदी पर एक रसमय टीका भी बड़ी सुन्दर है, जिस में दशावतार का वर्णन शृंगार परत्व लगाया है। वैष्णवों में परिपाटी है कि अयोग्य स्थान पर गीतगोविन्द नहीं गाते, क्योंकि उनका विश्वास है कि जहां गीतगोविन्द गाया जाता है वहां अवश्य भगवान का प्रादुर्भाव होता है। इस पर वैष्णवों में एक आख्यायिका प्रचलित है। एक बुढ़िया को गीतगोविन्द की ‘धीर समीरे यमुना तीरे’ यह अष्टपदी याद थी। वह बुढ़िया गोवर्द्धन के नीचे किसी गांव में रहती थी। एक दिन वह बुढ़िया अपने बैंगन के खेत में पेड़ों को सींचती थी और अष्टपदी गाती थी, इस से ठाकुरजी उस के पीछे पीछे फिरे। श्रीनाथजी के मन्दिर में तीसरे पहर को जब उत्थापन हुए तो श्रीगोसाईंजी ने देखा कि श्रीनाथजी का बागा फटा हुआ है और बैंगन के कांटे और मिट्टी लगी

हुई है। इस पर जब पूछा गया तो उत्तर मिला कि अमुक बुढ़िया ने गीतगोविन्द गाकर हम को बुलाया इस से कांटे लगे, क्योंकि वह गाती गाती जहां जाती थी मैं उस के पीछे फिरता था। तब से यह आज्ञा गोसाईंजी ने, वैष्णवों में प्रचार किया कि कुस्थान पर कोई गीतगोविन्द न गावै।

किंवदन्ती है कि जयदेवजी प्रति दिवस श्रीगंगा स्नान करने जाते थे। उन का यह श्रम देख कर गंगाजी ने कहा कि तुम इतनी दूर क्यों परिश्रम करते हो, हम तुम्हारे यहां आप आवैंगे। इसी से अजयनद नामक एक धार में गंगा अब तक केंदुली के नीचे बहती हैं।

जयदेवजी विष्णुस्वामी सम्प्रदाय में एक ऐसे उत्तम पुरुष हुए हैं कि सम्प्रदाय की मयावस्था में मुख्यत्व कर के इन का नाम लिखा गया है, यथा–
विष्णुस्वामीसमारम्भां जयदेवादिमध्यगां। श्रीमद्वल्लभपर्य्यन्तांस्तुमोगुरुमोगुरुपरम्पराम्॥1॥

जयदेवजी का पवित्र शरीर केंदुली ग्राम में समाधिस्थ है। यह समाधि मन्दिर सुन्दर लताओं से बेष्ठित होकर अपनी मनोहरता से अद्यापि जयदेवजी के सुन्दर चित्त का परिचय देता है।

"जयदेवजी नितान्त करुण हृदय और परम धार्मिक थे। भक्ति विलसित महत्त्व छटा और अनुपम प्रीति व्यंजक उदार भाव यह दोनों उनके अन्तःकरण में निरन्तर प्रतिभासित होते थे। उन्होंने अपने जीवन का अर्द्धकाल केवल उपासना और धर्म्मघोषणा में व्यतीत किया। वैष्णव सम्प्रदाय में इन के ऐसे धार्मिक और सहृदय पुरुष विरले ही हुए हैं।"

जयदेवजी एक सत्कवि थे, इस में कोई सन्देह नहीं। यद्यपि कालिदास, भवभूति, भारवि इत्यादि से बढ़ कर वह कवि थे यह नहीं कह सकते, पर उनकी अपेक्षा इन को सामान्य भी नहीं कह सकते। बंगभूमि में तो कोई ऐसा सत्कवि आज तक हुआ नहीं। "ललितपद विन्यास और श्रवण मनोहर अनुप्रास छटा निबन्धन से जयदेव की रचना अत्यन्त ही चमत्कारिणी है। मधुर पद विन्यास में तो बड़े कवि भी इस से निस्सन्देह हारे हैं।"

जयदेवजी का प्रसिद्ध ग्रन्थ गीतगोविन्द बारह सर्गों में विभक्त है। जिस में पूर्व्व में श्लोक और फिर गीत क्रम से रक्खे हैं। इस ग्रन्थ में परस्पर बिरह, दूती, मान, गुण कथन और नायक का अनुनय और तत्पश्चात् मिलन यह सब वर्णित है। जयदेवजी परम वैष्णव थे। इस से उन्होंने जो कुछ वर्णन किया अत्यन्त प्रगाढ़ भक्ति पूर्ण होकर वर्णन किया है। इन्होंने इस काव्य में अपनी रसशालिनी रचना शक्ति और चित्तरंजक सद्भाव शालित्व का एक शेष प्रदर्शन दिया है। पंडितवर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर स्वप्रणीत संस्कृत विषयक प्रस्ताव में लिखते हैं, "इस महाकाव्य गीतगोविन्द की रचना जैसी मधुर कोमल और मनोहर है उस तरह की दूसरी कविता संस्कृत भाषा में बहुत अल्प है। वरंच ऐसे ललित पद विन्यास, श्रवण मनोहर, अनुप्रास छटा

और प्रसाद गुण और कहीं नहीं है।" वास्तव में रचना विषय में गीतगोविन्द एक अपूर्व्व पदार्थ है। और तालमानों के चातुर्य्य से और अनेक रागों के नाम के अनुकूल गीतों में अक्षर से स्पष्ट बोध होता है कि जयदेवजी गाना बहुत अच्छा जानते थे। कहते हैं कि गीतगोविन्द को अष्टपदी और अष्टताली नाम से भी लोग पुकारते हैं।

अनेक विद्वानों ने लिखा है गीतगोविन्द विक्रमादित्य की सभा में गाया जाता था। किन्तु यह कथा सर्व्वथा अश्रद्धेय है। यह कोई और व्रिकम होंगे जिन की सभा में गीतगोविन्द गाया जाता था, क्यौंकि शकारि विक्रम के अनेक सौ वर्ष पश्चात् जयदेवजी का जन्म है। हां, कलिंग, कर्णाट प्रभृति देश के राजाओं की सभा में पूर्व्व में गीतगोविन्द निस्सन्देह गाया जाता था। वरंच जोनराज ने अपनी राजतरंगिणी में लिखा है कि श्रीहर्ष जब क्रम सरोवर के निकट भ्रमण करते थे उन दिनों गीतगोविन्द उन की सभा में गाया जाता था।

कहते हैं कि 'प्रिये चारुशीले' इस अष्टपदी में 'स्मरगरल खंडनं मम शिरसि मंडनं' इस पद के आगे जयदेवजी की इच्छा हुई कि 'देहि पदपल्लवमुदारं' ऐसा पद दें, किन्तु प्रभु के विषय में ऐसा पद देने को उनका साहस नहीं पड़ा, इस से पुस्तक छोड़ कर आप स्नान करने चले गए। भक्तवत्सल, भक्तमनोरथपूरक भगवान इस समय स्नान से फिरते हुए जयदेवजी के वेश में घर में आए। प्रथम पद्मावती ने जो रसोई बनाई थी उस को भोजन किया, तदनन्तर पुस्तक खोल कर 'देहि पदपल्लवमुदारं' लिख कर शयन करने लगे। इतने में जयदेवजी आए तो देखा कि पतिप्राणा पद्मावती, जो बिना जयदेवजी को भोजन कराये जल भी नहीं पीती थी, वह भोजन कर रही है। जयदेवजी ने भोजन का कारण पूछा तो पद्मावती ने आश्चर्य्यपूर्व्वक सब वृत्त कहा। इस पर जयदेवजी ने जाकर पुस्तक देखा तो 'देहि पदपल्लवमुदारं' यह पद लिखा है। वह जान गए कि यह सब चरित्र उसी ससिकशिरोमणि भक्तवत्सल का है। उस से आनन्द पुलकित होकर पद्मावती की थाली का अन्न खाकर अपने को कृतार्थ माना।

कहते हैं कि पुरी के राजा सात्विकराय ने ईर्षापरवश होकर एक जयदेवजी की कविता की भांति अपना भी गीतगोविन्द बनाया था। इस झगड़े को निबटाने को कि कौन गीतगोविन्द अच्छा है दोनों गीतगोविन्दों को पंडितों ने जगन्नाथजी के मन्दिर में रख कर बन्द कर दिया। जब यथा समय द्वार खुला तो लोगों ने देखा कि जयदेवजी का गीतगोविन्द श्री जगन्नाथजी के हृदय में लगा हुआ है और राजा का दूर पड़ा है। यह देख कर राजा आत्महत्या करने को तैयार हुआ। तब श्रीजगन्नाथजी ने उस के सम्बोधन के वास्ते आज्ञा किया कि हम ने तेरा भी अंगीकार किया, शोच मत कर।

गीतगोविन्द अंगरेजी गद्य में सर विलियम जोन्स कृत, पद्य में आरनल्ड साहब कृत, लैटिन में लासिन कृत, जर्मन में रुकार्ट कृत, ऐसे ही अनेक भाषाओं में अनेक जन कृत अनुवादित हुआ है। हिन्दी में इस के छन्दोबद्ध तीन अनुवाद हैं। प्रथम

राजा डालचन्द की आरा से रायचन्द नागर कृत, द्वितीय अमृतसर के प्रसिद्ध भक्त स्वामी रत्न हरीदास कृत और तृतीय इस प्रबन्ध के लेखक हरिश्चन्द्र कृत। इन अनुवादों के अतिरिक्त द्राविड़ और कार्णाटादि भाषाओं में इस के अपरापर अन्य अनेक अनुवाद हैं।

लोग कहते हैं कि जयदेवजी ने गीतगोविन्द के अतिरिक्त एक ग्रन्थ रतिमंजरी भी बनाया था, किन्तु यह अमूलक है। गीतगोविन्दकार की लेखनी से रतिमंजरी सा जघन्य काव्य निकले यह कभी सम्भव नहीं। एक गंगा की स्तुति में सुन्दर पद जयदेवजी का बनाया हुआ और मिलता है, वह उनका बनाया हुआ हो तो हो।

इस भांति अनेक सौ बरस हुए कि श्री जयदेवजी इस पृथ्वी को छोड़ गए। किन्तु अपनी कविता बल से हमारे समाज में वह सादर आज भी विराजमान हैं। इन के स्मरण के हेतु केन्दुली गांव में अब तक मकर की संक्रान्ति को एक बड़ा भारी मेला होता है, जिस में साठ सत्तर हज़ार वैष्णव एकत्र होकर इन की समाधि के चारों ओर संकीर्त्तन करते हैं।

पुष्पदंताचार्य्य और महिम्न

यह स्तोत्र अब ऐसा प्रसिद्ध है कि आर्ष की भांति माना जाता है, वरंच पुराणों में भी कहीं कहीं इस का माहात्म्य मिलता है। एक प्रसंग है कि जब पुष्पदंत ने महिम्न बना के शिवजी को सुनाया तब शिवजी बड़े प्रसन्न हुए, इस से पुष्पदंत को गर्व हुआ कि मैंने ऐसी अच्छी कविता किया कि शिवजी प्रसन्न हो गए। यह बात शिवजी ने जाना और अपने भृंगी-गण से कहा कि मुंह तो खोलो। जब भृंगी ने मुंह खोला, तो पुष्पदंत ने देखा कि महिम्न के बत्तीसो श्लोक भृंगी के बत्तीसों दांत में लिखे हैं। इस से यह बात शिवजी ने प्रगट किया कि ये श्लोक तुमने नहीं बनाए हैं। वरंच यह तो हमारी अनादि स्तुति श्लोक है। यह बात प्रसिद्ध है कि पुष्पदंत जब शाप से ब्राह्मण हुआ या तब यह स्तोत्र बनाया है और ऐसी ही अनेक आख्यायिका हैं। अब वह पुष्पदंत कौन है और कब वह ब्राह्मण हुआ इस का विचार करते हैं। कथासरित्सागर में एक पहिला ही प्रसंग है, जिस से यह प्रसंग बहुत स्पष्ट होता है। उस में लिखते हैं कि पार्वतीजी का मान छुड़ाने को शिवजी ने अनेक विचित्र इतिहास कहे और उस समय नन्दी को आज्ञा दी थी कि कोई भीतर न आवै, परन्तु पुष्पदंत गण ने योगबल से नन्दी से छिप कर भीतर जाकर वह सब कथा सुनी और अपनी स्त्री जया से कही और जया ने फिर पार्वती से कही। यह सुन कर पार्वती ने बड़ा क्रोध किया और पुष्पदंत और उस के मित्र माल्यवान् को शाप दिया कि दोनों मृत्युलोक में जन्म लो। फिर जब उन सबों ने पार्वती को बहुत मनाया तब पार्वती ने कहा कि अच्छा विन्ध्याचल में सुप्रतीक नाम यक्ष काणभूति पिचाश हुआ है उस को देख कर पुष्पदंत जब यह सब कथा कहैगा तब दोष दूर होगा और काणभूति से जब माल्यवान् सुनैगा तब शाप से छूटैगा। वही पुष्पदंत वररुचि नामक कवि कौशाम्बी में हुआ और सुप्रतिष्ठ नगर में माल्यवान् गुणाढ्य कवि हुआ। यथा–

अवदच्चन्द्रमौलिः कौशम्बीत्यस्तियामहानगरी।
तस्यां सपुष्पदंतो वररुचि नामा प्रिये जातः॥1॥
अन्यश्च माल्यवानपि नगरे सुप्रष्ठिाख्ये।
जातो गुणाढ्य नामा देवितयोरेषवृत्तान्तः॥2॥

कौशाम्बी नगरी में सोमदत्त वा अग्निशिख नामा ब्राह्मण की स्त्री बसुदत्ता से वररुचि का जन्म हुआ और पिता छोटे ही पन में मर गया, इस से माता ने बड़े कष्ट से इस का पालन किया। यह छोटे ही पन में ऐसा श्रुतिधर था कि एक बेर जो सुनता वा जो कला देखता कंठ कर लेता और जान जाता। एक समय बेतसपुर के देवस्वामी और कदम्बक नामक ब्राह्मण के पुत्र इन्द्रदत्त और व्याड़ि इस के घर में आए। वहां इन दोनों ने वररुचि को एकश्रुतिधर सुन के प्रति शांख्य पढ़ा और वररुचि ने उन दोनों को वह ज्यौं का त्यौं सुना दिया और वररुचि के पिता का मित्र भवानन्द नामक नट उस रात्रि को कहीं अभिनय करता था। वह देख कर वररुचि ने अपने माता के सामने ज्यौं का त्यौं फिर कर दिखाया। उन दोनों ब्राह्मणों को इस की एकश्रुतिधरता से बड़ी प्रसन्नता हुई, क्यौंकि जब इन दोनों ने विद्या के हेतु तप किया था तब इन को वर मिला था कि पाटलिपुत्र में वर्ष नामक उपाध्याय से सब विद्या पाओगे। वर्ष, उपवर्ष यह दो भाई शंकर स्वामि ब्राह्मण के पुत्र थे। उन में उपवर्ष पंडित और धनी था और वर्ष मूर्ख और दरिद्री था। उपवर्ष की स्त्री से अनादर पाकर वर्ष ने विद्या के हेतु तप किया और स्कन्द से सब विद्या पाई, परन्तु स्कन्द ने कहा था कि जो एकश्रुतिधर हो उस के सामने तुम अपनी विद्या प्रकाश करना। सो जब वर्ष के पास ये दोनों ब्राह्मण गए तब उस की स्त्री ने कहा कि एकश्रुतिधर कोई हो तो ये अपनी विद्या प्रकाश करैं, अन्यथा न प्रकाश करैंगे। इसी से वे दोनों ब्राह्मण वररुचि को एकश्रुतिधर पाकर बड़े प्रसन्न हुए। वररुचि की माता से उन दोनों ने सब वृत्तान्त कह कर वररुचि को साथ लिया और फिर पाटलिपुत्र में आए, क्यौंकि उस की माता से भी आकाशवाणी ने कहा था कि तेरा पुत्र एकश्रुतिधर होगा और वर्ष से सब विद्या पढ़ैगा और व्याकरण का आचार्य्य होगा। वर्ष ने तब उन तीनों को विद्या पढ़ाया और बहुत प्रसन्न हुआ, क्यौंकि वररुचि एकश्रुतिधर, व्याड़ि द्विश्रुतिधर और इन्द्रदत्त विश्रुतिधर था। वर्ष को नगर के लोग मूर्ख जानते थे, पर जब एकाएकी उस के विद्या का प्रकाश हुआ तो सब ब्राह्मणवर्ग बड़े प्रसन्न हुए और नन्द राजा ने भी बहुत सा धन वर्ष को दिया। फिर इन तीनों ने बड़ी विद्या पढ़ी और वररुचि ने उपवर्ष की कन्या उपकोषा से विवाह किया और उपकोषा अपने पतिव्रत और चरित्र से नन्द की भगिनी हुई। वर्ष के एक पाणिनि[1] नामा मूर्ख शिष्य ने शिवजी से वर पाकर

---

[1] राजा शिवप्रसाद यों लिखते हैं—"समय के उलट फेर में हमारे पंडित लोग जो कुछ अपनी पंडिताई दिखलाते हैं, लिखने योग्य नहीं है। इसी एक बात से सोच लो कि जिस पंडित से पाणिनि वैय्याकरण का जमाना पूछोगे छूटते कहैगा कि सत्ययुग में हुआ था। लाखों बरस बीते परन्तु इस से इनकार न करैगा कि कात्यायन की पतंजलि ने टीका लिखी और पतंजलि की व्यास ने। अब हेमचन्द्र अपने कोश में कात्यायन का नाम वररुचि बतलाता है और कश्मीर का सोमदेव भट्ट अपने कथासरितृसागर में लिखता है कि कात्यायन वररुचि कौशाम्बी में, जो अब प्रयाग के पास जमुना के किनारे कोसम गांव कहलाता है, पैदा हुआ, पाणिनि से व्याकरण में शास्त्रार्थ किया और राजा नन्द का मन्त्री हुआ। मुद्राराक्षस इत्यादि वहुत ग्रन्थों से साबित है कि नन्द के बाद ही चन्द्रगुप्त राज्यसिंहासन पर बैठा और चन्द्रगुप्त का जमाना ऐसा निश्चय ठहर गया है कि जैसे पलासी की लड़ाई अथवा नादिरशाही अथवा पृथ्वीराज और विक्रम का कहो कि हम पाणिनि का जमाना अब →

व्याकरण बनाया और जब वररुचि ने उस से वाद किया तो शिवजी ने हुंकर के वररुचि का इन्द्रमत का व्याकरण भुला दिया, इस से वररुचि ने फिर तपस्या करके शिवजी से पाणिनि व्याकरण सीखा। यह वररुचि बहुत दिन तक योगानन्द का मन्त्री रहा और इस का नामान्तर कात्यायन था, परन्तु यह नन्द का मन्त्री कैसे हुआ और कब तक रहा यह यहां नहीं लिखते, क्योंकि प्रसंग के बाहर है। यह बन बन फिरने लगा। जब शकटार ने चाणक्य द्वारा नन्दवंश का नाश किया तब उदास होकर और विन्ध्याचल में कालभूति पिशाच को देख कर अपना पूर्व्व जन्म स्मरण करके उस से सब कथा कह कर बदरिकाश्रम में जाकर योग से अपनी गति को गया और शाप से छूटा। गन्धर्व से भी पहिले जन्म में यह गंगातीर के ग्रहार नामक ग्राम में गोविन्ददेव ब्राह्मण अग्निदत्ता ब्राह्मणी का पुत्र देवदत्त था और प्रतिष्ठानपुर के राजा की कन्या से विवाह किया था। उस कन्या ने पहले दांत में फूल दबाकर उस को संकेत बताया था। इस से जब वह ब्राह्मण वरदान पाकर शिवगण हुआ तब उस की स्त्री भी जया प्रतिहारी हुई।

→ अढाई हजार बरस से इधर मानैं या लाखों बरस से उधर? पतंजलि चन्द्रगुप्त के पीछे हुआ इसमें किसी तरह का सन्देह नहीं, क्यौंकि उसने अपने भाष्य में 'सभाराजा मनुष्य पूर्वा' इस सूत्र पर 'चन्द्रगुप्तसभम्' ऐसा उदाहरण दिया है।'

Dr. Rajendra Lal Mitra LL. D. in his Indo-Aryans No. I.P. 19 says, "According to Dr. Goldstucker or, the Grammar of Panini was composed between the 9th and 11th centuries before Christ. Professor Max Muller brings down the ago of Grammar to the 6th century B. C."

पाणिनीय व्याकरण के समय में निम्नलिखित बातें होती थीं–

1. उस समय के लोगों में हंसी करने की चाल थी। एहिमन्ये ओदनं भोक्ष्यसे इति भुक्तः सोऽतिथिभिः–मानो भात खाने आया है सब खा पी गया।
2. श्राद्धों में नाती को अवश्य बुलाने की चाल थी। निमन्त्रणं, आवश्यके श्राद्धभोजनादौ दौहित्रादेः प्रवर्तनं–निमन्त्रण, अर्थात् जैसे नाती वगैरह को श्राद्ध भोजन में बुलाना।
3. नृत्य और नृत में भेद। गात्र विक्षेपमात्रं नृतं भांड़ों का तमासा, बदन तोड़ना इत्यादि। पदार्थाभिनयोनृत्यं–भावादिकों का दिखलाना।
4. बहुत सी कहावतें उस समय के लोग जानते थे। जैसा–नविश्वसेद विश्वस्तं–जिसका विश्वास एक बेर गया फिर उसका विश्वास न करना।
5. आलिंगन करने की रीति थी। अश्लिक्षत् कन्यां देवदत्तः देवदत्त ने कन्या को आलिंगन दिया।
6. लड़कियों को गहना पहिनाने की चाल। उपस्कृता कन्या अलंकार पहिनाई गई कन्या।
7. मुहावरेदार बोलने की चाल। हस्तयते–हाथी पर चढ़के जाता है। पादयते–लात मारता है।
8. लोग बहुत भावुक थे। सिद्धशब्दो ग्रन्थान्ते मंगलार्थ–ग्रन्थ के अन्त में सिद्ध–ऐसा लिखो, क्यौंकि यह मंगल है।
9. वृषस्यतिगौः–गाय उठी है।
10. महल बना करते थे। कुटीयति प्रासादे। महल में बैठकर झोपड़ी समझता है।
11. भिक्षुक लोग राजा के पास जाया करते थे। भिक्षुकः प्रभुमुपतिष्ठते।
12. मल्लयुद्ध हुआ करता था। आह्वयते–मैदान में खड़े होकर पुकारना। नहीं तो आह्वयति।
13. खिराज दिया जाता था। करं विनयते–कर देने को निकालता है।
14. शास्त्र की चर्चा रहा करती थी। शास्त्रेवदते–शास्त्र में बोल सकता है।

इस कथा के व्याख्यान से यह स्पष्ट होता है कि वर्णन नन्द के राज्य के समय का है और उस समय के देवता शिव और स्कन्ध थे और व्याकरण का बड़ा प्रचार था। कातन्त्र, कालाप, एन्द्र, पाणिनी इत्यादि मत में परस्पर बड़ा विरोध था। संस्कृत, प्राकृत, पैशाची और देश भाषा बहुत प्रसिद्ध थी, परन्तु पांच और भाषा भी प्रचलित थीं। पाटलिपुत्र नया बसा था, प्रतिष्ठानपुर और अयोध्या भी बहुत बसती थी, धूर्तता फैल गई थी और हिन्दुस्तान में पश्चिम देश बहुत मिला हुआ था इत्यादि।

इस वृहत्कथा में ऐसे ही गुणाढ्य कवि के भी तीनों जन्म लिखे हैं और उस का वृहत्कथा का पैशाची भाषा में निर्माण करना, उस में छः लाख ग्रन्थ जला देना और एक लाख ग्रन्थ नर वाहन दत्त के चरित्र का राजा शातवाहन को देना इत्यादि सविस्तर वर्णित है।

अब यह वृहत्कथा कब बनी है और किसने बनाया है इस के विचार में चित्त बहुत दोलायित होता है, क्यौंकि इस का काल ठीक निर्णीत नहीं होता। नन्द के समय की भी नहीं मान सकते, क्यौंकि इसी वृहत्कथा में विक्रमादित्य, उदयन ऐसे प्राचीन नवीन अनेक राजाओं का वर्णन है, परन्तु इतना कह सकते हैं कि इस का मूल प्राचीन काल से पड़ा है और उस को अनेक काल में अनेक कवि बढ़ाते गए हैं, क्यौंकि 'कात्यायनाद्यैकृतिः, तत्पुष्पदंतादिभिः' इत्यादि पदों में आदि शब्द मिलता है। वा अनेक प्राचीन सुनी हुई कथाओं को किसी ने एकत्र करके आदर के हेतु उस में पुष्पदन्त का नाम रख दिया हो तो भी आश्चर्य नहीं, क्यौंकि कात्यायन वररुचि का होना खीस्ताब्दीय के 120 वर्ष पूर्व्व लोग अनुमान करते हैं और विक्रम का काल पंडितों ने 500 खीस्ताब्द के लगभग निश्चय किया है और ऐसा मानने से प्रोफेसर गोल्डसृकर इत्यादि इतिहासवेत्ताओं का दो वररुचि मानने वाला मत भी स्पष्ट खंडित होता है, क्यौंकि वृहत्कथा में जब विक्रम का चरित्र है तब उसी विक्रमादित्य वाले वररुचि का नाम कात्यायन सम्भव है।

परन्तु हमारा कथन यह है कि संस्कृत वृहत् कथा गुणाढ्य की बनाई ही नहीं है, क्यौंकि उस में स्पष्ट लिखा है कि गुणाढ्य ने संस्कृत बोलना छोड़ दिया था, इस से पिशाच भाषा में वृहत्कथा बनाया। तो इस दशा में सम्भव है कि किसी ने यह वृहत्कथा बनाकर वररुचि, गुणाढ्य, पुष्पदन्त इत्यादि का नाम आदर और प्रमाण पाने के हेतु रख दिया हो।

अब जो वृहत्कथा मिलती है वह तीस हजार श्लोक में रामदेव भट्ट के पुत्र सोमदेव भट्ट की बनाई है, जो उस ने कश्मीर के राजा संग्रामदेव के पुत्र अनन्तदेव की रानी सूर्य्यवती के चित्तविनोद के हेतु बनाई है और इसी अनन्तदेव के पुत्र कमलदेव हुए और कमलदेव के पुत्र श्री हर्षदेव हुए। कश्मीर के इन राजाओं के नाम चित्त को और भी संशय में डालते हैं, क्यौंकि रत्नावली वाला श्रीहर्ष कालिदास के पहिले का है, क्यौंकि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र में धावक कवि का नाम प्राचीन कवियों

में लिखा है। अब इस दशा में विरोध का परिहार यों हो सकता है कि जिस विक्रम का चरित्र वृहत्कथा में है वह नवरत्न वाला विक्रम नहीं, किन्तु कोई प्राचीन विक्रम है और यह वृहत्कथा धावक के थोड़े ही काल पहिले कश्मीर में सोमदेव ने बनाई है, क्योंकि इस में नन्द और विक्रम के नाम की भांति भोज, कालिदास इत्यादि का नाम नहीं है और नवरत्न वाला वररुचि दूसरा-था, क्योंकि उस काल में राजा और कवियों के वही नाम बारम्बार होते थे, इस से वृहत्कथा सम्वत और ख्रिस्तसन के पूर्व्व बनी है और गुणाढ्य और वररुचि कुछ इस से भी पहिले के हैं।

परन्तु वृहत्कथा के किसी लेख का हम प्रमाण नहीं करते, क्योंकि यह बड़ा ही असंगत ग्रन्थ है। जैसा अनन्त पंडित की बनाई मुद्राराक्षस की पूर्व्व पीठिका में नन्द का नाम सुधन्वा लिखा है और इस में योगानन्द है। उस में जो वररुचि के मन्त्री होने का प्रसंग है वह इस पीठिका में कहीं मिलता ही नहीं और पाणिनी, वर्ष, कात्यायन, व्याड़ि, इन्द्रदत्त और अनेक व्याकरण के आचार्य्य वृहत्कथा के मत से एक काल के थे, पर बुद्धिमानों ने इन सब के काव्य में बड़ा भेद ठहराया है। इस से इतिहास विषय में वृहत्कथा अप्रामाणिक है।

वृहत्कथा का वर्णन और गुणाढ्य इत्यादि कवियों का वर्णन आर्य्या सप्तशती बनाने वाले गोवर्द्धन कवि ने किया है और गोवर्द्धन कवि का काव्य जयदेवजी के काल से निश्चित होगा। बंगाली लेखकों ने जयदेवजी का सम्म्य पन्द्रहवां शतक ठहराया है, पर इस निर्णय में परम भ्रान्त हुए हैं, क्योंकि जयदेवजी का काल एक सहस्र वर्ष के पूर्व्व है और इस में प्रमाण के हेतु पृथ्वीराज रायसा में चन्द कवि का जयदेवजी का और गीतगोविन्द वर्णन ही प्रमाण है। जयदेवजी ने गोवर्द्धन कवि का वर्णन वर्त्तमान क्रिया से किया है। इस से अनुमान होता है कि उस काल में गोवर्द्धन कवि था। बंगाली लोगों में कोई बारहवें शतक में लक्ष्मणसेन के काल में जयदेव को मानते हैं और उस के समकालीन गोवर्द्धन इत्यादि कवियों को लक्ष्मणसेन की सभा के पंचरत्न मानते हैं। यह बात भी असम्भव है, क्योंकि पृथ्वीराज ग्यारहवें शतक में था और चन्द भी तभी था। तो जयदेव चन्द के सैकड़ों वर्ष पहिले निस्सन्देह हुए हैं, क्योंकि चन्द ने प्राचीन कवियों की गणना में बड़ी भक्ति से जयदेवजी का वर्णन किया है। हां, यही लक्ष्मणसेन को पृथ्वीराज़ के पहिले मानो तो जयदेव उस की सभा के पंडित हो सकते हैं, नहीं तो समझ लो कि आदर के हेतु इन कवियों का नाम लक्ष्मणसेन ने अपनी सभा में रक्खा है। इस से चल सखि कुंज की भाषा और अंगरेजी इतिहासवेत्ताओं का मत लेकर बंगालियों ने जयदेवजी का जो काल निर्णय किया है वह अप्रमाण है यह निश्चय हुआ और वृहत्कथा उस काल के भी पहिले बनी है यह भी सिद्धान्तित हुआ।

श्री वल्लभाचार्य्य

दोहा

जय पाखंड हि हरत कर, जन मन जलज विकास।
जयति अलौकिक रवि कोऊ, श्रुति पथ करन प्रकास॥

जो लोग बहुत प्रसिद्ध हैं और जिन को लाखों मनुष्य सिर झुकाते हैं उन के जीवनचरित्र पढ़ने या सुनने की किसकी इच्छा न होगी। इस हेतु यहां पर श्री वल्लभाचार्य्य का जीवनचरित्र संक्षेप से लिखा जाता है।

मन्दराज हाते में, तैलंगदेश के आकबीडु जिले में कांकरवल्लि गांव में भारद्वाज गोत्र, तैलंग ब्राह्मण जाति, पंचप्रवर, यजुर्वेद, तैत्तिरीयशाखा, दीक्षित सोमयागी उपनाम, यज्ञनारायण भट्ट के प्रसिद्ध वंश से लक्ष्मण भट्टजी की धर्मपत्नी इल्लमगारु के गर्भ से चम्पारण्य में इन का जन्म हुआ।

लक्ष्मण भट्टजी के तीन पुत्र थे। बड़े—रामकृष्ण भट्टजी युवावस्था ही में संन्यस्त हो गए और केशव पुरी नाम से प्रसिद्ध हुए। मंझले—पूर्व्वोक्ताचार्य्य और छोटे—रामचन्द्र भट्टजी, जिन के कृष्णाकुतूहल, गोपाल लीला इत्यादि ग्रन्थ हैं। इन्होंने अपने नाना की वृत्ति पाई थी, परन्तु विवाह न करके अपना सब जीवन अयोध्या में बिताया।

लक्ष्मण भट्टजी अपने घर के खान पान से बहुत सुखी थे। वे जब काशी में अपने जाति के ब्राह्मणों का सत्कार करने आए तो मार्ग में बितिया के इलाके में चौरा गांव के पास चम्पारण्य में सम्वत 1535 वैशाख बदी 11,[1] आदित्यवार को मध्याह्न

---

[1] वल्लभदिग्विजय में लिखा है :–सम्वत 1535 शाके 1440 वैशाखमास, कृष्णपक्ष 11, रविवार मध्याह्न। एक पद श्री द्वारकेशजी कृत ॥रागसारंग॥

5 3 5 1

तत्व गुन बान भुवि माधवसित तरणि प्रथम सौभग दिवस प्रकट लक्ष्मण-सुवन।
धन्य चंपारन्य मन्य त्रैलोक्य जन अन्य अवतार भुवि है न ऐसो भुवन॥1॥
लग्न वृश्चिक कुंभ केतु कवि इंदु सुख मीन बुध उच्च रवि बैरि नाशे।
मन्द वृष कर्क गुरु भौम युत सिंह मैं तमस के योग ध्रुव यश प्रकाशे॥2॥
रिछ घनिष्ठा प्रतिष्ठा अधिष्ठान स्थिर बिरह बदनानलाकार हरि को।
यहै निश्चय 'द्वारकेश' इनके शरण और को श्री वल्लभाधीश सरि को॥3॥
श्री महाप्रभुन की जन्मकुंडली ऊपर के कीर्त्तन अनुसार।

→

समय आचार्य्य का जन्म हुआ। जब ये पांच वर्ष के हुए तब चैत सुदी 9 के दिन अपने पिता से गायत्री उपदेश लिया और कृष्णदास मेघन को उसी दिन अष्टाक्षर मन्त्र का उपदेश करके प्रथम वैष्णव किया।

उसी साल असाढ़ सुदी 8 को काशी के प्रसिद्ध पंडित माधवानन्द तीर्थ त्रिदंडी से विद्याध्ययन किया और छोटेपन ही में पत्रावलम्बन ग्रन्थ कर के विश्वनाथ के दरवाजे पर लगा दिया और डौंड़ी पीट कर काशी के पंडितों से पहला शास्त्रार्थ किया। जब इन के पिता काशी से चले तो लक्ष्मणबालाजी में उनका देहान्त हुआ। उनकी क्रियादिक के पीछे आचार्य्य पृथ्वी परिक्रमा को चले और विद्यानगर में जाकर कृष्णदेव राजा की सभा में सब पंडितों कौ जीत पर आचार्य्य पद पाया। सम्वत 1548 के वैशाख बदी 2 को ब्रह्मचर्य्य धर्म्म से पहिली पृथ्वी परिक्रमा करने चले और पंढरपुर, त्र्यम्बक, उज्जैन होते हुए वृज आए और चार महीने श्रीवृन्दावन में रह कर श्रीमद्भागवत का पारायण किया और फिर सोरों, अयोध्या वा नैमिषारण्य होते हुए काशी आए।

राह में जो पंडित मिलते उनसे शास्त्रार्थ करते और वैष्णव धर्म्म फैलाते थे।

काशीजी से गया और जगन्नाथजी होते हुए फिर दक्खिन चले गए और सम्वत 1554 में अपना पहिला दिग्विजय समाप्त किया। दूसरे दिग्विजय में वृज में गोवर्द्धन पर्वत पर श्रीनाथजी का स्वरूप प्रगट कर के उन की सेवा स्थापन किया और तीन पृथ्वी परिक्रमा करके सारे भारतखंड में वैष्णव मत फैलाकर बावन वर्ष की अवस्था में सम्वत 1587 आषाढ़ सुदी 2 को काशीजी में लीला में प्राप्त भये। इन के दो पुत्र—बड़े श्री गोपीनाथजी, छोटे श्री विट्ठलनाथजी। गोपीनाथजी के पुत्र श्री पुरुषोत्तमजी, पर उनके आगे वंश नहीं। श्री विट्ठलनाथजी के सात पुत्र, जिन में बड़े गिरधरजी और छोटे पुत्र यदुनाथजी का वंश अब तक वर्त्तमान है। इनका मत शुद्धाद्वैत अर्थात् जगत्ब्रह्म के सच्चित् रूप से अभिन्न और सत्य, परन्तु भक्ति बिना ब्रह्मस्वरूप का ज्ञान फलदायक नहीं। परमोपास्य श्रीकृष्ण और विष्णुस्वामी परमाचार्य्य, साधन सेवा मुख्य, प्रमाण ग्रन्थ, वेदव्याससूत्र, गीता और भागवत। तिलक दो रेखा का लाल ऊर्ध्वपुंड्र शंख, चक्र, शीतल।

→

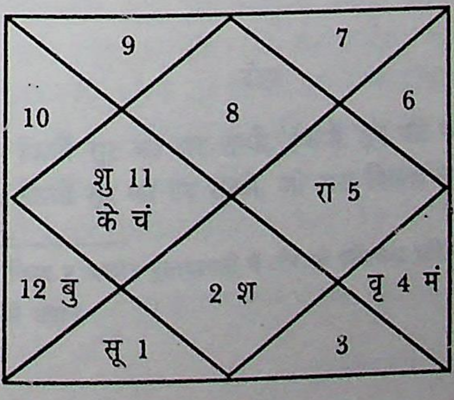

आचार्य्य ने अणुभाष्य,तत्वदीप, निबन्ध, रसमंडन, श्री मद्भागवत पर सुबोधिनी टीका, सिद्धान्त मुक्तावली, पुष्टिप्रवाह मर्यादा, पुरुषोत्तम सहस्र नाम, सिद्धान्त रहस्य, अन्तःकरण प्रबोध, भक्ति प्रकरण, नवरतन, विवेक धैर्य्याश्रय, पत्रावलम्बन, कृष्णाश्रय, भक्तिवर्द्धिनी, जलभेद संन्यासनिर्णय, जैमिनी सूत्रभाष्य, चित्तबोध, निरोधलक्षण, व्यास विरोध लक्षण, परिवृढ़ाष्टक और वैद्यवल्लभ ये चौबीस ग्रन्थ बनाए हैं, जिन में दोनों सूत्रों का भाष्य और भागवत की टीका बहुत बड़े ग्रन्थ हैं।

सूरदासजी[1]

दोहा

हरि पद पंकज मत्त अलि, कविता रस भरपूर।
दिव्य चक्षु कवि कुल कमल, सूर नौमि श्री सूर॥

सब कवियों के वृत्तान्त में सूरदासजी का वृत्तान्त पहिले लिखने के योग्य है, क्योंकि यह सब कवियों के शिरोमणि हैं और कविता इनकी सब भांति की मिलती है। कठिन से कठिन और सहज से सहज इनके पद बने हैं और किसी कवि में यह बात नहीं पाई जाती है। और कवियों की कविता में एक बात अच्छी है और कविता एक ढंग पर बनती है परन्तु इनकी कविता में सब बात अच्छी है और इनकी कविता सब तरह की होती है, जैसे किसी ने शाहनशाह अकबर के दरबार में कहा था–

दोहा

उत्तम पद कवि गंग को, कविता को बल वीर।
केशव अर्थ गंभीर को, सूर तीन गुन धीर॥

और इसके सिवाय इनकी कविता में एक असर ऐसा होता है कि जी में जगह करै। जैसे एक वार्ता है कि किसी समय में एक कवि कहीं जाता था और एक मनुष्य बहुत व्याकुल पड़ा था। उस मनुष्य को अति व्याकुल देख कर उस कवि ने एक दोहा पढ़ा।

दोहा

किधौं सूर को सर लग्यौ, किधौं सूर की पीर।
किधौं सूर को पद सुन्यौ, जो अस विकल शरीर॥

---

[1] कविवचन सुधा जिल्द 2, प्राचोन पुस्तकावली में और श्री हरिश्चन्द्र चंद्रिका, खंड 6, संख्या 5, नवंबर सन 1878 ई. में छपा।

इस वार्ता के लिखने का यह अभिप्राय है कि निस्सन्देह इन के पदों में ऐसा एक असर होता कि जो लोग कविता समझते हैं उनके जी पर इस की चोट लगै।

ये जाति के ब्राह्मण थे और इन के पिता का नाम बाबा रामदासजी था, जो गाना बहुत अच्छा जानते थे और कुछ धुरवपद इत्यादि भी बनाते थे और देहली या आगरे या मथुरा, इन्हीं शहरों में रहा करते थे और उस समय के नामी गुनियों में गिने जाते थे। उनके घर यह सूरदासजी पैदा हुए। यह इस असार संसार के प्रपंच को न देखने के वास्ते आंख बन्द किए हुए थे। इन के पिता ने इन को गाना सिखाने में बड़ा परिश्रम किया था और इन की बुद्धि पहिले ही से बड़ी विलक्षण और तीव्र थी। सम्वत 1540 के कुछ न्यूनाधिक में इनका जन्म हुआ था ओर आगरे में इन्होंने कुछ फारसी विद्या भी सीखी थी। इनकी जवानी ही में इनके पिता का परलोक हुआ और यह अपने मन के हो गए और भजन तभी से बनाने लगे। उस समय में इनके शिष्य भी बहुत से हो गए थे और तब अपना नाम पदों में सूर स्वामी रखते थे। उन्हीं दिनों में इनने महाराज नल और दमयन्ती के प्रेम की कथा में एक पुस्तक बनाई थी, जो अब नहीं मिलती।[1] उस समय इनकी पूर्ण युवा अवस्था थी और उन दिनों में ये आगरे से नौ कोस मथुरा के रास्ते के बीच में एक स्थान जिस का नाम गऊघाट है, वहीं रहते थे और बहुत से इनके शिष्य इनके साथ थे। फिर ये आचार्य्य कुल शिरोरत्न श्री श्री वल्लभाचार्य्य महाप्रभु के शिष्य हुए। तब से यह अपना नाम पदों में सूरदास रखने लगे। ये भजनों में नाम अपना चार तरह से रखते थे—सूर, सूरदास, सूरजदास और सूरश्याम। जब यह सेवक हुए थे तब इन्होंने यह भजन बनाया था।

भजन

चकई री चलि चरन सरोवर, जहं नहिं प्रेम वियोग।
जहं भ्रम निसा होत नहिं कबहूं सो सागर सुख जोग॥1॥
सनक से हंस मीन शिव मुनिजन नख रविप्रभा प्रकास।
प्रफुलित कमल निमेषन ससि डर गुंजत निगम सुबास॥2॥
जेहि सर सुभग मुक्ति मुक्ताफल सुकृत बिमल जल पीजै।
सो सर छांड़ि कुबुद्धि बिहंगम इहां कहा रहि कीजै॥3॥
जहं श्री सहस सहित नित क्रीड़त सोभित 'सूरज दास'।
अब न सुहाइ विषै रस छीलर वा समुद्र की आस॥4॥

फिर तौ इनकी सामर्थ्य बढ़ती ही गई और इन्होंने श्रीमद्भागवत को भी पदों में बनाया, और भी सब तरह के भजन इन्होंने बनाए। इनके श्रीगुरु इन को सागर कहकर पुकारते थें, इसी से इन ने अपने पदों को इकट्ठा करके उस ग्रन्थ का नाम

---

[1] यह पुस्तक मिल गई है पर इसके रचयिता कोई अन्य सूरदास हैं। (सं)

सूरसागर रक्खा। जब यह वृद्ध हो गए थे और श्री गोकुल में रहा करते थे, धीरे धीरे इनके गुण शाहनशाह अकबर के कानों तक पहुंचे। उस समय ये अत्यन्त वृद्ध थे और बादशाह ने इनको बुलावा भेजा और गाने की आज्ञा किया। तब इन ने यह भजन बनाकर गाया।

मन रे करि माधो सों प्रीति।

फिर इनसे कहा गया कि कुछ शाहनशाह का गुणानुवाद गाइये। उस पर इन्होंने यह पद गाया।

केदारा

नाहिंन रह्यो मन में ठौर।
नन्दनन्दन अछत कैसे आनिये उर और॥1॥
चलत चितवत दिवस जागत सुपन सोवत राति।
हृदय तें वह मदन मूरति छिनु न इत उत जाति॥2॥
कहत कथा अनेक ऊधो लोग लोभ दिखाइ।
कहा करौं चित प्रेम पूरन घट न सिन्धु समाइ॥3॥
श्यामगात सरोज आनन ललित गति मृदु हास।
'सूर' ऐसे दरस कारन मरत लोचन खास॥4॥

फिर सम्वत 1620 के लगभग श्रीगोकुल में इन्होंने इस शरीर को त्याग किया। सूरदासजी ने अन्त समय यह पद किया था।

बिहाग

खंजन नैन रूप रस माते।
अतिसय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते॥
चलि चलि जात निकट श्रवनन के उलटि फिरत ताटंक फंदाते।
'सूरदास' अंजन गुन अटके नातरु अब उड़ि जाते॥

दोहा

मन समुद्र भयो सूर को; सीप भए चख लाल।
हरि मुक्ताहल परतहीं, मूंदि गए तत् काल॥

संसार में जो लोग भाषा काव्य समझते होंगे वे सूरदासजी को अवश्य जानते होंगे और उसी तरह जो लोग थोड़े बहुत भी वैष्णव होंगे वे इनका थोड़ा बहुत जीवन चरित्र अवश्य जानते होंगे। चौरासी वार्ता, उस की टीका, भक्तमाल और उस की टीकाओं में इनका जीवन विवृत किया है। इन्हीं ग्रन्थों के अनुसार संसार को और

हम को भी विश्वास था कि ये सारस्वत ब्राह्मण हैं, इनके पिता का नाम रामदास, इनके माता पिता दरिद्री थे, ये गऊघाट पर रहते थे, इत्यादि। अब सुनिए, एक पुस्तक सूरदासजी के दृष्टिकूट पर टीका [टीका भी सम्भव होता है उन्हीं की, क्यौंकि टीका में जहां अलंकारों के लक्षण दिए हैं वह दोहे और चौपाई भी सूर नाम से अंकित हैं] मिली है। इस पुस्तक में 116 दृष्टिकूट के पद अलंकार और नायिका के क्रम से हैं और उन का स्पष्ट अर्थ और उनके अलंकार इत्यादि सब लिखे हैं। इस पुस्तक के अन्त में एक पद में कवि ने अपना जीवनचरित्र दिया है, जो नीचे प्रकाश किया जाता है। अब इस को देख कर सूरदासजी के जीवनचरित्र और वंश को हम दूसरी ही दृष्टि से देखने लगे। वह लिखते हैं कि 'प्रथजगात'[1] प्रार्थज गोत्र वंश में इनके मूल पुरुष ब्रह्मराव[2] हुए जो बड़े सिद्ध और देवप्रसादलब्ध थे। इनके वंश में भौचन्द[3] हुआ। पृथ्वीराज[4] ने जिस को ज्वाला देश दिया; उस के चार पुत्र, जिन में पहिला राजा हुआ। दूसरा गुणचन्द्र। उस का पुत्र सीलचन्द्र उस का वीरचन्द्र। यह वीरचन्द्र रत्नभ्रमर (रणथम्भौर) के राजा प्रसिद्ध हम्मीर[5] के साथ खेलता था। इस के वंश में हरिचन्द्र[6] हुआ। उस के पुत्र को सात पुत्र हुए, जिनमें सबसे छोटा (कवि लिखता है) मैं सूरजचन्द था। मेरे छह भाई मुसलमानों के युद्ध[7] में मारे गए। मैं अन्धा कुबुद्धि था। एक दिन कुएं में गिर पड़ा, तो सात दिन तक उस (अन्धे) कुएं में पड़ा रहा, किसी ने न निकाला। सातएं दिन भगवान ने निकाला और अपने स्वरूप का (नेत्र देकर) दर्शन कराया और मुझ से बोले कि वर मांग। मैंने वर मांगा कि आप का

---

1. 'प्रथजगात' इस जाति वा गोत्र के सारस्वत ब्राह्मण सुनने में नहीं आए। पंडित राधाकृष्ण संगृहीत सारस्वत ब्राह्मणों की जाति माला में 'प्रथजगात', 'प्रथ' वा 'जगात' नाम के कोई सारस्वत ब्राह्मण नहीं होते। जगा वा जगातिआ तो भाट को कहते हैं।
2. ब्रह्मराव नाम से भी सन्देह होता है कि यह पुरुष या तो राजा रहा हो या भाट।
3. 'भौ' का शब्द हुआ अर्थ में लीजिए तो केवल चन्द्र नाम था। चन्द्र नाम का एक कवि पृथ्वीराज की सभा में था? आश्चर्य्य!!!
4. पृथ्वीराज का काल सन 1176।
5. हम्मीर चौहान, भीमदेव का पुत्र था। रणथम्भौर के किले में इसी की रानी इस के अलाउद्दीन (दुष्ट) के हाथ से मारे जाने पर सहस्रावधि स्त्री के साथ सती हुई थी। इसी का वीरत्व यश सर्व्वसाधारण में 'हमीर हठ' के नाम से प्रसिद्ध है (तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजी बार)। इसी की स्तुति में अनेक कवियों ने वीर रस के सुन्दर श्लोक बनाए हैं। "मुंचति मुंचति कोषं भजति च भजति प्रकम्पमरिवर्ग। हम्मीर वीर खड्ग त्यजति च त्यजति क्षमामाशु।" इस का समय सन 1290 (एक हमीर सन 1192 में भी हुआ है।)
6. सम्भव है कि हरिश्चन्द के पुत्र का नाम रामचन्द्र रहा हो, जिसे वैष्णवों ने अपनी रीति के अनुसार रामदास कर लिया हो।
7. उस समय तुग़लकों और मुगलों का युद्ध होता था।

रूप देख कर अब और रूप न देखें और मुझ को दृढ़ भक्ति मिले और शत्रुओं[1] का नाश हो। भगवान ने कहा ऐसा ही होगा। तू सब विद्या में निपुण होगा। प्रबल दक्षिण के ब्राह्मण कुल[2] से शत्रु का नाश होगा और मेरा नाम सूरजदास, सूर, सूरश्याम इत्यादि रख कर भगवान अन्तर्ध्यान हो गए। मैं व्रज में बसने लगा। फिर गोसाईं[3] ने मेरी अष्टछाप[4] में थापना की इत्यादि। इस लेख से और लेख अशुद्ध मालूम होते हैं, क्योंकि जैसा चौरासी वार्त्ता की टीका में लिखा है कि दिल्ली के पास सीही गांव में इनके दरिद्र माता पिता के घर इनका जन्म हुआ, यह बात नहीं आई। वह एक बड़े कुल में उत्पन्न थे और आगरे वा गोपाचल में इनका जन्म हुआ। हां, यह मान लिया जाय कि मुसलमानों के युद्ध में इतने भाइयों के मारे जाने के पीछे भी इनके पिता जीते रहे और एक दरिद्र अवस्था में पहुंच गए थे और उसी समय में सीही गांव में चले गए हों तो लड़ मिल सकती है। जो हो, हमारी भाषा कविता के राजाधिराज सूरदासजी एक इतने बड़े वंश के हैं, यह जान कर हमको बड़ा आनन्द हुआ। इस विषय में कोई और विद्वान् जो कुछ और विशेष पता लगा सकें तो उत्तम हो।

भजन

प्रथमही प्रथ जगत में प्रगट अद्भुत रूप।
ब्रह्मराव विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप॥
पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुर पाय।
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय॥
पारि पायन सुरन के सुर सहित अस्तुति कीन।
तासु वंश प्रसिद्ध में भौचन्द चारु नवीन॥
भूप पृथ्वीराज दीन्हों तिन्हें ज्वाला देस।
तनय ताके चार कीन्हों प्रथम आप नरेस॥

---

1. शत्रुओं से लौकिक अर्थ लीजिए तो मुग़लों का कुल [इससे सम्भव होता है इन के पूर्व्वपुरुष सदा से राजाओं का आश्रय करके मुसल्मानों को शत्रु समझते थे या तुग़लकों के आश्रित थे, इस से मुग़लों को शत्रु समझते थे], यदि अलौकिक अर्थ लीजिए तो काम क्रोधादि।
2. सेवाजी के सहायक पेशवा का कुल, जिसने पीछे मुसल्मानों का नाश किया। अलौकिक अर्थ लीजिए तो सूरदासजी के गुरु श्री वल्लभाचार्य दक्षिण ब्राह्मण कुल के थे।
3. 'गोसाईं' श्री बिट्ठलनाथजी, श्री वल्लभाचार्य के पुत्र।
4. अष्टछाप यथा सूरदास, कुम्भनदास, परमानन्द दास और कृष्णदास ये चार महात्मा आचार्य्यजी के सेवक और छीत स्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुज दास और नन्ददास ये गोसाईंजी के सेवक। ये आठों महाकवि थे।

दोहा

श्री वल्लभाचार्य के, चारि शिष्य सुखरास।
परमानन्दऽरु सूर पुनि, कृष्णऽरु कुम्भनदास॥1॥
विट्ठलनाथ गोसाईं के, प्रथम चतुर्भुज दास।
छीतस्वामि, गोविन्द पुनि, नन्ददास सुख बास॥2॥

दूसरे गुनचन्द ता सुत सीलचन्द सरूप।
बीरचन्द प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप।।
रत्नभौंर हमीर भूपति संग खेलत आय।
तासु वंश अनूप भा हरिचन्द अति विख्याय।।
आगरे रहि गोपचल में रहौ ता सुत वीर।
पुत्र जनमें सात ताके महा भट गम्भीर।।
कृष्णचन्द, उदारचन्द जु, रूपचन्द सुभाइ।
बुद्धिचन्द प्रकाश चौथौ चन्द भे सुखदाइ।।
देवचन्द प्रबोध संसृत चन्द ताको नाम।
भयो सप्तो नाम सूरज चन्द मन्द निकाम।।
सो समर करि स्याहि सेवक गए विधि के लोक।
रहो सूरज चन्द दृग ते हीन भरि वर सोक।।
परो कूप पुकार काहू सुनी ना संसार।
सातएं दिन आइ जदुपति कीन आपु उधार।।
दियो चख दै कही सिसु सुनु मांगु वर जो चाइ।
हौं कही प्रभु भगति चाहत, शत्रु नाश सुभाइ।।
दूसरो ना रूप देखौं देखि राधास्याम।
सुनत करुनासिन्धु भाख्यो एवमस्तु सुधाम।।
प्रबल दच्छिन विप्रकुल तें सत्रु ह्वै है नास।
अषित बुद्धि बिचारि विद्यामान माने सास।।
नाम राखो मोर सूरजदास, सूर सुश्याम।
भए अन्तरधान बीते पाछली निसि जाम।।
मोहि पन सोइ है व्रज की बसे सुखि चित थाप।
थापि गोसाईं करी मेरी आठ मद्धे छाप।।
विप्र प्रथ जगात को है भाव भूरि निकाम।
सूर है नन्दनन्द जू को लयो मोल गुलाम।।

सुकरात

इतिहासों से प्रगट है कि यूनान देश प्राचीन काल में हर तरह की विद्या, शिल्प, विज्ञान आदि के लिए अति प्रसिद्ध था, वरन् हर एक विद्याओं की खान या उत्पत्ति भूमि कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा। वहीं के बड़े बड़े विद्वान् और विज्ञानियों में एक सुकरात भी था। यह ईसाई सन 471 वर्ष पहिले आसीनिया[1] नगर में पैदा हुआ था और 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' वाली कहावत के अनुसार छोटी ही उमर में अपने बाप के सौदागरी पेशे का काम झटपट सीख सिखाय भलीभांति प्रखर हो गया। तब यह हर तरह की विद्याओं के सीखने में प्रवृत्त हुआ और अपना समय यूनान देश के विद्वानों में काटने लगा, जिन के सतसंग से कुछ दिनों के उपरान्त अपनी विमल बुद्धि के कारण यह सम्पूर्ण विद्या, विज्ञान और शिल्पशास्त्र में भली भांति कुशल हो यूनान के बड़े बड़े विद्वान् और दार्शनिकों से भी वाद विवाद में भिड़ जाता था। उनका पक्ष खंडन कर अपनी बात अनेक युक्तियों से सिद्ध करता था। यहां तक कि कुछ दिनों में सम्पूर्ण यूनान भर में इस की लोकोत्तर चमत्कार बुद्धि की धूम मच गई। एक बार सुकरात का बाप कहीं बाहर सफर को जाते समय इसे चार हजार तूर, जो उस समय का यूनानी सिक्का था, इस के निज के खर्च के लिए दे गया था। पर इस ने उन सब रुपयों को बतौर ऋण के अपने एक मित्र को दे दिया। उस ने रुपये इसे फिर लौटा कर न दिए, पर सुकराज ने इस बात का कुछ भी खयाल न किया और न रुपये उस से कभी मांगे। मेसिडोनिया का राजा आर्केलीस ने बहुत कुछ चाहा कि सुकरात एक बार उस से किसी बात के लिए कुछ कहे, पर इस ने कभी इस बात की ओर ध्यान भी न किया। इस बुद्धिमान हकीम में धीरज इतना था कि किसी तरह की तकलीफ या रंज जो इस पर आ पड़ते थे तो यह किसी प्रकार और लोगों को उस मानसी व्यथा को नहीं प्रगट होने देता था। उस के मन की सब से बड़ी अभिलाषा जिसके लिए वह अत्यन्त लौलीन रहा किया यह थी कि जिस तरह हो सकै हम अपनी जन्मभूमि को कुछ फायदा पहुंचा सकैं

---

[1] यह 469 ई. पूर्व में एथन्स नगर में पैदा हुआ था। [सं.]

और सब लोग कुमार्ग से बच सच्चे और सीधे राह पर चलैं, एक दूसरे की बुराई कभी न चेतैं। यद्यपि इस सज्जन पुरुष ने कोई स्कूल या वाज करने को कोई जगह नहीं बनवाया पर अक्सर जहां लोगों की बहुत भीड़ भाड़ रहती उन के बीच यह खड़ा हो घंटों तक सदुपदेश किया करता था और दिन रात मनसा वाचा कर्मणा अपने देश के लोगों के हित में तत्पर रहा। हकीम अफलातून सुकरात का बहुत बड़ा शागिर्द था। मरती बार सुकरात ने तीन बात के लिए अपनी प्रसन्नता प्रगट की और हाथ जोड़ कर कहा, हे जगदीश्वर, मैं तुझे कोटि धन्यवाद देता हूं कि तूने मुझे बातों के मर्म समझने की बुद्धि दी, यूनान ऐसे देश में जन्म दिया और अफलातून ऐसा शिष्य मुझे दिया। एक दिन अट्टिका का राजा अलसीबिडीस बड़े घमंड में भर यह दून हांक रहा था कि मेरे पास बड़ा धन है और मैं बड़े भारी राज्य का स्वामी हूं। जब सुकरात ने उस की यह घमंड की बात सुनी उस से कहा, अलसीबिडीस, तनिक इधर आ और भूगोल के नकशे की ओर ध्यान कर, और बता तेरा राज्य अट्टिका कहां पर है। जब उस ने नक्शे को देखा, घमंड के नशे में जो चूर चूर था सब उतर गया और उस की आंख खुल गई। सिर नीचा कर कहा कि मेरा मुल्क यूनान, जो सम्पूर्ण यूरोप का एक छोटा सा देश है, उस को भी एक अत्यन्त छोटा प्रदेश है। उस की यह बात सुन सुकरात ने कहा, तो ऐ प्यारे, फिर क्यों इतनी दूर की हांक रहा है? घमंड बहुत बुरा होता है; सर्व शक्तिमान जगदीश्वर के करतब से इस भूमंडल पर एक से एक चढ़ बढ़कर पड़े हैं, उन के सामने तू किस गिनती में है? थोड़े दिन बाद यूनान के बहुत से अत्याचारी निष्ठुर मनुष्यों ने ईर्ष्या में उनहत्तरवें वर्ष में सुकरात पर यह दोष लगाया कि यह बुड्डा असीना नगर के नव युवा लोगों को बुरे चाल चलन की ओर रुजू करता है, उन के बाप दादाओं के पुराने बर्त्ताव और मत से हटाकर उन्हें नास्तिक बनाया चाहता है और उन के देवी देवताओं की निन्दा करता है। इन दोषों के कारण वह अदालत के सुपुर्द हुआ। अदालत ने इसे विष पीकर मर जाने की सजा तजबीज की। उस निर्दोषी पर प्राणान्त दंड की सजा का हुकुम सुन जब सब उस के बन्धु भाई और मित्र विलाप कर और पछता रहे थे, सुकरात अत्यन्त धैर्य के साथ विष का प्याला उठा कर घूंट गया और अपने मरने तक सबों को सदुपदेश देता रहा। जब विष इस के सर्वांग में व्याप्त हो गया, यहां तक कि बोल भी न सकता था, तब इस ने आंख बन्द कर ली और सिधार गया।

महाराजाधिराज नेपोलियन

9वीं जनवरी सन 1873 ई. को 12 बज के 25 मिनट पर महाराजाधिराज तृतीय नेपोलियन ने इस असार संसार को त्याग किया। जो मनुष्य मरने के अढ़ाई वर्ष पूर्व्व एक प्रधान देश का राजा और संसार के सब मनुष्यों में मुख्य वीर और बुद्धिमान था और पांच लाख योद्धा जिस के साथ चलते थे और जिस ने एक सामान्य मेला किया था उस में सारे संसार के राजा और महाराज दौड़े आए थे, वही नेपोलियन इंगलैंड के एक गांव में एक छोटे घर में मरा!!! इस से बढ़ के और क्या दुःख होगा कि जिस के एक खेल में रूम और रूस के महाराज पारिस की गलियों में दौड़ते थे, उस के शव के साथ वही ग्राम निवासी लोग!!! क्यौं धन के अभिमानियो! तुम अब भी अपने धन का अभिमान करोगे और अपने से छोटों को दुःख देने में प्रवृत्त होगे? यह वही नेपोलियन है, जिस का दादा ऐसा प्रतापी था, जिस ने सारे यूरप को हिला दिया था और सब अंगरेज़ों को दांतों चने चबवा दिए थे। जर्मनी के युद्ध में नेपोलियन पराजित हुआ, इस का कुछ शोचं नहीं, क्यौंकि जिस काल में नेपोलियन के स्थान का वा उस की समाधि का वा उस युद्धस्थान का भी चिह्न न मिलैगा, उस समय तक उन का नाम वर्त्तमान रहैगा।

महाराज नेपोलियन चिजिलहर्स्ट नामक स्थान में गाड़े गए। उस समय बोनापार्ट के वंश के सब लोग और पारिस के समस्त शिल्पविद्या के गुणियों का समाज विमान के आगे था। लार्ड साइडनी और लार्ड स्फील्ड महारानी विक्टोरिया और युवराज की ओर से आए थे और पचास सहस्र मनुष्य केवल कौतुक देखने को एकत्र थे और राजकुमार और विधवा महारानी भी साथ थीं। शव को समाधि करने के पीछे बोनापार्ट के वंश के सब लोगों ने राजकुमार को पिता के स्थानापन्न भाव से वन्दना किया। इंगलैंड, रूस इत्यादि सब राजकीय कार्यालय दस दिवस तक शोक भेष में रहे।

हम को लिखने में अत्यन्त खेद होता है कि पृथ्वी पर का एक महा विख्यात पुरुष समाप्त हुआ। इस मनुष्य की सब आयुष्य प्रारम्भ से अन्त तक चमत्कारिता और फेरफार की एक विलक्षण शृंखला थी। कुछ काल तक राजा और कुछ काल तक रंक साम्प्रत सब पराक्रमी राजा उस का आदर करते थे, तो क्या अब उस को

तुच्छ मानकर उस की अप्रतिष्ठा करनी चाहिए?

यद्यपि वे राजसिंहासन पर न थे और इंगलैंड में केवल एक साधारण मनुष्य के समान रहते थे तथापि उन के मरण की दुःखवार्त्ता श्रवण कर के राजकीय और राजसभा के अधिकारियों के चित्त अवश्य चकित होंगे और फ्रांस के राज्य-प्रबंधों में इन के मृत्यु से कुछ विलक्षण फेरफार होगा। यह नेपोलियन फ्रेंच लोगों के मुख्य महाराज थे और इन को तीसरे नेपोलियन कहते थे और बड़े नेपोलियन बोनापार्ट के भतीजे थे। इन का जन्म 20 अप्रैल सन 1808 ई. में फ्रांस देश में हुआ था और इन के पिता का नाम लुई बोनापार्ट था, जो लालैंड के महाराज थे। जब यह सात वर्ष के हुए थे तब प्रथम नेपोलियन का अन्त वा पराभव हुआ था। अनन्तर इन को और इन के माता को फ्रांस छोड़ कर के अन्य देश में जाना पड़ा। इन्होंने स्विट्ज़रलैंड में विद्याभ्यास आदि किया। पीछे इनको वहां की सेना में रहने की आज्ञा मिली। कुछ दिवस पर्यन्त थन सरोवर के तट के तोपखाने में अभ्यास किया। तदनन्तर सन 1830 में फ्रांस देश में राज्य सम्बन्धी हलचल देख कर के फिर अपने स्वदेश में आने का उद्योग किया परन्तु वह सफल न हुआ; उलटी सीमा के बाहर रहने की आज्ञा हुई। एक वर्ष के अनन्तर स्विट्ज़रलैंड छोड़ कर के टस्कनी में जाकर रहना पड़ा और रोम के युद्ध में मिल गए। इतने में उनके ज्येष्ठ भ्राता का देहान्त हुआ। फिर वहां से निकल कर इंगलैंड में जाकर रहे। सन 1832 से सन 1835 पर्यन्त काल ग्रन्थ लिखने में व्यतीत किया। इसी काल में उनके चचेरे भाई, प्रथम नेपोलियन के पुत्र नेपोलियन की सहायता करके उसे दूसरा नेपोलियन कहला कर राजसिंहासन पर बैठावें, फ्रांस देश के कई एक मुख्य निवासियों के चित्त में यह बात आई थी और फ्रांस के सीमा तक आगमन की इच्छा करते थे तो इतने में उनका भी देहान्त हुआ, इस से फ्रांस के राजसिंहासन पर बैठने का अधिकार उक्त नेपोलियन को प्राप्त हुआ और वह सम्पादन करने का विचार उनके चित्त में आया। सन 1836 पर्यन्त प्रयत्न कर के स्ट्रासबर्ग पर चढ़ाई किया, परन्तु यह प्रयत्न सफल न होकर आप ही पकड़े गए। अन्त में पारिस में उन को ले गए। उनकी माता और दूसरे महाशयों के उद्योग से इनका प्राण बचा और ये यूनाइटेड स्टेट्स भेजे गए। वहां एक दो वर्ष रह कर स्विटज़रलैंड में लौट आए, तो वहां उनके माता का देहान्त हुआ। सन 1838 में उनकी अनुमति से एक महाशय ने स्ट्रासबर्ग के चढ़ाई का वर्णन लिखा, इस से फ्रेंच सरकार को बड़ा खेद हुआ और उक्त महाशय को दंड दिया और नेपोलियन को स्विट्ज़रलैंड से निकाल देने के हेतु वहां के सरकार को लिख भेजा। परन्तु नेपोलियन आप ही स्विट्ज़रलैंड छोड़ कर पुनः इंगलैंड में गए। वहां दो वर्ष रह कर सन 1840 में फ्रांस का राज्य मिलने के हेतु प्रयत्न करते रहे और बोलोन पर चढ़ाई किया, परन्तु वह भी प्रयत्न निष्फल हुआ और पकड़े गए और इनके सहकारी जितने मनुष्य थे सभी को जन्म भर के हेतु वहां के दुर्ग में कारागार हुआ। इस दुर्ग में छः वर्ष पर्यन्त रहे।

अनन्तर सन 1846 के मई महीने के 25वीं तारीख को अपूर्व्व वेश धारण करके बेलजियम से भाग कर फिर इंगलैंड में गए। सन 1848 ई. के फ्रांस के युद्ध तक वहां रहे। इस युद्ध के समय फ्रांस के निवासियों ने इनको नेशनल असेम्बली का सभासद नियत किया। तदनन्तर उन्हीं महाशयों ने इनको अध्यक्ष नियत किया। तारीख 2 दिसम्बर सन 1851 को उन्होंने कई महाशयों के विचार से और पारिस के सर्व्व प्रसिद्ध राजकीय महाशयों को घेर कर कारागार में डाल दिया और नेशनल असेम्बली को तोड़ करके स्वतः मुख्याधिकारी डिक्टेटर नाम से आप प्रसिद्ध हुए। कुछ सेना मार्ग में रख कर प्रबन्ध करने के अनन्तर 'सकल देश का हम को दस वर्ष अध्यक्ष का अधिकार मिला' यह प्रसिद्ध किया और उन्हीं के इच्छानुसार सब अधिकार उन को प्राप्त हुआ और उन्होंने फ्रेंच लोगों की सम्मति से तारीख 2 दिसम्बर सन 1852 को अपने को महराज तीसरा नेपोलियन कहवाया।

इंगलैंड के सरकार ने प्रथम उनको मान्य किया और पश्चात् यूरोपियन सब राजाओं ने धीरे धीरे उनको फ्रेंच का महाराज कहना स्वीकार किया। सन 1853 के जनवरी की 13 तारीख को उन्होंने विवाह किया। तदनन्तर 1854 में रशिया के युद्ध का आरम्भ हुआ और सन 1856 में समाप्त हुआ। इस युद्ध से उनकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई। सन 1859-60 इस वर्ष में उन्होंने विक्टर इमानुअल की सहायता कर के इटली को आस्ट्रिया के अधिकार से निकाल कर स्वतन्त्र किया और आस्ट्रिया का पराभव करने से उनकी और भी विशेष प्रतिष्ठा बढ़ी और उनको कुछ देश भी इसी कारण मिला। इसी समय में महाराज नेपोलियन ने अत्युच्च पद की प्राप्ति किया, यह समझना चाहिए। तदनन्तर मेक्सिको में इन्होंने प्रयत्न और लड़ाई कर के अपना राज्य स्थापन किया, परन्तु इसका परिणाम अत्यन्त दुःखकारक हुआ। अन्त में सन 1870 में प्रशिया और उनके युद्ध का आरम्भ होकर इन का भलीभांति पराभव ता. 2 सितम्बर सन 1870 में हुआ। तदनन्तर कुछ दिवस जरमनी के दुर्ग में बद्ध रह कर छूट गए। पश्चात् इंगलैंड में आप और अपनी रानी और पुत्र चिरंजीव प्रिंस नेपोलियन यह सब ता. 20 मार्च सन 1871 को एकत्र हुए। इस पुत्र का जन्म ता. 16 मार्च सन 1856 में हुआ था।[1] अन्त का समय उनका साधारण मनुष्य के समान परदेश में और परराष्ट्र में व्यतीत हुआ। उनको कई दिन से रोग हुआ, पर शास्त्रोपाय बहुत करते थे, परन्तु उस से कुछ न्यून न हुआ और बहुत कृश हो गए। तारीख 9 को दिन के साढ़े बारह बजे उनका देहान्त हुआ। जब ये राजसिंहासन पर थे इन्होंने रोम के प्रथम प्रख्यात महाराज जुलियस सीज़र का इतिहास लिखा। इन सब वृत्तान्त से स्पष्ट विदित होगा कि इन को जन्म भर फेरफार उलट पुलट करते व्यतीत हुआ; उनको भलीभांति स्वस्थता कभी नहीं हुई थी। प्रशियन लोगों से इनका पराभव होने तक

---

[1] इसका नाम यूजीन लईजीन जोसेफ नेपोलियन था। यह जूलू युद्ध में जून 1879 ई. में मारा गया था। [सं.]

सर्व पृथ्वी में इधर दस वर्ष पर्यन्त इनके समान बुद्धिमान और सर्व्व सामान्य गुणयुक्त दूसरा पुरुष नहीं हुआ। ऐसा लोग कहते हैं कि इनको शीघ्र इस दशा में पहुंचने का मुख्य कारण यही है कि इनसे कोई परोपकार नहीं हुआ और इनके हाथ जनरल वाशिंगटन के समान निष्काम और परोपकार से रहित थे और अपनी बुद्धि से कोई उत्तम कृत्य नहीं किया। इसी कारण इनकी कीर्त्ति का उदय और अस्त अन्तकाल में हुआ तथापि यह मनुष्य अति उच्च पद को प्राप्त कर के पतन हुआ और परिणाम अत्यन्त खेदजनक हुआ। इस से सकल मनुष्यों को खेद हुआ यह वार्ता प्रसिद्ध है।

महाराज जंगबहादुर

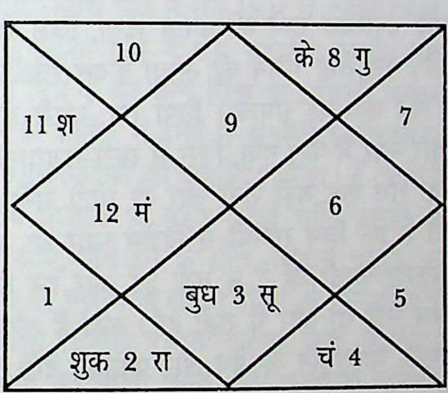

श्री मन्महाराज जंगबहादुर का बैकुंठवास होना सब पर विदित है और बहुत से समाचारपत्रों में यह समाचार प्रकाश हो चुका है, परन्तु हमारी लेखनी इस शोच से काले आंसुओं से न रुदन करै यह चित्त नहीं सहन कर सकता। बादशाह रंजीत सिंह को सब लोग भारतवर्ष का अन्तिम मनुष्य कहते थे, परन्तु महाराज जंगबहादुर ने अपने अप्रमेय बल से उन्हीं लोगों से यह कहलाया कि महाराज जंगबहादुर भी हिन्दुस्तान में एक मनुष्य हैं। पूर्वोक्त महाराज ने 1877 फरवरी की पचीसवीं तारीख को बीर प्रसू भारतभूमि को पुत्रशोक दिया। यों तो अनेक जननी यौवन कुठार नित्य जनमते और मरते हैं, पर यह एक ऐसा पुरुष मरा कि भारतवर्ष के सच्चे हितकारी लोगों का जी टूट गया। भादों की गहरी अंधेरी में एक दीप जो टिम टिम करके झिलमिला रहा था, वह भी बुझ गया। क्या इस अभागिन भारतमाता को फिर ऐसे पुत्र होंगे? नीति के तो मानो ये मूर्तिमान अवतार थे। ऐसे प्रदेश में रहकर जो चारों ओर भिन्न भिन्न राज्यों से घिरा हो, स्वामी की उन्नति साधन करते हुए आसपास के कठिन महाराजों को प्रसन्न रखना नीति सूत्र के परम चतुर सूत्रधार का काम है। हम लोगों के भाग्य ही ऐसे हैं; यह रोना कहां तक रोएं।

पूर्वोक्त महाराज प्रतिवर्ष की भांति दौरा करते हुए शिकार खेलते थे कि एकाएक सुगौली में जा पहुंचे तो रोगाक्रान्त हो गए। कहते हैं कि उबान्त और दस्त होने

से एक साथ बहुत व्याकुल हो गए और उसी समय कहारों को आज्ञा दी कि बाधमति गंगा पर पालकी ले चलो। बड़ी महारानी महाराज के साथ थीं और उन्होंने अत्यन्त सावधानी से अपने जगत् विख्यात प्राणपति की उभयलोकसाधिनी अन्तिम सेवा की। कहारों के बदले पालकी क्षत्रियों ने उठाई थी। जब नदी पर सवारी पहुंची तब दानादिक कर के महाराज ने इस असार संसार का त्याग किया। उन के भाई जनरल रणोद्वीप सिंह बहादुर उसी समय काठमांडू गए और महाराज से एकान्त में यह शोक समाचार कहा। महाराजाधिराज ने उसी समय उन को महाराजगी का पद और उन के भाई को जो जो अधिकार प्राप्त थे सब दिए। महाराज रणोद्वीप सिंह ने बाहर आकर चालीस हजार सेना में से बीस हजार को बाहरी और सीमा के प्रान्तों पर और बीस हजार को नगर के चारों ओर उपस्थित रहने की आज्ञा दिया, जिस से किसी प्रकार के उपद्रव की शंका न हो। इस सेना भेजने की आज्ञा केवल स्वकीय रक्षा के निमित्त थी। राजधानी में दो दिन तक यह समाचार छिपा रहा, दूसरी रात्रि को एक साथ यह वज्रपात सा समाचार नगर में फैल गया, जिस़ से सारी राजधानी में महा हाहाकार फैल गया। महाराज के संग एक बड़ी रानी और दो छोटी रानी अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक सती हुईं। कहते हैं कि जिन रानियों से विशेष प्यार था और सदा महाराज के साथ सती होना प्रकाश करती थीं वे न सती हुईं और इन दोनों छोटी रानियों से प्रकाश में प्रेम विशेष नहीं था और ये सती हुईं। कहां हैं और देश की स्त्रियां, आवैं, और आंख खोलकर भारतभूमि का प्रेम और पातिव्रत देखैं और लाज से सिर झुका लें।

जज्ज द्वारकानाथ मित्र

स्वर्गीय आनरेबुल द्वारकानाथ मित्र ने सन 1831 में हुगली जिला के अन्तर्गत आपता से एक कोस दूर अगुनाशी गांव में एक साधारण हुगली और हबड़ा की कचहरी के मुख़्तार विश्वनाथ मित्र के घर जन्म लिया था। बंगाली पाठशाला और हुगली ब्रांच स्कूल में पढ़कर हुगली कॉलेज में इन्हों ने अंगरेजी विद्याध्ययन कर के अपनी बुद्धि के चमत्कार से सब शिक्षकादिकों को अचम्भित किया। ये अंगरेजी भाषा की पारंगतता के अतिरिक्त हिसाब किताब भी बहुत अच्छी भांति जानते थे। हुगली कॉलेज से ये हिन्दू कॉलेज में आए, जब इन के शील, औदार्य चातुर्य, स्वातन्त्र्य इत्यादि गुण सब छोटे बड़े के चित्त पर भलीभांति खचित हो गए थे। हुगली कॉलेज में मुख्य छात्रवृत्ति पाना तथा अपने पहिले ही लेख पर पारितोषिक पाना, कौन्सिल ऑफ एजुकेशन के रिपोर्ट में इनकी स्थिति का लिखा जाना, और कलकत्ता युनिवर्सिटी के फेलोशिप के हेतु इन का चुना जाना ही इन के गुणों और विद्या का प्रत्यय देता है। एक कानूनी मनुष्य के पुत्र होने के कारण इन की चित्तवृत्ति एक साथ कानून की ओर फिरी और उस में योग्य क्षमता पाकर सन 1856 में ये वकीली की परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और उसी वर्ष के मार्च में अपना वर्त्तमान इंटरप्रिटर का पद छोड़कर इन्होंने सदर कचहरी में वकीली करना आरम्भ किया। इन्हों ने केवल अपने व्यय से एक औषधालय नियत किया और द्रव्यहीन छात्रों को उत्तम परीक्षा होने तक सहायता करते थे और इन के सत्यप्रियता, निष्पक्षपातिता, दीनों पर दया, मुकद्दमों के सूक्ष्म भावार्थों की समुझ और कार्य्य में चातुर्य्य इत्यादि गुण हाकिमों से लेकर चपरासियों तक विदित हो गए थे। और जज्ज लोग इन को विवाद की जड़ समझने और समझाने से बहुत ही प्यार करते थे। विशेष करके आनरेबुल पंडित शम्भूनाथ अपनी वकीली से लेंकर के जज्ज होने की अवस्था तक इन्हें बहुत प्यार करते थे। ठकुरानी दासी के कर सम्बन्धी बड़े मुकद्दमे में 15 जज्जों के फुलबेंच के सामने मिस्टर डाइन ऐसे प्रसिद्ध वकील और अनेक अंगरेज वकीलों को सात दिन तक अनवरत वाग्धारा वर्षण से और कानून सम्बन्धी सूक्ष्म बातों की झर से परास्त कर के हिन्दू वकीलों में इन्हों ने चिरकीर्ति का ध्वज स्थापित किया[1] और गवर्नमेंट की इन पर विशेष दृष्टि से उस समय में

---

[1] सन 1865 ई. में। (सं.)

जबकि इन की आमदनी एक लाख रुपये साल की थी, ये गवर्नमेंट के मुख्य वकील हुए और पंडित शम्भूनाथ के मृत्यु पर सन 1867 में ये बिना इच्छा किए भी जस्टिस पीकॉक की प्रार्थनानुसार गवर्नमेंट से प्रधान जज्ज नियत किए गए और विचारासन पर बैठ कर जैसी योग्यता और शुद्ध चित्त से सावधान होकर इन्होंने काम किया वह हिन्दूसमाज में चिरस्मरणीय है। जस्टिस पीकाक के अतिरिक्त कोई जज इनकी योग्यता के तुल्य नहीं गिने जाते थे और एक व्यभिचारिणी के दाय भाग के बड़े मुकद्दमे के समय बीमार होकर सात बरस जज्जी का काम करके अपने ग्राम में अपनी वृद्धा माता, तीसरी स्त्री, दो बालक और दो विवाहिता बालिका को छोड़ कर ये भारतवर्ष को शून्य करके अपनी 43 वर्ष की अवस्था में ता. 25 फरवरी सन 1874 बुध के दिन परलोक को सिधारे।

श्री राजाराम शास्त्री

श्रीयुत् पंडितवर राजाराम शास्त्री वेद श्रौतादि विविध विद्यापारीण श्रीयुत् गोविन्दभट्ट कार्लेकर के तीन पुत्रों में कनिष्ठ थे। जब ये दस वर्ष के लगभग थे तब इन के पितृचरण परलोक को सिधारे। फिर त्रिलोचन घाट पर एक ऋषितुल्य महातपस्वी श्रीयुत् रानडोपनामक हरिशास्त्री विद्वान् ब्राह्मण रहते थे, उन के पास इन्होंने अपनी तरुण अवस्था के प्रारम्भ में काव्य और कौमुदी पढ़ कर आस्तिकनास्तिको भयविध द्वादश दर्शनाचार्यवर्य परम मान्य जगद्विदितकीर्ति श्रीयुत् दामोदर शास्त्रीजी के पास तर्कशास्त्राध्ययन प्रारम्भ किया। थोड़े ही दिनों में इन की अतिलौकिक प्रतिभा देख कर इन को उक्त शास्त्रीजी महाशय ने अपनी वृद्ध अवस्था के कारण पढ़ाने का आयास अपने से न हो सकैगा, जानकर श्रीमान् कैलास निवास परमानन्दनिमग्न दिगंगनाविख्यात यशोराशि प्रसिद्ध महा पंडितवर्य श्रीयुत् काशीनाथ शास्त्रीजी के, जिन के नाम श्रवणमात्र से सहृदय पंडितवर समूह गद्गद होकर सिर डुलाते हैं, स्वाधीन कर दिया। और इन के प्रतिभा का अत्यन्त वर्णन कर के कहा कि मैं एक रत्न आप को पारितोषिक देता हूं जो आप के सुविस्तीर्ण शाखाकांडमंडित कुसुमचयाकीर्ण यशोवृक्ष को अपनी यशश्चन्द्रिका से सदा अम्लान और प्रकाशित रक्खैगा। फिर इन्होंने उक्त महाशय के पास व्याकरणादि विविध शास्त्र पढ़ कर चित्रकूट में जाकर उत्तम उत्तम पंडितों के साथ विप्रतिपत्तियों में अत्युत्तम प्रतिष्ठा पाई और श्रीमंत विनायक राव साहेब ने बहुत सम्मान किया। फिर जब संस्कृतादि विविध विद्या कलादि गुण गण मंडित श्रीमान् जान म्यूर साहब श्री काशी में आए और पाठशाला में विविध विद्या पारंगत पंडिततुल्य विद्यार्थियों की परीक्षा ली तब उक्त शास्त्रीजी महाशय के विद्यार्थीगण में इन की अद्भुत प्रतिभा और अनेक शास्त्रोपस्थिति देख प्रसन्न होकर केवल इस अभिप्राय से कि ऐसे उत्तम पंडित रत्न का अपने पास रहना यशस्कर है और आजमगढ़ के जिले में उक्त साहेब महाशय प्राड्विवाक थे इसलिए कहीं कहीं हिन्दू धर्म्म शास्त्र के अनुसार निर्णय करने के विमर्श में और उन की बनाई हुई अनेक सुंदर सुंदर कविता के परिशोधन में सहायता के लिए इन को अपने साथ ले गए। उन के साथ चार पांच वर्ष के लगभग रहकर ग्वालियर में गए। वहां बहुत से उत्तम उत्तम पंडितों के

साथ शास्त्रार्थ में परम प्रतिष्ठा और राजा की ओर से अत्युत्तम सन्मान पूर्वक बिदाई पाकर सम्वत 1912 के वर्ष में काशी आए। तब यद्यपि विधवोद्वाहशंकासमाधि अर्थात् पुनर्विवाह खंडन श्रीमान् परम गुरु श्री काशीनाथ शास्त्रीजी तैयार कर चुके थे तथापि उस को इन्हों ने अपूर्व अपूर्व अनेक शंका और समाधानों से पुष्ट किया। इसी कारण उक्त शास्त्रीजी महाराज ने अपने नाम के पहिले इन्हीं का नाम उस ग्रन्थ पर लिख कर प्रसिद्ध किया। सम्वत 1913 के वर्ष के अन्त में श्रीमान् यशोमात्रा विशेष वालंटेन साहेब महाशय ने सांख्यशास्त्राध्यापन के कार्य्य में इन को नियुक्त किया। उस कार्य्य पर अधिष्ठित होकर सपरिश्रम पाठन आदि में अनेक विद्यार्थियों को ऐसे व्युत्पन्न किया जिन की सभा में तत्काल अपूर्व कल्पनाओं को देख कर प्राचीन प्रतिष्ठित पंडित लोग प्रसन्न होकर श्लाघा करते थे। सम्वत 1920 के वर्ष में राजकीय श्री संस्कृत पाठशालाध्यक्ष श्रीमान् ग्रिफिथ साहेब महाशय ने इन को धर्मशास्त्राध्यापक का पद दिया। तब से बराबर पढ़ा पढ़ा कर शतावधि विद्यार्थियों को इन्होंने उत्तम पंडित किया, जो संप्रति देशदेशान्तर में अपने अपने विद्यार्थीगण को पढ़ा कर इन की कीर्त्ति को आसमुद्रान्त फैला रहे हैं। कुछ दिन हुए श्रीमान् नन्दन नगर की पाठशाला के संस्कृताध्यापक मोक्षमूलर साहिब महाशय की बनाई हुई अंगरेजी और संस्कृत व्याकरण की पुस्तक का परिशोधन और कई स्थलों में परिवर्तन किया था, जिस से उक्त साहिब महाशय ने अति प्रसन्न होकर इन की कीर्त्ति अनेक द्वीपान्तर निवासियों में विख्यात की, यहां तक कि जब उन्होंने अपने पुस्तक की द्वितीयावृत्ति छपवाई तब उस की भूमिका में लिखा है कि इन के समान संस्कृत व्याकरण जानने वाला इस द्वीप में तो क्या संसार भर में दूसरा कोई नहीं है। वे उक्त पंडित वर राजाराम शास्त्री संप्रति चार पांच वर्ष से विरक्त हो कर योगाभ्यास में लगे थे और अपने दीन बांधवों का पोषण और दीन विद्यार्थी प्रभृति के परिपालन ही के हेतु अर्जन करते थे और आप साधारण ही वृत्ति से जीवन करते हुए मठ में निवास करते थे। सम्वत 1932 श्रावण शुक्ल 12 के दिन संन्यास लेकर उसी दिन से अन्न परित्याग पूर्व्वक परमार्थ का अनुसन्धान करते करते मरण काल से अव्यवहित पूर्व्व तक सावधानता पूर्व्वक परमेश्वर का ध्यान करते करते भाद्रपद कृष्ण 3 गुरुवार को प्रातःकाल 8 बजते बजते परमपद को प्राप्त हो कर यशोमात्रावशिष्ट रह गए।

लार्ड म्यो साहिब

हा! यह कैसे दुःख की बात है कि आज दिन हम उस के मरण का वृत्तान्त लिखते हैं जिस की भुजा की छांह में सब प्रजा सुख से कालक्षेप करती थी और जो हम लोगों का पूरा हितकारी था। ऐसा कौन है जो इस को पढ़ कर न कम्पित होगा और परम शोक से किस की आंखों से आंसू न बहैंगे? मनुष्य की कोई इच्छा पूरी नहीं होने पाती और ईश्वर और ही कुछ कर देता है। वहां युवराज के निरोग होने के आनन्द में हम लोग मग्न थे और कैसे कैसे शुभ मनोरथ करते थे, कहां यह कैसा विज्जुपात सा हाहाकार सुनने में आया। निस्सन्देह भरतखंड के वृत्तान्त में सर्व्वदा इस विषय को लोग बड़े आश्चर्य्य और शोक से पढ़ैंगे और निश्चय भूमि ने एक ऐसा अपूर्व स्वामी खो दिया है जैसा फिर आना कठिन है। तारीख 12 को यह भयानक समाचार कलकत्ते में आया और उसी समय सारा नगर शोकाक्रान्त हो गया।

गुरुवार 8वीं तारीख को श्रीमान् लार्ड म्यो साहिब पोर्ट ब्लेयर उपद्वीप में ग्लासगो नामक जहाज पर आए और ढाका और नेमिसिस नाम के दो जहाज और भी संग आए और साढ़े नौ बजे उन टापुओं में पहुंचे और ग्यारह बारह के भीतर श्रीमान् ने बर्मा के चीफ कमिश्नर इत्यादि लोगों के साथ कैदियों की बारक, गोराबारिक और दूसरे प्रसिद्ध स्थानों को देखा। उस समय श्रीमान् की शरीर रक्षा के हेतु बहुत से सिपाही, कांस्टेबल और गार्ड बड़ी सावधानी से नियत किए गए और थोड़ी देर जनरल स्टुअर्ट साहिब की कोठी पर ठहर कर सब लोग जहाजों को फिर गए। अढ़ाई बजे सब लोग फिर उतरे और इन टापुओं के लोगों का स्वभाव जान कर सब लोग बड़ी सावधानी से चले और बड़े यत्न से सब लोग श्रीमान् की रक्षा करते रहे। उस समय श्रीमती लेडी म्यो और सब स्त्रियां ग्लासगो जहाज पर ही थीं। ये लोग अवरदीन और ऐडो होते हुए बाइयर टापू में पहुंचे। यह स्थान रास के टापू से ढाई कोस है और यहां 1300 कैदी रहते हैं, जो अपने बुरे कर्मो से काले पानी भेजे गए हैं। भय का स्थान समझ कर कांस्टेबल और सरकारी पलटन रक्षा के हेतु संग हुई और जेलखाना इत्यादि स्थानों को देख कर चथाम टापू में गए और वहां कोयले की खान देख कर फिर जहाज पर फिर आने का विचार करने लगे। अब 5 बजने का समय आया और सब लोग जहाज पर जाने को घबड़ा रहे थे कि श्रीमान् ने कहा कि हम लोग

हिरात की पहाड़ी पर चढ़ैं और वहां से सूर्यास्त की शोभा देखैं। यह पहाड़ी इसी टापू में है और इस के ऊपर कोई बस्ती नहीं है, परन्तु नीचे होप टौन नामक एक छोटी बस्ती है, जिस में कुछ कैदी काम करने वाले रहते हैं। यद्यपि सवेरे ऐसा लोगों ने सोचा था कि समय मिलैगा तो इस पहाड़ी पर जायंगे, पर ऐसा निश्चय नहीं था और न वहां कुछ तयारी थी। ऐलिस साहिब इस पहाड़ी पर नहीं चढ़े और पलटन के न होने से चथाम से पलटन बुलाई गई कि वह श्रीमान् की रक्षा करै और वहां से आठ कांस्टेबल रक्षा के हेतु संग हुए। श्रीमान् एक छोटे टट्टू पर चलते थे और सब लोग पैदल थे। ऊपर बहुत से ताड़ और सुपारी के पेड़ों से स्थान घना हो रहा था और चोटी पर पहुंच कर श्रीमान् पांच घंटे तक सूर्य्यास्त की शोभा देखते रहे। यद्यपि सूर्य्यास्त हो चुका था, पर ऊपर प्रकाश इतना था कि नीचे की घाटी दिखाती थी, और अन्धकार होता जान कर सब लोग नीचे उतरने लगे। मार्ग में केवल दो छुटे हुए कैदी मिले और उन लोगों ने कुछ बिनती करना चाहा। पर जनरल स्टुअर्ट ने उन को टोका और कहा कि जब श्रीमान् स्वस्थ रहैं तब आओ। इन के अतिरिक्त और कोई मार्ग में नहीं मिला। कप्तान लकउड और कौंट बाल्गस्टन आगे बढ़ गए थे और एक चट्टान पर बैठे उन लोगों का मार्ग देखते थे। इस समय अंधेरा हो गया था, परन्तु कुछ मार्ग दिखाई देता था और उन लोगों ने केवल कुछ मनुष्यों को पानी ले जाते देखा और कोई नहीं मिला। श्रीमान् सवा सात बजे नीचे पहुंचे और उस समय सम्पूर्ण रीति से अंधेरा हो गया था और एक अफसर ने मशाल लाने की आज्ञा दिया। इस से कई मनुष्य भी संग के उन को बुलाने हेतु दौड़ गए। जब कैदियों के झोपड़े के आगे बढ़े, जनरल स्टुअर्ट एक आवर्सियर को आज्ञा देने के हेतु पीछे ठहर गए और श्रीमान् आगे बढ़ गए। उस समय श्रीमान् के आगे दो मशाल और कुछ सिपाही थे और उन के प्राइवेट सेक्रेटरी मेबर्न और जमादार भी कुछ दूर हो गए थे और कर्नल जरविस और मि. हाकिन और मि. एलिन भी पीछे छूट गए थे कि इतने में एक मनुष्य उन के बीच से उछला और श्रीमान् को दो छुरी मारी, जिस में से पहिली दहिने कन्धे पर और दूसरी बाएं पर लगी। यह नहीं जाना गया कि वह किस मार्ग से वहां आया, क्यौंकि चारों ओर लोग घेरे थे। पर ऐसा अनुमान होता है कि चट्टानों के नीचे छिप रहा था। श्रीमान् चोट लगते ही उछले और पास ही पानी के गड़हे में गिर पड़े। यद्यपि लोगों ने उन को उठा कर खड़ा किया, पर ठहर न सके और तुरन्त फिर गिर पड़े। उनके अन्त के शब्द यह हैं "They've hit me Burne" (बर्न उन लोगों ने मुझे मारा) और फिर दो एक शब्द कहे वह समझ न पड़े और उन के शरीर को लोग उठाकर जहाज पर लाने लगे, परन्तु श्रीमान् तो पूर्व्व ही शरीर त्याग कर चुके थे और वीरों की उत्तम गति को पहुंच चुके थे। उस दुष्ट को अरजुन सिंह नामक क्षत्रिय ने बड़े साहस से पकड़ा। कहते हैं कि उस ने पहिले तो उस हत्यारे के मुख पर अपना दुपट्टा डाल दिया और फिर आप उस पर एक साहिब की सहायता से चढ़ बैठा और फिर तो सब लोगों ने उस को हाथों

हाथ पकड़ लिया और यदि उस समय विशेष रक्षा न की जाती तो लोग क्रोधावेश में उस को मार डालते। कहते हैं कि जिस समय उन का शरीर जहाज पर लाये हैं उस समय अनवरत रुधिर बहता था। जब श्रीमान् का शरीर ग्लासगो पर लाये तो उस समय लेडी म्यो के चित्त की दशा सोचनी चाहिए! हा! कहां तो यह प्रतीक्षा करती थीं कि प्यारा पति फिर के आता है, अब उस के साथ भोजन करैंगे और यात्रा का वृत्तान्त पूछैंगे, कहां उस पति का मृतक शरीर सामने आया। हाय हाय! कैसा दारुण समय हुआ है!! परन्तु वाह रे इन का धैर्य्य कि उसी समय शोच को चित्त में छिपा कर सब आज्ञा उसी भांति किया जैसी श्रीमान् करते थे। जब यह समाचार कलकत्ते में 12 वीं तारीख को पहुंचा उसी समय आज्ञा हुई दुर्गध्वज अधोमुख हो और 39 मिनिट पर सायंकाल तोप छुटैं। कानून के अनुसार लार्ड नेपियर गवर्नर जनरल हुए और उसी टापू से एक जहाज उनके लाने को भेजा गया और श्रीमान् के भाई भी फिर बुला लिए गए। परन्तु लार्ड नेपियर के आने तक आनरैब्ल स्ट्रेची स्थानापन्न गवर्नर जनरल हुए। कहते हैं कि लार्ड नेपियर 16 तारीख को चले। जिस दिन ये वहां से चले थे उस दिन सब लोग शोक वस्त्र पहरे हुए इन को विदा करने को एकत्र हुए थे। श्रीमान् का शरीर कलकत्ते में आया और वहां से आयलैंड गया। लेडी म्यो और श्रीमान् के दोनों भाई और पुत्र तो बम्बई जायंगे, वहां से जहाज पर सवार होंगे, पर श्रीमान् का शरीर सीधा कलकत्ते से ग्लासगो पर जायगा।

नीचे लिखा हुआ आशय का पत्र कलकत्ते के छापे वालों को सरकार की ओर से मिला है। 'आठवीं तारीख बृहस्पति के दिन श्रीमान् गवर्नर जनरल बहादुर पोर्टब्लेअर नामक स्थान पर पहुंचे और रास नाम स्थान को भलीभांति निरीक्षण कर वाइपर नामे टापू में पहुंचे, जहां महा दुष्ट गण रहते हैं। स्टीवर्ट साहेब सुपरिंटेन्डेन्ट ने श्रीमान् के शरीर रक्षा के हेतु बहुत अच्छा प्रबन्ध किया था कि कोई मनुष्य निकट न आने पावै। पुलिस के व्यतिरिक्त एक विभाग पदचारियों का साथ था, परन्तु यह श्रीमान् को क्लेशकर जान पड़ता था और उन्हों ने कई बार निषेध किया। यहां से लोग चाथम में गए, जहां आरे चलते हैं और लकड़ी काटी जाती है। परन्तु यह सब कर्म्म पांच बजे के भीतर ही हो गया, तो श्रीमान् ने कहा कि होपटाउन प्रदेश में चलकर हरियट पर्वत पर आरोहण कर के प्रदोष काल की शोभा देखना चाहिए। यह स्थिर कर सब लोग उसी ओर चले और साढ़े पांच बजे वहां पहुंचे। थोड़े से पुलिस के सिपाही साथ में थे, क्योंकि वहां यह आशा न थी कि कोई दुष्कर्मा मिलै—वहां सब रोग ग्रसित और श्रमित लोग रहते हैं। श्रीमान् बहुत दूर पर्यन्त एक टट्टू पर आरूढ़ थे और उन के सहचरी लोग भूमि पर चलते थे। हरियट पर्वत पर पहुंच कर लोगों ने किंचित् काल विश्राम किया और फिर तीर की ओर चले। मार्ग में दो श्रमिक व्यक्ति मिले और श्रीमान् से कुछ कहने की इच्छा प्रकट की, परन्तु, स्टीवर्ट साहेब ने उन से कहा कि तुम लोग लिख कर निवेदन करो। दो साहेब आगे थे और और लोग साथ में थे। उन लोगों के तीर पर पहुंचने के पूर्व्व ही अन्धकार छा गया और

श्रीमान् के पहुंचते 'मशाल' जल गए। तीर पर पहुंच कर स्टीवर्ट साहेब पीछे हट कर किसी को कुछ आज्ञा देने लगे। शेष 20 गज आगे नहीं बढ़े थे कि एक दुष्कर्मी हाथ में छुरी लिए द्रुतवेग से मंडल में आया और श्रीमान् को दो छुरी मारी, एक वाम स्कन्ध पर और दूसरी दक्षिण स्कन्ध के पुट्ठे के नीचे। अरजुन नामक सिपाही और हाबिन्स साहेब ने उसे पकड़ा और बड़ा कोलाहल मचा और 'मशाल' बुत गए। उसी समय श्रीमान् भी या तो करारे पर से गिर पड़े वा कूद पड़े। जब फिर से प्रकाश हुआ तो लोगों ने देखा कि गवर्नर जनरल बहादुर पानी में खड़े थे और स्कन्ध देश से रुधिर का प्रवाह बड़े वेग से चल रहा था। वहां से लोग उन्हें एक गाड़ी पर रख कर ले गए और घाव बांधा गया, परन्तु वे तो खत्म हो चुके थे। जब उन की लाश ग्लासगो नाम नौका पर पहुंची तो डॉक्टरों ने कहा कि इन दोनों घावों में एक भी प्राण लेने के समर्थ था। परन्तु उस समय लेडी म्यो का साहस प्रशंसनीय था। उन को अपने 'राज' नाश की अपेक्षा भारतखंड के राज के नाश और प्रजा के दुःख का बड़ा शोच हुआ।' स्टुअर्ट साहेब ने इस विषय का गवर्नमेन्ट को एक रिपोर्ट किया है और एक सर्टिफिकेट डॉक्टरों की ओर से भी गवर्नमेन्ट को भेजा गया है।

शव यात्रा

हा! शनिश्चर (17वीं) को कलकत्ते की कुछ और ही दशा थी। सब लोग अपना अपना उचित कर्म्म परित्याग कर के विषन्नबदन प्रिंसेप घाट की ओर दौड़े जाते थे। बालक अपनी अवस्था को विस्मृत कर और खेल कुतूहल छोड़ उस मानव प्रवाह में बहे जाते थे, वृद्ध लोग भी अपने चिरासन को छोड़ लकुट हाथ में, शरीर कांपते हुए उन के अनुसरण चले।—स्त्री बेचारी कुलमर्यादा सीमा परिबद्ध उद्विग्न चित्त हो कर खिड़कियों पर बैठी युगल नेत्र प्रसारनपूर्वक अपने हितैषी, परमविद्याशाली और परम गुणवान उपराज के मृतक शरीर के आगमन की मार्ग प्रतीक्षा करती थी। मार्ग में गाड़ियों की श्रेणी बंध गई थी, नदी में सम्पूर्ण नौकाओं के पताका युक्त मस्तूल झुक रहे थे, मानो सब सिर पटक पटक कर रो रहे हैं। दुर्ग से सेना धीरे धीरे आई और गवर्नमेन्ट हाउस से उक्त घाट पर्यन्त श्रेणीबद्ध हो कर खड़ी हुई और प्रत्येक वर्ग के पुरुष समुचित स्थान पर खड़े थे। एक सन्नाटा बंध गया था कि पौने पांच बजे घाट पर से एक शतघ्नी (तोप) का शब्द हुआ और उस का प्रतिउत्तर दुर्ग और कानी नाम नौका पर से हुआ। बाजावालों ने बड़ी सावधानी से अपने अपने वाद्य यन्त्रों को उठाया और कलकत्ते के वालंटियर्स लोग आगे बढ़े। एक तोप की गाड़ी पर इंगलैंड के राजकीय पताका से आच्छादित श्रीमान् गवर्नर जनरल का मृतक शरीर शवयात्रा के आगे हुआ। उस समय लोगों के चित्त पर कैसा शोक छा गया था उस का वर्णन नहीं हो सकता। ऐसा कौन पाहनचित्त होगा जिस का हृदय उस श्रीमान् के चंचल अश्व को देख कर उस समय विदीर्ण न हुआ होगा। उस के नेत्र से भी अश्रुधारा प्रवाहित होती थी। हा! अब उस घोड़े का चढ़नेवाला इस संसार में नहीं है। उस से

भी शोकजनक श्रीमान् के प्रिय पुत्र की दशा थी जो कि विपन्नवदन, अधोमुख, सजलनयन, बाल खोले अपने दोनों चचा के साथ पिता के मृतक शरीर के साथ चलते थे। हा! ऐसी वयस में उन्हें ऐसी विपद पड़ी। परमेश्वर बड़ा विषमदर्शी दीख पड़ता है। वैसे ही मेजर बर्न भी देखे जाते थे। शोक से आंखें लाल और डबडबाई हुई थीं और अनाथ की भांति अपने स्वामी वरन् उस मित्र के शोक में आतुर थे, जिनने उन्हें अन्त में पुकारा और मरण समय उन्हीं का नाम लिया। हा! यह यात्रा निम्नलिखित रीति पर गवर्नमेन्ट हाउस में पहुंची। क्वार्टर मास्टर जनरल के विभाग का एक अश्वारोही अफसर, फ़र्स्ट बंगाल केवलरी (अश्वारोही सेना) का एक भाग, कलकत्ते के वालंटियर्स की रैफल पलटन अस्त्र उलटा लिए हुए और श्री महाराणी की 14वीं रेजिमेंट का शोकसूचक बाजा बजता हुआ।

श्रीमान् का बाजा
बॉडी गार्ड (शरीररक्षक) पैदल
दुर्ग और कथीड्रल गिरजा के पादरी
श्रीमान् के चापलेन
डाक्टर जे. फेअरर सी. एस. आई.,
करनेल जी. डिलेन कमांडिंग
बाडी गार्ड

श्रीमान् का
मृतक शरीर
एक तोप की गाड़ी पर

क. एफ. एच. ग्रेगरी
एडीकांग
डाक्टर ओ. बर्नेट
के. एच. वी. लॉकउड एडीकांग
क. टी. एम. जोन्स आर. एन.
एल. टी. डीन
क. आर. एच. आंट एडिकांग
सुबादार मेजर और सरदार बहादुर शिवबख्श अवस्ती
एडिकांग
क. सी. एल. सी. डी रोबक
एडिकांग
ले. सी. हाकिन्स आर. एन.
मेजर ओ. टी. बर्न प्राइवेट सेक्रेटरी।
मुख शोक प्रकाशक।
आनरेब्ल आर. बोर्क, आनरेब्ल टी. बोर्क. मेजर बोर्क।
श्रीमान् का विश्वासपात्र क्लर्क वा लेखक।
श्रीमान् के सेवक।
श्रीमान् के पलटन के अफसर।
श्रीमान् के एतद्देशीय सेवक।
माझी नौकास्थ लोग और ग्लासगो और डाफनी नामक नौका का तोपखाना।

उक्त नौकाओं के अफसर।

आस्मिन् कालिक गवर्नर जनरल।

बंगाल के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर और श्रीमान् कमान्डर-इन-चीफ़।

बंगाल के चीफ जस्टिस, कलकत्ते के लॉर्ड बिशप, आर्क बिशप और पश्चिम बंगाल के विकार अपॉस्टोलिक।

श्रीमान् गवर्नर जनरल के सभा के सभासद।

कलकत्ते के पुइन जज्ज।

सभा के अधिक सभासद।

एतद्देशीय राजे।

कन्सलूस जनरल। बरमा के चीफ कमिश्नर।

अन्य देशों के कन्सल एजेन्ट।

गवर्नमेन्ट के सेक्रेटरी

इन के पीछे और बहुत से लोग पलटन के अफसर इत्यादि और लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के साथ के लोग थे।

यद्यपि अनुचित तो है, परन्तु ऐसी शोभा कलकत्ते में कभी देखने में नहीं आई थी और ईश्वर करे न कभी देखने में आवै।

श्रीमान् का शरीर सर्वसाधारण लोगों को देखने के लिए तीन दिन पर्यन्त मारब्लहाल रक्खा गया है और सब लोग श्रीमान् का अन्त का दरबार करने वहां जायंगे।

हे भारतवर्ष की प्रजा! अपने परम प्रेमरूपी अश्रुजल से अपने उपराज्याधीश का तर्प्पण करो जो आज तक तुम्हारा स्वामी था और जिस की बांह की छांह में तुम लोग निर्भय निवास करते थे और जो अनेक कोटि प्रजा लक्षावधि सैन्य के होते हुए भी अनाथ की भांति एक क्षुद्र के हाथ से मारा गया और एक बेर सब लोग निस्सन्देह शोक समुद्र में मग्न हो कर उस अनाथ स्त्री लेडी म्यो और उन के छोटे बालकों के दुःख के साथी बनो। हा! लेखनी दुःख से आगे लिखने को असमर्थ हो रही है, नहीं तो विशेष समाचार लिखती। निश्चय है कि पाठकजन इस असह्य दुःख रूपी वृत्त को पढ़ कर विशेष दुःखी होने की इच्छा भी न रक्खैंगे।

श्रीमान् स्वर्गवासी के मरण पर लोगों ने क्या किया।

जिस समय यह शोक रूपी वृत्त श्रीमती महाराणी को पहुंचा श्रीमती ने लेडी म्यो और वर्क साहेब को तार भेजा कि हम तुम लोगों के उस अपार दुःख से अत्यन्त दुःखी हुए और हम तुम लोगों के उस दुःख के साथी हैं जो श्रीमान् लार्ड म्यो के मरने से तुम पर पड़ा है। सेक्रेटरी ऑफ स्टेट ने भी इसी भांति स्थानापन्न गवर्नर जनरल को तार दिया कि ''हम इस समाचार से अत्यन्त दुःखी हुए। निस्सन्देह भरतखंड ने एक अपना बड़ा योग्य स्वामी नाश किया और यह ऐसा अकथनीय वृत्तान्त है

कि इस समय हम विशेष कुछ नहीं कह सकते।'' महाराज साम ने भी स्थानापन्न गवर्नर जनरल को तार दिया है कि हम इस दुःख में लेडी म्यो और भारत की प्रजा के साथ हैं, जो उन लोगों पर अकस्मात् एक योग्य स्वामी के नाश होने से आ पड़ा है। महाराज जयपुर को जब यह समाचार गया एक संग शोकाक्रान्त हो गए और राज के किले का झंडा आधा गिरवा दिया और पंचमी का बड़ा दरबार बन्द कर दिया और बीस बीस मिनट पर किले से शोक सूचक तोप छूटी और नगर में एक दिन तक सब काम बन्द रहा। सुना है कि महाराज कलकत्ते जायंगे। पटियाला के महाराज ने एक शोकसूचक इश्तिहार प्रकाशित किया और अपने दरबारियों को आज्ञा दिया कि शोक का वस्त्र पहिरैं। महाराज कपूरथला ने भी ऐसा ही किया और अवध अंजुमन के सेक्रेटरी को एक पत्र भेजा कि उन के स्मरणार्थ उद्योग करै। कलकत्ते की दशा तो लिखने के योग्य ही नहीं है, न ऐसा कभी पूर्व्व में हुआ था और न ईश्वर करै होय। वसन्त पंचमी का नाच गान सब बन्द हो गया और नगर में दूकानैं सब कई दिन तक बन्द रहीं, बरात नहीं निकली, कई लग्न टाल दिए गए। वहां के जस्टिस ऑफ दि पीस लोग मिल कर एक शोकपत्र श्री लेडी म्यो को देने वाले हैं और भी अनेक शोकसूचक कृत्य हो रहे हैं। बम्बई में भी सब दूकानैं बन्द हो गईं और सब कारखाने बन्द हो गए। बनारस में भी इस समाचार के आने से कई स्कूल बन्द हो गए। और कई शोकसूचक कमेटियां हुईं। बम्बई में फरासीस, इटली और प्रशिया इत्यादि देशों के राजदूतों ने अपनी कोठियों के राज के झंडे आधे गिरा दिए और सब मिल कर शोक का वस्त्र पहिन कर वहां के गवर्नर के पास गए थे और वहां सब लोगों ने शोक भरी वार्त्ता किया और उस के उत्तर में लाट साहिब ने भी एक सुरस भाषण किया। हा! ईश्वर फिर यह दिन न लावै!!

उस चांडाल दुष्ट हत्यारे शेरअली के विषय में फ्रेंड ऑफ इंडिया के सम्पादक से हम पूर्ण सम्मति करते हैं। निस्सन्देह उस दुष्ट को केवल प्राण दंड देना तो उस की मुंह मांगी बात देनी है, क्यौंकि मरने से डरता तो ऐसा कर्म न करता। सम्पादक महाशय लिखते हैं कि ये दुष्ट प्राण से प्रतिष्ठा और धर्म्म को विशेष मानते हैं इस से ऐसा करना चाहिए जिस में इन दुष्टों का मुख भंग हो और धर्म्म और प्रतिष्ठा दोनों को हानि पहुंचै। वह लिखते हैं (और बहुत ठीक लिखते हैं, अवश्य ऐसा ही वरन् इस से बढ़ कर होना चाहिए) कि उस के प्राण अभी न लिए जायं और उसे खाने को वह वस्तु मिलैं जो 'हराम' हैं और वस्त्र के स्थान पर उस को सूअर के चर्म की टोपी और कुरता पहिनाया जाय। यावच्छक्ति उस को दुःख और अनादर दिया जाए। ऐसे नीच के विषय में जितनी निर्दयता की जाय सब थोड़ी है और ऐसे समय हम लोगों को कानून छप्पर पर रखना चाहिए और उस को भरपूर दुःख देना चाहिए।

श्रीमान् लार्ड म्यो स्वर्गवासी के मरने का शोक जैसा विद्वानों की मंडली में हुआ वैसा सर्वसाधारण में नहीं हुआ। इस में कोई सन्देह नहीं कि एक बेर जिस ने

यह समाचार सुना घबड़ा गया, पर तादृश लोक शोकाक्रान्त न हो गए इस का मुख्य कारण यह है कि लोगों में राजभक्ति नहीं है। निस्सन्देह किसी समय में हिन्दुस्तान के लोग ऐसे राजभक्त थे कि राजा को साक्षात् ईश्वर की भांति मानते और पूजते थे, परन्तु मुसलमानों के अत्याचार से यह राजभक्ति हिन्दुओं से निकल गई। राजभक्ति क्या इन दुष्टों के पीछे सभी कुछ निकल गया; विद्या ही का वैसा आदर न रहा। अब हिन्दुस्तान में तीन बात का बड़ा घाटा है—वह यह है कि लोग विद्या, स्त्री, राजा का तादृश स्वरूप ज्ञान पूर्वक आदर नहीं करते। विद्या को केवल एक जीविका की वस्तु समझते हैं। वैसे ही स्त्री को केवल काम शान्त्यर्थ वा घर की सेवा करने वाली मात्र जानते हैं। उसी भांति राजा को भी केवल इतना जानते हैं कि वह मुझ से बलवान है और हम उस के वश में हैं। राजा का और अपना सम्बन्ध नहीं जानते और यह नहीं समझते कि भगवान की ओर से वह हम लोगों के सुख दुःख का साथी नियत हुआ है, इस से हम भी उस के सुख दुःख के साथी हों।

हम आशा रखते हैं कि श्रीमान् गवर्नर जनरल बहादुर के अकाल मृत्यु का समाचार अब सब को भली भांति पहुंच गया। हम लोगों ने जिस समय यह संवाद सुना शरीर शिथिलेन्द्रिय और वाक्य-शून्य हो गया। यदि कोई आकर कहे कि चन्द्रमा में आग लगी है तो कभी विश्वास न होगा। उसी प्रकार भरतखंड के उपराज का एक कैदी के हाथ से मारा जाना किसी समय में एकाएकी ग्राह्य नहीं हो सकता। हाय! देश को कैसा दुःख हुआ! अभी वे ब्रह्म देश की यात्रा कर के अंडमन्स नाम द्वीपस्थित दुखियों के सहायतार्थ उपाय करने को जाते थे और वहां ऐसी घटना उपस्थित हुई। चीफ जस्टिस नारमन का मरण भूलने न पाया और एक उस से भी विशेष उपद्रव हुआ और फिर भी मुसल्मान के हाथ से। यद्यपि कई अंग्रेजी समाचार पत्र सम्पादकों ने लिखा है कि जो कारण नारमन साहेब के मारने का था सो श्रीमान् के घात का कारण नहीं हो सकता, परन्तु इस में हमारी सम्मति नहीं है। क्योंकि यदि शेरअली के मन यह बात पहिले से ठनी न होती तो वह ऐसे निर्जन स्थान में छुरी लेकर छिपा क्यों बैठा रहता। फिर एक दूसरे कैदी के 'इजहार' से स्पष्ट ज्ञात होता है। जिस समय शेरअली ने अब्दुल्ला के और नारमन साहेब के मरण का समाचार सुना कैसा प्रसन्न हुआ और लोगों का निमन्त्रण किया। यदि वह उस वर्ग का न होता जो कि तन मन से चाहते हैं कि सरकार 'काफिर' है इसलिए उस के बड़े बड़े अधिकारियों के मारने से बड़ा 'सवाब' होता है। प्रसन्नता और निमन्त्रण का क्या कारण थां? फिर वह स्वतः कहता है कि अपने मरण के पूर्व्व मैं एक बात कहूंगा। वह कौन सी बात हो सकती है! इन सब विषयों को भलीभांति दृढ़ कर के तब उस को फांसी देना उचित है।

लॉर्ड लारेन्स

सन 1811 ई. 4 मार्च को उक्त महात्मा ने जन्म ग्रहण किया था। उन्होंने पहिले कुछ दिन वर्ड लंडन डेरी के काथेल कालिज में शिक्षा लाभ की थी, बाद उस के हेलिवार कालिज में पढ़ने लगे। 1829 ई. में सिविलियन हो कर भारतवर्ष में आए। 1831 ई. में दिल्ली के रेज़िडेंट और चीफ कमिश्नर के सहकारी हुए। 1832 ई. में प्रतिनिधि मजिस्टर और कलक्टर हुए। 1834 ई. में पानीपत के प्रतिनिधि मजिस्टर हो के गए। दो बरस के बाद गुड़गांव के एजेंट मजिस्टर और डिप्टी कलक्टर हुए। कई एक वर्षों के बाद दिल्ली के मजिस्टर हुए। उस समय यहां के गवर्नर जनरल सर हेनरी हारडिङ्ग थे। उन्हों ने इन की चमत्कार राजनीति देख कर इन को शतद्रु तीरस्थ प्रदेशों का कमिश्नर कर के भेज दिया। 1848 ई. में लारेन्स लाहौर के रेज़िडेंट के प्रतिनिधि हुए। सिक्खों की दूसरी लड़ाई के बाद डलहौजी ने पंजाब शासन करने के लिए एक एडमिनिस्ट्रेशन बोर्ड स्थापन किया। उस में यह और इनके बड़े भाई सर हेनरी लारेन्स, चार्ल्स और मानसेल सभ्य नियुक्त हुए। इन दोनों भाइयों ने राज्य शासन सम्बन्ध में अति उत्तम क्षमता और निपुणता दिखाई।[1] जॉन लारेन्स ने 1857 ई. के गदर में अपनी अद्भुत शक्ति के प्रभाव से पंजाब को शान्त रक्खा था, इसी लिए आज तक भारत साम्राज्य अव्याहत है। उस समय लारेन्स पंजाब के चीफ़ कमिश्नर थे। 1856 ई. में लारेन्स को के. सी. बी. की उपाधि मिली और बाद ही इन को जी. सी. बी. की भी उपाधि मिली थी। 1858 ई. में यह महाराज बारनट होकर प्रीवी कौंसिल के सभ्य हुए। 1863 ई. के दिसम्बर महीने में भारतवर्ष के गवर्नर जनरल होकर लॉर्ड एलागिन के उत्तराधिकारी हुए। 1869 ई. के मार्च महीने में यह लॉर्ड उपाधि प्राप्त हो कर पार्लियामेंट में सभ्य हुए। लॉर्ड लारेन्स का धर्म्म विषय में विशेष अनुराग था। इन्होंने भारतवर्ष के गवर्नमेंट स्कूल समूहों में बाइबल पढ़ाने का प्रस्ताव किया था और और भी विशेष गुण इन में थे। आजकल यह पार्लियामेंट में भारतवर्ष सम्बन्धी विषयों की चर्चा विशेष करने लगे थे। जिस में भारतवर्ष का मंगल हो, इन की यही इच्छा और चेष्टा रहती थी। ऐसे हितकारी मित्र को खो कर जो भारतवर्ष शोकाकुल न होगा, यह कहना बाहुल्य है। उन के सन्मानार्थ? जुलाई को कलकत्ते के किले का निशान गिरा था और 31 तोपें दागी गई थीं। लॉर्ड हेस्टिंग्स के बाद और किसी का ऐसा सम्मान नहीं किया गया था। वेस्टमिनिस्टर ऐबे में इन को समाधि दी गई है।[2]

---

1. सन 1853 ई. में बोर्ड टूट गया और वे चीफ कमिश्नर नियत हुए। सन 1859 ई. में वे पंजाब के प्रथम लेफ्टिनेंट गवर्नर हुए। (यह सूचना ब्रजरत्नदास द्वारा दी गई है।–संपा.)
2. (लॉर्ड लारेन्स की मृत्यु 27 जून 1879 ई. को हुई थी।–संपा.)

महाराजाधिराज ज़ार

ता. 13 मार्च (1881 ई.) रविवार के दिन रूस के शाहनशाह ज़ार राजकीय गाड़ी में बैठ कर भजन मन्दिर से अपने भवन में जाते थे कि इस बीच में किसी दुष्ट ने कुलफीदार गोला उन की गाड़ी के नीचे फेंका, परन्तु वार खाली गया। तब दूसरा फेंका। इस बेर गोला फूट गया और उस के भीतर के बारूद और गोलियों ने चारों ओर उड़कर गाड़ी को विध्वंस किया और ज़ार के पैरों का पता न लगा। केवल दो घंटा प्राण रहा, पश्चात् शाहनशाह रूस पंचत्व को प्राप्त हुए। इस गोले ने कई मनुष्यों का प्राण लिया। इस दुष्ट घातक के पकड़ने का शोध हुआ और पकड़ा गया। इस की अवस्था केवल 21 वर्ष की है; नाम इस का रोसा काफ है। यह खनन विद्या में निपुण है। पहले तो इस दुष्ट ने अपने अपराध को अस्वीकार कर के बचाव किया था, पर यह गुप्तभाव कब छिपै। अन्त में इस ने सब कुछ अपने मुख से प्रगट किया। इस घोर विपत्ति से रूस में हाहाकार मचा है। यूरोप के लोगों को भी बड़ा दुःख हुआ है। राजकुमार ज़ारविचू रूसी राज्य के उत्तराधिकारी अपने पिता के पद पर नियुक्त हुए और उन का राजकीय नाम 'तृतीय एलेकजैंडर' रक्खा गया है। ड्यूक ऑफ एडिनबरा सपत्नीक सेंटपीटर्सबर्ग में गए हैं। इंगलैंड में इस मास भर अधिकारी लोग शोक सूचक वस्त्र धारण करैंगे। हाउस ऑफ कामंस और लार्ड्स की तरफ से दुःख सांत्वना पत्र भेजे जायंगे। निहिलिस्ट लोग इस दुष्ट कर्म के करने में बहुत दिन से लगे हुए थे और कई बेर जो नहीं सो कर चुके थे पर शाहनशाह की आयुष्य थी, इस से इन का यत्न पूरा नहीं होता था। अबकी इन्हों ने अपना दुष्ट संकल्प पूरा किया। शाहनशाह रूस जैसे शूर और पराक्रमी थे सो समस्त भूमंडल में प्रख्यात ही है।

इस महान् व्यक्ति का जन्म सन 1818 में हुआ। उस समय इन के चाचा अलेक्ज़ैंडर प्रथम रूस के राजसिंहासन पर थे। इन की पूरी सात वर्ष की अवस्था भी नहीं हुई थी कि इन के चाचा साहब स्वर्गवासी हुए। मृत अलेक्ज़ैंडर के भाई कांस्टेंटाइन ने राज्य के भार से मुख मोड़ लिया था, इस कारण ज़ार के पिता निकोलस को गद्दी मिली और ये युवराज हुए। इस के अनन्तर रूसी सैनिक लोगों में बलवा उत्पन्न हुआ और वह कई दिन तक रहा। इन बलवाइयों का नाम 'डेकाब्रिस्टस' था

और ये लोग राजकीय कुटुम्ब के पूर्ण शत्रु थे। इन का यह संकल्प था कि जैसे जर्मनी के छोटे छोटे हिस्से हो गए हैं, वैसे ही इस राज्य के भी हो जावैं। परन्तु बहुत सी अन्य प्रामाणिक सैन्य समूह ने प्रथम निकोलस को इन के पराजय करने में बड़ी ही सहायता दी, जिस से इन का दुष्ट संकल्प निर्मूल हो गया। सन 1825 में राजकीय व्यवस्था भलीभांति स्थापित करके निकोलस अपनी इच्छानुसार राज करने लगे। ज़ार की माता प्रुशिया के सम्राट् तृतीय फ्रेडरिक की कन्या थीं। इन्होंने स्वयं अपने लड़के ज़ार को विद्या सिखाई, परन्तु इस बात से इन के पिता अप्रसन्न रहते थे। उन्हों ने ज़ार को फौजी गवर्नरों और निपुण शिक्षकों के पास विद्योपार्जन के निमित्त बैठाया। इस बात को ज़ार ने अनहित समझ अपने को उस शिक्षा से हटाया और देश देश पर्यटन करने लगे और कुछ काल तक अपनी माता की सम्बन्धिनी स्त्रियों के सहवासी रहे। ये राजकीय प्रबन्धों से बहुत प्रसन्न रहते थे। सैनिक कामों में इन का मन कुछ भी नहीं लगता, जो बात रूसी राज दरबार के सम्पूर्ण विरुद्ध थी। इस विषय में पूर्ण चिन्तना और यह कल्पना होने लगी कि इस युवराज के अधिकार में पुराने रूसी समूह क्योंकर रहने पावैंगे। यह बात इन के भाई ग्रांडड्यूक कांस्टेन्टाइन के लिए परमोपयोगी थी। इन दोनों भाइयों में इस कारण ईर्षा उत्पन्न हुई। सामान्यतः इस बात की चर्चा होने लगी और कभी कभी लड़ाई भी हो जाती थी।

एक समय की बात है कि इन के भाई कांस्टेन्टाइन ने जो समुद्रीय सेना के एडमिरल थे, इतनी अधिक शत्रुता इन पर की कि ये कैद कर लिए गए। इस व्यवहार के पल्टे निकोलस ने यही दंड देना कांस्टेन्टाइन को योग्य समझा। इस आपुस के विरोध से इन के पिता को बड़ा शोच रहता था। जबकि सन 1843 में अलेक्ज़ैंडर का प्रथम पुत्र जन्मा तब निकोलस ने कांस्टेन्टाइन से शपथ ली कि वह युवराज का आज्ञाकारी रहैगा। निदान निकोलस ने अपने मरने के समय दोनों लड़कों को बुला कर उन के समक्ष अलेक्ज़ैंडर को राज्याधिकार का तिलक दे दिया और इन दोनों से शपथ ली कि आपुस में विरोध रहित राज्य प्रबन्ध में सन्नद्ध रहैं, जिस से प्रजा और राज्य को हानि न पहुंचै। यह सुन शाहज़ादे ने बड़े बड़े प्रधान मन्त्रियों के सन्मुख प्रतिज्ञा की कि राज्य प्रबन्ध हम भलीभांति करैंगे और अपने को द्वितीय अलेक्ज़ैंडर के नाम से विख्यात किया। उसी दिन अपराह्न समय सब राजकीय और सैनिक कर्मचारियों ने जो सेन्टपीटर्सबर्ग में थे आज्ञाकारिता स्वीकार की और भेंटें दीं। एक कौंसिल जो नवीन अलेक्ज़ैंडर के लिए नियत हुई थी उस में यह विचार ठहरा कि जो युद्ध उस से और अन्य राजों से हो रहा है वह हुआ करे। अलेक्ज़ैंडर का प्रथम काम यह था कि उस ने समग्र राज्यभर में अपने नाम और राज्यसिंहासन पर स्थित होने का विज्ञापन दिया और उस में यह आशय प्रगट किया कि मुख्य अभिप्राय मेरा यह है कि जिस प्रकार से पीटर, कैथराइन, अलेक्ज़ैंडर प्रथम के समय से राज्य की प्रभा और वैभव बढ़ती आई है वैसी ही बढ़ा करै। जनरल रूडीगर को वार्सा नामक स्थान से बुलाकर राजकीय गार्ड की कमान दी और अपनी शान, शौकत के मुआफिक

सेना भरती की; वाणिज्य की उन्नति में भी बड़ी चेष्टा की। राज्य में बहुत से गुलाम जो सरदार लोगों के पास थे उनमें से 23000000 (दो करोड़ तीस लाख) गुलामों को दासत्व भाव से मुक्त कराया। यही नहीं वरन् उन को पेट भरने का उद्योग भी बतला दिया। निस्सन्देह यह काम ज़ार का, जो सन 1861 में हुआ था, अत्यन्त प्रशंसा के योग्य है। इन्होंने सरकारी कॉलेज स्थापित किए। देश देश में सभा नियत कराई। फरवरी सन 1868 में पोलैंड के लौंड़ी गुलामों को भी स्वाधीन किया। इस के करने का अभिप्राय यह था कि पोलैंड के सरदारों का ऐश्वर्य्य न्यून हो जाय, क्योंकि पूर्व में उस भूमि के स्वामी वे ही लोग थे। ज़ार की विद्याविभाग की ओर दृष्टि इतनी अधिक बढ़ी थी कि उन्होंने यूरप के कॉलेजों के समान अपनी राजकीय पाठशाला में बड़े बड़े पद स्थापित किए थे और यह प्रबन्ध बड़ा ही उत्तम था कि प्रत्येक सूबे की ओर से मेंबर भरती होते थे। इन की सभा प्रथम सन 1865 में हुई थी, जिस से बहुत कुछ उपकार के पलटे अपकार की सम्भावना भी हुई। ज़ार ने अपनी प्रजा को युद्ध विद्या में बहुत निपुण किया और राज्य में पंचायती कोर्ट न्याय करने को स्थापित कर दिए। सन 1866 में इन्हों ने बुखारे के अमीर से लड़ाई प्रारम्भ की, जो डेढ़ वर्ष तक होती रही। इस में रूसी लोग विजयी हुए और समरकन्द पर अपना अधिकार जमा लिया। सन 1868 में ज़ार ने अपना अमेरिका प्रदेश यूनाइटेड स्टेट्स की गवर्नमेन्ट अमेरिका के हाथ 14000000 (एक करोड़ चालीस लाख) रुपये की बेच दिया। जब फ्रेंच और जर्मन में लड़ाई होने लगी और जर्मन लोगों ने पैरिस नामक स्थान को घेर लिया तब ज़ार ने सन 1856 के सन्धिपत्र को (जिस से बल्पक्सी की सीमा बांधी गई थी) मानना अंगीकार किया। इस से बड़े बड़े राष्ट्रों को बड़ी कठिनता देख पड़ने लगी। सन 1871 में इस निमित्त एक कॉन्फरेन्स हुआ, जिस में ज़ार के इच्छानुरूप सन्धिपत्र स्थापित हुआ। सन 1872 में जब ज़ार बर्लिन नगर को गए तो जर्मन और ऑस्ट्रिया के सम्राट् से भेंट किया। ये दोनों महाराज सेन्टपीटर्सबर्ग में थे। शाहनशाह की भेंट के लिए निमन्त्रित हो कर आए थे। उस अवसर में बड़ा उत्सव हुआ था। सन 1873 में जनरल कॉफमैन ने खीवा को अधिकार में लाकर इस का कुछ खंड रूसी महाराज्य में जोड़ा था। सन 1874 में इन्होंने अपने राज्य के चारों ओर पर्यटन किया। जहां जहां इन का गमन होता था वहां वहां की प्रजा बड़ी धूमधाम से इन का आदर सम्मान करती थी। सन 1875 में इनके जनरल कॉफमैन ने कोखंद नामक स्थान को सर किया और सब्ज दरिया का उत्तर भाग अपने अधिकार में कर के मस्कविट के राज्य को मिला लिया। सन 1876 में जब टर्की और सर्विया के बीच में युद्ध प्रारम्भ हुआ, उन में इन्होंने कुछ स्वयं सहायता किसी को नहीं की। हां, रूसी लोग सर्विया की सैन्य समूह में गए थे। ज़ब तुर्क लोगों ने अलेक्जिनाक को फतह कर लिया उस समय कुस्तुन्तुनिया में रहने वाले वकील ने सुल्तान को छः सप्ताह तक युद्ध बन्द करने के लिए एक निवेदन पत्र प्रदर्शित किया था, जिसे सुल्तान ने मान्य किया। सन 1877 में टर्की और सर्विया के मध्य एक सन्धिपत्र हुआ और इसी वर्ष में यूरप के सब राजों के वकीलों का कुस्तुन्तुनियां में कॉन्फरेन्स

हुआ था, उस में जो व्यवस्था नियत हुई सो टर्की के सुल्तान को माननीय न हुई, इस कारण ज़ार ने टर्की से लड़ने का उद्देश प्रगट किया। इस युद्ध में तुर्क लोग बड़ी शूरता से लड़े, परन्तु तुर्की लोग पराजित हुए।

उस समय रूसी सेना कुस्तुन्तुनिया के द्वार तक पहुंची थी। सन 1878 ता. 19 फरवरी को एक सन्धिपत्र स्थान स्टेफेनो में हुआ, जिस के नियम बर्लिन के कॉन्फरेन्स में कुछ परिवर्तन हुए थे। ज़ार का चित्त सर्व्वदा धर्म्म विषय में लगा रहता था, इसी कारण ये सब भजनमन्दिरों के अध्यक्ष हुए थे; परन्तु ये रोमनकैथलिक चर्च से द्वेष रखते थे। ज़ार के ऊपर दो मारण प्रयोग हुए—प्रथम सन 1866 ता. 16 अप्रैल को ज्यौंही ये गाड़ी पर सवार होते थे कि एक काराकोजोव विद्यार्थी ने गोली चलाई, परन्तु एक कारीगर ने उसी क्षण अपने बुद्धिबल से उस विद्यार्थी के हाथ को फेर दिया, इस कारण निशाना उस का खाली गया।

इस बात को देख कर ज़ार ने उस कारीगर कामिसरोफ नामक को उच्च पदवी का सरदार बनाया। द्वितीय सन 1867 में ता. 6 जून को पारिस में पोल जाति के बेरेजोवास्की नामक पुरुष ने इन पर गोली चलाई थी, उस समय ज़ार अपने दोनों पुत्र और शाहनशाह नेपोलियन के साथ गाड़ी में बैठे थे। परन्तु कुशल हुई, कि गोली किसी को न लगी केवल एक अर्दली सवार का घोड़ा जख्मी हुआ। दूसरी गोली वह दुष्ट छोड़ता ही था कि बन्दूक की नली फट गई और उसी के हाथ में जा लगी। ज़ार का विवाह ता. 28 अप्रैल सन 1841 में हेंस की राजकन्या मेरिया एलेक्जांड्रोविना से हुआ, जिस से सन्तति बहुत हुई। ज्येष्ठ पुत्र स्वर्गवासी निकोलस का जन्म ता. 22 सितम्बर सन 1843 में हुआ था जो सन 1865 में मृत्यु के वश हुआ। द्वितीय पुत्र एलेक्ज़ेंडर ता. 10 मार्च सन 1845 में जन्मे और उन का विवाह ता. 9 नवम्बर सन 1866 में डेनमार्क की राजकन्या मेरिया फेडोरविना से हुआ। इन की राजकन्या डचेज़ मेरी का विवाह ता. 23 जनवरी सन 1874 में इंगलेंड के राजकुमार ड्यूक ऑफ एडिनबरा से हुआ।

Francis I-King of France.

इनका जन्म सनफ 1494 सितम्बर की 12 वीं तारीख को दोपहर बाद 10 घंटा 37 मिनट पर। जन्मदेश का अक्षांश याम्य 48 अंश, उस समय दशम का विषुवांश 33 अंश 48 कला, दशम लग्न 11 राशि 6 अंश, जन्म लग्न 3 राशि 5 अंश 56 कला।

सायनाः स्पष्ट ग्रहाः

र.	चं.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	ग्रहाः
5	10	6	4	4	5	11	रा.
28	27	19	15	23	23	10	अ.
39	30	10	50	15	54	22	क.

दक्षिण चन्द्र क्रान्तिः 10 अंश 2 कला। दक्षिण शानिक्रान्तिः 9 अंश 43 कला।

जन्म कुंडली

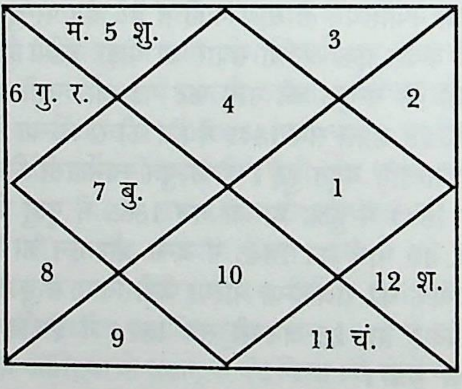

Charles V Emperor of Germany.

इनका जन्म सन 1500 फेब्रुअरी की चौबीसवीं तारीख आधीरात के बाद 2 घंटा 39 मिनट। जन्मस्थान का अक्षांश याम्य 52 अंश। उस समय दशम का विषुवांश 220 अंश, दशम लग्न 7 राशि 12 अंश 27 कला, जन्म लग्न 9 राशि 5 अंश 44 कला।

सायनाः स्पष्ट ग्रहाः

र.	चं.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	ग्रहाः
11 14 30	9 6 45	11 19 36	11 26 40	1 24 40	11 7 29	1 17 37	रा. अ. क.

जन्म कुंडली

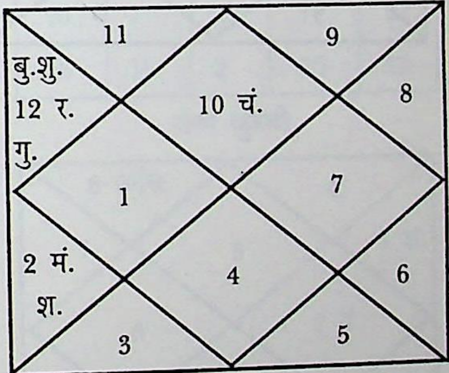

सायनाः स्पष्ट ग्रहाः संक्रान्तयः

र.	चं.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	उर्नस	ग्रहाः
0 29 45	10 26 29	0 2 32	0 2 2	0 29 53	11 9 24	7 20 24	7 3 8	रा. अ. क.
क्रा3	क्रा6	क्रा6	क्रा6	क्रा3	क्रा6	क्रा6	क्रा6	ग्रहाः
11 24	7 46	1 18	0 38	11 7	8 55	15 28	12 3	अ. क.

Napoleon III Emperor of France.

इनका जन्म सन 1808 अप्रैल की 20वीं तारीख की आधीरात के बाद 1 घंटा पर। जन्मस्थान प्यारिस, दशम का विषुवांश 222 अंश 56 कला, दशम लग्न 7 राशि 15 अंश 24 कला, जन्म लग्न 9 राशि 1 अंश 24 कला।

जन्म कुंडली

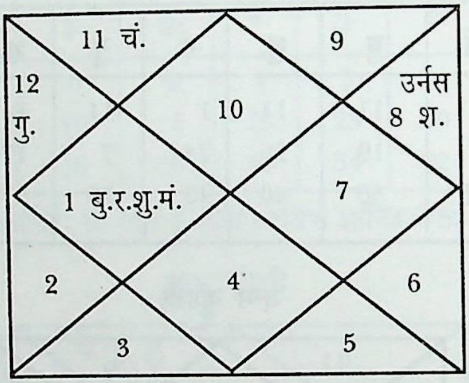
11 चं.
9
12
गु.
10
उर्नस
8 श.
1 बु.र.शु.मं.
7
2
4
6
3
5

Frederic William V Emperor of Germany.

इनका जन्म सन 1797 मार्च की 22वीं तारीख को दो पहर के बाद दो बजे पर। जन्मस्थान बर्लिन, दशम का विषुवांश 30 अंश 30 कला 44 विकला, दशम लग्न 1 राशि 2 अंश 33 कला, जन्म लग्न 4 राशि 18 अंश 51 कला।

सायनाः स्पष्ट ग्रहाः संक्रान्तयः

र.	चं.	बु.	शु.	मं.	गु.	श.	उर्नस	ग्रहाः
0	9	11	11	1	11	2	5	रा.
2	25	7	14	15	27	21	9	अ.
25	24	22	52	28	36	48	59	क.
क्रा3	**क्रा6**	**क्रा6**	**क्रा6**	**क्रा3**	**क्रा6**	**क्रा3**	**क्रा3**	**ग्रहाः**
0	23	10	7	17	1	22	8	अ.
58	30	46	19	2	56	12	35	क.

जन्म कुंडली

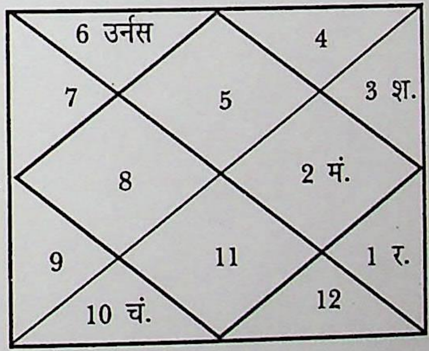

महाराज मल्हार राव की जन्म कुंडली

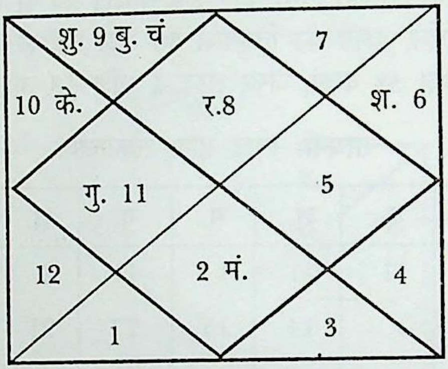
शु. 9 बु. चं
7
10 के.
र.8
श. 6
गु. 11
5
12
2 मं.
4
1
3

महाराज़ के प्रस्तुत दशा का कारण लग्नेश 7, भौम है दशमेश रवि 1 तनु भाव दोनों का परस्पर दृष्टि योग है।

लग्नकर्माधिनेतारौ अन्योन्याश्रयि संस्थितौ।
राजयोगावितिप्रोक्तौ विख्यातौविजयीभवेत्॥1॥

टीपू सुल्तान की जन्म कुंडली

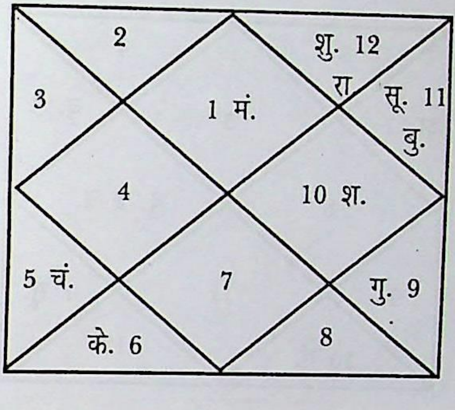
2
शु. 12
3
1 मं.
रा
सू. 11
बु.
4
10 श.
5 चं.
7
गु. 9
के. 6
8

सिकन्दर की जन्म कुंडली

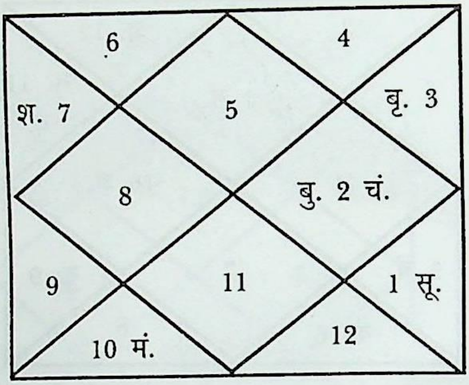
6
4
श. 7
5
बृ. 3
8
बु. 2 चं.
9
11
1 सू.
10 मं.
12

रावण की जन्म कुंडली

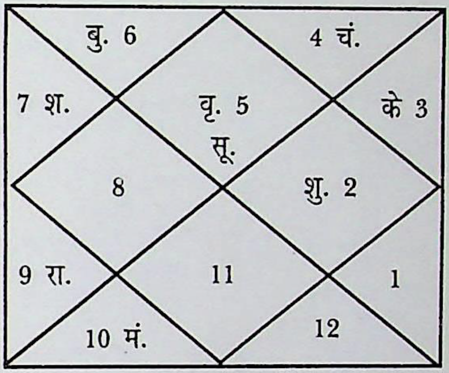
बु. 6
4 चं.
7 श.
वृ. 5
सू.
के 3
8
शु. 2
9 रा.
11
1
10 मं.
12

* * *

[redacted]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

जन्म : सितम्बर 1850 ई., बनारस के एक समृद्ध वैश्य परिवार में।

शिक्षा : घर और क्वींस कालेज बनारस में स्कूली शिक्षा का सिलसिला अचानक टूट गया लेकिन पढ़ने-लिखने का सिलसिला जारी रहा। शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' जैसे मशहूर व्यक्ति से उन्होंने अंगरेजी पढ़ी।

अल्पायु में पिता की मृत्यु और विवाह से पारिवारिक जिम्मेदारियों में इजाफा पर उनके निर्वहन में पूरी तरह असफल।

अद्‌भुत साहित्यिक प्रतिभा के धनी, नाटक, काव्य, निबन्ध, कहानी, यात्रावृत्तान्त, अनुवाद आदि अनेक विधाओं में विविध विषयों पर प्रचुर साहित्य का लेखन।

कविवचन सुधा, बालाबोधिनी, हरिश्चन्द्र मैगजीन, हरिश्चन्द्र चन्द्रिका आदि पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी पत्रकारिता का प्रारम्भ और विकास। धर्म और ईश-भक्ति के प्रचारार्थ अनेक तरह के प्रयास।

निधन : 6 जनवरी, सन 1885 ई.

ओमप्रकाश सिंह

जन्म : सन 1958 ई., उ.प्र. में जौनपुर जिले के एक गांव टड़वां में।

शिक्षा : आरम्भिक शिक्षा गांव और आसपास के विद्यालयों में। उच्च्य शिक्षा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी में। अक्टू. 1988 से नवम्बर 1990 तक एनसीईआरटी में कार्य। दिसम्बर 1990 ई. से ज.ने.वि॰, नयी दिल्ली के भारतीय भाषा केन्द्र में अध्यापन और शोध।

रचनाएं : + आदिकाल एवं मध्यकाल के प्रमुख हिन्दी कवि + प्रेमचन्द के कथा साहित्य में हिन्दू-मुसलिम सम्बन्ध + प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य और साम्प्रदायिक समस्याएं + आधुनिक काव्यधारा : विचार और दृष्टि + चिन्तामणि भाग-4 (सम्पादन)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ग्रन्थावली (आठ भागों में सम्पादन)

प्रकाशन संस्थान

4715/21 दयानंद मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
फोन: 23253234, 65283371, फैक्स: 23287713